हिन्दीकाव्य में प्रकृति-चित्रण

लेखिका

किरणकुमारी गुप्ता, एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रिंसिपल, मुरारीलाल खत्री गर्ल्स इण्टर कॉलेज, आगरा

२००६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशकीय

प्रकृति—दिखाई पड़ने वाली संपूर्ण दृश्य सृष्टि और उसमें रहने वाले मनुष्य, इन्हीं दो प्रधान आधारों से काव्यकार यावत् प्रेरणा ग्रहण करता है तथा इन्हीं को अपनी रचना का विषय बनाता है। मनुष्य अपने आपको तथा अपने जैसे अन्य मनुष्यों को सरलता से समझता है, यही कारण है कि मानव को लेकर ही वाङ्मय का कलेवर मुख्य रूप से केवल भारत में ही नहीं, विश्व भर में, भरता रहा है। प्रकृति मौन और अपेक्षाकृत अचल है। प्रकृति के मनोराग समझना, उसका स्थिति के अनुकूल चित्रण करना और मानव पर उसके व्यापक प्रभाव का भावपूर्ण और संश्लिष्ट वर्णन करना साधारण रचयिताओं का काम नहीं है।

हिन्दी साहित्य में प्रकृति-चित्रण विषयक अन्वेषणात्मक पुस्तकों का एकांत अभाव था। प्रिंसिपल श्रीमती किरण कुमारी गुप्ता ने इस पुस्तक द्वारा उक्त अभाव की पूर्ति कर हिन्दी के एक आवश्यक और महत्वपूर्ण अंग की पूर्ति की है। आशा है कि हिन्दी-साहित्य-जगत् इस उपयोगी पुस्तक का यथोचित समादर करेगा।

अक्षय तीज, २००७ | साहित्य मन्त्री

प्रस्तावना

मैंने अपने इस निबन्ध के दो खण्ड किये हैं। पहले खंड में सिद्धांतों का विवेचन है और द्वितीय खण्ड में अपने युग के विशिष्ट काव्यकारों के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण का निर्देश है।

प्रथम खंड को मैंने दो अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय में मानव का प्रकृति के साथ चिर सहचार, प्रकृति की दार्शनिक परिभाषा, काव्यकार और वैज्ञानिक के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में अंतर तथा कवि समय का निरूपण किया है। आदि काल से ही मानव और प्रकृति में परस्पर भावों का आदान प्रदान रहा है, इसका इसमें शास्त्रीय आधार के अनुसार विवेचन किया है।

द्वितीय अध्याय में मैंने पौर्वात्य और पाश्चात्य काव्य प्रणेताओं के काव्य ग्रंथों में वर्णित प्रकृति के विभिन्न रूपों के आधार पर निर्धारित विधियों का निर्देश किया है।

इस निबंध का प्रथम खंड पृष्ठ भूमि के ही रूप में है। इससे आगामी खंड के लिये आधार-फलक तैयार हो जाता है और द्वितीय खंड के प्रतिपाद्य-विषय को समझने के लिये हिन्दी-काव्य-साहित्य के विद्यार्थी को सरल और सुगम पथ मिल जाता है।

द्वितीय खंड में हिन्दी काव्य के काल-विभाजन के अनुसार चार कालों के लिये चार पृथक्-पृथक् अध्याय हैं। अंतिम अध्याय में समस्त हिंदी काव्य के प्रकृति-चित्रण का मूल्यांकन है।

हिंदी काव्य में वीरगाथा काल में प्रकृति उपेक्षिता रही, भक्ति काल में मानसिक शांति के लिये साकार और निराकार ब्रह्म को काव्य में स्थान मिला, रीति काल में प्रकृति ऐन्द्रिय-सुख का साधन रही और आधुनिक काल में अनेक धाराओं में प्रवाहित होती हुई प्रकृति काव्यकारों का मुख्य विषय हो गई। इन सब सिद्धांतों का मैंने इस निबंध में निर्देश किया है। प्रत्येक काल की तत्कालीन राजनैतिक और धार्मिक परिस्थिति का दिग्दर्शन

कराते हुए मैंने उस काल के मुख्य काव्यकारों की प्रधान प्रवृत्तियों का सकारण विवेचन किया है।

जहाँ तक मौलिकता का सम्बन्ध है, मैंने अपने अध्ययन और मनन से ही सब कुछ लिखने का प्रयास किया है, किसी के विचारों अथवा भावों का अनुकरण करने की चेष्टा नहीं की है। प्रथम खंड तो बिलकुल मेरा अपना है। मैंने केवल उद्धरण ही अन्य पुस्तकों से लिये हैं। प्रकृति-चित्रण के विविध रूपों का निर्देश मैंने I. A. Richards, William Hudson और हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक बाबू गुलाबराय एम० ए० के ग्रंथों के आधार पर किया है। द्वितीय खंड में तो मौलिकता का प्रश्न ही नहीं उठता; उसमें विभिन्न काल के विभिन्न लेखकों के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण का निर्देश मात्र करना था, वही मैंने किया है। सभव है उसमें समालोचकगण के कुछ उद्धरण अथवा विचारों का उल्लेख सहज रूप से हो गया हो, किंतु सचेत होकर मैंने किसी का कुछ भी उधार लेने की चेष्टा नहीं की है।

मैंने हिंदी के प्रमुख कवियों की प्रवृत्तियों को ही अपने इस निबंध का विषय बनाया है, क्योंकि मेरे विषय का क्षेत्र इतना विशाल है जिसमें 'हस्ति पदे सर्वे पदा निमग्नाः' की भाँति हिंदी के आदि युग से आधुनिक काल पर्यन्त समस्त काव्यकारों की कृतियाँ समाहित हो जाती हैं। यदि मैं सब कवियों की प्रकृति-विषयक कृतियों का विवेचन करती तो इससे कई गुना इस ग्रंथ का कलेवर हो जाता।

मैं उन सभी विद्वान आलोचकों और काव्यकारों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनकी रचनाओं द्वारा मैंने लाभ उठाया है। परम श्रद्धेय बाबू गुलाबराय जी, एम० ए०, आदरणीय पं० अयोध्यानाथ शर्मा एम० ए०, तथा डाक्टर नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट् के प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ जिनकी सत्प्रेरणा और उचित परामर्श से मेरी थीसिस का लेखन कार्य समाप्त हो सका है।

अंत में मैं प्रो० हरिहरनाथ जी टंडन एम०ए० के प्रति, जिनकी अध्यक्षता में मैंने इस निबंध का कार्य सम्पादन किया है, अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करती हूँ।

किरणकुमारी गुप्ता।

विषय-सूची

प्रथम-खण्ड

(१) सिद्धान्त और विवेचन

मानव और प्रकृति

(२) प्रकृति-चित्रण के विविध रूप

५ नीति और उपदेश का माध्यम ।

६ परम तत्व के दर्शन ।

द्वितीय-खण्ड

हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण

(१) वीरगाथा-काल

१ नरपति नल्ह ।

२ चन्द वरदाई ।

(२) भक्ति काल

१ ज्ञानाश्रयी-शाखा	...	कबीर
२ प्रेमाश्रयी-शाखा	...	जायसी
३ राम-भक्त	...	तुलसी, केशव
४ कृष्ण-भक्त	...	विद्यापति, सूर, नन्ददास, मीरा, हितहरिवंश ।

(३) रीति काल

१ रीतिबद्ध-काव्यकार	...	सेनापति, बिहारी, भूषण, मतिराम, देव, पद्माकर, बेनी प्रवीण ।
२ रीतिमुक्त काव्यकार	...	घनानन्द, ठाकुर, आलम

(४) वर्तमान काल

(अ) आदि काल अथवा भारतेन्दु काल ।

राजनैतिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन ।

मुगलों की विलासिता और शैथिल्य का अंत ।

रीतिकाल की रूढ़िगत शृंगारिकता के प्रति प्रतिक्रिया ।

काव्यकार ... भारतेन्दु, पं० श्रीधर पाठक, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ।

(आ) मध्य-काल अथवा द्विवेदी काल ।

शिथिलता और विलासिता का अंत ।

भौतिक-जीवन के प्रति सतर्कता ।
नैतिक-बल और कर्म की प्रधानता ।
देश-प्रेम और राष्ट्रीय-चेतना ।
काव्यकार ... पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'हरिऔध', पं० रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, गुरु भक्त सिंह ।

(४) आधुनिक काल ।
जीवनगत दृष्टिकोण में परिवर्तन ।
द्विवेदी युग की स्थूल-नैतिकता के प्रति प्रतिक्रिया ।
प्रकृति के प्रति अनुरंजित-भावना का जागरण ।
प्रकृति में जीवन के स्पन्दन की अनुभूति ।
नारी चित्रों का आरोप ।
काव्यकार ... प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी ।
आधुनिक काल में प्रकृति चित्रण का महत्व और उसके कारण ।

(५) उपसंहार

हिन्दी के प्रकृति-काव्य का मूल्यांकन ।

१—मानव और प्रकृति

मानव और प्रकृति का चिर साहचर्य

प्रकृति मानव की आदिम सहचरी है। आदि काल के प्रथम पुरुष ने जब अपने नेत्र खोले होंगे तो उसको सर्व प्रथम प्रकृति का ही साहचर्य और सहयोग प्राप्त हुआ होगा। वैज्ञानिकों का विकासवाद और आस्तिकों की अपौरुषेय सृष्टि-कल्पना दोनों ही इस विषय में एक मत हैं कि मानव ने प्रकृति के विशाल क्रोड़ में ही जन्म धारण किया और उसके साहचर्य में चेतना को क्रमशः विकसित किया। वृक्षों ने फलदान द्वारा और निर्मल निर्झरों ने शीतल जल द्वारा मानव की सहज वृत्तियों का भी समाधान किया। फलतः मानव का प्रकृति के प्रति स्वाभाविक रूप से चिर साहचर्य स्थापित हो गया।

आदि काल के मानव ने जब चेतना उपलब्ध की तो उसने स्वय को हिमाच्छादित उत्तुंग पर्वत श्रेणियों से परिवृत पाया। अगाध जल-राशि का अवलोकन किया। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों ने अपनी नियत गति द्वारा उसे विस्मित कर दिया, श्याम जलद-खण्ड और वसुधा की विभूति को देखकर वह चकित और आश्चर्यान्वित हो उठा। समस्त भूमंडल उसके लिये आश्चर्य और कौतूहल का विषय हो गया और इस प्रकार सर्व प्रथम उसके चेतन मस्तिष्क में प्रकृति के अलौकिक, अनन्त और अपार अंगों के प्रति विस्मय एवं कौतूहल के भाव उदय हुए।

अभी मानव ने प्रकृति के अलौकिक एवं विस्मयकारी रूप को ही देखा था। अगम्य, अगाध एवं अनन्त के प्रति आश्चर्य का ही अनुभव किया था वह विस्फारित नेत्रों से अविचल सा प्रकृति के विराट रूप का अवलोकन कर रहा था। प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में अपने लघुतम अस्तित्व पर विचार कर रहा था कि यकायक प्रकृति ने अपना मनोमुग्धकारी रूप पलटा, अगाध जलनिधि ने अपनी फेनिल लहरों को उगलना आरम्भ किया और उसका गम्भीर निनाद मानव के कर्ण-कुहरों को विदीर्ण करने लगा। इतस्ततः बिखरे हुए जलद खंडों ने समवेत होकर भीमकाय श्याम मेघों का रूप धारण किया और भयंकर गर्जन करने लगे। फलदान और छायादान करने वाले शान्त-स्वभाव वृक्ष भी झंझावात के वाहन बन गये। समस्त वातावरण में एक

प्रकार का आतंक और भय छा गया। उपल-वर्षा, वृक्षपात और तमावृता राका-रजनी ने तो उसको और भी अधिक भयभीत कर दिया। जो कुछ भी सौम्य और सुन्दर था वह रौद्र बन गया था। अपने इस उग्र और भयोत्पादक रूप में प्रकृति पूर्व की अपेक्षा कई गुनी विराट दृष्टिगोचर होती थी। प्रकृति के इस रौद्र एवं विकराल रूप को देख आदि मानव ने भयभीत होकर अपने नेत्र मूँद लिये और कानों पर हाथ रख लिये, वह भय से कम्पित और जड़ हो गया। उसकी चेतन-शक्ति विलुप्त हो गई।

परन्तु प्रकृति का यह रूप भी स्थायी नहीं रहा। शान्त वातावरण का आभास होने पर मानव ने नेत्रोन्मीलन किया। उसने प्राची में ऊषा सुन्दरी की मधुर मुस्कान देखी। अपने जीवन दाता सद्यः स्नात वृक्षों की कोमल वायु-क्रीड़ा का अनुभव किया, धवल पर्वत-श्रेणियों के दर्शन किये, स्वच्छ नीलाकाश को देखा और अमित सागर को गम्भीर शान्ति में तल्लीन पाया। मानव मुग्ध हो गया और क्रमशः उसके हृदय से भय के भाव अन्तर्हित हो गये और अब उसके अन्तःकरण में नवीन भावना का आविर्भाव हुआ। वह थी विश्वास की भावना। प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपों के दर्शन से वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने उन सब में अपनी अपनी पृथक् सत्ता की कल्पना निर्धारित करली। उसे लगा मानों सूर्य, मरुत, सरिता और निर्झरिणी आदि सभी में एक पृथक सत्ता है जो समयानुसार उन्हें भिन्न-भिन्न रूप प्रदान करती रहती है। मानव ने उन सब की सत्ता के संतुलन में स्वयं को असमर्थ और अति तुच्छ पाया और अपनी हेयता का विचार करते हुए सिर झुका दिया।

मानव की प्रकृति-विषयक चेतना में, इस प्रकार, एक नवीन तत्त्व का समावेश हो गया। प्रकृति के प्रत्येक अवयव में सहज-शक्ति का वह अनुभव कर ही चुका था, उधर उसके (प्रकृति के) अलौकिक, भयावह और सौम्य रूप के भी उसको दर्शन हो चुके थे। उसकी चेतना-शक्ति भी अब पूर्व से अधिक विकसित हो गई थी अतः प्रकृति उसके चिन्तन एवं मनन का विषय बन गई और इस प्रकार वह अपनी सहचरी के शिव-स्वरूप की ओर उन्मुख हुआ। उसने प्रकृति के अंग—सिंधु, जलद, गिरि, सूर्य, पवमान आदि में अन्तर्निहित मांगलिक भावना का भी अनुभव किया। जलद खंडों ने अमृतोपम जल की वर्षा कर उसके जीवन-दाता वृक्षों में नव-जीवन का संचार किया, सूर्य ने जीवन के वांछित उपकरणों का पोषण किया, रत्नाकर ने असंख्य रत्नों का

उपहार दिया। चन्द्र ने अपनी चन्द्रिका के प्रसार से घनान्धकार का अवहरण किया, सकल जीवन का साधन बन गया और ,धरित्री ने इन सभी को स्नेह पूर्वक अपनी अंक में धारण और वहन किया। वह प्रकृति के विभिन्न अंगों के इन मंगलमय कृत्यों द्वारा इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने इन सभी में देवत्व की प्रतिष्ठा करली और क्रमशः इनको इन्द्र, सूर्य, वरुण, चन्द्र, वायु और पृथ्वी आदि दिव्य नाम देकर गुण गान करने लगा। उसने प्रथम इन्द्र की महती शक्ति का—

य: पृ॑थि॒वीं व्यथ॑माना॒मदृं॑ह॒त्
य:श्चौः पर्व॑ता॒न्प्रकु॑पिताँ॒ अर॑म्णात् ।
यो अ॒न्तरि॑क्षं वि॒म॒मे वरी॑यो
यो द्यामस्त॑भ्ना॒त्स जना॑स॒ इन्द्र॑: ॥२॥[1]

(हे मनुष्यो जिसने चल पर्वतों को अचल करके कम्पित पृथ्वी को स्थिर किया, जिसने आकाश को सीमित कर गगन मंडल को संभाला। वही इन्द्र है।)

आदि शब्दों में वर्णन करते हुए मंगल कामना की कि—

य: सु॒न्व॒ते पच॑ते दु॒ध्र आ चि॒—
द्वाज॒ं दर्द॑र्षि॒ स किला॑सि स॒त्यः ।
व॒यं ते॑ इन्द्र वि॒श्वह प्रि॒यास॑:
सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा वदेम ॥१५॥[2]

[हे शक्तिशाली देवता तुम अपने उपासक को अमूल्य भेंट प्रदान करते हो, तुम वास्तव में सत्य स्वरूप हो, हे इन्द्र! ऐसा वर दो कि हम सर्वदा अपने बालकों सहित तुम्हारे प्रिय रहें और तुम्हारा गुण गान करते रहें।]

इसी प्रकार पोषक सूर्य—

पू॒ष॒न्तव॑ व्र॒ते व॒य न रि॑ष्येम॒ कदा॑च॒न ।
स्तो॒तार॑स्त इ॒ह स्म॑सि ॥६॥[3]

(हे पूषन्! देखो हम तुम्हारे उपासक हैं, ऐसी कृपा करो कि हम तुम्हारे राज्य में निर्भय निवास कर सकें।)

---

१ Hymns from the Rigveda नं० ६। सू० १२ म० २
२ ,, ,, ,, ,, नं० ६। सू० १२ म० २
३ Hymns ,, ,, ,, नं० १५। सू० ५५ म० ६

जीवन रक्षक पवमान और अग्नि—

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः।
मरुद्भिरग्न आ गहि[1] ॥ ८ ॥

(तेज पूर्ण और भयंकर आकृति वाले, दृढ़ शासक, अपने शत्रुओं का भक्षण करने वाले हे अग्नि, मरुत सहित पदार्पण करो।)

तथा वरुण—

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्।
प्र ण आयूंषि तारिषत्।[2] ॥ १२ ॥

(दृढ़ शासक अदिति पुत्र सूर्य सदा हमारे मार्ग दिग्दर्शक रहें और हमें चिरायु करें।)

आदि सभी के प्रति उसमें श्रद्धा एवं महत्ता के भाव भर गये और वह अपने कष्ट निवारण एवं कल्याण के लिये पुकार उठा—

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य
निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता
मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।[3] ॥ ६ ॥

(हे मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी, आकाश आदि देवगण आज सूर्योदय के समय ऐसा वर दो कि हम समस्त कष्टों और पापों से मुक्त हो जाँय।)

देवता की स्थापना के साथ-साथ सौन्दर्य का योग अनिवार्यतः हो गया। मानव ने अपने सभी देवताओं के सुन्दर रूप की कल्पना की और उनको सुन्दर अश्वों से युक्त रथों में आसीन एवं चित्ताकर्षक वस्त्राभूषणों से सुसज्जित तथा तेज और सौन्दर्य से पूर्ण मान लिया। इस प्रकार उसने (मानव ने) प्रकृति के उपादानों के अद्भुत, रौद्र, शिव एवं सुन्दर रूपों का अवलोकन कर नवीन भावनाओं को ग्रहण किया और आश्चर्य भय तथा मंगलमय विश्वास के योग से उसमें पृथक-पृथक व्यक्तित्व की कल्पना करते हुए देवत्व की स्थापना करली। इस भाँति मानव-मस्तिष्क की विकसित चेतना द्वारा प्रकृति के प्रति पूजा-भाव का आविर्भाव हुआ।

---

१ Hymns from the Rigveda मं० १ । सू० १९ । मंत्र ८
२ ,, ,, ,, ,, मं० १ सू० २५ । मंत्र १२
३ ,, ,, ,, ,, मं० १ । सू० ११५ । मंत्र ६

इन्द्र, सूर्य, पवमान तथा पृथिवी सभी इसी विश्वास के आधार पर उस की पूजा के अधिकारी बन गये और वह उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये पत्र, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि अधिकाधिक सामग्री का उपयोग करने लगा। क्रमशः उसके विश्वास की भावना और भी अधिक विकसित हुई। उसने नियत समय पर आदित्य और सोम का उदय और अवसान देखा। धरित्री को नियमित रूप से घूमते हुए पाया, समयानुसार ऋतु-परिवर्तन ने उसको प्रभावित किया और इस प्रकार नियति के समस्त कार्य-कलापों में एक नियम, संयम एवं सुस्थिर संचालन को देखकर उसके मन में इन सब के नियंता के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होने लगी और उसने क्रमशः अखिल-विश्व की संचालिका सृष्टि-विधायिनी एक प्रेरक-शक्ति का अनुभव किया और भय तथा विश्वास के आधार पर प्रतिष्ठित अनेक देवों में एक ही दैवी-शक्ति के दर्शन किये। विश्व का प्रत्येक परमाणु उस शक्ति के बिना निरर्थक और निश्चेष्ट प्रतीत हुआ। उसने इस सहज-शक्ति को एक-एक अणु में व्याप्त देखा और उसे सर्वत्र एक सर्वव्याप्त अखंड चेतना की अनुभूति हुई। उसके विचार में जड़ और चेतन, चर और अचर सभी में यही अव्यक्त, अज्ञात शक्ति कार्य कर रही थी।

इस प्रकार मानव-मस्तिष्क अधिकाधिक विचारशील होता गया और उसकी चिर-सहचरी प्रकृति के विभिन्न रूप उसके अन्तरग मित्र बन गये। मानव ने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित किया और प्रकृति को अपने आनन्द में उल्लसित एवं कष्ट में विपन्न अभनुव किया। महाकाव्यकाल में आकर प्रकृति मानव हृदय की विभिन्न भावनाओं की क्रीड़ा-भूमि बन गई। पशु-पक्षी निर्झरिणी, पर्वत तथा वृक्षावलि सभी में चेतन प्राणी को एकात्म्य का आभास मिला। वाल्मीकि के राम—लता, गुल्म वृक्षादि से सीता के विरह में अपना दुःख निवेदन करते फिरे। उन्हें अपनी वियोगावस्था में अपनी आन्तरिक अनुभूतियों का प्रकृति में प्रत्यक्षीकरण हुआ और प्रकृति उनके रुदन में मानो उनकी सहयोगिनी बन गई।

> जल प्रपातास्त्र मुखाः शृंगरुच्छ्रित बाहवः।
> सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः ॥[1]

(सीताहरण से दुखी पर्वत-श्रेणियाँ अपने शिखर-रूपी भुजाओं को उठा झरनों के बहाने अश्रु बहा मानों रो रही हैं।)

---

१ वाल्मीकि रामायण अरण्य कांड सर्ग ५२ श्लोक ३८ पृष्ठ ४११

इसके अतिरिक्त प्रकृति मानव अनुभूतियों को उद्दीप्त करने का भी साधन हो गई। विरह में, प्रकृति के जिन अंगों में मानव को अपने प्रिय का रूप-साम्य अथवा भाव साम्य प्रतीत हुआ वे उसके विरह दुःख को तीव्रतर करने का कारण बन गये। इसी प्रकार की अनुभूति से प्रेरित होकर राम, लक्ष्मण से कहने लगे—

> श्यामां चन्द्रमुखीं स्मृत्वा प्रियापद्मनिभेक्षणाम्।
> पश्य सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान्मृगान्॥
> यां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृताम्।
> व्यथयन्तीव मे चित्तं सञ्चरन्तस्ततस्ततः॥[1]

(देखो इन विचित्र शिखरों पर हिरण हिरणियों के साथ विहार कर रहे हैं। ये मुझे श्यामा, चन्द्रवदनी और पकजनयनी प्रिय सीता की याद दिलाते हैं। और मृगशावक-नयनी वैदेही के विरह में मुझको दुःखी करते हैं। इधर उधर घूमते हुए मृगगण मुझे व्यथित कर रहे हैं।)

प्रकृति से अभिप्राय

व्यावहारिक रूप से तो जितनी मानवेतर सृष्टि है उसको ही हम प्रकृति कहते हैं किन्तु दार्शनिक दृष्टि से हमारा शरीर और मन, उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार आदि सूक्ष्म तत्व प्रकृति के अन्तर्गत हैं। यह सांख्य की प्रकृति सारी सृष्टि का कारण है। सांख्यवादियों ने जिसको प्रकृति कहा करीब-करीब उसको वेदान्तियों ने माया कहा है "मायान्तु प्रकृति विद्यात्"। भेद इतना ही है कि सांख्यवादी प्रकृति को सत् मानते हैं और वेदान्त-वादी उसको सद्-असद् से विलक्षण और अनिर्वचनीय मानते हैं। आस्तिक दर्शनों में न्याय और वैशेषिक जीव, प्रकृति और परमात्मा को तीन स्वतंत्र सत्तायें मानते हैं किन्तु सांख्य में बिना पुरुष के वह कुछ कर नहीं सकती है। उनके हिसाब से प्रकृति में क्रिया है किन्तु ज्ञान का अभाव है और पुरुष में ज्ञान है किन्तु वह निष्क्रिय है। सांख्य में प्रकृति और पुरुष के गुणों में वैपरीत्य बतलाया गया है—

> त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
> व्यक्तम् तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥

अर्थात् व्यक्त त्रिगुणमय है और अविवेकी अर्थात् विवेक-शून्य है। विषय (ज्ञान या उपभोग का विषय) सामान्य (अर्थात् सबके उपभोग का विषय)

१ किष्किंधा कांड प्रथम सर्ग श्लोक १०२, १०३

अचेतन है और प्रसव धर्मी अर्थात् उत्पन्न करने वाला है। प्रधान (प्रकृति) का भी यही लक्षण है और पुमान अर्थात् पुरुष उसके विपरीत है। प्रकृति और पुरुष दोनों ही के संयोग से "अंध-पगुल-न्यायेन" सृष्टि का क्रम चलता है। पुरुष न किसी का विकार है और न वह स्वयं विकृत होता है। प्रकृति विकार तो नहीं है किन्तु वह पुरुष के सान्निध्य में आकर महत्तत्व अहंकार, पंचतन्मात्राओं, पंचभूतों आदि परिणामों को उत्पन्न करती है। उसका विकास-क्रम सांख्य-तत्व-कौमुदी में इस प्रकार बतलाया गया है—

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि॥

अर्थात् प्रकृति से महत्तत्व, उससे अहंकार, और अहङ्कार से षोड़श पदार्थों का समूह उत्पन्न होता है। उन षोड़श पदार्थों में पञ्चतन्मात्राएँ हैं जो कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध की मूल रूपा हैं, (इनमें पञ्चतन्मात्राओं से सम्बंधित श्रवण त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका है) और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं, ग्यारहवाँ मन है। इन सोलह की उत्पत्ति अहंकार से होती है फिर इन सोलह में से पाँच तन्मात्राओं से पञ्चमहाभूतो का विकास होता है। प्रकृति में जब तक सत, रज और तम की साम्यावस्था रहती है तब तक उसको प्रकृति कहते हैं, उनमें विषमता आने पर परिणामों का आरम्भ हो जाता है।

वेदान्ती लोग व्यवहार में तो सांख्य की प्रक्रिया को मानते हैं किन्तु परमार्थ में उसे असत्य कहते हैं।

वेदान्तियों के भिन्न-भिन्न मत हैं, उन्होंने अपने-अपने मत से प्रकृति की भिन्न-भिन्न रूप से व्याख्या की है। शांकर मत से तो ब्रह्ममाया रूप से अनिर्वचनीय है ही, विशिष्टाद्वैत में वह अचित् रूप से ब्रह्म का एक विशेषण है और इस मत से भी प्रकृति सत्य मानी गई है।

वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत के मत से ब्रह्म में सत, चित और आनन्द तीनों गुणों का आविर्भाव रहता है। आनन्द के तिरोभाव होने से जीव-सृष्टि होती है और जड़ या प्राकृतिक-जगत् में आनन्द और चित् दोनों गुणों का तिरोभाव रहता है। जीव में सत और चित गुण रहते हैं केवल आनन्द का लोप हो जाता है। जड़ में केवल सत का आर्विभाव रहता है शेष दोनों गुणों का तिरोभाव हो जाता है।

प्रकृति की दार्शनिक-व्याख्या चाहे जो कुछ हो परन्तु उसको "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" कहने वाले वेदान्ती भी व्यवहार में सत्य मानते हैं और काव्य

के लिये कोई मत बाधक नहीं होता है। व्यवहार में प्रकृति से हमारा अभिप्राय मनुष्येतर जगत से है जिसमें नदी, पर्वत, वन, कछार, चन्द्र ज्योत्स्ना, प्रातःकालीन एवं सान्ध्य-गगन की रंग-बिरंगी-छटायें और वन में मृगों की कला-विहीन उछलकूद आदि सभी सम्मिलित हैं। प्रकृति या प्राकृतिक का अर्थ है स्वाभाविक, अतः प्रकृति के अन्तर्गत वही वस्तुएँ आती हैं जिन्हें मानव के हाथों ने सजाया या सँभाला नहीं है और जो स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती हैं। प्रकृति में भी जहाँ बहुत बारीक काट छाँट होती है हम उसे कारीगरी कहने लगते हैं। वास्तव में कारीगरी दोनों हैं, अन्तर केवल यही है कि ईश्वर की कारीगरी को हम प्रकृति और पुरुष की कारीगरी को कला कहते हैं। नगर की अपेक्षा ग्राम में ईश्वरीय-कला का अधिक प्रसार दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार रूप, रस, गंध, स्पर्श और श्रवण आदि द्वारा अनुभूत सभी विषय प्रकृति के अन्तर्गत आ जाते हैं। अर्थात् वे सभी प्राकृतिक विषय जिनका अवलोकन, रसास्वादन, श्रवण, सुवास-ग्रहण और स्पर्श किया जा सके प्रकृति के अन्तर्गत हैं। नेत्रों को आनन्दित एवं भयभीत करने वाले रम्य और विराट दृश्य, जिह्वा को आस्वादित करने वाली काषाय, मधुर तिक्त आदि वस्तुएँ, घ्राणेन्द्रियों को प्रभावित करने वाले सुरभि पूर्ण पुष्पादि, त्वचा को शीतोष्ण-स्पर्श का अनुभव कराने वाले समस्त पदार्थ और कर्णों को माधुर्य तथा गाम्भीर्य से भरने वाले मधुर, मन्द, गंभीर स्वर सब प्रकृति के उपादान हैं। इनके अतिरिक्त जीवन के प्रतीक पशु-पक्षी भी प्रकृति के अन्तर्गत आ जाते हैं क्योंकि वे भी प्रकृति के अनिवार्य अंग हैं।

साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्रकृति मानव से भिन्न होते हुए भी भाव-जगत् में मानव की अनुरूपता करती हुई प्रतीत होती है। इसके विपरीत विज्ञान मनुष्य को प्रकृति के धरातल पर खींच लाता है। यद्यपि साहित्य का मुख्य विषय मानव ही रहा है किन्तु प्रकृति के सहयोग के बिना मानव की चेष्टाओं और उसकी मनोदशाओं की अभिव्यक्ति भाव-विहीन और नीरस सी प्रतीत होती है। भागीरथी तट, पंपातीरवर्ती वन-प्रदेश, ऋष्यमूक पर्वत, ऋषि-आश्रम और चित्रकूट के रमणीक दृश्यों के बिना राम-वन-गमन फीका प्रतीत होता है। जमुना-निकुंज, कालिन्दी-तट, वंशीवट और कदम्ब के वृक्षों के बिना वृन्दावन-विहारी कृष्ण की रासलीलायें अर्थ-शून्य और नीरस हो जाती हैं इसी कारण नन्ददास ने चन्द्रमा को 'रस-रास-सहायक' कहा है।

'ताही छिन उडुराज उदित, रस रास सहायक"

(रास पंचाध्यायी)

अब प्रश्न यह उठता है कि मानव का मानव के साथ तो भावों का आदान प्रदान होता है, किन्तु प्रकृति और मानव का ऐसा स्पन्दन-प्रति-स्पन्दन नहीं दिखाई पड़ता, फिर प्रकृति किस प्रकार आलम्बन रूप से काव्य का विषय बन सकती है। वास्तव में प्रकृति यदि मानव की माता नहीं तो धात्री अवश्य है। आरम्भ से प्रकृति अपनी ममतामयी क्रोड़ में मानव को धारण करती और उसका पोषण करती है। वायु व्यजन करता, निर्भरों का कल-कल शब्द संगीत सुनाता, नक्षत्र-गण गुप-चुप कहानियाँ कहते, कलियाँ चुटकी बजाकर पास बुलातीं, चन्द्रिका खिलखिलाकर हँस पड़ती, सूर्य अपनी ज्योति विकीर्ण कर देता और शीतल मन्द-सुगन्धित-समीर नवीन-स्फूर्ति का संचार कर देता है। प्रकृति की गोद में मानव, सुख का अनुभव करता है और साहचर्य-जन्य मोह का स्वाभाविक रूप से उसके हृदय में प्रादुर्भाव हो जाता है। इस भाँति आलम्बन रूप से प्रकृति मानव को प्रभावित करती और उसे आकर्षित करती है।

काव्य में उद्दीपन विभाव का बड़ा महत्व है। उद्दीपन विभाव में आलम्बन की चेष्टायें और प्राकृतिक दृश्य दोनों सम्मिलित हैं, प्राकृतिक दृश्य आलम्बन के भावों को उद्दीप्त करने में सहायक होते हैं, अतः मानव व्यापारों की पृष्ठ-भूमि के रूप में प्रकृति काव्य का एक अनिवार्य अंग बन जाती है।

यद्यपि मुख्यतः प्रकृति मानवीय भावनाओं की पृष्ठ-भूमि का ही आधार-स्तम्भ रही है, तथापि कभी कभी यह अपने स्वतंत्र रूप में भी हमारे सम्मुख आती है। मनुष्य के बिना भी इसके मनोहर दृश्य हमें मुग्ध किये बिना नहीं रह सकते। इस प्रकार के स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन को प्रकृति का आलम्बन रूप से वर्णन कहते हैं। प्रकृति में मानव के प्रेम का सा प्रति-स्पंदन नहीं है, तथापि चिर-सहचार के कारण प्रकृति हमारे प्रेम की अधिकारिणी बन जाती है। इसके अतिरिक्त यह मानना पड़ेगा कि प्रकृति में एक ऐसी स्वाभाविक शक्ति है जो समय-समय पर हमारे भावों में नवीन भावनाओं का संचार करती रहती है। गंभीर मेघ-गर्जन, मानव को भयभीत करता और उसकी इन्द्र-धनुषी छटा आनन्द-विभोर कर देती है। इस प्रकार उद्दीपन रूप

से तो प्रकृति मानव-भावनाओं की सहायिका होती ही है किन्तु आलम्बन में भी भावों का आदान-प्रदान होता है। आन्तरिक भावों के प्रसार रहने पर भी ओस में रुदन और मेघों में गर्जन सुनाई देता है। मानव प्रकृति की गोद में कभी शान्ति का अनुभव करता और कभी भय कम्पित हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति में मानव के हृदय में नवीन भावों को उत्पन्न करने की शक्ति है। हाँ, मानव की अपेक्षा प्रतिस्पन्दन कम है। किसी को कष्ट में देखकर चेतनप्राणी मानव के नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं, प्रकृति में इस संवेदन-शीलता का अभाव है। इसे सर्व शक्तिशाली नियंता का रूपान्तर मान लेने पर इसमें चेतना का आभास प्रतीत होने लगता है। इसी चेतना के अनुभव के फलस्वरूप आदि कवि को सीता-विरह में पर्वत श्रेणियाँ अश्रु बहाती हुई प्रतीत हुई थीं। इसी चेतना के अनुभव से अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) को प्रकृति में मानव से अधिक संवेदनशीलता प्राप्त हुई थी। "सर्व खल्विदं ब्रह्म" सिद्धान्त के अनुगामी को प्रकृति में चेतनता मानने में कोई आपत्ति नहीं होती।

प्रकृति नियमित रूप से अपना कार्य करती चली आती है। यह साधारण मनुष्य के लिये जड़ और भावुक-कवि के लिये चेतन है। कवि की मनोदशा के अनुसार यह उसके भावों में परिवर्तन करती है। एक दृश्य जो आनन्द और सुख का कारण बनता है वही विपरीत मनःस्थिति होने पर कष्टदायक एवं विषाद पूर्ण प्रतीत होने लगता है। सारांश यह है कि प्रकृति प्रेमी सहृदय कवि को प्रकृति में चेतना एवं प्रतिस्पंदन प्राप्त होता है, अतः वह काव्य में प्रकृति का वर्णन करता है।

प्रकृति-प्रेम

शास्त्रीय दृष्टि से प्रकृति के प्रेम का क्या स्वरूप है, यह प्रश्न है। आरम्भ से ही मानव में चिर-सहचार से उद्भूत वासना अथवा संस्कार रूप में प्रकृति के प्रति आकर्षण की भावना विद्यमान है, नगर के कृत्रिम वातावरण में रहने वाले नागरिक गमलों में अथवा क्यारियों में पौधे लगाते हैं, पक्षियों को पिंजड़े में बन्द करके रखते हैं और मनोरंजन के लिये किसी निर्झर के तीर उपवन में विहार के लिये जाते हैं, इन सब में प्रकृति के प्रति प्रेम की भावना अन्तर्निहित रहती है, इन्हीं संस्कारों से प्रेरित हुआ मानव कोकिल की कू कू, प्रातःकालीन दिवाकर के अभ्युदय और पूर्णेन्दु की प्रभा पर मुग्ध होता है, कंटक-परिवृत गुलाब की ओर स्वयं ही उसके हाथ बढ़ जाते हैं, हरित परिधाना-

वृता वसुधा नेत्रों को शीतल करती और निर्झरिणी का कल-कल शब्द उन्मत्त बना देता है, किन्तु जो केवल प्रकृति के सुन्दर रूप को ही देखते हैं वे प्रकृति के सच्चे प्रेमी नहीं कहे जा सकते। जिनका अन्तःकरण पद-तल में पड़े हुये पुष्प की हीनावस्था से द्रवित नहीं होता, भयंकर मेघ गर्जन और वन्य जन्तुओं की विकट-चीत्कार जिन्हें प्रभावित नहीं करती, पत्र-शून्य वृक्षावलि, बीहड़ पथ, पंक-पूर्ण ताल और तप्त बालू के समूह की ओर जो दृष्टिपात नहीं करता वह प्रकृति का उपासक नहीं अपितु एक दर्शक-मात्र है। जो मनुष्य केवल सौम्य रुप का ही अवलोकन करता है, जो आश्चर्यपूर्ण और अद्भुत दृश्यों पर ही मुग्ध होता है उसका मस्तिष्क पूर्णतः विकसित नहीं कहा जा सकता और न वह सच्चा सहृदय ही हो सकता है।

हमारे प्राचीन कवियों ने प्रकृति के सुन्दर, विराट और भयंकर सभी रूपों का विशद वर्णन किया है। उन्होंने प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में स्वच्छन्द विहार किया और प्रत्येक अंग का सूक्ष्म निरीक्षण किया। उनका क्षेत्र विस्तृत था और ज्ञान प्रत्यक्ष-अनुभव द्वारा उपलब्ध। केवल रमणीय दृश्यों पर ही वे मुग्ध नहीं हुए थे अपितु वन्य-वृक्ष, सूखी झाड़ियाँ और प्रस्तर-खंड तक उनकी सूक्ष्म-दृष्टि से न बच सके। गजराज से लेकर पिपीलिका तक सभी को उनके काव्य में उपयुक्त स्थान प्राप्त हुआ है। आदि कवि का हेमन्त ऋतु का सूक्ष्म निरीक्षण देखिये —

अवश्यायनिपातेन किंचित्प्रक्लिन्न शाद्वला।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्ट तरुणातपा ॥[1]

(ओस बिन्दुओं से भीगी हुई हरी घास से युक्त वन-भूमि प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के पड़ने पर सुशोभित होती है।)

स्पृशस्तु विपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम्।
अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥[2]

(यह अत्यन्त प्यासा जंगली हाथी अत्यन्त शीतल जल के छूते ही अपनी सूंड़ को समेट लेता है।)

अवश्याय तमोनद्धा नीहारतमसावृताः।
प्रसुताइव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः ॥[3]

---

१ वाल्मीकि रामायण आरण्य कांड १६ सर्ग श्लोक २०
२ वाल्मीकि रामायण अरण्य कांड १६ सर्ग श्लोक २१
३ ,, ,, ,, २३

(पुष्प शून्य वन श्रेणी कुहरा के अन्धकार से ढक जाने पर ऐसी प्रतीत हो रही है मानो सो रही हो।)

> बाष्पसंछन्न सलिला रुतविज्ञेय सारसाः।
> हिमार्द्र वालुकैस्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम् ॥[४]

(इस समय नदियाँ जो कुहरे से ढकी हैं और जिनकी बालू कोहरे से तर है केवल वहाँ से जान पड़ती है। सारस भी इस समय कोहरे के अन्धकार के कारण केवल बोली से ही पहचाने जाते हैं।)

> जराजर्जरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः।
> नालशेषैर्हिमध्वस्तैर्न भान्ति कमलाकराः ॥[५]

(कमलों के पत्ते जीर्ण होकर झड़ गये हैं, फूलों की कर्णिका और केसर भी गिर गई है। पाले के कारण उनमें डंडी मात्र रह गई है। इसी कारण अब कमल के तड़ाग शोभाहीन हो रहे हैं।)

कालिदास, भवभूति आदि ने भी प्रकृति को बड़े व्यापक रूप में लिया है।

अब हमें प्रकृति के विषय में शास्त्रीय दृष्टि से विचार करना है। क्या प्रकृति काव्य में उद्दीपनमात्र है? नहीं, इसके लिये संस्कृत के काव्य ग्रन्थ उपयुक्त प्रमाण हैं। आदि कवि वाल्मीकि के पर्वत-स्थली तथा पुर और वाटिका आदि के वर्णन, कालिदास का कुमार-सम्भव में हिमालय का विशद वर्णन तथा भवभूति के स्वतंत्र वन-वर्णन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से प्रकृति के विभिन्न अंगों का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। उनके विशद संश्लिष्ट प्रकृति वर्णन से पाठक की अन्तर्वृत्ति का पूर्णतः अनुरंजन हो जाता है। इन काव्य निर्माताओं ने प्रकृति के प्रति स्वतंत्र अनुराग प्रदर्शित किया है। इनके वर्णनों में प्रकृति मानव जीवन की जड़ पृष्ठ-भूमि नहीं है, अपितु उसकी स्वतंत्र सत्ता प्रतिभासित होती है।

यदि प्रकृति की अपनी स्वतंत्र सत्ता है तो प्रकृति चित्रों में कौन सा रस मानना चाहिये? क्या वह स्वतंत्र रस है अथवा स्वीकृत रसों में से ही किसी के अन्तर्गत आजावेगा।

---

४ वाल्मीकि रामायण अरण्य कांड १६ सर्ग श्लोक २४

५ " " " १६

प्रायः प्रकृति के अद्भुत, रौद्र, भयानक, शान्त, विराट और मधुर चित्र दृष्टिगोचर होते हैं। अद्भुत, रौद्र, भयानक और शान्त रस में आलम्बन की प्रधानता रहती है। प्रकृति के परिवर्तन ही उसमें उद्दीपन का काम देते हैं। प्रकृति को आलम्बन मान लेने पर उपर्युक्त रसों के परिपाक के लिये आलम्बन के आवश्यक तत्व हमें प्रकृति से मिल जाते हैं। आश्रय होता है—काव्यकार, जो प्रकृति के विभिन्न रूपों से प्रभावित होकर काव्यरचना करता है, और पाठक तो है ही। अतः अद्भुत, रौद्र, भयानक और शान्त रसों में पूर्ण-परिपाक सहज सम्भव है। विराट-रूप किसी रस के अन्तर्गत नहीं आता है किन्तु इस रूप में ओज और अद्भुत का समन्वय हो जाता है यदि भक्ति को स्वतंत्र रस मान लिया जावे तो प्रकृति-प्रेम भक्ति के बहुत निकट पहुँच जाता है। अब मधुर रूप का प्रश्न रह जाता है।

साधारणतः प्रकृति के मनोहर सुग्धकारी दृश्य शृंगाररस के अन्तर्गत आने चाहिये। शृंगाररस में प्रायः आलम्बन में चेतना की आवश्यकता होती है। इसमें आलम्बन और आश्रय की प्रतिक्रिया प्रायः अन्योन्याश्रित रहती है। आलम्बन की चेतना ही प्रायः आश्रय के विभिन्न भावों की उत्पादिका होती है परन्तु प्रकृति तो अधिकतः निष्क्रिय रूप में हमारे सम्मुख आती है अतः इसका पूर्ण परिपाक होना वहाँ संभव कैसे हो सकता है। ऐसी दशा में प्रकृति प्रेम केवल एक भाव ही रह जाता है परन्तु जिन कवियों के लिये प्रकृति जड़ पदार्थ नहीं, अपितु अनेक भावों से पूर्ण हर्ष और विषाद की सहयोगिनी शक्ति है, जिन्होंने प्रकृति के साथ एकात्म्य स्थापित किया है और उसमें चेतना की अनुभूति की है, उनके प्रकृति-चित्रों में रस का परिपाक न मानना अन्याय होगा। अंगरेज़ी कवि वर्ड्सवर्थ का प्रकृति काव्य ऐसा ही है। उन्होंने प्रकृति में मानव चेतना के दर्शन किये हैं और प्रेम का प्रतिदान प्राप्त किया है। उनका पूर्ण विश्वास है कि—

Nature did never betray,
The heart that loved her.

(प्रकृति स्नेह पूरित हृदय के प्रति विश्वासघात नहीं कर सकती, प्रकृति प्रेम की ऐसी तीव्रानुभूति को केवल भाव की संज्ञा देना अनुचित है।)

हिन्दी की काव्य पुस्तकों के अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांशतः हिन्दी काव्यकारों ने प्रकृति को स्थूल-रूप में ही देखा है। वे प्रकृति के बाह्य

रूप पर ही मुग्ध हुए हैं। उन्होंने प्रकृति में मानव अनुभूतियों का अनुभव नहीं किया। उनके लिये प्रकृति मात्र कौतुक अथवा बाह्य सौन्दर्य की ही वस्तु रही है। भक्तिकाल के सूर अपने उपास्य के अंग प्रत्यंगों के लिये उपमायें ही ढूंढ़ते रहे, आदर्श की भावनाओं में उलझ तुलसी प्रकृति को उपदेशिका मान बैठे और यदि प्रकृति का चित्रण किया भी तो राम के ही नाते किया। सूफ़ी सन्त जायसी को नागमती की विरह-व्यथा को तीव्रतर करने के लिये बारहमासा रचना पड़ा और चमत्कार वादी केशव तो अपने पांडित्य प्रदर्शन और आचार्य बनने की धुन में अनैसर्गिक रूप में प्रकृति के तत्वों को अलंकार और रसों में प्रयुक्त करने में व्यस्त रहे। रीति कालीन कवियों ने प्रकृति का वर्णन ऋतु वर्णन के रूप में केवल नायक नायिकाओं के भावों को उद्दीप्त करने के लिये ही किया। कुछ कवियों की दृष्टि तो अपने आश्रयदाताओं की "गुलगुली गिलमों" और 'तहख़ानों' तक ही परिमित रह गई। इस प्रकार के कवियों के वर्णन, पूर्ण रस परिपाक की अवस्था तक नहीं पहुंच पाते, केवल भाव ही रह जाते हैं। प्रकृति को निर्जीव और जड़ मानने वाले कवियों में यह भावना निःसन्देह पूर्ण रसत्व को नहीं प्राप्त हो सकती।

सारांश यह है कि संस्कृत के प्राचीन कवियों और अंगरेज कवि वर्ड्सवर्थ ने यद्यपि प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करके मानव चेतना के दर्शन किये हैं तथापि शास्त्रीय दृष्टि से अधिकांशतः प्रकृति प्रेम को भाव की संज्ञा देना ही अधिक उचित है। साधारणतः शास्त्रीय दृष्टि से तो केवल दाम्पत्य रति को ही रति मानते हैं और पुत्र, राजा, देश विषयक सब रतियाँ भाव के अन्तर्गत आजाती हैं, किन्तु प्रकृति का भाव रस के बहुत निकट आजाता है, विशेषतः संस्कृत के प्राचीन काव्यकारों और अंग्रेज़ी तथा हिन्दी के आधुनिक कवियों ने इसका पूर्ण अनुभव किया है।

वास्तव में काव्य और प्रकृति का सहज सम्बन्ध है। प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में विचरण करने वाले कवि ही अमर काव्य की रचना कर सके हैं। काव्य का मूल उद्देश्य शेष सृष्टि के साथ मानव हृदय का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना है। शेष सृष्टि में अपने से इतर मानव जगत भी आता है। पर मानवेतर जगत भी उसका अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। मानवेतर जगत के अन्तर्गत पशु, पक्षी, सरिता, निर्झर, गिरि, गुहा, वृक्ष, लता, गुल्म आदि सभी आ जाते हैं। मानव अनादि काल से इनके साथ तादात्म्य स्थापित करता आया है, क्योंकि इस प्रकार उसकी भावनाओं का उन्नयन और

परिष्कार होता है। मनुष्य अहंभाव के संकुचित क्षेत्र से ऊपर उठकर पर प्रत्यय की अवस्था तक पहुंचता है। वह प्रकृति के अनुराग से अनुरंजित होकर आत्म-विभोर हो उठता है। मानव मन की यही दशा मुक्तावस्था कहलाती है और यही मुक्तावस्था रस-दशा है। प्राकृतिक सौन्दर्य के आस्वादन में भी हम उसी पर-प्रत्यय और हृदय की मुक्तावस्था में जो रस में होती है पहुंच जाते हैं। अतः पूर्ण शास्त्रीय दृष्टि से तो नहीं किन्तु जिस दृष्टि से हम वात्सल्य और भक्ति को स्वतन्त्र रस मान लेते हैं उस दृष्टि से प्रकृति से भी हमारा रसात्मक सम्बन्ध हो सकता है।

प्रकृति चित्रण

जन्म-काल से ही मानव प्रकृति की गोद में पलता और बड़ा होता है। आरम्भ में प्रकृति मानव की सहज-वृत्तियों का समाधान करती है और अव्यक्त रूप में मानव का उसके साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है उसके साहचर्य में मानव कभी उसके अंग प्रत्यंगों की बनावट के विषय में विचार करता और कभी उसके स्वाभाविक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर चकित सा देखता रह जाता है। प्रकृति के उपयोगी और विश्लेषणात्मक रूप पर विचार करने वाला मानव वैज्ञानिक है और सौन्दर्य पर सुधि बुधि खोने वाला मानव है भावुक कवि।

प्रकृति वैज्ञानिक और कवि दोनों को ही उपास्य है। दोनों ही उससे निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करते हैं, किंतु दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। वैज्ञानिक प्रकृति के वाह्य रूप का अवलोकन करता और सत्य की खोज करता है परन्तु कवि. वाह्य रूप पर मुग्ध होकर भावों का तादात्म्य स्थापित करता है। वैज्ञानिक प्रकृति की जिस वस्तु का अवलोकन करता है उसका सूक्ष्म-निरीक्षण करता है। चन्द्र को देखकर उसके मस्तिष्क में अनेक विचार उठते हैं। इसका तापक्रम क्या है, कितने वर्षों में वह पूर्णतः शीतल हो जायेगा, ज्वार-भाटे पर इसका क्या प्रभाव होता है, किस प्रकार और किस गति से वह सौर मंडल में परिक्रमा करता है और किन तत्वों से इसका निर्माण हुआ है। वह अपने सूक्ष्म निरीक्षण और अनवरत चिंतन से उसको एक लोक ठहराता और उस लोक में स्थित ज्वालामुखी पर्वतों तथा जीवनधारियों की खोज करता है। इसी भाँति वह एक प्रफुल्लित पुष्प को देखकर उसके प्रत्येक अंग का विश्लेषण करने को तैयार हो जाता है और

उसके तत्वों को कलिका, पंखुड़ी, पराग, केसर, मधु और रस आदि नाम प्रदान करता है। उसकी उपयोगिता का भी ध्यान रखता है और निर्ममता से उसके सौंदर्य को नष्ट करके अपनी अशेष शक्ति द्वारा उसमें हाइड्रोजन (Hydrogen), कार्बन (Carbon) आदि तत्वों का पता चलाता है। विलियम हडसन (William Hudson) के शब्दों में:

"The Scientist studies their forms and organisation, their qualities, characteristics and connections, he collates and classifies them; he investigates the conditions and processes under and by which they have come to be what they are". (An introduction to the study of literature, Hudson. Second edition enlarged PP. 97-98)

(वैज्ञानिक प्राकृतिक वस्तुओं की आकृति, क्रिया, गुण, स्वभाव और योग का ज्ञान प्राप्त करता है। वह उनका संतुलन और विभाजन करता है। और उन दशाओं तथा व्यवहारों की खोज करता है जिनके द्वारा उनको वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है।)

वैज्ञानिक की दृष्टि में विश्लेषण और वर्ग-विभाजन का प्राधान्य रहता है। उसका प्रकृति-विषयक अध्ययन वस्तुगत होता है। वह वस्तु जैसी है उसका पूर्णतः तटस्थ होकर वैसा ही वर्णन करता है। वह किसी एक वस्तु को चुनकर अनेक यांत्रिक विधियों द्वारा उसके अन्तर्तत्वों का विश्लेषण करता रहता है। इस अनुसंधान में उसे अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं और वह विशिष्ट व्यक्तियों से साधारण जाति बनाता हुआ नवीन सिद्धान्तों का शोधन अथवा आविष्कार कर लेता है।

वैज्ञानिक सत्य और वास्तविकता का पुजारी होता है। प्रकृति के मन्दिर में सत्य का उपासक वैज्ञानिक अपने अनवरत-चिन्तन, तल्लीनता और घोर-परिश्रम द्वारा अपनी अधिष्ठात्री से ज्ञान का वरदान प्राप्त करता है। ज्ञान की उपलब्धि ही वैज्ञानिक के जीवन का परम उद्देश्य है। विज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है।

काव्यकार की कविता भी वस्तु के प्रत्यक्षावलोकन से ही प्रस्फुटित होती है। आदि कवि वाल्मीकि क्रौंच पक्षी के वियुक्त दम्पति के करुण अवलोकन से द्रवीभूत होकर ही कह उठे थे :—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

आदि कवि क्रौंच पक्षी के आकार, रूप अथवा जाति पर मुग्ध नहीं हुए थे, अपितु विरहिणी क्रौंच पत्नी की आकुल भाव-भंगी ने उन्हें उद्विग्न बना दिया था। उनके अन्तःकरण पर पड़े हुए प्रभाव ने, उनकी आहत-अनुभूति ने, उनकी कविता को जन्म दिया था।

कवि, प्रकृति के साथ अपने भावों का सम्बन्ध स्थापित करता है। वह वैज्ञानिक की भाँति प्रकृति के अवयवों का विश्लेषण नहीं करता, वह इसको निर्जीव नहीं मानता है अपितु उसमें मानव-चेतना का अनुभव करके उसके साथ अपनी आन्तरिक भावनाओं का समन्वय करता है। उसको कलाधर अपनी कलित किरणों द्वारा शीतलता प्रदान करता है और सुधा-वर्षण करता है, सागर उसकी षोडश कलाओं पर मुग्ध होकर उत्फुल्ल हो उठता है, कलंकार की कालिमा में काव्यकार कलंक अथवा शशांक की कल्पना करता है और पूर्ण शरच्चन्द्र को देखकर वह शरत् से प्रश्न करने लगता है—

शरत चाँद यह या तेरा मृदु मुखड़ा ?
अथवा विजय मुकुट पर तेरे, ऐ ऋतुओं की रानी
हीरा है यह जड़ा ? [1]

एक जुही की कली उसके लिये एक तरुणी का आकार-रूप धारण कर लेती है और कवि कह उठता है—

विजन वन वल्लरी पर—
सोती था सुहागभरी—स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी—जुही की कली। [2]

वह उत्फुल्ल-कुसुम को देखकर प्रफुल्लित होता, पददलित पुष्प के प्रति करुणा से कराह उठता और अपनी खिन्नावस्था में सुमन पर झुँझला भी पड़ता है।

अहो ! कुसुम कमनीय कलेवर क्यों इतना इतराते हो ?

कवि, तथ्य की अपेक्षा तथ्य और भावना के सम्बन्ध पर बल देता है। वह वस्तु के यथार्थ रूप का चित्रण नहीं करता, अपितु मन पर पड़े

१ निराला परिमल पृष्ठ १०५।
२ निराला परिमल, पृ० १५१।

का कुछ रक्त वर्ण हो जाना, पक्षियों का नभ मंडल में उड़ना तथा कलरव करना और जल में गगन मंडल की लालिमा का झलकना आदि सभी प्रत्यक्ष सत्य हैं। कवि की कल्पना अथवा भावना का इसमें समावेश नहीं है। किन्तु फिर भी वैज्ञानिक के सत्य से यह निश्चय ही भिन्न है। प्रथम तो कवि का समय का चुनाव ही इसको प्रमाणित करता है मध्याह्न के प्रचन्ड सूर्य का वर्णन न करके उसने अस्ताचल को जाते हुए सन्ध्याकालीन दिनेश को ही क्यों चुना? कारण यही है कि कवि का भावुक हृदय सन्ध्या के सुन्दर दृश्य के प्रति आकर्षित हुआ, और उसने उसे अपनी कविता का विषय बना लिया। फिर सामग्री के चयन में तो निश्चय ही उसके व्यक्तित्व, उसकी भावना अथवा अभिरुचि का स्पर्श विद्यमान है। सन्ध्या के समय न जाने और कितनी घटना घटती हैं। वातावरण में अनेक प्रकार के सुन्दर असुन्दर तत्वों का सम्मिश्रण रहता है किन्तु कवि ने केवल सुन्दर का ही चयन किया है, असुन्दर को छोड़ दिया है और उन्हीं तत्वों को चुना है जो आगे आने वाली घटना की पृष्ठभूमि उपस्थित करने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त 'राजती', 'कमलिनी-वल्लभ,' 'कल निनाद' अनुरंजित आदि ऐसे शब्द हैं जो तटस्थता के द्योतक नहीं हैं। कवि ने, इसमें सन्देह नहीं, अत्यन्त सफलता पूर्वक प्रकृति का वस्तुगत, यथातथ्य वर्णन किया है, किन्तु फिर भी भाव तथा कल्पना और मानव-संबंध का यत्किंचित् स्पर्श आ ही गया है। उसकी वस्तुपरता भी सापेक्षिक ही रही है।

परन्तु यहाँ पर यह स्वीकार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है कि कवि के चित्रण में भी यथातथ्य का बड़ा महत्व है। कोरी कल्पना, कविता नहीं कही जा सकती। बिना सत्य के कविता, सुन्दरी के शव के समान है। वास्तविक आधार सत्य ही होगा। सत्य को अपनी भावना और कल्पना से अनुरंजित करके चित्रण करने वाला काव्यकार ही अमर कवि बन सकता है।

विज्ञान के सत्य को हम काव्य के सत्य से पृथक नहीं मान सकते। निःसन्देह बिना सत्य के आधार के काव्य-प्रासाद खड़ा नहीं किया जा सकता। काव्य का प्राण है रस। और इसका अर्थ है अन्तर्वृत्तियों का पूर्ण सामंजस्य। इस सामंजस्य के लिये केवल हृदय का ही नहीं वरन् कल्पना और बुद्धि की तथा अन्तर्दृष्टि के भाग की भी पूर्ण समन्विति अनिवार्य है। प्रकृति के चित्रों में यदि वैज्ञानिक सत्यता का अभाव है तो बुद्धि का परितोष उनसे नहीं हो पायेगा। वह यदि देश-काल की हो सकती है, निर्दिष्ट-विदयक हो सके

है, जिसमें गुण, प्रवृत्ति रूप रंग आदि का [illegible] उल्लेख आजाता है। हिन्दी की कविता में ये त्रुटियाँ [illegible] नहीं हैं। प्राचीन कवियों के रूढ़ि[illegible] उठाकर देखिये, तुरन्त ही स्पष्ट हो जायेगा कि इन लोगों ने कहीं [illegible] कर प्रकृति के निरीक्षण का कष्ट नहीं उठाना है। उनका प्रकृति ज्ञान पुस्तक से प्राप्त है। उदाहरण के लिये हम केशव का एक उद्धरण देते हैं।

> तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
> मञ्जुल वञ्जुल, तिलक लकुच कुल नारिकेर वर।
> एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
> सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं।[1]

इस उद्धरण में विश्वामित्र के तपोवन में, बिहार में नारिकेल, एला लवंग, पुंगीफल आदि के वृक्षों का वर्णन करना देश और काल के विपरीत है। नारिकेल [illegible] प्रदेश में और एला, [illegible] भारत में पा जाते हैं।

यद्यपि केशव की कविता —अलंकारों की सजावट, सुन्दर शब्द [illegible], चमत्कार और पांडित्य-प्रदर्शन तथा काव्य प्रतिभा से सम्पन्न है, पाठक काव्य पठन में मग्न हो जाता है तथापि इस प्रकार का [illegible] और तल्लीनता को भंग कर देता है। मस्तिष्क को चेतना, हृदय की भावुकता का विरोध करती है और पाठक काव्य रस स्रोत से निकल कर [illegible] में भटकने लगता है।

महाकवि "हरिऔध" जी का "प्रिय प्रवास" खड़ी बोली का [illegible] काव्य [illegible] है। इसमें कवि ने अतुकान्त [illegible] छन्दों की बड़ी सुन्दर [illegible] की है। भाषा और भाव, अलंकार और रस एवं मधुर शब्दावलि की सुन्दर योजना है। पढ़ते समय पाठक भावसागर में निमग्न हो जाता है किन्तु

> जम्बू अम्ब कदम्ब निम्ब फालसा जम्बीर औ आंवला।
> लीची दाड़िम नारिकेल इमिली और शिंशपा इंगुदी।
> नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी।
> श्रेणी बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े।[2]

---

१ केशव रामचन्द्रिका पृष्ठ १४।

२ हरिऔध प्रिय प्रवास, पृष्ठ [illegible]

उद्धृत अवतरण में, ब्रज प्रदेश में लीची और नारिकेल का ध्यान आते ही बुद्धि तर्क करने लगती है भावना विशृंखल हो जाती है और उसकी रस-दशा में आघात पहुँचता है। सागौन और शाल पहाड़ी वृक्ष हैं, ब्रज की विशेष वस्तु करील का कहीं उल्लेख नहीं है। इस प्रकार की त्रुटि से पूर्ण काव्य का रसास्वादन देश और काल से अनभिज्ञ पाठक ही कर सकते हैं, विज्ञजन नहीं। रस दशा से तात्पर्य है मानव अन्तर्वृत्तियों का पूर्ण अनुरंजन। यह अनुरंजन बुद्धि के समन्वय से ही संभव है। देश काल की त्रुटि से पूर्ण काव्य में बुद्धि पूर्ण सहयोग प्रदान नहीं कर सकती। बुद्धि का तर्क और असहयोग रस दशा में व्याघात पहुंचाता है। जिस प्रकार सरस एवं स्वच्छ दूध मे थोड़ी सी खटाई के पड़ने से वह फट जाता है और उसका स्वाद विकृत हो जाता है उसी प्रकार अनेक गुणों से सम्पन्न होने पर भी देश-काल की थोड़ी सी त्रुटि से काव्यानन्द में व्याघात पहुँचता है। इससे सिद्ध होता है कि पारस्परिक विरोध की अपेक्षा बुद्धि और भावना का सामंजस्य ही गंभीर कविता के अनुकूल पड़ता है।

कवि-समय

इस प्रकार प्रकृति-चित्रण में वैज्ञानिकता का महत्व असंदिग्ध है। परन्तु फिर भी स्वदेश-विदेश के कवि आदि काल से ही अपने काव्य में अनेक प्रकार की स्वतंत्रता का उपयोग करते रहे हैं। कवि-सम्प्रदाय की स्वतंत्रता पारस्परिक समझौते से उत्पन्न प्राकृतिक सत्य में स्वतंत्रता है। इस स्वतंत्रता को संस्कृत में कवि समय और अंग्रेज़ी में पोइटिक कन्वैन्शन्स (Poetic onventions) कहते हैं।

कवि-समय का राजशेखर ने अपनी 'काव्य-मीमाँसा' में अत्यन्त स्पष्ट प्रयोग किया है। कवि समय का अर्थ है कवियों का आचार अथवा सम्प्रदाय। राजशेखर का कथन है कि कुछ ऐसी बातें हैं जो देश काल के सर्वथा प्रतिकूल हैं किन्तु उन्हें प्राचीन विद्वन्मंडली ने अपने काव्य में स्थान दिया है और तभी से वे सब बातें कवि सम्प्रदाय में परम्परा से चली आ रही हैं। अतः इस प्रकार के प्रयोग देश और काल के विचार से सदोष होने पर भी कवि समाज में मान्य हैं। यद्यपि राजशेखर लोक और शास्त्र की विरोधी बातों को सदोष न मानने के पक्ष में नहीं है, तथापि उनका मत है कि वे बातें जो परम्परा से कवि सम्प्रदाय में चली आ रही हैं आज चाहे वे देश और काल के विपरीत भी हैं तो भी वह अधिक दोषपूर्ण नहीं मानी जा सकतीं क्योंकि

वेद और शास्त्र अनन्त हैं, काल अनन्त है और देश अनन्त है। आर्ष कवियों ने लोक और वेद तथा शास्त्र के गहन अध्ययन, देश देशान्तर के परिभ्रमण एवं समय के सूक्ष्म निरीक्षण के अनन्तर इन बातों का अपने काव्य में वर्णन किया है और कवि परम्परा ने उसका प्रतिपालन किया है। अतः अब चाहे उनसे देश और काल का व्यतिक्रम ही क्यों न होता हो, तो भी उन्हें जो काव्य में स्थान प्राप्त है उससे च्युत नहीं किया जा सकता। राजशेखर स्वयं प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षक थे और प्राकृतिक निरीक्षण को भी काव्य का प्रधान अंग मानते थे किन्तु आर्ष कवियों द्वारा निश्चित बातों का प्रयोग उन्होंने गलत नहीं माना।

प्राचीन कवियों के काव्य में इस प्रकार की कवि प्रसिद्धियाँ पशु, पक्षी, वृक्ष, पुष्प आदि सभी से सम्बद्ध मिलती हैं। ये निश्चय ही देशकाल के विपरीत हैं किन्तु कवि गण परम्परावश उनका स्वच्छन्दतापूर्ण प्रयोग करते रहे हैं। कवि प्रसिद्धियों में कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जो वास्तव में सत्य हैं किन्तु कवि ने वर्णन नहीं किया है जिस प्रकार चन्दन के पुष्पों का वर्णन न करना और कुछ ऐसी हैं जो वास्तव में नहीं हैं किन्तु कवियों की कल्पना द्वारा परम्परा से चली आ रही है जैसे चन्दन के वृक्ष पर सर्प के लिपटे रहने की उद्भावना। कवि समयों का निम्नलिखित संग्राहक श्लोक बहुत प्रसिद्ध है

> स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियंगुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्।
> पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिंगनाभ्याम्।
> मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात्।
> चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति हि पुरोनर्तनात् कर्णिकारः॥

हिन्दी में भी इनमें से अधिकांशतः कविप्रसिद्धियाँ प्रायः ज्यों की त्यों अवतरित हो गई हैं उनमें से मुख्य ये हैं—

अशोक

प्रायः समस्त काव्यकारों ने अशोक के वृक्ष और पुष्पों का वर्णन किया है। इसके फलों के वर्णन में सभी उदासीन रहे हैं। वास्तव में इसके वृक्ष पर काले रंग के गोलाकार फल भी होते हैं। अशोक के वृक्ष संयुक्त प्रान्त और बिहार में पाये जाते हैं। उपर्युक्त श्लोक के अनुसार कवि प्रसिद्धि है कि सुन्दरी स्त्री के चरणाघात से इसका वृक्ष पुष्पित एवं पल्लवित हो जाता है। इसका वर्णन

प्रायः समस्त संस्कृत कवियों ने किया है। हिन्दी में कवि पन्त ने इस कवि-प्रसिद्धि को अपनाया है :—

तुम्हारे चल पद चूम निहाल,
मंजरित अरुण अशोक सकाल,
स्पर्श से रोम रोम तत्काल,
सतत सिंचित प्रियगु की बाल। गुंजन पृष्ठ ४६

चन्दन

कवि प्रसिद्धि के अनुसार चन्दन के वृक्ष पर फल और फूल नहीं होते, वास्तव में यह असत्य है, चन्दन के वृक्ष पर बैंगनी रंग के फूल और गोल फल होते हैं। केवल मलय पर्वत पर ही उत्पन्न होने की कवि प्रसिद्धि भी निर्मूल है। इसका वृक्ष तैलपर्ण और बर्कर नाम के पर्वतों पर ही पाया जाता है। इसके वृक्ष पर सर्प लिपटे रहने का उल्लेख हिन्दी में बहुत अधिक हुआ है। वास्तव में यह कवि-कल्पना-उद्भूत है।

कमल

कवि समय के अनुसार कमल दिन में विकसित होता और रात्रि में संकुचित हो जाता है, यह प्राकृतिक सत्य है। कमल केवल सरोवर में स्थिर जल में उत्पन्न होता है किन्तु कवियों ने सरिता में भी इसका वर्णन किया है जबकि बहते हुए जल में इसका होना असम्भव है। इसके पत्ते सदा जल पर तैरते हैं, वेदान्तियों ने माया से निर्लिप्त मनुष्य को 'कमलपत्रमिवाम्भसि' कहा है।

कुमुद

कुमुद के पुष्प का रात्रि में विकसित होना कवियों ने वर्णन किया है, यह वास्तव में सत्य है।

कुन्द

कुन्दकली की उपमा दाँतों से दी जाती है। कविगण उज्ज्वलता को प्रकट करने के लिए इसकी उपमा देते हैं। यद्यपि कुन्दकली का रंग सफेद होता है किन्तु उसके कुड्मल पूर्णतः श्वेत नहीं होते, उनके नीचे का भाग ईषत् लाल होता है, पूर्ण-प्रफुल्लित-पुष्प श्वेत वर्ण का सा ही प्रतिभासित होता है। कवि सम्प्रदाय ने पूरी कलिका को श्वेत ही वर्णन किया है।

चकोर

चकोर के विषय में प्रसिद्ध है कि यह चन्द्र का प्रेमी है और केवल चन्द्रिका के सौंदर्य का पान करके तृप्त हो जाता है। यह चन्द्रिका के भ्रम में दहकते हुये अंगारे निगल जाता है।

> है चन्द्र हृदय में बैठा उस शीतल किरण सहारे।
> सौंदर्य सुधा बलिहारी चुगता चकोर अंगारे॥

प्रसाद आंसू, पृष्ठ ४३

चकवा-चकवी

कवि-प्रसिद्धि है कि यह पक्षि-दम्पति दिन में साथ रहते और रात्रि में वियुक्त हो जाते हैं। ये दोनों एक दूसरे के विरह में रात्रि व्यतीत करते हैं और प्रभात होने पर पुनः मिल जाते हैं। इस कवि-प्रसिद्धि का प्रायः प्रत्येक कवि ने प्रयोग किया है :—

> चकई बिछुरी रैन की आइ मिली परभात।

कबीर वचनावली, पृष्ठ १८

मयूर

कवि प्रसिद्धि के अनुसार केवल वर्षा ऋतु में मयूर का उल्लेख किया जाता है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह केवल पावस में ही नृत्य करता है वास्तव में ऐसा नहीं होता। यह अन्य ऋतुओं में नृत्य करता है किन्तु पावस के अन्त में इसके पीछे के पंख गिर जाने के कारण इसका नृत्य इतना आकर्षक नहीं प्रतीत होता। यह अवश्य है कि पावस में श्याम मेघों को देख कर यह प्रफुल्लता का अनुभव करता और अतिशय उल्लास के साथ नृत्य करता है अन्य ऋतुओं में ऐसा नहीं होता।

चातक

इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह केवल स्वाति-नक्षत्र के जल का पान करता है। प्रेम की अनन्यता को प्रदर्शित करने के लिये प्रायः प्रत्येक कवि ने इसका उदाहरण-रूप में वर्णन किया है। तुलसी तो चातक के अनन्य प्रेम पर बहुत ही मुग्ध थे :—

तुलसी के मत चातकहि केवल प्रेम पिआस ।
पिअत स्वाति जल जान जग जांचत बारह मास ॥

दोहावली दोहा ३०८

हंस

हंस का गुण क्षीर-नीर विवेक प्रसिद्ध है । यह न्याय का प्रतीक माना जाता है ।

जड़ चेतन गुन दोष मय, बिश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ॥

दोहावली ३६६

इसके विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि यह केवल मान सरोवर में पाया जाता है वास्तव में ऐसा नहीं होता । इसका केवल मोती चुगना भी प्रसिद्ध है जो वास्तव में सत्य नहीं है ।

इस प्रकार यदि विज्ञान के सत्य को ही स्वीकृत कर लिया जाय और केवल उसी सत्य का काव्य में वर्णन किया जाय तो कवि-समय द्वारा गृहीत ये सभी बातें अप्रमाण हो जाती हैं और हमारे अमर कवियों की कृतियाँ सदोष प्रमाणित हो जाती हैं । किंतु काव्य में हम इन कवि-प्रसिद्धियों की उपेक्षा नहीं कर सकते । आदि काल से चली आती हुई परिपाटी को अप्रमाण नहीं बना सकते, काव्य में प्राकृतिक सत्य के साथ साथ इसे कवि-समय सिद्ध अप्राकृतिक सत्य को भी अपनाना है । दोनों की समन्विति ही उच्चकोटि के काव्य के अनुकूल रहेगी ।

प्रकृति-चित्रण के विविध-रूप

प्रकृति-चित्रण के विविध-रूप

अपने मस्तिष्क के विकास, बुद्धि की न्यूनाधिक प्रखरता, अनुभव, ज्ञान और संस्कारों के प्रभाव के अनुसार प्रत्येक मनुष्य का जीवन के प्रति भिन्न दृष्टिकोण होता है। समयानुगत परिवर्तन के द्वारा मनुष्य का दृष्टिकोण भी परिवर्तित होता रहता है। कवि भी चतुर्दिक व्याप्त वातावरण से प्रभावित होता है और मानव जीवन में कभी भौतिकवाद की आवश्यकता, कभी अध्यात्मवाद की विशिष्टता और कभी आदर्शवाद की उपयोगिता पर विचार करता है। उसकी दृष्टि कभी-कभी जीवन की अनेक रूपात्मकता से प्रभावित होकर मनोनुकूल परिस्थिति पर स्थिर हो जाती है, और वह वाह्य परिस्थिति को अपने अन्तस्तल की भावना से अनुरंजित करके अपने काव्य में वर्णन कर देता है।

जीवन-दृष्टि की भाँति प्रत्येक कवि की प्रकृति-विषयक चेतना भी उसकी अपनी ही होती है। प्रकृति का भिन्न-भिन्न रूपों में सिंहावलोकन और चित्रण के लिये प्रत्येक कवि स्वतंत्र होता है।

काव्य ग्रन्थों का अध्ययन करने पर विदित होता है कि एक ही काल में एक ही वर्ग के कवियों का प्रकृति के प्रति भिन्न दृष्टिकोण रहा है। भक्ति काल में सूर ने अपने उपास्य के सौन्दर्य को व्यक्त करने लिये उपमान रूप में प्रकृति का प्रयोग किया है और तुलसी श्रीमद्भागवत से प्रभावित होकर प्रकृति में उपदेश और ज्ञान ढूंढते फिरे हैं। रीति काल में, सेनापति, देव, बिहारी, घनानन्द आदि ने यद्यपि रीति परम्परा का पालन किया है किन्तु उनके अभिव्यक्तीकरण में महान अन्तर है। आधुनिक काल में, प्रकृति के उपासक प्रसाद, पन्त और निराला आदि कवियों ने प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों को अपनाया है। प्रसाद ने प्रकृति देवी के चरणों में समस्त वसुधा को समर्पित कर दिया है, पन्त ने प्रेयसी प्रकृति की रूप सुधा का पान किया है और निराला ने उसको संचालिका शक्ति माना है, और मानवीय भावनाओं का आरोपण किया है।

इस प्रकार जब एक ही काल में एक ही वर्ग के कवियों के दृष्टिकोण में इतना अन्तर हो जाता है, तो उनकी काव्य-रचना को काव्यकारों के दृष्टिकोण

अनुसार भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त करना अत्यन्त दुष्कर है । फिर भी कुछ स्थूल वर्ग स्थापित किये जा सकते हैं । वे इस प्रकार हैं :

आलम्बन

आलम्बन के रूप में प्रकृति कवि के लिये साधन न बनकर साध्य बन जाती है । कवि प्रकृति का निरीक्षण करता और उसके सूक्ष्मतम तत्वों से प्रति आकर्षित होता है । प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का पृथक्-पृथक् परिगणन न कराकर वह सबको एकत्रित करके संश्लिष्ट वर्णन करता है । उसका मन प्रकृति-दर्शन में रम जाता है, वह आत्म-विभोर हो उठता है और अपनी तल्लीनता में हृदय की मुक्तावस्था को प्राप्त होता है । उसके प्रकृति-चित्रण की यह विशेषता होती है कि पाठक को प्रकृति के प्रत्यक्ष-दर्शन का सा आनन्द प्राप्त होता है । प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन संस्कृत काव्यकारों ने प्रचुर मात्रा में किया है । आदि कवि वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति और आधुनिक कवि हरिऔध तथा पन्त के प्रकृति चित्रण इसी प्रकार के हैं । आदि कवि का वर्षा वर्णन देखिये :—

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेन्द्रकूटाकृतिसन्निकाशाः ।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः ॥२०॥
वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि ।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि पश्यापराह्णेष्वधिकं विभान्ति ॥२१॥[1]

[बिजली रूपी पताका से शोभित और बगुलों की पंक्ति रूपी माला पहने हुए, शिखरों के समान भीमकाय मेघ रण में मतवाले हाथियों की भाँति भयंकर गर्जन करते हैं ॥२०॥ देखो, मध्यान्ह के पश्चात् वन कैसे शोभायमान हो रहे हैं । वर्षा के कारण हरियाली दिख पड़ती है मोर प्रसन्न हो नाच रहे हैं, क्योंकि अत्यन्त वृष्टि के पश्चात् मेघ भग गये हैं । ॥२१॥]

शरद् ऋतु के आगमन का श्रीराम, लक्ष्मण से कितना सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन करते हैं ।

शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम् ।
लीलासु चैवोत्तमवारणानां श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥२६॥
संप्रत्यनेकाश्रयचित्रशोभा लक्ष्मीः शरत्कालगुणोपनीता ।
सूर्याग्रहस्तप्रतिबोधितेषु पद्माकरेष्वभ्यधिकं विभाति ॥४०॥[2]

१ वाल्मीकि रामायण किष्किंधा कांड सर्ग २८ ।
२ वाल्मीकि रामायण किष्किंधा कांड सर्ग ३० ।

गन्तच्छदानां कुसुमापगन्धी षट्पादवृन्दैरनुगीयमानः।
मत्तद्विपानां पवनोऽनुसारी दर्पं वनेष्वभ्यधिकं करोति ॥३१॥

देखो, शरद ऋतु ने सलोना की डालियों में, तारा, सूर्य और चन्द्र की प्रभा में तथा हाथियों की क्रीड़ाओं में, अपनी उत्तम नवीन शोभा को मानो विभाजित कर दिया है ॥२६॥

शरत्काल के उत्कर्ष से प्राप्त, यह शरत्कालीन नाना वर्णों की कान्ति सूर्य की किरणों से विकसित, इन कमल समूहों में अत्यधिक शोभा का विस्तार कर रही है। ॥३०॥

यह शरत्काल शतावरी के फूलों को सुवासित करता, भ्रमरों में गुंजार करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करता, पवन के पीछे पीछे चलता हुआ और मदमत्त हाथियों के मद को बढ़ाता हुआ, अत्यधिक शोभा युक्त हो रहा है। ॥३१॥

आदि कवि ने अपने शरद-वर्णन में, हाथियों की चिंघाड़, गायों का भूख के कारण दुर्बल हो जाना, कीचड़ का सूख जाना और मयूरों के पिच्छ भाग का गिर जाना आदि सभी बातों का वर्णन किया है, उनका प्रकृति-ज्ञान स्वतः-निरीक्षण द्वारा प्राप्त प्रतीत होता है। अपने प्रकृति चित्रण में उन्होंने प्रकृति का केवल सुन्दर वस्तुओं का ही चयन नहीं किया है अपितु अशोभन और असुन्दर वस्तुओं का भी वास्तविक चित्रण कर दिया है। सुन्दर शरद ऋतु में जहाँ वह निर्मल पर्वत-श्रेणियों, शीतल समीर, सप्तच्छद के पुष्पों की गन्ध, भ्रमरगुंजन और निर्मल-ज्योत्स्ना से प्रभावित हुए हैं, वहाँ वह पक्ष-प्रभा-विहीन उदासीन मयूर और क्षुधार्थ एवं निर्बल सर्पों का उल्लेख करना भी नहीं भूले हैं। प्रकृति उनके लिये केवल नेत्रानन्द का विषय नहीं रही है वरन् उनकी अन्तरात्मा के अनुरंजन का साधन बन गई है। श्रीराम अपने लघु भ्राता लक्ष्मण से शरद् का स्वाभाविक वर्णन करते हैं। जैसा कुछ नेत्रों के सम्मुख घटित हुआ है तदनुसार कवि ने उसको चित्रित कर दिया है, यद्यपि इसमें प्रकृति का यथा-तथ्य वर्णन है तथापि कवि तटस्थ होकर नहीं बैठा रहा है। प्रकृति के जड़ और चेतन समस्त अंग उसकी अन्तर्वृत्ति से सामंजस्य स्थापित करते चलते हैं। उपर्युक्त वर्णन में न तो श्रीराम के भावों को उद्दीप्त करने का प्रयत्न है और न अलंकार अथवा चमत्कार-पूर्ण शब्द-योजना का प्रदर्शन। आदि कवि का भावुक हृदय प्रकृति दर्शन में रम गया है, वह प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करते चलते हैं। प्रकृति का सहयोग

उन्हें आनन्द प्रदान करता है और उनका आन्तरिक उल्लास उन्हें अभिव्यक्ति के लिये प्रेरित करता है।

इसी भाँति कालिदास भी प्रकृति-वर्णन में रम गये हैं। मेघदूत में तो प्रकृति उनके काव्य का मुख्य विषय बन गई है। आदि से अन्त तक समस्त मेघदूत प्रकृति चित्रण से पूर्ण है। कुमारसम्भव का आरम्भ ही हिमालय वर्णन से होता है। 'रघुवंश' और 'शकुन्तला' आदि ग्रन्थों में भी प्रकृति चित्रण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। ऋतु संहार कवि की सूक्ष्म-दृष्टि और प्रकृति-प्रेम का परिचायक है। इसमें छः ऋतुओं का अत्यन्त भव्य वर्णन है। कवि का ग्रीष्म वर्णन देखिये—

मृगाः प्रचंडातपतापिता भृशं तृषामहत्या परिशुष्कतालवः।
वनांतरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिन्नांजनसंनिभं नभः ॥११॥[1]

[जलते हुए सूर्य की किरणों से झुलसे हुए जिन जंगली पशुओं की जीभ प्यास से बहुत सूख गई है वे धोखे में उन जंगलों की ओर दौड़े जा रहे हैं जहाँ के अंजन के समान नीले आकाश को वे पानी समझ बैठे हैं]

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथितप्त पांसुभिः।
अवाङ् मुखो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः फणी मयूरस्य तले निषीदति ॥१३॥[2]

(धूप से एक दम तपा हुआ और पैरों की धूप से झुलसा हुआ यह सर्प अपना मुँह नीचे छिपाकर बार-बार फुफकारता हुआ मोर की छाया में कुंडली मारे बैठा हुआ है और मोर भी गर्मी के मारे उससे कुछ नहीं कह रहा है।)

तृषा महत्या हतविक्रमोद्यमः श्वसन्मुहुर्दूरविदारिताननः।
न हन्त्यदूरेऽपि गजान्मृगेश्वरो विलोलजिह्वश्चलिताग्रकेसरः ॥१४॥[3]

(हाथियों के पास होने पर भी यह सिंह उन्हें मार नहीं रहा है, क्योंकि प्रचंड गर्मी के कारण प्यास के मारे उसका सब साहस ठंडा पड़ गया है। अपना पूरा मुँह खोलकर वह बार बार हाँफ रहा है अपनी जीभ से अपने होंठ चाटता जा रहा है और हाँफने से इसके कंधे के बाल हिलते जा रहे हैं।)

सभद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं सरः खनन्नायतपोत्र मण्डलैः।
रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम् ॥१७॥[4]

१ कालिदास ऋतुसंहार प्रथम सर्ग।
२ ,, ,, ,,
३ ,, ,, ,,
४ ,, ,, ,,

(धूप से एक दम झुलसा हुआ यह जंगली सुअरों का झुंड अपने लम्बे लम्बे नथुनों से नागरमोथे से भरे हुए बिना कीचड़ वाले गड्ढे को खोदता हुआ ऐसा लगता है मानो धरती में घुसा जा रहा है।)

सफेनलालावृतवक्त्रसंपुटं विनिःसृतालोहितजिह्वमुन्मुखम् :
तृषाकुलं निःसृतमद्रिगह्वरादवेक्षमाणं महिषीकुलं जलम् ॥२१॥

(जुगाली करने से जिन भैसों के मुख से झाग निकल रहे हैं और लार बह रही है वे अपना मुह खोलकर अपनी लाल जीभ बाहर निकाले हुए प्यास के मारे ऊपर मुँह उठाये हुए पहाड़ की गुफा से निकल-निकल कर जल की ओर लपकी जा रही हैं।)

ग्रीष्म की भयंकर दावानल और झुलसी हुई कुश शाखाओं का वर्णन करना भी वह नहीं भूले हैं। समस्त जीवों की यह दशा है कि क्षितिज के पार नीलाकाश को जंगली पशु सरोवर समझकर दौड़े जा रहे हैं। प्यास के मारे सब जानवरों की जीभ सूख रही है। सर्प कुंडली मारकर मोर की छाया में बैठा है, हाथियों के पास होने पर भी सिंह उन्हें मार नहीं रहा है, प्रचन्ड धूप से समस्त जीव जन्तु इतने अधिक त्रस्त हैं कि वे अपना स्वाभाविक वैर भूल गये हैं। हिन्दी के रीतिकालीन कवि बिहारी ने भी इसका अनुभव किया है।

कहलाने एकत बसत, अहि, मयूर, मृग, बाघ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ, दाघ, निदाघ।[1]

अत्यन्त गर्मी का अनुभव होने पर जीभ प्यास के मारे बाहर निकल आती है इसका उन्होंने सिंह और भैसों तक में निरीक्षण किया है। कुत्ते, सुअर आदि जीव गर्मी में गड्ढा खोदकर शीतलता प्राप्त करने के लिये उसमें बैठ जाते हैं। इसका अपने निजी निरीक्षण द्वारा उन्होंने गड्ढा खोदकर प्रविष्ट होते हुए सुअर का वर्णन किया है। इन्होंने आतपाकुल हाथी, सिंह आदि पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष तथा शुष्क सरोवर आदि सभी का स्वतः निरीक्षण किया है। उनका हृदय प्रकृति के कष्ट से द्रवित होगया है और प्रकृति के प्रति संवेदना एवं सहानुभूति प्रस्फुटित हो उठी है। इसके विपरीत सेनापति का ग्रीष्म वर्णन देखिये—

सेनापति ऊँचे दिनकर के चलत लुवैं,
नद, नदी, कुवैं कोपि डारत सुखाइ कैं।

१ बिहारी बोधिनी दोहा ५६५।

प्रकृति के सूक्ष्माति सूक्ष्म व्यापार के प्रति आकर्षण के परिचायक राशि-राशि चित्रण हैं। कुमार सम्भव में ही हिमालय का विशद वर्णन देखिये—

> पश्चाप्सरोविभ्रमरणडनानां संपादयित्री शिखरैर्बिभर्ति ।
> बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसंध्यामिव धातुमत्ताम् ॥४॥
> आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
> उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥५॥
> यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान्दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
> उद्गास्तामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥८॥
> कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरल-द्रुमाणाम् ।
> यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभी करोति ॥९॥

[हिमालय की चोटियों पर गेरू आदि धातुओं की अनेक रंग बिरंगी चट्टानें हैं। इसलिये कभी-कभी उन चट्टानों के पास पहुँचे हुए बादलों के टुकड़े उनकी छाया पड़ने के कारण संध्या के बादलों जैसे रंग बिरंगे दिखाई देने लगते हैं उन्हें देखकर संध्या के पूर्व ही अप्सराओं को भ्रम होजाता है और वे सायकाल के नाच-गान के लिये अपना शृंगार आरम्भ कर देती हैं] ॥४॥

[इसकी कुछ चोटियाँ इतनी ऊंची हैं कि मेघ भी इसके बीच तक ही रह जाते हैं। उनके ऊपर का आधा भाग मेघों के ऊपर ही निकला रहता है। इसलिये निचले भाग में छाया का आनन्द लेने वाले सिद्ध लोग जब अधिक वर्षा होने से घबरा उठते हैं तब ये बादलों के ऊपर उठी हुई उन चोटियों के ऊपर जाकर रहने लगते हैं, जहाँ उस समय धूप बनी रहती है।] ५

[इस पहाड़ पर ऐसे छेद वाले बांस बहुतायन से होते हैं जो वायु भर जाने पर बजने लगते हैं। तब ऐसा मालूम होता है मानों ऊँचे स्वर से गाने वाले किन्नरों के गाने के साथ में संगत कर रहे हैं।] ८

[जब यहाँ के हाथी अपनी कनपटी खुजाने के लिये देवदारु के पेड़ों से अपना माथा रगड़ते हैं तब उनसे ऐसा सुगन्धित दूध बहने लगता है कि उसकी महक से इस पर्वत की सभी चोटियाँ महक जाती हैं।] ९

इसमें धातुओं की चट्टानों के कारण बादलों का रंग-बिरंगे दिखाई पड़ना, मेघों का पर्वतों के निचले भाग तक ही रह जाना और बरस पड़ना,

---

कालिदास कुमार सम्भव प्रथम सर्ग।

कन करने के पश्चात् सर्प के विवर तक पहुँच जाते हैं। सर्प अपनी इच्छा से पड़ा हुआ सो रहा है, उसके जहरीले साँस के कारण आग सी लग गई है और गर्मी के कारण सर्प के शरीर से पसीने की बूंदें दरारों में गिर रही हैं। अन्य जीव जन्तु जल समझकर उन पसीनों की बूंदों को पी रहे हैं इस प्रकार गिरि-कन्दरा और सर्प विवर तक पहुँचकर कवि भवभूति ने अपने असाधारण प्रकृति प्रेम और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है।

अब पुष्पित वानीर-लताओं से सुवासित, 'पक्षिशावकों के कल-कूजन से गुञ्जरित और निर्झरिणी के शीतल, सुगंधित जल से प्रक्षालित जम्बू-वृक्ष का वर्णन देखिये—

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥२०॥

संस्कृत के इन महाकवियों के प्रकृति चित्रण से विदित होता है कि वे प्रकृति के रम्य रूप के ही प्रशंसक अथवा दर्शक नहीं थे। उन्होंने प्रकृति के भव्य एवं भयंकर दोनों रूपों का विशद वर्णन किया। एक ओर वे सरिताओं के कल-कल-निनाद, यौवन-मद से मतवाले कुसुम तथा मलय समीर के प्रति आकर्षित हुए और दूसरी ओर सूखे ताल, आतपाकुल सर्प एवं अन्य जीव जन्तु, पत्र-शून्य वृक्षावलि आदि भी उनके काव्य के उपादान हुए। काव्यकार का हृदय जिस प्रकार रम्य दृश्य पर मुग्ध हुआ उसी प्रकार विकृत रूप का अवलोकन कर वे करुणा से आप्लावित हो उठे। प्रकृति उनकी सहचरी रही। उन्होंने प्रकृति के साथ अपना निकटतम सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उसकी मुसकान एवं भ्रू-भंगिमा दोनों का ही अवलोकन किया। किसी भी अवस्था में वे अपनी सहचरी से तटस्थ न रह सके।

हिन्दी काव्य में प्रकृति का आलम्बन रूप में प्रकृति वर्णन हमें आधुनिक काल में उपलब्ध होता है। इससे पूर्व भक्ति काल में तुलसी में हमें आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण मिलता है किन्तु इसमें राम की महिमा ही प्रधान तत्त्व हो जाती है। प्रकृति-वर्णन गौण हो जाता है। चित्रकूट का वर्णन देखिये।

सब दिन चित्रकूट नीको लागत,
बरषा ऋतु प्रवेश विशेष गिरि देखत मन अनुरागत ॥१॥

भवभूति उत्तर रामचरित अङ्क २।

परम धीर समीर प्रवाह था, वह मनों कुछ निद्रित था हुआ।
गत हुई अथवा अति धीर थी, प्रकृति को सुप्रसुप्त विलोक के ॥२॥
सकल पादप नीरव से खड़े, हिल नहीं सकता यक पत्र था।
च्युत हुए पर भी वह मौन ही, पतित था अवनी पर हो रहा ॥३॥
प्रगटती बहु भीषण मूर्ति थी, कर रहा भय नृत्य कराल था।
विकट दन्त भयंकर प्रेत भी विचरते तरु मूल समीप थे ॥४॥१

रात्रि की नीरवता प्रातःकाल अपने प्रिय कृष्ण के प्रयाण के कारण नन्द यशोदा और ब्रजवासियों को अत्यन्त भयंकर प्रतीत होती है। यह दृश्य एक प्रकार से प्रिय के प्रवास की पृष्ठ-भूमि के रूप में है। इसमें कवि ने ब्रज-निवासियों के मनोवेगों को उद्दीप्त करने का प्रयत्न नहीं किया है और न उपमा उत्प्रेक्षा आदि अलंकारो के फेर में पड़े हैं। कवि ने तमावृता निस्तब्ध-रात्रि का वर्णन किया है। समस्त प्रकृति निश्चल सी है। पेड़ों के पत्ते भी इतने धीरे से गिरते हैं कि शब्द नहीं होता। समस्त निस्तब्ध वातावरण कृष्ण वियोग की क्लेशकारिणी-व्यथा की सूचना दे रहा है।

अब प्रकृति के सौम्य तथा सुन्दर रूप की छटा देखिये। ब्रज-विहारी कृष्ण की क्रीड़ा-भूमि का कैसा सुन्दर एवं मनोमुग्धकारी वर्णन है॥

गिरिन्द्र में व्याप्त विलोकनीय थी बनस्थली बीच प्रशंसनीय थी।
अनूप शोभा अवलोकनीय थी बसंत जम्बालिनि कूल जम्बु की ॥२७॥
सुपक्वता पेशलता अपूर्वता फलादि की मुग्धकरी विभूति थी।
रसाप्लुता सी वन की वसुन्धरा रसालता थी करती रसाल की ॥२८॥२

आदि शब्दों में हरिऔध जी ने ब्रज-भूमि का विशद-वर्णन किया है। ब्रजवर्णन में कवि, वहाँ के जम्बू, आम, कदम्ब, नीबू, मौलसिरी, नारंगी आदि के प्रत्येक वृक्ष से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता चलता है। जड़ प्रकृति कवि के लिये चेतन हो जाती है। कवि को, आंवला उतावलों की क्रिया बताने वाला और लीची-तरुवर पोच-वश का रहस्य बताता सा प्रतीत होता है प्रत्येक फल और वृक्ष से कवि का सबंध स्थापित होता चलता है।

प्रकृति के उपासक प्रसाद ने प्रकृति के विराट, विकराल, भव्य एवं सरस सभी रूपों के दर्शन किये हैं। उन्हें प्रकृति में इतनी अधिक संवेदन-शीलता का आभास मिला है कि वह उनके काव्य का एक प्रधान अंग बन गई है।

१ हरिऔध प्रियप्रवास सर्ग ३।
२ हरिऔध प्रियप्रवास सर्ग ९।

कवि प्रकृति के पर्यालोचन में रम गये हैं। कामायनी में प्रकृति के विकराल रूप का चित्रण देखिए :—

> हाहाकार हुआ क्रन्दनमय कठिन कुलिश होते थे चूर।
> हुए दिगन्त बधिर भीषण रव बार बार होता था क्रूर॥
> दिग्दाहों से धूम उठे या जलधर उठे क्षितिज तट के।
> सघन गगन में भीम-प्रकम्पन झंझा के चलते झटके॥
> पंचभूत का भैरव मिश्रण शम्पाओं के शकल निपात।
> उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रहीं ज्यों खोया प्रात॥
> धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियों के निःश्वास।
> और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास॥[1]

इस उद्धरण में प्रकृति का अत्यन्त उग्र एवं प्रलयंकारी रूप प्रकट हो रहा है समस्त प्रकृति क्षुब्ध है और रुद्र रूप धारण किये हुए है। भय तथा त्रास के भाव व्यक्त हो रहे हैं।

अब प्रकृति का कोमल सुकुमार रूप देखिये :—

> यह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का आज लगा हँसने फिर से।
> वर्षा बीती हुआ सृष्टि में शरद विकास नये सिर से॥
> नव कोमल आलोक बिखरता हिम संसृति पर भर अनुराग।
> सित सरोज पर क्रीड़ा करता जैसे मधुमय पिंग पराग॥[2]

यद्यपि विराट की भावना को हिन्दी और संस्कृत के कवियों ने स्वतन्त्र रस के रूप में नहीं लिया है, जैसा कि अंग्रेजी कवियों ने लिया है, तथापि हमारे यहाँ विराट के अत्यन्त भव्य चित्रण मिलते हैं। स्वयं प्रसाद में ही :—

> सबल तरङ्गाघातों से उस क्रुद्ध सिंधु के विचलित सी।
> व्यस्त महा कच्छप सी धरणी ऊभ चूभ सी विकलित सी॥
> करुणा-क्रन्दन करती गिरती और कुचलना था सबका।
> पंच भूत का यह ताण्डवमय नृत्य हो रहा था कबका॥[3]

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त मूलतः प्रकृति के कवि हैं। प्रबन्ध काव्य में प्रकृति के संश्लिष्ट-चित्रण की सुविधा रहती है। पन्त जी ने गीतों की ही

१ प्रसाद कामायनी पृष्ठ १८।
२ कामायनी आशा पृष्ठ २५।
३ कामायनी चिन्ता पृष्ठ २०।

रचना की है अतः उनके काव्य में हमें बहुत अधिक संश्लिष्ट चित्रण तो नहीं प्राप्त होते। एक गीत में वह प्रकृति के एक ही तत्व से सम्पर्क रख सके हैं, समस्त प्रकृति एक साथ केन्द्रित नहीं हो सकी है, अतः उनकी प्रकृति सम्बन्धी रचनायें अधिकांशतः 'बादल' 'निर्झरी' 'खद्योत' 'चांदनी' 'जुगनू' आदि पृथक-पृथक गीतों में प्रकट हुई हैं। "मोह" नामक कविता में हमें कवि के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण की स्पष्ट-स्वीकृति प्राप्त होती है।

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ? भूल अभी से इस जग को।
त्याग कर तरल तरंगों को, इन्द्र धनुष के रंगों को,
तेरे भ्रूभंगों से कैसे बिंधवा दू निज मृग सा मन, भूल अभी से इस जग को।
कोयल का वह कोमल बोल, मधुकर की वीणा अनमोल,
कह तब तेरे ही प्रिय स्वर से कैसे भरलूं सजनि श्रवण, भूल अभी से इस जग को।
ऊषा सस्मित किसलय दल, सुधा रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहलादू जीवन ? भूल अभी से इस जग को।[१]

इस कविता में कवि का प्रकृति के प्रति अनुराग लक्षित होता है। कवि को अपनी प्रेयसी से अधिक प्रकृति से मोह है। उन्होंने प्रकृति से प्रेम-सम्बन्ध तोड़कर प्रेमिका के प्रेमपाश में बंधजाने में असमर्थता प्रकट की है। प्रकृति के प्रति उन्हें सुन्दरी-बाला से अधिक आकर्षण है। प्रकृति के सहज-सौन्दर्य के दर्शन से उन्हें मानव सौन्दर्य से अधिक आत्म तुष्टि और आनन्द का अनुभव होता हैं।

उद्दीपन—

पहिले वर्णन किया जा चुका है कि आदि कवि वाल्मीकि, कालिदास और अन्य प्राचीन कवियों ने प्रकृति के प्रति पूर्ण उत्साह प्रकट किया और उसको आलंबन मानकर उसका यथातथ्य वर्णन किया। इन कवियों ने प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में विचरण किया और मानव-हृदय का सा प्रतिस्पन्दन पाया। इनकी कविता स्वान्तः सुखाय थी और इनका क्षेत्र विस्तीर्ण, निर्विघ्न तथा उनकी अन्तर्भावनाओं के लिये अनुरंजनकारी था, किन्तु उत्तर काल में कुछ काव्य-मर्मज्ञ नरेशों ने प्रतिभाशाली काव्यकारों को गौरवपूर्ण स्थान देकर अपनी राज-सभा को अलङ्कृत किया। कवि राज दरबार के ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण में

१ पल्लविनी ४९।

वैभव एवं विलास का जीवन व्यतीत करते हुए काव्य रचना करने लगे। कालान्तर में उनका प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद हो गया। इनकी कविता राज प्रासादों के संकुचित क्षेत्र में परिभ्रमण करने लगी और कवि गण प्रकृति वर्णन के स्थान में परम्परा-युक्त रूढ़-वर्णन करने लगे। हिन्दी के कवियों को यही दृष्टि उत्तराधिकार में प्राप्त हुई और रीतिकाल में तो उसकी पराकाष्ठा ही होगई।

रीतिकाल के कविगण अपने उदर-भरण के लिये राज-दरबारों में रहने लगे और अपने आश्रयदाता भूपतियों की प्रसन्नता के लिये काव्यरचना करने लगे। स्वभावतः उनमें प्रकृति को उद्दीपन रूप में वर्णन करने की प्रवृत्ति जाग्रत हो उठी। राजप्रासादों में रहकर इनकी वेष-भूषा, आचार-विचार आदि सभी में नागरिक-सभ्यता का विकास हो रहा था, ग्राम के स्वच्छन्द और नैसर्गिक जीवन से वे बहुत दूर पड़ गये थे। ग्राम के सरोवर और उपवनों की अपेक्षा इन्हें हौज और खसखानों के प्रति अधिक आकर्षण था। नगर के कृत्रिम वातावरण में ये जीवन यापन कर रहे थे। वाल्मीकि की भाँति ये कवि न तो प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में घूमे थे, न इन्होंने स्वयं निरीक्षण ही किया था और न प्रकृति उनके अनेक भावों की पोषिका, हर्ष विषाद की सह भागिनी अनन्य-मित्र ही रही थी। राजप्रासादों के अतुल वैभव, विलास और संकुचित-वातावरण में ही उनका जीवन बीता, उनकी दृष्टि सीमित रही। ये कवि काव्य-मर्मज्ञ थे, इनमें रचना-कौशल था और प्रतिभा थी, इन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों के काव्यग्रन्थों का गहन-अध्ययन किया। इनका प्रकृति विषयक ज्ञान स्वतः प्राप्त नहीं अपितु परम्परा द्वारा उपलब्ध था जो उन्हें संस्कृत के उत्तरकालीन और हिन्दी के पूर्ववर्ती कवियों द्वारा प्राप्त हुआ। इनकी कविता दरबारी थी। प्रकृति इनके लिये अनुराग का विषय न होकर नायक और नायिका के अनेक भावों को उद्दीप्त करने का साधन मात्र थी।

प्रकृति-वर्णन में अधिकांशतः समस्त रीतिकालीन कवियों ने वियोग में बारह मासा और संयोग में षट्ऋतु का उल्लेख किया है। वर्ष का प्रत्येक मास विरहिणी नायिका के विरहजन्य भावों को उद्दीप्त करता है। आषाढ़ मास में नायिका भूधराकार-श्याम-जलद की गर्जन से भयभीत होती है, शरद मास उसे दुःखप्रद प्रतीत होता है, ज्येष्ठ की प्रचंडता उसे और भी अधिक दग्ध करती है। और वसन्त के दिन उसे उन्मत्त बना देते हैं। वियोगिनी नायिका का कभी प्रकृति में विपरीत लक्षण देखना, कभी प्रलाप करना और कभी

'श्याम की अनुहारि' वाले बादलों में अपने प्रिय का अनुभव करना आदि भाव समस्त रीतिकालीन कवियों में लक्षित होते हैं।

उद्दीपन रूप में प्रकृति को काव्य के सयोग और वियोग दोनों पक्षों में वर्णित किया गया है। संयोग में मलय-समीर, शीतल-चन्द्रिका आदि पारस्परिक आकर्षण को बढ़ाते हैं, किन्तु वियोग में प्रकृति की समस्त चेष्टायें विरहीजनों को कामोद्दीप्त तथा उन्मत्त बना देती हैं। हमारे यहाँ अधिकांशतः विप्रलंभ श्रृंगार में ही प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन है। जब नायक नयिका में उत्कृष्ट प्रेम होने पर भी प्रिय समागम नहीं होता तो विप्रलभ श्रृंगार की सृष्टि होती है। वियोग तीन प्रकार का होता है मान, प्रवास और मृत्यु। प्रिय की मृत्यु होने पर करुण-रस का आविर्भाव हो जाता है, मान क्षणिक होता है अतः उसमें इतनी तीव्रता नहीं होती। प्रिय का प्रवास होने पर ही वियोग श्रृगार पूर्ण और प्रभावशाली होता है। कवियों ने अधिकतः प्रवास-जन्य-विरह का ही वर्णन किया है। विरह की दस अवस्थायें होती हैं, अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, उन्माद, व्याधि, जड़ता, और, मरण। इनमें से अभिलाषा, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप और उन्माद आदि दशाओं का वर्णन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। मरण तो वियोग की अन्तिम अवस्था है-इसके अनन्तर तो सब समाप्त हो जाता है।

श्रृंगार में हमारे यहाँ उद्दीपन का बड़ा महत्व माना है। आदि कवि वाल्मीकि ने भी इसका वर्णन किया है। सीताहरण के पश्चात रमणीय पंपातीरवर्ती वन-प्रदेश को देखकर रामचन्द्र कामोत्तप्त हो जाते हैं, उन्हें अपनी प्रिया की स्मृति सताने लगती है और लक्ष्मण से कहते हैं।

अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहग-नादितः।
सीतया विप्रहीणस्य शोक- सन्दीपनो मम[1] ॥२२॥

(हे लक्ष्मण, यह वसन्त ऋतु विविध प्रकार के पक्षियों से नादित हो मेरे सीता वियोग जन्य शोक को बढ़ा रहा है।)

अनुकूल वातावरण पाकर, श्रीराम की काम पीड़ा बढती है और सीता-मिलन की अभिलाषा जाग्रत होती है। वे कहते हैं।

मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्नि : प्रधक्ष्यति।
नहि तां सूक्ष्मपक्ष्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम् ॥३०॥

१ वाल्मीकि किष्किंधा कांड सर्ग १ श्लोक २२।

आराध्य कृष्ण को नाना विधियों द्वारा अपनी सुधि दिलाने की पवन से प्रार्थना करती है। पवन राधा का अभिन्न मित्र बन जाता है। अपना सम्पूर्ण संदेशा कह देने के पश्चात उसे पवन की असमर्थता का ध्यान आता है, और वह कहती है—

पूरी न होवें यदि तुझ से अन्य बातें हमारी।
तो तू मेरी इतनी विनय मानले औ चली जा॥
छू के प्यारे कमल पग को प्यार के साथ आजा।
जी जाऊँगी हृदय-तल में मैं तुझी को लगा के॥८२॥[1]

खिन्नावस्था में मनुष्य को प्रत्येक वस्तु से वैराग्य सा हो जाता है। हृदय की पीड़ा किसी प्रकार भी चैन नहीं लेने देती। विरह में मानव यही सोचता है "औरे भाँति भयेऽबये चौसर, चन्दन, चन्द"। नहीं तो इनमें अब प्रिय-समागम के समय का सा आकर्षण क्यों नहीं है। संयोगावस्था में तो चन्दन आदि शीतोपचार शीतलता प्रदान करते थे, चन्द्र अपनी चन्द्रिका द्वारा सुधा-वर्षण करता था, मलय समीर रोमांचित कर देता था, किन्तु अब इनमें इतना परिवर्तन क्यों हो गया है। सभी वस्तुओं का उल्टा प्रभाव क्यों होता है? वास्तव में मनोदशा में अन्तर हो जाने के कारण संयोगावस्था की समस्त सुख और आनन्द प्रदान करने वाली प्राकृतिक वस्तुएँ दुःख एवं पीड़ा-वर्द्धिनी प्रतीत होती हैं। शीतोपचार वियोगावस्था में हृदय को दग्ध करते और विरह-व्यथा को बढ़ाते हैं। सभी का प्रभाव विपरीत होता है। हृदय की इस मनो-दशा के कारण कृष्ण-वियोगिनी गोपिकाओं को केलि-कुंजें बैरिन सी लगती थीं और लतायें सर्प-समूह के समान भयंकर प्रतीत होती थीं। जिन स्थलों में उन्होंने विहार किया था, जहाँ उन्होंने जीवन के सुखमय दिवस बिताये थे, कृष्ण के बिना उन्हीं जमुना-कछारों और कालिन्दी-तट को देखकर उनमें अतीत की स्मृति सजग हो उठती है, विरह-वेदना तीव्रतर हो जाती है और प्रकृति से विरक्त तथा वियोग-व्यथा से वे ज्ञान-शून्य सी हो जाती हैं।

विरहाधिक्य में मनुष्य को उन्माद सा हो जाता है, उसकी समस्त चेतना विलुप्त हो जाती है। बिहारी की विरहिणी नायिका का उन्माद तो चरम सीमा पर पहुँच जाता है। वह ज्ञान-शून्य हो जाती है और जुगनुओं को अंगारे समझकर अपनी सखियों को अन्दर भाग जाने का आदेश करती है। उसकी सखी उसकी इसी अवस्था का वर्णन करती है :—

१ हरिऔध प्रिय प्रवास सर्ग ६।

विरह जरी लखि जीगननि कह्यौ न उहि कै बार।
अरी आउ भजि भीतरै, बरसत आज अंगार॥[1]

विद्यापति ने भी अपने विरह वर्णन में इसी भाव को व्यक्त किया है। वियोग-व्यथिता नायिका को चन्दन और शीतल चन्द्र, विरहाग्नि को उद्दीप्त करने वाले प्रतीत होते हैं, वसन्तागमन पर भी उसका प्रियतम प्रवास में है। सुन्दर वसन्त ऋतु में समस्त प्रकृति उल्लास एवं आनन्द से पूर्ण है किन्तु वियोगिनी नायिका को कहीं सुख का लेश भी प्राप्त नहीं होता, वरन् उसका प्रतिकूल प्रभाव होता है।

चनन चान तन अधिक उतापए उपवन अल उतरोलो रे।
समय वसन्त कन्त रहु दुर देश जानल विधि प्रतिकूले रे॥

विद्यापति पदावली विरह २०१, ४

अपने प्रिय का वियोग सभी को कष्टदायक प्रतीत होता है। इस अवस्था में मानव अपने गर्व, मर्यादा, ऐश्वर्य और विलास सब को भूलकर प्रकृति के क्षुद्रतम तत्व के प्रति भी अपने हृदय की समस्त सहानुभूति और प्रेम को उँडेल देने की चेष्टा करता है। प्रकृति के अणु अणु में उसका कष्ट व्याप्त हो जाता है। निर्जन पर्वत जल स्रोतों के बहाने आँसू बहाते हैं, नीरव निशा अश्रु-मुक्ता विकीर्ण करती है, चन्द्र पीला पड़ जाता है और तारे निष्प्रभ हो जाते हैं। नागमती वियोगावस्था में अपने रानीपन को भूलकर प्रकृति के उपकरण पशु-पक्षी आदि के साथ अत्यन्त तादात्म्य स्थापित करती है। वह सोचती है कि विचारे काग और भौंरा भी उसी की भाँति विरहाग्नि में जल कर काले हो गये हैं। वह कहती है—

पिउ सौं कहेउ संदेसड़ा, हे भौंरा हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुँआ हम्ह लाग॥

जायसी ग्रंथावली।

मानव-प्रकृति है कि अपने सुख में उसे अन्य के कष्ट का आभास नहीं होता किन्तु अपने ऊपर उसी प्रकार की विपत्ति पड़ने पर उसे दूसरे के दुःख का भी अनुभव होता है। उस समय उसे अपनी भूल प्रतीत होती है, पश्चात्ताप होता है और सम दुःखी के प्रति सहानुभूति जाग्रत होती है। प्रेम-गर्विता उर्मिला अपने प्रियतम लक्ष्मण के संसर्ग में आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करती थी, वह चातकी की "पिउ-पिउ" की रट से निरपेक्ष थी। चातकी के अन्त

१ बिहारी बोधिनी दोहा ४९२।

स्तल से निकले हुये विरह के शब्द उसे मधुर संगीत का सा आनन्द देते थे, किन्तु अब लक्ष्मण से वियुक्त होने पर वह चातकी की वेदना को समझ सकी है और अपनी भूल को सुधारती हुई कहती है—

चातकि, मुझको आज ही हुआ भाव का भान।
हा! वह तेरा रुदन था, मैं समझी थी गान॥

साकेत पृष्ठ २७०

अपने विषाद में मानव-स्वभाव किसी दूसरे को आनन्दित नहीं देख सकता। प्रकृति के तत्व पशु-पक्षी और आल्हादपूर्ण-दृश्य आदि दुःखी मनुष्य की ईर्ष्याग्नि को प्रज्वलित करते हैं। वियोग-व्यथित हृदय अन्य को उल्लसित देखकर और भी अधिक दग्ध होता है और ईर्ष्या-जन्य झुझलाहट से तिलमिला उठता है। दुःखी मनुष्य को यही वाञ्छित होता है कि समस्त प्रकृति उसकी समदुःखिनी हो जाय, जिस प्रकार विरह में उसका शरीर कृश होता जाता है, जिस प्रकार उसके उल्लास, उमग और उत्साह पर तुषारापात हो गया है उसी प्रकार प्रकृति की वनस्पतियाँ मुरझा जायें, वृक्ष श्री-विहीन हो जायें और समस्त जीव-युगल बिछुड़ जाये। उसको पति-समुदाय की आनन्द-मग्न कल-कूजन सन्ताप-कारिणी प्रतीत होती है और प्रिय से वियुक्त कोकी के विरह-व्यथित शब्दों से सान्त्वना मिलती है।

धुनि सुनि कोकिल की विरहिनि की किलकी,
केका के सुने तै प्रान एकाके रहत हैं॥

कवित्त-रत्नाकर तीसरी तरंग २५

इसमें विरहिणी के हृदय की स्वस्थ-अवस्था का वर्णन है, उसको यथार्थता का पूर्ण ज्ञान है। वह जानती है कि कोकिल, कलित-कूजन से अपने हृदय का हर्ष व्यक्त कर रही है वियोगिनी इसमें सहयोग नहीं देती। कोकिल को प्रसन्न देखकर उसको वेदना होती है और अपने दुर्भाग्य पर झुँझलाहट होती है कि उसका प्रियतम उससे दूर है, उसके सुख का संसार शून्य है फिर कोकिल प्रसन्न क्यों है? वियोगिनी का हृदय व्यथा से कराह उठता है। कोकी अपने प्रिय से वियुक्त है अतः समदुःखिनी है, नायिका को सान्त्वना मिलती है कि संसार में केवल वही दुःखी नहीं है अपितु और भी जीव हैं जो उसी की भाँति विरह-यातना सहन कर रहे हैं। यह विरह का संयत रूप है। परन्तु हृदय की अव्यवस्थित और असंयत अवस्था में बात ही दूसरी हो जाती है विरहाधिक्य के कारण यथार्थता का ज्ञान नहीं रहता। मनोनुकूल परिस्थिति

न रहने के कारण समस्त वातावरण ही प्रतिकूल हो जाता है और फिर विरहिणी नायिका को यही कहना पड़ता है -

ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजो भले,
हरि सों, हमारे ह्याँ न फूले बन कुंज हैं।
किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की,
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं।

पद्माकर पंचामृत पृष्ठ १५८

प्रकृति के जो तत्व विरह में वियोग दशा को बढ़ाते हैं वही संयोगावस्था में रति-भाव को परिवर्द्धित करते हैं। वियोग में वसन्त का मलय-समीर और वासक सज्जा वसुधा सुन्दरी का सौम्य-रूप हृदय को व्यग्र बना देता था वही अब नायिका में सात्विक-भाव उत्पन्न करता है, नायक के मधुर-मिलन द्वारा प्राप्त सुख की स्मृति उसे बार-बार रोमांचित करती है, सखी पुलकित-गात देखकर पूछ बैठती है—

यह बसन्त न खरी अरी, गरम न सीतल बात।
कहि क्यों प्रगटे देखियत, पुलक पसीजे गात॥[1]

वसन्त में तो न अधिक गर्मी ही होती है और न शीतल वायु ही प्रवाहित होता है फिर भी नायिका के शरीर में स्वेद और रोमांच दृष्टिगोचर हो रहा है।

संयोग-शृंगार के मुख्यतः दो उपयोग हैं एक तो प्रकृति मानसिक उल्लास की अभिवृद्धि करती है और दूसरे शारीरिक उपभोग की वस्तु बन जाती है। प्रेमी-प्रेमिका का संयोग होने पर प्रकृति के दृश्य पारस्परिक-आकर्षण में वृद्धि करते हैं। शीतल-सुरभित समीर, चन्द्र-ज्योत्स्ना, निर्झर तट, वृक्ष-पत्रों का मर्मर् शब्द और खग-कुल का कल-कूजन दोनों के आकर्षण में एक प्रकार की तीव्रता, सरसता, और माधुर्य का संचार कर देते हैं। नायक प्रफुल्लित पुष्पों में, पक्षि-दम्पति में और लता-विटप आदि सबमें पारस्परिक आकर्षण का अनुभव करता है, प्रकृति उसको उल्लास से पूर्ण प्रतीत होती है, नदी उसे प्रिय-मिलन के लिये उमंग में जाती हुई दृष्टिगोचर होती है, विटप अपनी प्रेयसी लताओं का आलिंगन करते से प्रतीत होते हैं और पक्षिगण परस्पर विहार में संलग्न दिखाई देते हैं। सारांश यह है कि समस्त जड़ और चेतन प्रकृति

१ बिहारी बोधिनी दोहा ५९१।

उसे प्रेम, आनन्द, सुख और उल्लास से पूर्ण प्रतीत होती है। प्रकृति के अचेतन तत्वों में भी इस प्रकार की सजीवता और मधुरता का अवलोकन करने के पश्चात् जब वह अपनी प्रेयसी की ओर दृष्टिपात करता है तो वह उसमें एक प्रकार के नवीन सौन्दर्य, आकर्षण और सरसता का अनुभव करता है। इस प्रकार प्रेयसी के सामीप्य द्वारा उद्भूत मन की प्रसन्नता को प्रकृति का रमणीक वातावरण द्विगुणित कर देता है, उसको वसन्त की चाँदनी में बैठी हुई नायिका की छवि और अधिक मुग्ध कर देती है—

चाँदनी महल बैठी चाँदनी के कौतुक कौं,
चाँदनी सी राधा बिछी चाँदनी विशाल है।
चन्द्र की कला सी देवता सी देवदासी,
सग फूल से दुकूल पैन्हैं फूलन की माल है।
फूटत फुहारे वे अमल-जल झलकत,
चमकै चँदोवा मणि माणिक महाल है।
बीच जरतारन की हीरन की जगमगी,
ज्योतिन की मोतिन की झालरै।[1]

इस प्रकार प्रकृति का सुखद वातावरण प्रेमी-प्रेमिका के मन को प्रभावित करता है और उनके मिलन को और भी अधिक सुखद बना देता है। उनके मन के उल्लास की प्रकृति सहायिका बन जाती है।

मनुष्य अपनी मनःस्थिति के अनुसार प्रकृति में हर्ष और रुदन का अनुभव करता है। मन की स्थिति ठीक न होने पर कोकिल की कूक व्यग्र बनाती गुलाब का पूर्ण-विकसित-पुष्प अगारे के समान प्रतीत होता और चाँदनी सर्पिणी सी लगती है किन्तु प्रिय-मिलन के पश्चात् अनुकूल परिस्थिति होने पर प्रकृति में नवीन छटा और अनुपम सौन्दर्य का अनुभव होता है।

।और भांति कुंजन में गुंजरत भौंर भीर, और डौर झौरन में बौरन के ह्वैगये।
कहै पद्माकर सु औरै भाँति गलियान छलिया छबीले छैल और छवि छ्वैगये
और भाँति बिहंग समाज में आवाज होत ऐसे ऋतुराज के आज दिन द्वै गये।
औरि रस औरै रीति औरै राग औरै रग औरै तन औरै मन औरै बन ह्वैगये।[2]

इसमें प्रेमी-प्रेमिका को मधुर-मिलन के पश्चात् प्रकृति में भी और ही प्रकार का वातावरण परिलक्षित होता है। मिलन के पूर्व भ्रमर-गुंजन, बौरों से लदी

१ देव सुख सागर तरङ्ग ११९।

२ पद्माकर पंचामृत जगद्विनोद २७९।

तरु शाखायें, कुंज-गली और पक्षि-समूह का मधुर-गान विरही का संहार करता था किन्तु मन में और भाव के आ जाने पर समस्त प्रकृति भी और ही भाँति की प्रतीत होती है। प्रेमिका का मन संयोग सुख से प्रभावित है उसके मन में उत्साह है अतः उसे सर्वत्र आनन्द और माधुर्य का ही अनुभव हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन का उल्लास और प्रकृति का सौन्दर्य बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव से एक दूसरे की अभिवृद्धि करते हैं। प्रकृति को उल्लसित देखकर मन और भी अधिक उल्लसित होता है और मन के उल्लास में प्रकृति में भी अधिक उल्लास दिखाई देता है, इस प्रकार प्रकृति और मन का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त प्रकृति शारीरिक सुख का भी साधन है वह संयोग में ऐन्द्रिय सुख प्रदान करती है। रूप, रस, गंध, स्पर्श द्वारा क्रमशः नेत्र, जिह्वा, नासिका और त्वचा आदि इन्द्रियों को सुख प्राप्त होता है। एक सुन्दर प्रफुल्लित पुष्प को देखकर नेत्रों को सुख मिलता है, उसकी सुगंधि नासिका को सुवासित करती है। पेय पदार्थों में प्राकृतिक फलादि का प्रयोग, रस की परितृप्ति करता हुआ जिह्वा को अभितृप्त करता है प्रकृति का शारीरिक उपभोग भी प्रेमी-प्रेमिका के पारस्परिक आकर्षण, आनन्द और सुख की अभिवृद्धि करता है। ग्रीष्म ऋतु में जब प्रचंड सूर्य की किरणें समस्त पृथ्वी को झुलसा देती हैं, उष्ण-वात जब शरीर में ज्वाला सी उत्पन्न कर देती है तो निर्झरिणी के शीतल जल में स्नान और चन्दन, खस आदि शीतोपचार शरीर को शीतलता प्रदान करते हैं और प्रेमी और प्रेमिका के पारस्परिक प्रेम को बढ़ाते हैं। रीतिकालीन कवियों ने इसी दृष्टि से जलक्रीड़ा और खसखानों आदि का प्रचुर मात्रा में वर्णन किया है—

शीतल महल महा शीतल पटीर पंक शीतल कै लिपी भिति भीति छाती हहरै।
शीतल सलिल भरे शीतल विमल कुंड शीतल अमल जल यंत्र धारा छहरै।
शीतल बिछौननि पै शीतल बिछाई सेज शीतल दुकूल पहिरि पौढ़ें हैं दुपहरैं,
देव दोऊ शीतल अलिंगन देत लेत शीतल सुगंध मन्द मारुत की लहरैं।[1]

इसमें कवि देव ने प्रचंड ग्रीष्म-ऋतु में प्रेमी प्रेमिका को शीतल महलों में विहार करते हुए वर्णन किया है। शीतल-जल, शीतल पवन और शीतल-

१ देव सुखसागर तरंग १४२।

शैया दोनों को ऐन्द्रिय-सुख प्रदान करते हैं और दोनों में पारस्परिक-आकर्षण और प्रेम बढता है। शारीरिक सुख मन की सुप्त भावनाओं को जगाता है।

वर्षा-ऋतु में जल की नन्ही-नन्ही बूँदें और श्याम-घटायें झूले की याद दिलाती हैं। प्रेमी-प्रेमिका झूले पर झूलते हैं और आनन्दित होते हैं। शरद में रात्रि-विहार एक नवीन सुख की सृष्टि करता है और वसन्त में वन-विहार दोनो को प्रफुल्लित करता है। फाग खेलते हुए प्रेमी-प्रेमिका का वर्णन देखिये :—

> या अनुराग की फाग लखौन जह रागती राग किशोर किशोरी।
> त्यों पदमाकर घाली धली फिर लाल ही लाल गुलाब की झोरी।
> जैसी की तैसी रही पिचकी करि काहू न केसरि रंग में बोरी।
> गोरिन के रंग भीजिगो सांवरो सांवरे के रग सु भीजी सु गोरी।[1]

फाग खेलते-खेलते दोनों में इतना अधिक प्रेम उमड़ता है कि पिचकारी छोड़ना ही भूल जाते हैं शरीर में रोमांच हो जाता है, गात पुलकित हो जाते हैं और स्वेद प्रवाहित होने लगता है। पिचकारी का रग तो ज्यों का त्यों रहता है किन्तु दोनों एक दूसरे के प्रेम-रंग में सिक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्दीपन में प्रकृति का अपना महत्व नहीं है संयोग अथवा वियोग दोनों अवस्थाओं में प्रकृति का एक ही उपयोग है— मनोगत भावों को उद्दीप्त करना। प्रकृति का इस रूप में उपयोग आदि कवि से लेकर अब तक इसी धारणा से किया गया है, अतः उसका रूप भी प्रायः एक सा ही मिलता है सभी में वस्तु-परिगणन की प्रधानता है और काव्य-सामग्री भी समान ही है।

अलंकार—

सौन्दर्य सभी के हृदय में चेतनता और स्फूर्ति का संचार कर देता है। अबोध शिशु भी ताम्र-खंडों की अपेक्षा रजत के चमकते हुए टुकड़ों की ही ओर अधिक आकर्षित होता है। मानव प्रकृति ही सौन्दर्योन्मुखी है। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मनुष्य में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। सौन्दर्यानुभूति से प्रभावान्वित मानव अभिव्यक्तीकरण के लिए व्याकुल हो जाता है। वह अपनी सौन्दर्य-भावना को इस प्रकार व्यक्त करना चाहता है कि अन्य व्यक्ति भी केवल श्रवण-मात्र से उस सौन्दर्य का अनुभव कर सके। अपनी इस सौन्दर्यमयी-अभिव्यक्ति के लिए उसको विशेष उपकरणों की सहायता पड़

---

१ जगद्विनोद १९० ।

तरु-शाखाएँ, कुंज-गली और पक्षि-समूह का मधुर-गान विरक्ति का संचार करता था किन्तु मन के और भाव के हो जाने पर समस्त प्रकृति भी और ही भाँति की प्रतीत होती है। गोपिका का मन संयोग सुख से प्रभावित है उसके मन में उत्साह है अतः उसे सर्वत्र आनन्द और माधुर्य का ही अनुभव हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन का उल्लास और प्रकृति का सौन्दर्य बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव से एक दूसरे की अभिवृद्धि करते हैं। प्रकृति को उल्लसित देखकर मन और भी अधिक उल्लसित होता है और मन के उल्लास में प्रकृति में भी अधिक उल्लास दिखाई देता है, इस प्रकार प्रकृति और मन का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त प्रकृति शारीरिक सुख का भी साधन है यह संयोग में ऐन्द्रिय सुख प्रदान करती है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श द्वारा क्रमशः नेत्र, जिह्वा, नासिका और त्वचा आदि इन्द्रियों को सुख प्राप्त होता है। एक सुन्दर प्रफुल्लित पुष्प को देखकर नेत्रों को सुख मिलता है, उसकी सुरभि नासिका को सुवासित करती है। पेय पदार्थों में प्राकृतिक फलादि का प्रयोग, रस की परितृप्ति करता हुआ जिह्वा को अभितृप्त करता है प्रकृति का शारीरिक उपयोग भी प्रेमी-प्रेमिका के पारस्परिक आकर्षण, आनन्द और सुख की अभिवृद्धि करता है। ग्रीष्म ऋतु में जब प्रचंड सूर्य की किरणें समस्त पृथ्वी को झुलसा देती हैं, उष्ण-वात जब शरीर में ज्वाला सी उत्पन्न कर देती है तो निर्झरिणी के शीतल जल में स्नान और चन्दन, खस आदि शीतोपचार शरीर को शीतलता प्रदान करते हैं और प्रेमी और प्रेमिका के पारस्परिक-प्रेम को बढ़ाते हैं। रीति कालीन कवियों ने इसी दृष्टि से जलक्रीड़ा और खसखानों आदि का प्रचुर मात्रा में वर्णन किया है —

शीतल महल मध्य शीतल पटीर पंक शीतल कै लिपी भिति छिति छाती दहरै।
शीतल सलिल भरे शीतल विमल कुंड शीतल अमल जल यंत्र धारा छहरै।
शीतल बिछौननि पै शीतल बिछाई सेज शीतल कुसुम पौन्ह पौढ़े हैं दुपहरैं,
देव दोऊ शीतल अलिंगन देत लेत शीतल सुगंध मन्द मारुत की लहरैं।[1]

इसमें कवि देव ने प्रचंड ग्रीष्म ऋतु में प्रेमी प्रेमिका को शीतल महलों में विहार करते हुए वर्णन किया है। शीतल-जल, शीतल पवन और शीतल

१ देव सुखसागर तरङ्ग १४१।

शैया दोनों को ऐन्द्रिय-सुख प्रदान करते हैं और दोनों में पारस्परिक-आकर्षण और प्रेम बढ़ता है। शारीरिक सुख मन की सुप्त-भावनाओं को जगाता है।

वर्षा-ऋतु में जल की नन्ही नन्ही बूँदें और श्याम-घटायें झूले की याद दिलाती हैं। प्रेमी-प्रेमिका झूले पर झूलते हैं और आनन्दित होते हैं। शरद में रात्रि विहार एक नवीन सुख की सृष्टि करता है और वसन्त में वन-विहार दोनों को प्रफुल्लित करता है। फाग खेलते हुए प्रेमी-प्रेमिका का वर्णन देखिये :—

> या अनुराग की फाग लखौन जंह रागती राग किशोर किशोरी।
> त्यों पदमाकर धाली घली फिर लाल ही लाल गुलाब की झोरी।
> जैसी की तैसी रही पिचकी करि काहू न केसरि रग में बोरी।
> गोरिन के रग भीजिगो सांवरो सावरे के रग सु भीजी सु गोरी।[1]

फाग खेलते-खेलते दोनों में इतना अधिक प्रेम उमडता है कि पिचकारी छोड़ना ही भूल जाते हैं शरीर में रोमाँच हो जाता है, गात पुलकित हो जाते हैं और स्वेद प्रवाहित होने लगता है। पिचकारी का रंग तो ज्यों का त्यों रहता है किन्तु दोनों एक दूसरे के प्रेम-रंग में सिक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्दीपन में प्रकृति का अपना महत्व नहीं है संयोग अथवा वियोग दोनों अवस्थाओं में प्रकृति का एक ही उपयोग है—मनोगत भावों को उद्दीप्त करना। प्रकृति का इस रूप में उपयोग आदि कवि से लेकर अब तक इसी धारणा से किया गया है, अतः उसका रूप भी प्रायः एक सा ही मिलता है सभी में वस्तु-परिगणन की प्रधानता है और काव्य-सामग्री भी समान ही है।

अलंकार—

सौन्दर्य सभी के हृदय में चेतनता और स्फूर्ति का सञ्चार कर देता है। अबोध शिशु भी ताम्र-खंडों की अपेक्षा रजत के चमकते हुए टुकड़ों की ही ओर अधिक आकर्षित होता है। मानव प्रकृति ही सौन्दर्योन्मुखी है। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मनुष्य में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। सौन्दर्यानुभूति से प्रभावान्वित मानव अभिव्यक्तीकरण के लिए व्याकुल हो जाता है। वह अपनी सौन्दर्य-भावना को इस प्रकार व्यक्त करना चाहता है कि अन्य व्यक्ति भी केवल श्रवण-मात्र से उस सौन्दर्य का अनुभव कर सके। अपनी इस सौन्दर्यमयी-अभिव्यक्ति के लिए उसको विशेष उपकरणों की सहायता पड़

---

१ जगद्विनोद २९०।

जाती है। उसका अनुभूति पूर्ण हृदय रस-सिक्त तो होता ही है किन्तु उस रस सिक्त हृदय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये उसे अलंकारों और शब्द शक्तियों का सहारा लेना पड़ता है। संस्कृत के आचार्यों ने काव्य में अलंकारों का बहुत महत्व माना है और अलंकारों को काव्य का अनिवार्य अंग कहा है। आचार्य दंडी ने अपने काव्यादर्श में "काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते" [काव्यादर्श २, ११] अर्थात् काव्य की शोभा करने वाले धर्मों को अलंकार कहा है। चन्द्रालोककार ने तो अलंकार-रहित काव्य को उष्णता रहित अग्नि के समान असम्भव रचना कहा है, अलंकार-रहित रचना को काव्य कहने वालों की भर्त्सना करते हुए वह कहते हैं—

> अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
> असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती।

चन्द्रालोककार ने तो इस प्रकार अलंकारों को ही काव्य का प्राण कह डाला है। अग्नि की वास्तविकता उष्णता में ही है। यदि अलंकार अग्नि की उष्णता के समान महत्वपूर्ण हैं तब तो अलंकार काव्य के प्राण ही हैं। अग्नि-पुराण में अलंकारों को इतना अधिक महत्व तो नहीं दिया है किन्तु काव्य की रसमयता और आनन्द वर्धन का उपकरण अवश्य माना है। अग्नि पुराण में लिखा है—'अर्थालंकाररहिता विधवेव सरस्वती' जिस प्रकार विधवा नारी का जीवन माधुर्य और आह्लाद रहित होता है उसी प्रकार अलंकार रहित रचना भी आह्लादरहित होती है अर्थात् रस का संचार नहीं करती। अलंकारों से युक्त रचना प्रेमगर्विता सौभाग्यवती नारी के समान होती है।

भामह का कथन है "न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्" अर्थात् भूषण बिना स्त्री का सुन्दर मुख भी शोभा नहीं देता। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो सुन्दर मुख बिना आभूषण के अशोभन भी नहीं प्रतीत होता। बिहारी ने तो आभूषणों को "दरपन के से मोरचे" कहकर उनकी अनावश्यकता प्रदर्शित की है किन्तु यह बात माननी पड़ेगी कि आभूषण सौन्दर्य के अनिवार्य अंग न होकर भी रूपच्छटा की सौन्दर्य-वृद्धि के उपकरण अवश्य हैं। शब्द और अर्थ के चमत्कार से पूर्ण अलंकार कविता-सुन्दरी की शोभा को द्विगुणित कर देते हैं। काव्य में अलंकार मन पर पड़ने वाले प्रभाव को तीव्रता प्रदान करते हैं, साधारण वाक्य-रचना की

अपेक्षा आलंकारिक-भाषा और शब्द-शक्तियों से पूर्ण कविता अधिक प्रभावशालिनी होती है। तुलसीदास के निम्नलिखित दोहे में—

लता भवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ। [1]

एक साधारण सी बात का कथन है कि लता-भवन से राम-लक्ष्मण दोनों भाई निकले किन्तु श्याम मेघ-मालाओं को विदीर्ण करके उदित होने वाले मयंक की उत्प्रेक्षा ने दोनों भाइयों के सौन्दर्य के प्रभाव में एक विचित्र तीव्रता और रमणीयता का प्रादुर्भाव कर दिया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है "भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति का नाम अलंकार है।" वास्तव में जब कवि को भिन्न-भिन्न प्रकार से सौन्दर्याभिव्यक्ति करने पर परितृप्ति नहीं होती तो वह अपने हृदय के उत्साह और ओज को अलकारों द्वारा प्रकट करता है। वह उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक द्वारा अपने प्रतिपाद्य विषय में सौन्दर्य लाने के लिये सारी सृष्टि को छान डालता है। वह निशापति की कलित-किरणों में सुन्दर मुख की सी शीतलता प्राप्त करता है, मृग-शावकों के नेत्रों में प्रिय के नेत्रों की सी सरलता का अनुभव करता है और मदमत्त हाथी की मथर गति में प्रिय की गति का साम्य देखता है। अनादि काल से ही प्रकृति और मानव का साहचर्य होने के कारण कवि प्रायः सौन्दर्य के सभी उपमान प्रकृति के क्षेत्र से ही ढूंढता रहा है। इस प्रकार कवि जड़ और चेतन, प्रकृति और मानव में साम्य उत्पन्न कर देता है और प्राकृतिक वस्तुओं को चेतन-मानव के शरीरांगों का उपमान बनने के कारण विशेष महत्व मिल जाता है।

कवियों ने सारे मुख की उपमा शशि और कमल से दी है। अंग्रेजी के कवियों ने भी [मून] को सुन्दर मुख का उपमान माना है। सुन्दर मुख की विशिष्टता कान्ति और प्रफुल्लता है। मुख चन्द्र और कमल में प्रभाव साम्य होने के कारण आल्हाद प्राप्त होता है। आदि कवि से लेकर आधुनिक काल के कवियों तक सब ने इन्ही उपमानों का प्रयोग किया है, किन्तु कविवर प्रसाद ने अत्यन्त आकर्षक एवं नवीन ढंग में श्रद्धा के मुख को रवि-मंडल के समान वर्णन किया है—

१ रामचरित मानस बालकांड दोहा २६५।

आह ! वह मुख पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घनश्याम ।
अरुण रवि मण्डल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम । कामायनी पृ० ४२

केशों का सौन्दर्य उनकी कुटिलता, श्यामता, दीर्घता और सुकुमारता में है । तुलसी और सूर आदि श्रेष्ठ कवियों ने केशजाल की उपमा मधुपगन से दी है 'प्रसाद' ने श्रद्धा के बालों को 'नील घन शावक' से वर्णन किया है । 'पन्त' ने मृणाल तन्तु, मेघ, रेशम, लहर तथा अन्धकार आदि उपमानों का प्रयोग किया है देखिये : -

बने लहरें रेशम के बाल,
मलिन्दों से उलझी गुंजार,
मृणालों से मृदु तार,
मेघ से सन्ध्या का संसार,
मिले हैं इन्हें विविध उपहार
तरुण तम से विस्तार । पल्लविनी पृष्ठ ५७

चोटी अथवा वेणी को सर्पिणी के समान वर्णन किया गया है ।

मुख के सौन्दर्य में सबसे अधिक प्रधानता नेत्रों को दी जाती है । नेत्रों के श्यामता, चंचलता, स्निग्धता और सरलता आदि विशिष्ट गुण हैं । इनके उपमान खंजन, मीन, कमल, सारंग, और मृग हैं । अपनी प्रिया शकुन्तला के नेत्रों और मृग-शावकों के नेत्रों के एक ही प्रकार के भोलेपन से दुष्यन्त इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि वह मृगों पर बाण चलाने में असमर्थ हो जाते हैं और फिर यही कहना पड़ता है

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु ।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः ॥[1]

[जिन हरिणों ने शकुन्तला के साथ रहकर उसे भोली चितवन सिखाई है उन्हें मारने के लिये यह बाण चढ़ाया हुआ धनुष मुझ से खींचते नहीं बनता ।]

नासिका के लिये प्रायः कीर का ही प्रयोग किया गया है, अधर का सादृश्य प्रायः बिम्बाफल और पल्लव द्वारा व्यक्त किया गया है । दन्त-पंक्ति

१. अभिज्ञान शकुन्तला अं० २ श्लोक ३ ।

के उपमान दाड़िम, मुक्ता, कुन्दकली और तारकावली हैं और उनकी द्युति को विद्युत के समान उल्लेख किया गया है, वाणी के माधुर्य का सादृश्य कोकिल के कल कूजन और हंस की ध्वनि के समान व्यक्त किया गया है।

स्त्री की भुजाओं के सौंदर्य के लिये उनका पतली और कोमल होना आवश्यक है। कुमार सम्भव में कालिदास ने पार्वती की भुजाओं को शिरस के पुष्पों से भी अधिक कोमल वर्णन किया है। पुरुष की भुजाओं को दीर्घ, पुष्ट तथा मांसल होना चाहिये। तुलसी ने श्रीराम की भुजाओं को यष्टि, दण्ड और कमल-नाल के समान उल्लेख किया है। कंधों की पुष्टता और बाहुओं की विशालता का दिग्दर्शन कराने के लिये रघुवंश में दिलीप को 'वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः' कहकर वृषभ और शालवृक्ष से सादृश्य दिखाया गया है। हाथों और पावों के उपमान कमल और पल्लव हैं, जंघाओं के लिये कदली-स्तम्भ और हाथी की सूँड आदि उपमानों का प्रयोग किया गया है। कटि का सिंह की कटि के समान होना सुन्दरता का द्योतक है, समस्त शरीर के लिये ज्योत्स्ना, विद्युत-छटा, दीप-शिखा, शाल-वृक्ष तथा तमाल आदि उपमानों को प्रयुक्त किया गया है।

उपर्युक्त उपमानों को ध्यान में रखते हुए विदित होता है कि सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए मानव ने सबसे पूर्व प्रकृति के ही उपकरणों का चयन किया है। जहाँ कहीं भी मनुष्य को प्रकृति के तत्व में रूप, गुण अथवा भाव का साम्य प्रतीत हुआ है वहीं उसने उस तत्व का अपने प्रिय के अंग के साथ सादृश्य दिखा दिया है। अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये कभी काव्यकार को प्रकृति और मानव को एक-रूप मानना पड़ा है, कभी अपने प्रिय के समान सौन्दर्य प्राप्त न होने पर प्रकृति के प्रति असन्तोष प्रकट करना पड़ा है और कभी प्रिय के अंग-प्रत्यङ्गों को उपमानों से अधिक सुन्दर कहना पड़ा है। इन्हीं भावनाओं के परिणामस्वरूप उपमा, रूपक, प्रतीप और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का सृजन हुआ है।

उपमालंकार में उपमेय और उपमान में रूप अथवा गुण का साम्य दिखाया जाता है। संस्कृत में कालिदास की उपमायें सबसे अधिक महत्व-पूर्ण हैं। पार्वती के मुख को सर्वदा कमल के समान प्रफुल्लित और चन्द्र के समान कान्तियुक्त दिखाने के लिये उन्होंने किस कौशल से वर्णन किया है :—

चन्द्रंगता पद्मगुणान्नभुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।
उमा मुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥[1]

[पार्वती के जन्म से पूर्व चंचल शोभा वाली लक्ष्मी बड़ी दुविधा में रहती थी क्योंकि रात में चन्द्रमा रहने पर उन्हें कमल का आनन्द नहीं मिल पाता था और दिन में कमल में आ बसने पर चन्द्रमा का आनन्द नहीं प्राप्त होता था किन्तु जब से वह चन्द्र और कमल दोनों के गुणों से युक्त पार्वती के मुख में आ बसी है तब से उन्हें चन्द्र और कमल दोनों का आनन्द एक साथ मिलने लगा है ।]

सुन्दर शरीर के लिये कवियों ने विद्युत को उपमान माना है । नीले बादलों के बीच में कभी-कभी प्रकट होने वाली विद्युच्छटा मानव हृदय में अद्भुत सौन्दर्य का संचार कर देती है, इस दृश्य को बार-बार देखने के लिये इच्छा होती है, विद्युत की क्षणिक शोभा हृदय पटल पर एक सुन्दर चित्र अंकित कर देती है । "प्रसाद" का श्रद्धा का सौन्दर्य वर्णन देखिये—

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ बन बीच गुलाबी रंग ॥
। कामायनी पृष्ठ ४२ ।

इसमें नील वस्त्रों से आवृत्त और कान्तिमयी श्रद्धा का कवि ने ऐसा चित्रांकन किया है कि श्याम मेघों में प्रकाशित बिजली से साम्य स्थापित हो जाता है ।

रूपकालंकार में उपमेय और उपमान को एक रूप मान लिया जाता है । काव्यकार को केवल "यह इसके समान है" कहकर सन्तोष नहीं होता । अतः वह उपमेय और उपमान में एक रूपता का आरोप करता है । इस अलंकार को तुलसी और सूर ने बहुत अधिक अपनाया है । भक्ति-भावना से ओत-प्रोत तुलसी स्वयं में चातक की प्रेम-मग्नता का आरोप करके राम-शरीर-रूप जलद से छवि-रूप जल की याचना करते हैं—

तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक दास ।
बपुष बारिद बरषि छवि-जल हरहु लोचन प्यास ॥
। तुलसी गीतावली बालकाण्ड ४० ।

---

१ कालिदास कुमार संभव १।४३ ।

इसी प्रकार सूर अपने बाल-कृष्ण को सुन्दरता के सागर का रूप प्रदान करते हैं।

देखो माई सुन्दरता को सागर।
तनु अति स्याम अगाध अम्बुनिधि कटि-पट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक-रुचि उपजत भँवर परत अग-अंग ॥[1]

कृष्ण का कृष्ण-शरीर सागर के अगाध-जल, पीताम्बर तरंग और चितवनभँवर-जाल का रूप धारण करती है।

कभी-कभी काव्यकार उपमेय की उपमान रूप में सभावना कर लेता है। कवि जानता है कि उपमेय और उपमान दो भिन्न वस्तुएँ हैं, किन्तु तो भी वह उपमेय को प्रधानता देने के लिये बलपूर्वक उपमान की सम्भावना कर लेता है। वह 'मानो' वाचक द्वारा उपमेय और उपमान में पृथकता का अनुभव कराता हुआ साम्य स्थापित करता है। तुलसी, सूर और रीति-कालीन कवियों के काव्य-ग्रन्थों में इस प्रकार के उत्प्रेक्षालंकार भरे पड़े हैं, संस्कृत के कवियों ने भी इसका प्रचुर-मात्रा में प्रयोग किया है। अपने उपास्य की बाल-छवि का वर्णन करते हुए सूर के उत्प्रेक्षालंकार की सुन्दर व्यंजना देखिये—

अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन-मोहन मुख बगराई।
मानो प्रगट कज पर मंजुल अलि अवली घिरि आई ॥
सूर-पञ्चरत्न बालकृष्ण ३४

यहाँ पर मुख पर बिखरे हुए चिकुर-जाल को, कवि ने कमल पुष्प पर गुंजार करते हुए अलि समूह मान लिया है और मुख में कमल तथा केशों में भ्रमर की सम्भावना करली है।

अपने प्रिय के रूप से अत्यधिक प्रभावित कवि केवल उपमान के ही वर्णन से उपमेय के अंगों का रूप-वर्णन कर देता है, इस प्रकार की रूपकातिशयोक्ति की निम्न पंक्तियों में कितनी सुन्दर व्यञ्जना है—

जब मोहन मुरली अधर धरी।
दुरि गये कीर कपोत मधुप पिक सारंग सुधि बिसरी।
उड़पति, बिद्रुम, बिम्ब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी।
: सूर-पंचरत्न मुरली-माधुरी १३ ॥

१ सूर पञ्चरत्न रूप माधुरी १।

इसमें उपमेय के सुन्दर अंग, नासिका, ग्रीवा, मधुर-स्वर, श्याम शरीर, दंत-पंक्ति, अधर और शरीर की कांति के लिये कीर, कपोत, मधुप, पिक, उडुपति, विद्रुम, बिम्बाफल और विद्युत आदि प्रचलित उपमानों का क्रमशः वर्णन किया है और साथ ही 'दुरि गए' 'दुमि सिरानी' 'लिरानी' और 'डरो' आदि शब्दों में उपमानों के सौन्दर्य में अपकर्ष दिखाकर उपमेय के महत्व को दिखाते हुए प्रतीपालंकार की भी सृष्टि करदी है।

प्रतीपालंकार में काव्यकार अपने प्रियकी रूप छटा से इतना अधिक प्रभावित होताहै कि प्रचलित उपमान से उपमेय का सादृश्य दिखाकर उसे संतुष्टि नहीं होती, अन्त में उसे यही कहना पड़ता है—

लोचन विसाल लाल अधर प्रवाल हूँ ते
चन्द ते अधिक मन्द हास की निकाई है १

कवि मुख और अधर के प्रचलित उपमान चन्द्र और प्रवाल में इतने अधिक सौन्दर्य का अनुभव नहीं करता जितना नायिका के मुख और अधर में। उपमान के वर्णन द्वारा कवि ने उपमेय की सुन्दरता का यत्किंचित आभास मात्र दे दिया है। कभी, कवि अपने प्रिय के उपमान का वर्णन करके उसे सदोष ठहराकर संकोच में पड़ जाता है:—

राम रावरे बदन की सरवरि करत मयंक।
ते कवि जन झूठे भगत लखि मलीन सकलंक।

कवि को अपने प्रिय राम की समानता में चन्द्रमा अनुपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि चन्द्र मलीन हो जाता है और सकलंक है किन्तु राम का मुख तो सदा ही प्रफुल्लित रहता है।

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों में यद्यपि मानव और प्रकृति में सामंजस्य स्थापित किया जाता है तथापि प्रकृति का ही महत्व अधिक प्रदर्शित होता है किन्तु प्रतीपालंकार में प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य का महत्व अधिक हो जाता है, प्रकृति को मानव से हार माननी पड़ती है।

अतिशयोक्ति, अन्योक्ति और अपन्हुति आदि अलंकारों में भी मानव का प्रकृति से साम्य दिखाया जाता है किन्तु काव्य ग्रन्थों में उपर्युक्त अलंकारों का ही अधिकतः वर्णन प्राप्त होता है अतः इन्हीं का यहाँ पर दिग्दर्शन कराया गया है।

१—सेनापति कवित्त रत्नाकर दूसरी तरंग २१।

प्रकृति का प्रतीक रूप में भी प्रयोग किया गया है। प्रतीक के अर्थ हैं [symbol] चिन्ह। हिन्दी काव्य में न्याय और सरलता का प्रतीक हंस है। निर्मलता एवं पवित्रता की द्योतक चन्द्रिका को ठहराया है और दुःख तथा सुख के प्रतीक अंधकार और चाँदनी हैं। कहीं बड़े-बड़े प्रकृति चित्रों का अलंकार रूप में प्रयोग होता है। अंग्रेजी में होमर की उपमायें इसी प्रकार की हैं। हिन्दी में यह प्रवृत्ति सूर, तुलसी और प्रसाद में बहुत है। एक प्राकृतिक दृश्य को लेकर साँग उपमा या रूपक अलकार में उपमेय के साथ सादृश्य दिखा देते हैं। गगन-मंडल में श्याम-घटा, इन्द्र-धनुष और विद्युच्छटा को देखकर अन्ध कवि सूरदास की वाणी से अपने प्रिय घनश्याम की रूप गरिमा की स्रोतस्विनी बहने लगती है। प्रकृति के सुन्दर दृश्य में वह अपने उपास्य की रूप-सुधा का पान करते हैं—

आज घनश्याम की अनुहारि।
उनै आए साँवरे तें सजनी, देखि रूप की आरि।
इन्द्र धनुष मनो नवल वसन छबि, दामिनि दसन विचारि।
जनु बग पाँति माल मोतिन की चितवत हितहि निहारि।

सूर की गोपियों को नील-घन कृष्ण के श्याम-शरीर, इन्द्र-धनुष पीताम्बर, दामिनी दसन-द्युति और बक-पंक्ति कृष्ण की मुक्तामाला के समान प्रतीत होती है, प्रकृति का सम्पूर्ण दृश्य कृष्ण-रूप में हो जाता है। उपर्युक्त प्रकृतिचित्र गोपियों के भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में भी सहायक है। प्रसाद ने भी श्याम मेघों से झाँकते हुए संध्याकालीन सूर्य का इसी प्रकार श्रद्धा के मुख से सादृश्य दिखाया है।

हमारे साहित्य में इसी से मिलती जुलती एक और प्रवृत्ति है[1]। इसमें प्रकृति का अलकार-कोश रूप-वर्णन में तो प्रयोग नहीं किया जाता वरन् प्रकृति के चित्रों पर अलकार लाद दिये जाते हैं। इस प्रकार का प्रकृति-वर्णन स्वतंत्र भावना-परक न होकर रूढ़ और अलकार-आक्रान्त होता है। भारतेन्दु का काशी में गंगा-वर्णन, रत्नाकर का गंगावतरण और प० श्रीधर पाठक की काश्मीर सुषमा में हमें यही प्रवृत्ति लक्षित होती है, उदाहरणार्थ प्रसग नीचे दिए जाते हैं—

नव उज्वल जल धार हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति।

---

१ भ्रमर गीत : सूर पंच रत्न : पद ८९

लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत।

× × × ×

सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत।

: भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ४३६।

इसमें भारतेन्दु जी ने गङ्गा की शोभा का वर्णन किया है, किन्तु यहाँ पर गङ्गा के जल, छहराती हुई बूँदों और चपल तरंगों का इतना अधिक महत्व नहीं प्रतीत होता जितना मनुष्य के विविध मनोरथों और सुन्दरियों के शशि मुखों का। गङ्गा का वर्णन गौण हो जाता है ऐसा प्रतीत होता है कि केवल उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की छटा दिखाने के ही लिये कवि ने गङ्गा का वर्णन किया है।

अब रत्नाकर के गङ्गावतरण में अलंकार-भाराक्रान्त कविता सुन्दरी की विवशता देखिये,

बिपुल बेग सौं धमकु आवै जौ धावति,
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरकति हिं भारति।
फटिक सिला के बर बिसाल मन बिस्मय बोहत,
मनहु बिसद छद अनाधार अम्बर में सोहत।

गङ्गावतरण

इस प्रकार के वर्णनों में अलंकारों की इतनी अधिक प्रधानता होती है कि काव्य सौन्दर्य दब सा जाता है। पाठक का ध्यान प्रकृति के वास्तविक तथ्य पर न जाकर विविध भाँति के अलंकारों की ही ओर आकर्षित होता है, इन वर्णनों में चमत्कार-प्रदर्शन ही अधिक मिलता है।

प्रकृति का उपमान अर्थात अलंकार-रूप में प्रयोग अप्रस्तुत रूप में होता है और प्रकृति तथा मानव के इस प्रकार के संयोग में प्रकृति का स्थान गौण होजाता है, तो भी यह मानना पड़ेगा कि काव्यकार मानव सौन्दर्य को अतिरंजित करने वाले प्राकृतिक उपादानों के प्रयोग से केवल जड़ और चेतन, प्रकृति और मानव में साम्य ही नहीं स्थापित कर देता है अपितु प्रकृति के प्रति अपने हृदय का अनुराग और उल्लास भी प्रकट करता है। जहाँ काव्यकार प्रचलित उपमानों का परम्परा युक्त प्रयोग नहीं करता वहाँ तो उसका प्रकृति के प्रति उल्लास एक अत्यन्त आकर्षक एवं मनोमुग्धकारी रूप में प्रकट होता

है। प्रसाद का 'खिला हो ज्यों बिजली का फूल' और 'नील-घन-शावक से सुकुमार' तथा गुप्त जी के 'रत्नाभरण भरे अङ्गों में ऐसे सुन्दर लगते थे ज्यों, प्रफुल्ल वल्ली पर सौ-सौ जुगुनू जग-मग करते थे' आदि प्रयोग कवि हृदय का वास्तविक प्रेम व उत्साह प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के अलंकार काव्य के अलकरण मात्र ही नहीं है वरन् कवि-हृदय की वास्तविक अनुभूति का परिचय भी देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि-हृदय छोटे-छोटे बादलों की सुकुमारता और निशीथ के अन्धकार में जगमगाते जुगनुओं की प्रभा से स्वयं प्रभावित हुआ है, उसका कवित्व वाणी-रूप में बाहर आने के लिए व्याकुल हो उठा है और कवि ने काव्य के अलङ्करण के लिये अपनी आकुल-अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस प्रकार के कवि की अनुभूति के परिचायक अलङ्कार कवित्व के साधक ही नहीं वरन् स्वयं भी कवित्वपूर्ण हो जाते हैं।

प्रकृति में मानवीकरण

प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण है। प्रकृति-विषयक दन्त-कथाओं की रचना मानव-कल्पना की अत्यन्त प्राचीन प्रवृत्ति है। अनेक पौराणिक कथाओं का प्रादुर्भाव इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। इस प्रकार की प्रवृत्ति का आरम्भ वैदिककाल से ही हो जाता है। सूर्य, चन्द्र, वायु, जल और मेघ आदि को देवत्व प्रदान करना और क्रमशः सूर्य सोम, मरुत्, वरुण, एवं इन्द्र आदि शुभ नामों से सम्बोधित करना मानवीकरण की प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं। हमारी समस्त पौराणिक कथायें इसकी आधार-भूत हैं। इस प्रकार के चित्र अङ्गरेजी की रोमांटिक कविता में मिलते हैं। हिन्दी काव्य में आधुनिक काल में ही प्रकृति के मानवी करण के दर्शन होते हैं। अङ्गरेजी में रोमांटिक काव्य के प्रभाव-स्वरूप छायावादी कविता में इस प्रकार के प्रयोग प्रचुर मात्रा में है। इस प्रकार से छायावाद की अभि-व्यंजना शैली का यह एक प्रमुख तत्व है, इसमें प्रकृति में मानव रूप, मानव गुण, मानव क्रिया, और मानव भावना आदि का आरोप किया जाता है।

प्रकृति में मानवीकरण की भावना एक प्रकार से छायावाद के ही युग की देन है पूर्ववर्ती काव्य में इस प्रकार के प्रयोग नहीं मिलते हैं यदि किसी ने कहीं मानवीकरण किया भी है तो उसमें आधुनिक काल की सी सजीवता, सुन्दरता, सरसता और माधुर्य नहीं है।

संस्कृत में महाकवि कालिदास ने मेघ को दौत्यकर्म सौंपकर मानवीकरण का आरोप किया है, किन्तु उन्होंने यक्ष द्वारा 'कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु' (कामीजन प्रकृति में चेतन अचेतन का भेद भूल जाते हैं) कहलवाकर प्रकृति और मानव को पृथक कर दिया है आधुनिक कवि 'हरिऔध' जी ने पवन द्वारा राधा का सन्देश भिजवाने के लिये मानवीकरण का ही प्रयोग किया है परन्तु फिर भी प्रकृति का मानवीकरण करने में छायावादी कवि बहुत सफल हुए हैं। कामायनी में पृथ्वी को मानवती वधू का रूप देते हुए प्रसाद जी कहते हैं।

सिन्धु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी सी।
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किये सी ऐंठी सी।

कामायनी पृ० २६

अथवा लहर में

बीती विभावरी जाग री।
अंबर पनघट में डुबो रही तारा घट ऊषा नागरी ॥ लहर पृष्ठ १६

में ऊषा के नारी रूप का कैसा सुन्दर चित्रण है। ऊषा पनघट पर पानी भरती हुई स्त्री के समान प्रतीत होती है।

निराला ने "संध्या-सुन्दरी" का बड़ा सुन्दर मानवीकरण किया है। वह परी के समान आकाश से अवतरित होती है,

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या की सुन्दरी परी सी
धीरे-धीरे-धीरे।

परिमल पृष्ठ १३५

इसी भाँति जुही की कली स्नेह-स्वप्न-मग्न प्रशान्त तरुणी सी प्रतीत होती है। "शेफालिका" को यौवन के उभार से पूर्ण युवती के समान चित्रित किया है।

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त इसी प्रकार के मानवीकरण का आरोप करते हुए अशरीरी छाया से परिचय पूछते हैं।—

कौन, कौन तुम परिहत वसना,
म्लान मना भूपतिता सी,

वात-हता विच्छिन्न लता सी,
रति श्रान्ता व्रज-वनिता सी,
नियति वञ्चिता आश्रय रहिता,
जर्जरिता पद दलिता सी,
धूल धूसरित मुक्त कुन्तला,
किसके चरणों की दासी।

पल्लविनी पृष्ठ १८

"संध्या" और चांदनी को भी पन्त ने मानव-रूप प्रदान किया है चांदनी की निम्न पंक्तियों में विचारमग्ना, एकाकिनी सुन्दरी का चित्र सा खिंच जाता है।

नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद-हासिनि,
मृदु करतल पर शशिमुख धर, नीरव, अनिमिष, एकाकिनि।

पल्लविनी पृ. ६८ः

प्रकृति को मानव का सा बाह्य आकार और रूप देने की परम्परा तो प्राचीन-काल से ही चली आरही है। इसी के आधार पर काव्यकारो ने प्रकृति में मानव-क्रिया और मानव व्यापार का भी अनुभव किया है और उसमे सुन्दरी नायिका के से हाव-भावों का अवलोकन कर अपना प्रकृति के प्रति उत्साह प्रदर्शित किया है। कवि का प्रकृति-प्रेम प्रकृति-सुन्दरी के क्रिया-कलाप तक ही सीमित नही रहता अपितु वह उसको अनुराग, क्षोभ और विषाद आदि के भावों से पूर्ण देखता है। प्रकृति के चेतन प्राणियों में तो यह रूप स्वभावतःविद्य-मान होता ही है। सतान केप्रति ममत्व हमें प्रत्येक पशु-पक्षी में लक्षित होता है। अपने स्वत्व की रक्षा के लिये क्षुब्ध होते हुये और बढ़ते हुये भी हम चेतन प्राणियों को नित्य प्रति देखते हैं। इसके अतिरिक्त इन चेतन जीवों में मानव के प्रति भी स्नेह, ममत्व और क्षोभ के भाव प्राप्त होते हैं। तुलसी ने राम के वियोग में व्याकुल घोड़ों का और सूर ने कृष्ण-विरह-व्यथिता अधिक दुखारी गायों का बर्णन किया है इस प्रकार पशु पक्षियों का पारस्परिक सम्बन्ध और इनका मानव के प्रति अनुराग स्वाभाविक है। इनके साथ मानव के भावों का आदान-प्रदान सहज सम्भव है, किन्तु प्रकृति-प्रेमी कवि अचेतन पदार्थ से भी अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। उसको समस्त प्रकृति उसके अन्तर के भावों को समझने में शक्त प्रतीत होती है। उसकी सहचरी प्रकृति उसके कष्ट में संवेदना प्रकट करती है और आनन्द में विभोर हो उठती है। वियोग-व्यग्र प्राणियों को तो प्रकृति से ही सान्त्वना प्राप्त होती है। इस प्रकार की संवेदन-

शीलता का अनुभव प्रकृति के उपासक कवियों ने किया है। आदि कवि वाल्मीकि अपने अमर काव्य में वर्णन करते हैं।

एषा धर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता।
सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥७॥[1]

जायसी प्रकृति को विरह व्यथिता नागमती के विरह-दुःख से आकुल दिखाते हैं--

तेहि दुख भये परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते॥
राते बिम्ब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूँ॥

जायसी ग्रन्थावली पृ० १८०

नागमती के वियोग दुःख से प्रकृति के अचेतन पदार्थ भी परम दुःखी हैं, पलाश-पत्र-शून्य होकर श्री-हीन हो गया है और गेहूँ का अतिशय दुःखानुभूति से हृदय विदीर्ण हो गया है, सरोवर तक का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया है।

सरवर हिया घटत नित जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई॥

प्रकृति से तादात्म्य हो जाने पर जिस प्रकार मानव को प्रकृति संवेदना प्रकट करती सी प्रतीत होती है उसी प्रकार मानव भी प्रकृति को दुःखी देख कर अपनी सहानुभूति प्रकट करता है, प्रकृति के स्वर से वह कराह उठता है, हृदय कहता है, 'आह! तू भी दुःखी है' महादेवी को पपीहे के प्रति सहानुभूति होती है, बेचारा पपीहा अहर्निश 'पिउ पिउ' की रट लगाये रहता है, किन्तु प्रिय नहीं मिलता कवयित्री पपीहे से प्रश्न करती है "वह तेरा निर्दयी प्रीतम कौन है जो तेरे प्रेम पाश में बंधकर तुझे दूर नहीं करता?"

जिसको अनुराग सा दान दिया,
उससे कण माँग लजाता नहीं।
अपनापन भूल समाधि लगा,
वह पी का विहाग भुलाता नहीं।
नभ देख पयोधर श्याम घिरा,
मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं।
वह कौन सा पी है पपीहा तेरा,
जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं।

[रश्मि पृ० ८२]

---

१ वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग २८।

मनुष्य अपनी मानसिक-अवस्था के अनुसार ही अन्य जनों के दुःख-सुख का अनुभव करता है। मानव की अपनी मनःस्थिति ही सबके हर्ष-विषाद का माप-दंड होती है। मन की अव्यवस्थित-दशा में भव्यतम दृश्य भी आकर्षक नहीं प्रतीत होते, हृदय का विषाद मिट जाने पर प्रकृति भी हँसती सी प्रतीत होती है। प्रलयंकारी-रात्रि के व्यतीत होने पर मनु को प्रभात-काल का एक नवीन और आकर्षक-रूप दिखाई देता है—

उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल-रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई।

[प्रसाद कामायनी पृ० २५]

इसके अतिरिक्त मनुष्य को प्रकृति कभी कर्तव्य-क्षेत्र में अग्रसर होने के लिये उत्साहित करती और कभी सांसारिक-विषय-वासना से विरक्त करती है। मकड़ी को बार-बार गिरकर भी प्रयास करके अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने में सफलता लाभ करते देखकर ही सम्राट एलेग्जैंडर और महाराणा प्रताप को पुनरुत्साह प्राप्त हुआ था और वे मानसिक-शैथिल्य एवं कार्पण्य को त्यागकर जय-लाभ उपलब्ध कर सके थे। प्रकृति-प्रेमी के चिन्ताकुल हृदय को शीतल समीर थपकी देती हुई, और क्षमामयी वसुन्धरा प्रेमामृत-धारा बहाती सी प्रतीत होती है। प्रकृति का एक-एक कण उसमें नवीन स्फूर्ति का संचार कर देता है। मानव, प्रकृति में भावोत्तेजना की शक्ति का अनुभव करता है।

इस प्रकार के मानवीकरण और मानवीय भावों के आरोपण को रस्किन आदि कुछ अंग्रेजी आलोचकों ने हेत्वा भास (Pathetic Fallacy) कहा है उनका कहना है कि प्रकृति जड़ है उसके सब कर्म निर्बाधगति से होते जाते हैं। मानव वेदना अथवा उसके हर्षातिरेक का निर्जीव प्रकृति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता प्रकृति में इस प्रकार का आरोपण प्रकृति का हेत्वाभास मात्र है। कालिदास ने भी इसका अनुभव किया है और यक्ष द्वारा कहलवा दिया है 'कामार्ताहि प्रकृति कृपणाश्चेतना चेतनेषु,' परन्तु हम इस प्रकार के प्रकृति वर्णन को हेत्वाभास कहकर नहीं टाल सकते, क्योंकि अनादि काल से ही प्रकृति से सहचार रहने के कारण मानव अपना कष्ट-निवेदन और भावाभिव्यंजन प्रकृति से करता रहा है और अपने उत्कट प्रेम के फलस्वरूप प्रकृति में प्रति-स्पन्दन का अनुभव करता रहा है।

उपदेश और नीति का माध्यम

मनुष्य ने प्रकृति के कार्य कलाप को अनेक रूपों में आदर्श मानकर बल, ज्ञान और सान्त्वना प्राप्त की है। प्रकृति के नियम अपेक्षाकृत कितने स्थिर और शुभ हैं, यह मानव सदा अनुमान करता रहा है और अपने जीवन के नीति नियम आदि की अस्थिरता से उसकी तुलना कर अनेक प्रकार से प्रेरणा और विचार ग्रहण करता रहा है। सर्वसहा पृथ्वी क्षमा और सहन शक्ति का आदर्श है। पर्वत चारित्रिक दृढ़ता के, पवन अनवरत सेवा-वृत्ति का और सरिता एवं वृक्ष परोपकार, मुक्तदान तथा राग द्रोह का आदर्श उपस्थित करते हैं।

प्रकृति को उपदेश और नीति के माध्यम के रूप में हम सर्व-प्रथम श्रीमद्भागवत में देखते हैं। भागवत के दशम स्कन्ध में बीसवें अध्याय में वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन है। वर्षा का वर्णन देखिए--

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः॥ २०॥१५

मार्गा बभूवुः सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव॥ २०॥१६

शरद का वर्णन देखिये

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया॥[1] २०॥३३

[२०:१५ जिनका चित्त भगवान में लगा हुआ है वे अनेक संकटों के आ पड़ने पर जैसे व्यथित नहीं होते, वैसे ही पर्वत समूह वर्षा की बड़ी बड़ी बूँदों की चोट खाकर विचलित नहीं हुए।]

[२०: १६ जिस प्रकार वेदाभ्यास के पश्चात अभ्यास छोड़ देने पर ब्राह्मण को कुछ काल पीछे पाठ में सन्देह होने लगता है उसी प्रकार जिन मार्गों से आना जाना बन्द हो गया है उन मार्गों के तृणों से ढक जाने के कारण सन्देह होता है।]

[२०: ३३ जैसे योगाभ्यास करने से भ्रष्ट योगियों के चित्त शुद्ध हो जाते हैं वैसे ही कमल उपजाने वाली शरद के फिर आने से सरोवरों के जल फिर स्थिर और निर्मल हो गये हैं।

१ श्री मद्भागवत स्कन्ध १० अध्याय २०।

हिन्दी साहित्य में तुलसी पर श्री मद्भागवत का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। वर्षा-वर्णन में तुलसी गिरि-कन्दराओं, श्याम-मेघ-घटाओं, और विद्युच्छटा की रमणीयता से इतने अधिक प्रभावित नहीं हुए हैं, जितने पर्वतों की सहनशीलता, घनश्याम-खंड की उदारता एवं विनम्रता और दामिनी की चंचलता से। उन्हें प्रकृति का प्रत्येक तत्व उपदेश देता सा प्रतीत होता है। प्रकृति उनके लिये एक गंभीर गुरु की भाँति आदर्श बन जाती है।

वरषहिं जलद भूमि नियराये, जथा नवहिं बुध विद्या पाये।
बुन्द अघात सहहिं गिरि कैसे, खल के वचन संत सह जैसे।
दामिनि दमक रही घनमाहीं, खल कै प्रीति यथा थिरु नाहीं।
[राम-चरित-मानस किष्किंधा कांड दोहा १६]

वर्षा के व्यतीत होने पर शरद ऋतु षोडश-कलामयी-ज्योत्स्ना के आवरण में इठलाती, सौन्दर्य सौरभ को विकीर्ण करती हुई विश्व के नेत्रों को शीतल करती है जब न ग्रीष्म की भाँति पथ रेणु-मंडित हैं और न वर्षा की भाँति पंक-पूर्ण। समस्त वातावरण शान्त, सुखद और स्थिर है। प्रकृति-रानी का सुस्थिर-संचालन एक प्रकार की नवीन स्फूर्ति और आनन्द का सचालन कर रहा है किन्तु महात्मा तुलसीदास प्रकृति की सौन्दर्य-विभूति के प्रति निरपेक्ष हैं, उन्हें तो केवल आध्यात्मिक-आनन्द का ही अनुभव होता है। प्रकृति के अणु-अणु में उन्हें नीति और उपदेश का आभास मिलता है। उनके लिये प्रकृति एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ आदर्श और नीति की वाटिकाएँ लहलहा रही हैं, देखिये—

रस रस सूख सरित सर पानी, ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।
पंक न रेनु सोह असि धरनी, नीति निपुण नृप कै जसि करनी।
जल संकोच विकल भई मीना, अबुध कुटुम्बी जिमि धन-हीना।[1]

इसमें सरोवर उन्हें ममता-विहीन ज्ञानी के समान प्रतीत होते हैं, पंक और रेणु-रहित धरित्री नीति-निपुण राजा के शुभ कृत्यों की परिचायिका है और जल के कम हो जाने से व्यग्र हुई मछली, धनाभाव से व्याकुल भूखे मनुष्यों के समान प्रतीत होती है। समस्त प्रकृति उनकी, उपदेशिका है।

तुलसी के पश्चात् रहीम और बृन्द ने भी नीति के दोहे लिखे। उन्होंने प्रकृति से उपमा लेकर मनुष्य की कुप्रवृत्तियों का वर्णन किया और उसके

१ किष्किंधा कांड १५।

सम्पूर्ण नीति विषयक ज्ञान रखा। मनुष्य को मर्यादा का पालन करना चाहिये, अपनी सम्पत्ति का दान करना चाहिये आदि बातों का प्रकृति के उदाहरण द्वारा आदर्श सम्मुख रखा है, रहीम के निम्नलिखित दोहों में यही भाव प्रदर्शित किया गया है

तेहि प्रमान चलिबो भलो जो सब दिन ठहराइ।
उमड़ि चलै जल पार ते, जो रहीम बढ़ि जाइ॥
रहिमन अति मत कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
अतिशय फूलै सहजनो, डार पात की हानि॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाइ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाइ॥[1]

समय पर दान करना चाहिये। नम्रों की सम्पत्ति गुणकारिणी होती है। आदि नीति विषयक, वृन्द के दोहों का भी अवलोकन कीजिये।

दीबो अवसर को भलो जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो घन को कौने काम॥८
गहै समीप [illegible] के होत नहीं हित मेल।
सबही जानत बढ़त है वृक्ष बराबर बेल॥१५[2]

गिरिधर कविराय और दीनदयाल की कुंडलियाँ भी इसी प्रकार के नीति सम्बन्धी भावों से पूर्ण हैं। इन कवियों ने अन्योक्तियों द्वारा भी प्रकृति का उपदेशात्मक रूप प्रकट किया है। प्रकृति के किसी जीव अथवा वृक्ष आदि को अपना प्रतिपाद्य विषय बनाकर उस विषय को मनुष्य के ऊपर मढ़ा दिया है।

बिहारी यद्यपि मुख्यतः श्रृंगारी कवि थे। किन्तु उन्होंने भी प्रकृति में नीति और उपदेश का अवलोकन किया है। निम्न दोहों में अन्योक्ति रूप में उपदेश का भाव प्रदर्शित किया गया है --

को छूट्यो इहिं जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत, त्यों त्यों उरझत जात॥६६४
स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि परि, तूं पंछीनु न मारि॥६६६[3]

१ रहिमन विनोद नीति शृंगार दोहा ९०, ९१।
२ कविता कौमुदी।
३ बिहारी बोधिनी।

इस प्रकार के प्रकृति के उपयोग में यद्यपि प्रकृति का स्थान गौण हो जाता है और उपदेशात्मक भावना को प्रधानता मिलती है तथापि तुलसी आदि काव्यकारों द्वारा इस प्रकार का प्रयोग खटकता नहीं है। साधारण वाक्य रचना द्वारा उपदेश न देकर इन्होंने प्रकृति को माध्यम बनाया। यह इनके प्रकृति प्रेम का परिचायक है। नीति-भावना से पूर्ण कवियों की अन्योक्तियाँ तो इनके प्रत्यक्ष निरीक्षण का भी परिचय देती हैं। बिहारी की उपरिलिखित अन्योक्ति 'को छूट्यो' से स्पष्टतः लक्षित होता है कि कवि ने जाल में पड़े हुए हरिण को मुक्त होने का प्रयास करते और अधिकाधिक उलझते हुए स्वय देखा है। मृग की विवशता को देख कर ही उनके हृदय में माया-जाल में लिप्त मानव की असमर्थता का ध्यान आया है और उनकी वाणी से यह शब्द प्रस्फुटित हो गये हैं। साराश यह है कि प्रकृति का स्थान गौण होने पर भी कवि का प्रकृति के प्रति अनुराग प्रकट होता है।

प्रकृति में परम तत्व का आभास

अब प्रकृति के प्रति रहस्यवादी दृष्टिकोण रह जाता है। रहस्यवादी प्रकृति में परम तत्व के दर्शन करता है और इस प्रकार प्रकृति विश्वात्मा के दर्शन का माध्यम बन जाती है। इस भावना का आधार है सर्ववाद। सर्ववाद के दो रूप हैं आत्मा और परमात्मा की एकता और जगत और ब्रह्म की एकता। आत्मा और परमात्मा की एकता में मनुष्य अपनी आत्मा और परम तत्व में अद्वैत भावना का अनुभव करता है, अपनी आत्मा में ही वह सर्व नियन्ता के दर्शन करता है, उसके समस्त कार्य उसी परम शक्ति की प्रेरणा से होते हैं उसका सुख दुःख, आनन्द विलास, हर्ष-विषाद आदि उसी से सम्बद्ध होते हैं। इसी अद्वैत भावना से उसके मुख से निकल पड़ता है।

"हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं, हरि न मरे हम काहेकू मरिहैं"

उसका अब परम तत्व से एकात्म हो जाता है, उसके विचार में परमात्मा अविनाशी है, अजर है, अमर है, फिर उसके ही अंश रूप आत्मा का विनाश कैसे हो सकता है? जब परमात्मा का विनाश नहीं होता तो आत्मा का विनाश भी असम्भव है इसी अद्वैत भावना की चरम सीमा पर पहुँचकर मानव अहं को भूल जाता है अपना अहं में ब्रह्म की सत्ता देखकर कहने लगता है 'अहं ब्रह्मास्मि' उसके लिये आत्मा और परमात्मा के बीच में शरीर का व्यवधान भी मिट जाता है क्योंकि उसके शरीर में व्याप्त प्राण संजीवनी-सत्ता स्वयं ही ब्रह्म का रूपान्तर है।

परमात्मा और जगत की एकता में भी यही अद्वैत भावना है। यहाँ मानव-शरीर-व्यापिनी शक्ति ही परमात्मा का अंश नहीं, अपितु समस्त जगत ही उसका अंश है। एक चेतन सत्ता सकल विश्व के जड़ और चेतन, चर और अचर, स्थावर और जंगम, सब में व्याप्त है जो समस्त सृष्टि का अस्तित्व बनाये हुए है। इस सर्ववाद की भावना से प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ चेतन है क्योंकि वह उसी परम-तत्व से अनुप्राणित होता है जो सर्वदा चेतन है जिसका आदि और अन्त नहीं है और जो संसार के सृजन, संचालन और विनाश का

स्वय ही कारण है। भावयोग की अवस्था में भावुक को इस तथ्य का सहज साक्षात्कर हो जाता है।

प्रकृति और पुरुष को एक मान लेने की भावना भारत की प्राचीन परम्परा है। वैदिककाल से ही मनुष्य ने प्रकृति में उसी परम-तत्व के दर्शन किये हैं, प्रकृति के रुद्र रूप में उसने सर्व शक्तिमान की भ्रू-भगिमा और पूर्ण-प्रफुल्लित-पुष्प में परम-तत्व की मृदु-मुस्कान का अनुभव किया है। प्रथम मानव के हृदय मे जिज्ञासा हुई, वह सूर्य की गति, ऋतुओं के परिवर्तन और दिन रात के आवर्तन को आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से देखता रहा, विचार किया, प्रश्न उठे—

क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः सविदाने।
यत्र प्रेप्स्यन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भत ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥
अथर्व वेद १०: ७: ६।

[विपरीत रूप वाले, गौर और श्याम दिन-रात कहाँ पहुँचने की अभिलापा करके जा रहे हैं ये सरिताऐं जहाँ पहुंचनेअ कीमिलाषा से चली जा रही हैं उस परम आश्रय को बताओ, वह कौन है ?

क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा।
यत् प्रेप्स्यन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं त ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥
अथर्व वेद १०: ७: ४।

[यह सूर्य किसकी अभिलापा में दीप्तिमान है ? यह पवन कहाँ पहुँचने की इच्छा से निरन्तर बहता है ? यह सब जहाँ पहुँचने की इच्छा से जा रहे हैं, उस आश्रय को बताओ, वह कौनसा पदार्थ है]

आदि-मानव ने इस जिज्ञासा के परिणामस्वरुप समस्त प्रकृति में एक ही चेतन तत्व को व्याप्त देखा, उसने परम-तत्व को एक चेतन शक्ति माना और प्रकृति को उसके अग। उसने निम्न शब्दों में उस-परम शक्ति को नमन किया,

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्नि यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ अथर्व वेद १०: ७: ३३

[सूर्य और पुनः पुनः नवीन रूप में उदित होने वाला चन्द्रमा जिसकी दो आँखें हैं, जो अग्नि को अपने मुख के समान बनाये हुए है उस परम तत्व को नमन हैं]

यस्य भूमिः प्रयान्तरिक्षमुतोदरम्॥

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ अथर्व वेद १०। ७।३२

[भूमि जिसके चरण है, अन्तरिक्ष उदर है और आकाश जिसका मस्तक है उस परम शक्ति को नमन है ।

श्री मद्भगवतगीता में भी हमको इसी सर्वात्म के दर्शन होते हैं । ११ वें अध्याय में श्रीकृष्ण के विराट रूप का दर्शन करते समय अर्जुन अपने देवाधिदेव के शरीर में अनेक प्रकार से विभक्त हुए समस्त संसार को एक रूप में विद्यमान देखता है, अर्जुन कहता है -

> अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
> पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् । ११: १९
> द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
> दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ ११ । २० ।

[जिसका आदि मध्य या अन्त नहीं है, जिसकी शक्ति अनन्त है, जिसके अनन्त बाहु हैं, जिसके सूर्य-चन्द्र रूपी नेत्र हैं, जिसका मुख प्रज्वलित अग्नि के समान है और जो अपने तेज से इस जगत को तपा रहा है ऐसे आपको मैं देख रहा हूं]

[आकाश और पृथ्वी के इस अन्तर में और समस्त दिशाओं में आप ही अकेले व्याप्त हो । हे महात्मन् आप का यह अद्भुत रूप देखकर तीनों लोक डरते हैं ।]

१० वें अध्याय में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए श्री कृष्ण स्वयं कहते हैं ।

> अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
> अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ ॥१०॥२०॥
> आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान ।
> मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ ॥१०॥२१॥

[हे गुडाकेश सब मैं प्राणियों में विद्यमान आत्मा हूँ । मैं ही भूत-मात्र का आदि, मध्य और अन्त हूँ, आदित्यों में विष्णु मैं हूँ, ज्योतियों में जगमगाता सूर्य मैं हूँ, वायुओं में मरीचि मैं हूँ, नक्षत्रों में चन्द्र मैं हूँ]

इन श्लोकों में श्रीकृष्ण प्राणियों के हृदय में और विश्व में अपनी व्याप्ति दिखाते हुए अपना तादात्म्य प्रकट करते हैं अन्त में वह और स्पष्ट शब्दों में कहते हैं,

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति बिना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ॥१०॥३९॥

[हे अर्जुन, समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का कारण मैं हूँ । जो कुछ स्थावर या जंगम है वह मेरे बिना नहीं है]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता में आत्मा और परमात्मा तथा जगत और ब्रह्म दोनों की एकता का निरूपण है। उपनिषदों में भी आत्मा और परमात्मा की एकता का वर्णन किया गया है "तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि" (छा. उ.) जब आत्मा और परम तत्व का एकाकार हो जाता है तब ब्रह्म की प्राप्ति होती है और आत्मा का अस्तित्व उसी भांति नष्ट हो जाता है जिस प्रकार सागर में डाली हुई बूंद का। आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाती है, बीच का अन्तर मिट जाता है और मनुष्य अनुभव करता है,

तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् ।
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

[समस्त संसार उसी के प्रकाश से प्रकाशित है । उसी की ज्योति समस्त भूमंडल में व्याप्त है]

इससे प्रकट होता है कि आत्मा और परमात्मा की एकता और जगत एव ब्रह्म की एकता अर्थात सर्ववाद की भावना बहुत प्राचीन है।

✓ हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य में हमें कबीर और जायसी में सर्ववाद के दर्शन होते हैं कबीर ज्ञानमार्गी योगी थे, उनके शुष्क काव्य में हमें कहीं कहीं अद्वैतवाद और ब्रह्मवाद की झलक मिलती है, वह अमर तत्व को अन्तर में ही व्याप्त बताते हैं। उनका कहना है—

मोको कहाँ ढूढे बन्दे मैं तो तेरे पास में ।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद ना काबे कैलास में ॥

इन पंक्तियों में उनकी अद्वैत-भावना प्रकट होती है। मानव शरीर में व्याप्त जीव-स्वरूप ही परम-तत्व का रूप है और यही चेतना भाव-योग में जाकर 'अहं ब्रह्मास्मि' की समर्थक हो जाती है।

ब्रह्मवाद की भावना से पूर्ण कबीर समस्त भूमंडल में उसी अव्यक्त और अखंड चेतना का अनुभव करते हैं, उन्हें तो—

"लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल" के अनुसार सकल वसुधा उसी चेतन-शक्ति से अनुरंजित और अनुप्राणित प्रतीत होती है। जहाँ तक उनकी दृष्टि जाती है, उन्हें विश्वात्मा का ही सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है।

जायसी के लिये भी आत्मा और परमात्मा की एकता एक अनुभूत सत्य है। परमात्मा प्राणरूप में हृदय में व्याप्त है, किन्तु उन्हें आश्चर्य है कि भेंट क्यों नहीं होती। जायसी विकल हो कहते हैं

पिउ हिरदय महँ, भेंट न होई।
को रे मिलाव, कहौं केहि रोई॥ (जायसी ग्रन्थावली)

हृदय में ही नहीं, वह उस अखंड ज्योति के सकल लोक में दर्शन करते हैं।

बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।
जँह जँह बिहँसि सुभावहिं हँसी। तँह तँह छिटकि जोति परगसी॥
नयन जो देखा कमल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर॥[1]

जायसी के लिये समस्त विश्व उसी परम तत्व की सौन्दर्य सत्ता से पूर्ण है उसी की दिव्य विभूति चराचर प्रकृति में विकीर्ण होती है।

भक्ति काल में काव्य-रचना राम और कृष्ण को आराध्य मानकर हुई और अवतारवाद का आरम्भ हुआ। परमात्मा को 'लोकरक्षण अनुग्रहार्थाय' मर्त्यलोक में अवतरित होना पड़ा और लौकिक रूप धारण करना पड़ा। इस काल के सगुणोपासक भक्त कवियों ने भगवान का लोक-रक्षक और लोक-रंजक रूप जनता के सम्मुख रखा, इसमें उन्हें अपने अवतार स्वरूप को अनेक मानव व्यापारों से पूर्ण दिखाना पड़ा था फिर भी इस काल के काव्यकारों की रचना में हमें सर्ववाद के दर्शन होते हैं।

तुलसी आत्मा और परमात्मा के द्वैत जनित संताप दुःख से त्राण पाने की अभिलाषा करते हैं और उस परम तत्व को हृदय में ही व्याप्त बताते हैं—

'दूरि न सो हितू हेरि हिये ही है' और
'सिया राम मय सब जग जानी'

में तो समस्त विश्व में उस परम शक्ति की सत्ता भासित होती है।

सूर ने भी आत्मा और परमात्मा की अद्वैत भावना तथा जड़ और चेतन जगत में ब्रह्म की सत्ता का अनुभव किया है, वह अपनी भूल का सुधार करते हुए कहते हैं :—

१ जायसी ग्रंथावली पृ० ५०।

दूरि गयो दरसन के ताईं व्यापक प्रभुता सब बिसरी

यह आत्मा रूप में परम-तत्व को हृदय में तथा सकल विश्व में व्याप्त बताते हैं।

आधुनिक काल में प्रसाद, महादेवी और निराला आदि छायावादी कवियों में हमें सर्ववाद की भावना लक्षित होती है। कवि प्रसाद के मन में विश्व-चक्र को देखकर जिज्ञासा होती है—

महानील इस परम व्योम में अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रह, नक्षत्र और विद्युतकण किसका करते से संधान ? कामायनी पृ० २६

वह आश्चर्य चकित होते हैं प्रकृति के समस्त कार्य-कलाप किसकी व्यवस्थित योजना के फल हैं। किसके अनुशासन से नियमित रूप से सब कार्य होते रहते हैं ? प्रश्न उठता है, वह शक्तिशाली नियन्ता कौन है ?

हे ! अनन्त रमणीय कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो, क्या हो, इसका तो भार विचार न सह सकता।
कामायनी पृष्ठ २८।

वह विचारते हैं कि कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जो प्रकृति पर अनुशासन करती है जो अणु अणु में व्याप्त है —

"हे विराट हे विश्वदेव तुम कुछ हो ऐसा होता भान"

अन्त में वह सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सब में उसी परम तत्व के दर्शन करते हैं।

लीला का स्पन्दित आह्लाद,
वह प्रभा पुंज चितिमय प्रसाद,
आनन्द पूर्ण ताण्डव सुन्दर,
झरते थे उज्वल श्रम सीकर,
बनते तारा हिमकर दिनकर,
उड़ रहे धूल कण से भूधर,
संहार सृजन युगल पाद,
गति शील अनाहत हुआ नाद। कामायनी पृ० २०२

महादेवी वर्मा उस अनन्त शक्ति की व्याप्ति का अपने अन्तस्तल में अनुभव करती हुई कहती हैं,

नयन पथ से स्वप्न में मिल,
प्यास में घुल साध में खिल,
प्रिय मुझी में खो गया अब दूत किसको पास भेजूँ ? [दीप शिखा २२]

आत्मा और परमात्मा, सागर में गिरने वाली जल-बिन्दु के समान एक रूप होगये हैं। द्वैतभावना मिटगई है फिर सन्देश किसके पास भेजा जाये ? इस अद्वैतभावना के साथ वह जगत और ब्रह्म की एकता का भी अनुभव करती हैं। देखिये -

जिसने उसको ज्वाला सौंपी,
उसने इसमें मकरन्द भरा,
आलोक लुटाता वह घुल घुल,
देता झर यह सौरभ बिखरा।
दोनों संगी पथ एक किन्तु कब दीप खिला कब फूल जला ?

कवयित्री दीपक की ज्वाला और पुष्प के सौरभ में एक ही अव्यक्त शक्ति की व्याप्ति के दर्शन करती है।

कवि 'निराला' के हृदय में भी सृष्टि की संचालिका शक्ति के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है, वह प्रश्न करते हैं।

कौन तम के पार (रे, कह)
अखिल पल के स्रोत, जल-जग,
गगन घन-घन-धार (रे, कह) [गीतिका १२]

उनको स्वयं ही उत्तर मिल जाता है। कबीर की भाँति वह अपने प्रियतम परम-तत्त्व को अपने निकट ही अर्थात अपने हृदय में ही आत्मा रूप में व्याप्त देखते हैं और कहते हैं,

पास ही रे, हीरे की खान, खोजता कहाँ और नादान।
[गीतिका पृष्ठ २७।]

जो वस्तु इतनी निकट है उसको और स्थानों में ढूंढना नादानी ही तो है।

अन्त में वह सर्ववाद के दर्शन करते हैं और विश्व-स्रष्टा को रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द का अनुभव कराने में समर्थ पाते तथा समस्त प्रकृति में उसकी अपार शक्ति का अवलोकन करते हैं।

बरस गई जल धार विश्व सृज,
शैवलिनी पागई उदधि निज,
मुक्त हुए आ स्नेह के क्षितिज,
रूप-स्पर्श-रस-गन्ध-शब्द घन। [गीतिका]।

प्रकृति के मानवीकरण में जहाँ केवल मानव की ही छाया प्रकृति वर्णन में देखी जाती है जहा परम तत्व के दर्शन करने वाले कवि उसमें मनुष्य और प्रकृति दोनों की तह में व्याप्त परमात्मा के दर्शन करते हैं, उनकी यह प्रकृति प्राकृतिक रहस्यवाद (Natural mysticiem) की आधार शिला बन जाती है। प्रकृति और मानव की एकता चरम सीमा पर तभी पहुँचती है जब हम दोनों में एक सत्ता को व्यापक देखते हैं, इस सत्ता के दर्शन के आधार पर ही हमारा शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। मनुष्य अपनी ही व्यापक आत्मा के प्रकृति में दर्शन करने लगता है इस अभेद बुद्धि के कारण प्रकृति के साथ पूरा प्रेम भाव स्थापित हो जाता है।

वीर गाथा काल

आठवीं शताब्दी में हर्ष के सुशासित और संगठित राज्य शासन का ह्रास होने के पश्चात् एक सार्वभौम सत्ता का लोप हो गया और आर्यावर्त अनेक छोटी छोटी रियासतों में विभक्त होगया । आर्यावर्त के उत्तर पश्चिम में चन्देल, चौहान राठौर, गहरवार आदि वंश के राजपूत वीरों ने दिल्ली, कन्नौज अजमेर आदि राज्य प्रतिष्ठित कर लिये । ये राज्य भारत के बल वैभव और ऐश्वर्य का केन्द्र होगये । इनकी सभ्यता तथा संस्कृति सबको मान्य थी । इन राज्यों के शासक बड़े वीर और युद्ध कुशल थे । किन्तु ये अपने बल और साहस का उपयोग पारस्परिक युद्धों में करके अपनी शक्ति को जीर्ण शीर्ण बना रहे थे । आपस की सहानुभूति और प्रेम को भुलाकर ये एक दूसरे पर अपनी धाक जमाना चाहते थे और केवल शौर्य, प्रदर्शन के लिये किसी बहाने युद्ध छेड़ देते थे । 'वीरभोग्या वसुन्धरा' के अर्थ को इन्होंने बड़े संकुचित रूप में लिया था । छोटे छोटे पृथ्वी खंडों को ही ये वसुन्धरा मान बैठे थे । इन्होंने एक केन्द्रीय सत्ता को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा नहीं की और अपने छोटे राज्यों की शक्ति पर ही पारस्परिक वैमनस्य और युद्ध में अपनी शक्ति को नष्ट कर दिया ।

इन गृह युद्धों का दूसरा कारण किसी राज्य की कुमारी कन्या हुआ करती थी । वर पक्ष वाले स्वंयवर अथवा विवाह के समय जाकर मारकाट मचाते और या तो कन्या का अपहरण करके अपने राज्य में ले जाते थे अथवा वहीं वीर गति को प्राप्त हो जाते थे । इन युद्धों के भी दो कारण हुआ करते थे । एक तो राजकुमारी का पूर्वानुराग और दूसरे पुराने वैमनस्य के फलस्वरूप कन्या के पिता को नीचा दिखाना । राजकुमारी के प्रेम में पड़कर जब राजा स्वंयवर में पहुँचता था तो उसको अपने विपक्षी और कन्या के पिता दोनों से युद्ध करना पड़ता था । विवाह के पश्चात दोनों पक्षों में कभी कभी मेल भी होजाया करता था, किन्तु जहाँ पारस्परिक वैमनस्य के ही कारण कन्या का अपहरण किया जाता था वहाँ तो युद्ध चलता ही रहता था और दोनों राज्यों के नष्ट प्रायः होने पर ही इस कलह का अन्त होता था । इस प्रकार के युद्धों का क्रम सदा ही चलता रहता था अतः राज्य में सुख और शान्ति का अभाव था और जनता खिन्न थी ।

भारत की विभूति और अतुल धन-राशि पर उत्तर-पश्चिम के मुसलमान सदा से ही आँखें गड़ाए हुए थे वे यहाँ के राजपूत वीरों की शूरवीरता से अनभिज्ञ न थे। अतः भारत भूमि में प्रविष्ट होने का साहस न कर सके, किन्तु अब तो गृह कलह में भारत वीरों की शक्ति क्षीण हो गई थी, यह इन मुसलमानों से छिपा न रहा और इस स्वर्ण अवसर को उन्होंने हाथ से न जाने दिया, फलतः इनके आक्रमण होने आरम्भ हो गये, वीर राजपूतों ने इनका सामना किया और कई बार उन्हे मार भगाया। किन्तु राजपूतों की शक्ति नष्ट होने पर ये विदेशी आक्रमणकारी विजयी हुए और इनके पाँव यहाँ जम गये।

संवत् ९०० से १२०० तक का समय गृह-युद्ध और विदेशी आक्रमणो का समय था। देश में कलह, अशान्ति, युद्ध और मार काट की धूम थी। ऐसे समय में युद्ध करने वाले वीरों में शक्ति और स्फूर्ति का संचार करने के लिये कवियों ने अपनी लेखनी उठाई और उनको देश की स्वतंत्रता, मर्यादा तथा धर्म की रक्षा के हेतु उत्साहित किया। ये कवीश्वर रणागण में लड़ने वाले राजपूत राजाओं के आश्रित चारण अथवा भाट हुआ करते थे। इस प्रकार इन चारणों द्वारा वीर काव्य की सृष्टि हुई।

वीर काव्य में ऐसे वीरों का गुण कथन होता था जिन्होंने अपनी जाति, धर्म और देश की रक्षा के लिये अपने प्राणों का बलिदान कर दिया था। उनके इस यशोगान को सुनकर रणभूमि में तत्पर वीरो में एक नवीन उमंग साहस और स्फूर्ति का सचार होता था और उनमें भी ऐसी ही कथा के प्रधान पात्र बनने की इच्छा सजग हो उठती थी। वे अपने शारीरिक शिथिलता और मानसिक कृपणता को दूर करके उत्साहित होकर रण-चंडी के आह्वान के लिये युद्ध-क्षेत्र में उतर पड़ते थे। वे अपनी कराल-करवाल से शत्रुओं का दमन करके या तो जय-श्री लाभ करके लौटते थे अथवा प्राणों का बलिदान देकर अपने देश-प्रेम का परिचय देते थे।

वीर काव्य की रचना में वीर पूजा का भी भाव रहता था। काव्यकार देश के वीरों के प्रति श्रद्धा से नमित होकर उनकी कीर्ति को अमर रखने के लिये उनके वीर कृत्यों को साहित्यिक रूप प्रदान करके सर्वदा के लिये सुरक्षित और अनुकरणीय रखना चाहते थे।

सूत अथवा मागधों द्वारा यशो वर्णन की प्रथा तो महाकाव्यकाल से ही चली आ रही थी, किन्तु राजकवि होने का गौरव सर्व प्रथम कवि-श्रेष्ठ

कालिदास को प्राप्त हुआ। कालिदास ने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सभा पूर्ण नव रत्नों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया और अपनी काव्य-श्री के विद्युदालोक से समस्त संसार के नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न करदी। विक्रमादित्य के पश्चात् काव्य और कला के प्रेमी अनेक भूपतियों ने काव्य-प्रतिभा-सम्पन्न काव्यकारों से अपनी राज सभा को सुशोभित किया। बाण और राजशेखर आदि संस्कृत के कवि इसी प्रकार के कवि थे। तभी से राजकवि की परम्परा चल पड़ी। चन्देल, चौहान, गहरवार आदि वंश के राजपूत राजाओं ने भी इसी परम्परानुसार अपनी राज सभा में काव्यशील अथवा कवीश्वरों को स्थान दिया। ये कवि सुख और शान्ति के समय उन्हें शृंगार-रस-पूर्ण कविताएँ सुनाया करते थे। नल्ह का बीसलदेव रासो इसी प्रकार की रचना है। किन्तु ११ वीं शताब्दी से १६ वीं शताब्दी तक का समय भारत की अशान्ति और राजनैतिक अव्यवस्था का समय था। मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे और राजपूत सामन्त तथा राजा अधिकतर युद्ध में संलग्न रहते थे। इनके साथ राज कवि अथवा चारणों को भी युद्ध स्थल में जाना पड़ता था। वे अपने आश्रयदाताओं के हतोत्साह होने पर अपनी वीर रस पूर्ण कविताएँ सुनाकर उन्हें रणोन्मत्त बना देते थे। उनके मानसिक दौर्बल्य और शारीरिक शैथिल्य को दूर कर उनमें भीषण चेतनता भर देते थे, इसके अतिरिक्त समय पड़ने पर उनको तलवार भी उठानी पड़ती थी। कभी कभी इन्हें दौत्य कर्म भी करना पड़ता था। समय-समय पर ये चारण अपने आश्रयदाताओं के मित्र, सहायक और दूत आदि सब कुछ बन जाते थे। इनका जीवन नगरों का सामन्तीय जीवन था। ग्राम के स्वच्छन्द वातावरण से ये बहुत दूर थे। इनका ध्यान केवल शत्रुओं और युद्ध पर था। अतः इनकी काव्य रचना का उद्देश्य वीर रस का संचार करना था। फलतः इनकी रचनाओं में प्रकृति के लिये कोई स्थान ही नहीं रह गया था।

काव्य-परम्परा में भी प्रकृति का स्वतंत्र महत्व नहीं रह गया था। गुप्त-सभा भूषण कालिदास प्रकृति के कवि थे। उनकी कविता लौकिक प्रतिबन्धों से मुक्त थी। उन्होंने प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में विचरण किया था, और 'स्वान्तः सुखाय' उनकी वाणी प्रस्फुटित हुई थी। उनकी कविता राज्याश्रित नहीं अपितु राज्य कीर्ति उनकी आश्रिता थी। किन्तु उनके परवर्ती कवियों ने प्रकृति से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और अपना ज्ञान-क्षेत्र आश्रयदाताओं के प्रासादों में सीमित कर लिया। इसी परम्परा में हिन्दी के

काव्य शिशु का जन्म हुआ और रण क्षेत्र में तलवारों की झंकार तथा वीरों के सिंहनाद के बीच में उसका पालन पोषण हुआ। काव्य शिशु को प्रकृति प्रांगण में खेलने का यत्किंचित भी अवसर नहीं मिला, अतएव इस युग की कविता में प्रकृति का आलम्बन रूप में प्रयोग नहीं है।

वीर गाथा काल में हमें दो प्रकार की रचनायें प्राप्त होती हैं। एक तो वीर गीतों के रूप में और दूसरी प्रबन्ध काव्य के रूप में। प्रबन्ध काव्य में किसी राजा के सम्पूर्ण जीवन वृत्त का वर्णन रहता है, नल्ह का वीसलदेव रासो और चन्द का पृथ्वीराज रासो इसी प्रकार की रचनायें हैं।

नरपति नाल्ह

नल्ह ने आलम्बन रूप में प्रकृति का वर्णन नहीं किया है। इनका उद्देश्य अपने आश्रयदाता वीसलदेव की वीरता, वैभव तथा ऐश्वर्य का वर्णन करना था। जिसमें प्रकृति-चित्रण के लिये कोई स्थान नहीं था। प्रकृति से तटस्थ होकर इन्होंने वीसलदेव के ऐश्वर्य और बल से प्रभावित होकर अपने काव्य की रचना की। अतः प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन इनके काव्य में नही मिलता। मानव-भावनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में कहीं कहीं प्रकृति निरीक्षण का परिचय प्राप्त होता है। वियोगिनी राजमती के बारहमासे में अगहन और फल्गुन का वर्णन देखिये।

> आघण कर दिन छोटा होई। सखी सदेशों मोकलोऊ कोई।
> संदेसांहि तब्रज पडयो लांध्या पर्वत दुर्घट घाट।[1]
> फागुन फरक्या कंप्या हव चित चमकी नींद न भूख।[2]

अगहन के माह में दिन का छोटा होने लगना और फागुन में वृक्षों में नयी कोपलों के आने का वर्णन कवि के निजी निरीक्षण का आभास हमें देता है।

ज्येष्ठ के महीने का इससे अधिक संश्लिष्ट चित्रण है।

> सनेहा कारण वहई धरती पाई न देखाउं जाई।
> अनबलई दव पर जलई हंस सरोवर छडई छइ ठांई॥१६॥[3]

गर्मी के कारण पृथ्वी पर पाँव नहीं रखा जाता। अग्नि बिना जलाये जल जाती है और हंस सरोवर छोड़कर चले गये हैं।

---

१ वीसलदेव रासो तृतीय सर्ग पृष्ठ ६७।
२ वीसलदेव रासो पृष्ठ ६८।
३ ,, ,, पृष्ठ ६९।

उद्दीपन में नल्ह ने प्रकृति का अच्छा उपयोग किया है। वियोग में राजमती मनुष्य की अपेक्षा प्रकृति के पशु पक्षियों को अधिक श्रेष्ठ मानती है। वह जीवन के बंधनों से मुक्त होकर स्वच्छन्द वातावरण के लिये लालायित हो उठती है।

> रामइ न सिरजी हरिणली। सूरह न सिरजी धीणु गाई।
> बन पंड काली कोइली। बहसती अम्ब कर चंपा की डालि।[1]

उसे परिताप होता है कि विधाता ने न उसे हरिणी बनाया और न धेनु यदि वह काली कोयल होती तो आम और चंपे की डाल पर बैठ कर गाती होती। वियोगावस्था में अपनी विवशता में वह स्वयं को बन के पशु पक्षियों से भी अपदार्थ समझती है।

उद्दीपन की दृष्टि से नल्ह का बारहमासा बहुत पूर्ण है। प्रत्येक मास राजमती को विकल बना देता है। श्रावण में पपीहा प्रसन्न होकर 'पीऊ पीऊ' कहता है तो राजमती की उदासीनता और भी बढ़ जाती है। वह सखी से कहती है :

> "पपीहा पीऊ पीऊ करई सखी श्रावण सलानइ गो श्रावण मास" ॥१८॥[2]

प्रकृति को सुखी देखकर उसके मन में क्षोभ होता है और वह और भी अधिक दुःख का अनुभव करती है। जब प्रकृति का सुखद रूप ही उसमें उल्लास का संचार नहीं कर सकता है तो दुःखद रूप तो उसकी वियोग व्यथा को और भी अधिक बढ़ा देता है।

> भादवउ बरसइ छुट मनोहर गंभीर। जल थल महीयल सहू भरया नीर।
> जाणे सरवर ऊलटइ। एक अंधारी बीजली बाय।
> सूनी सेज विदेश पीव। दोई दुख 'नाल्ह' क्यूं सहणा जाई ॥१९॥[3]

भादों के मास में अंधकार पूर्ण रात्रि और दामिनी की दमक उसे भयभीत बनाती है और वह अपने प्रिय के लिये व्यग्र हो उठती है। वियोग दुःख उसको सहनशीला बना देता है। उसको अपने प्रिय के वियोग में वसन्त की वायु दग्ध करती है।

> "सखी बाब फरुकती जाइ संसार"[4]

१ बीसलदेव रासो तृतीय सर्ग पृष्ठ ६५।
२ बीसलदेव रासो तृतीय सर्ग पृष्ठ ७०।
३ ,, ,, ,, ७०।
४ ,, ,, ,, ६८।

संयोग में वही फागुन का महीना उसके उल्लास और हर्षातिरेक का कारण हो जाता है। वह प्रसन्न होकर फिर रही है, "होली खेले राव हरी पीयोः राजकुंवर होली खेलवाजाई।"॥८७॥ वर्ष का प्रत्येक मास उसमें उत्साह और उमंग भर देते हैं और वह कभी कस्तूरी और कभी चन्दन का उबटन करती है। प्रकृति उसको ऐन्द्रिय सुख प्रदान करती है। अपने प्रिय के संसर्ग में उसके मुख से यही निकलता है "श्रावण मास सुहावणो होई।"

अलकार रूप में कवि ने प्रकृति का प्रयोग परम्परानुसार ही किया है। रूढ़िभुक्त उपमानों का ही सौन्दर्य वर्णन में प्रयोग है। कहीं भी कवि ने अपने स्वतः निरीक्षण द्वारा नवीन उपमानों का नवीन ढंग से वर्णन नहीं किया। राजमती का नख शिख वर्णन देखिये।

दन्त दाडिम कुली जी सी। मुखी अमृत जणि वाजे के वीण।
ससि बदनी जीत्यो मात गयन्द। आषडीया रतनालिया।
भौंहरा जणि भ्रमर भमाय। मूंगफली सी आंगुली।
कूसम कली कर नख जी सा। कनक कुंडल धज सोहइ कान।।६॥[1]

इसमें दाडिम, गयंद और भ्रमर दांत, मुख, चाल और नेत्रों के कवि-समय-सिद्ध उपमान हैं। कवि ने उंगलियों के लिए मूंगफली और नखों के लिए कुसुमकली दो नवीन उपमानों की उद्भावना की है। किन्तु इन दोनों उपमानों में कवि ने तनिक भी साहश्य का विचार नहीं रक्खा है। मूंगफली और उंगली में न रूप का साहश्य है न गुण का और न क्रिया का। मूंगफली जैसी कठोर वस्तु उंगलियों की कोमलता अथवा सुन्दरता का उपमान कैसे हो सकती है नाखूनों के लिये कुसुमकली, रूप और आकार का साहश्य तो नहीं व्यक्त करती, हां, कोमलता अवश्य प्रकट होती है। किन्तु मूंगफली जैसी कठोर वस्तुओं के साथ कुसुमकुली से कोमल नख तो अनुपयुक्त ही सिद्ध होंगे न जाने किस फेर में पड़कर कवि ने इन उपमानों का उपयोग कर डाला। इस प्रकार के प्रकृति के प्रयोग से प्रकट होता है कि नल्ह का प्रकृति के प्रति अनुराग अथवा उत्साह नहीं था, कविता करने की धुन में जो उनके मुख से निकलता गया लिखते चले गये। सौन्दर्यानुभूति से प्रभावित होकर उन्होंने काव्य रचना नहीं की। कहीं कहीं तो अत्युक्ति से कार्य लिया है। मुख को चन्द्र के समान व्यक्त करने के लिये ऊहात्मक व्यंजन का भी आश्रय लिया है।

---

१ वीसलदेव रासो तृतीय सर्ग पृष्ठ ७२।

सासु कहइ "बहु घर माहि जाव ।
चन्द कहइ मीलइ तोहि गीलसइ राहु* ।

कवि ने राजमती के मुख और चन्द्र में इतना अधिक सादृश्य दिखाया है कि सास को भय होता है कि कहीं चन्द्र के धोखे में राहु राजमती को न ग्रस ले । अतः वह बहू को घर में बैठ जाने का आदेश देती है । इसको कवि कल्पना की उड़ान के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है ।

चन्द ।

चन्द वरदायी का पृथ्वीराज रासो एक बृहद ग्रन्थ है । इसमें कवि ने अपने सखा एवं स्वामी पृथ्वीराज चौहान की वीरता, वैभव तथा अनेक विवाहों का वर्णन किया है । चन्द पृथ्वीराज का वेतन-भोगी चारण ही नहीं था अपितु अभिन्न मित्र भी था । इसका क्षेत्र राज सभा तथा रणभूमि तक ही सीमित नहीं था, वरन् एक अनन्य मित्र की भांति यह शिकार आदि के समय पृथ्वीराज के साथ बन बन में घूमा था । अतः इसकी दृष्टि नल्ह की अपेक्षा अधिक व्यापक थी । इस कवि को प्रकृति के क्षेत्र में विचरण करने का अधिक अवसर मिला था । यही कारण है कि इसके लिखे काव्य ग्रन्थ में हमें नल्ह की अपेक्षा प्रकृति-चित्रण अधिक मात्रा में प्राप्त होता है ।

चन्द, राजकवि था । अतः इसका मुख्य उद्देश्य था, पृथ्वीराज के विलास वैभव का वर्णन, परन्तु देश की अव्यवस्थित राजनीतिक दशा, विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण और गृह कलह के कारण पृथ्वीराज के जीवन का अधिकांश समय संग्राम में व्यतीत हुआ था अतः चन्द को युद्ध में उसके अपौरुषेय बल, अपरिमित साहस और अद्भुत वीरता का भी वर्णन करना पड़ा है । सदा छाया की भाँति साथ रहनेवाला सखा होने के कारण चन्दने एक प्रकार से पृथ्वीराज का समस्त जीवन-वृत ही लिख दिया है । इस कवि के लिये प्रकृति के वास्तविक रूप के प्रति कोई आकर्षण नहीं था । उसकी दृष्टि उसके स्वामी एवं सखा पृथ्वीराज के कार्य कलापों में ही सीमित थी । यही कारण है कि चन्द्र के ग्रन्थ में हमें आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण नहीं प्राप्त होता । वन में शिकार आदि के समय पृथ्वीराज से सम्बन्धित कार्यक्रम की पृष्ठ भूमि के रूप में कहीं कहीं प्रकृति का यथातथ्य वर्णन मिलता है ।

अग्ग गयो गिरि निकट । विकट उद्यान भयंकर ।
जंह न पकरि दिसि विदिसि । प्रबुर जंह जीव भयंकर ।

---

*बीसलदेव रासो तृतीय सर्ग पृ० ७२ ।।

सिंह कोल गज रीछ। बहुत सामर बलवन्ते।
चीतल चीत हिरन। पाइ परकें भजि जन्ते।
सेही सियाल लगूर बहु। कुंड कदंभ भरि तर रहिय।
पिष्पेषु जीव कवि चन्द ने। तुच्छ नाम चौपद कहिय[1]।
छं०। ६४ ॥२६॥ समय ६।

इसमें बन की भयंकरता का वर्णन पृथ्वीराज की आखेट की पृष्ट भूमि के रूप में है। वर्णन में वस्तु परिगणन की प्रधानता है। सूक्ष्म निरीक्षण का नितान्त अभाव है। केवल 'पाइ परकें भजि जन्ते' में कुछ स्वाभाविकता का आभास मिलता है। एक आम के वृक्ष के नीचे बैठे हुए ऋषि का वर्णन इससे कुछ अधिक स्वाभाविक है।

विपन विहर ऊपल अकल सकल जीव जट जाल।
पर संपर वेली विटप। अवलंबि तरल तमाल ॥१४॥
सघन छांह रविकरन चप। पगतर पसु भजि जात।
सरित सौह सम पवन धुनि। सुनत श्रवन झहनात ॥१५॥
गिरि तट इक सरिता सजल, झिरत झिरन चिहुँ पास।
सुतरु छांह फल अमिय सम, वेली विसद विलास ॥१६॥
तहाँ सु अम्ब तर रिष्ष इक क्रस तन अग्ग ररंग।
दव दद्धौ जनु दुम्म कोई के कोई भूत भुअंग ॥१७॥ समय ६[2]

इसमें यद्यपि आगामी घटना की पृष्ठ भूमि के रूप में वन का वर्णन है तथापि प्रकृति के सौम्य रूप का अच्छा चित्रण है। कवि ने स्वयं उस वन भूमि को देखा है और उसका यथातथ्य वर्णन कर दिया है। कवि का प्रकृति के प्रति रागात्मक सम्बन्ध तो नहीं है, किन्तु पृथ्वीराज और ऋषि के सम्बन्ध से वह इसकी रचना का विषय अवश्य बन गई है।

पृथ्वीराज के अनेकों राज कन्याओं से विवाह हुए हैं। प्रत्येक बार पृथ्वीराज राजकुमारी के रूप लावण्य को सुनकर कामातुर हो जाता है और युद्ध द्वारा अथवा कन्या का अपहरण करके उससे विवाह कर लेता है। विवाह के पूर्व प्रेमी-प्रेमिका के संयोग का अवसर नहीं आया है। अतः संयोगावस्था में पारस्परिक आकर्षण की अभिवृद्धि के लिये प्रकृति का उपयोग नहीं किया गया है। विवाह के पश्चात् भी कवि ने केवल इतना ही कहा है

---

१ पृथ्वीराज रासौ।
२ पृथ्वीराज रासो छं० १४, १५, १६, १७ समय ६।

कि अमुक राज कन्या के साथ पृथ्वीराज ने इतने दिन तक विलास किया, किन्तु दूसरे समय में कृष्णावतार की कथा में भावनाओं के उद्दीपन के लिये कवि ने प्रकृति का उपयोग देखिये।

> मधु माधव वैसाख, रत्ति माधव माधव मित।
> बन बन तन भनि राग, सोभि मारुत मारुत अति।
> बंसी सुर संचरयो, हरयो गोपी सु चित्त सुर।
> कुसुम करयौ कलु करयौ, भये सातुक सुभाव सुर।
> सु सुमति सोर एकंग अहि, अभि इति चपि अर्जित चली।
> एक ही बार संगीर सु सुर, कन्ह चित्त चिन्ता धुली। छं० ३२७[1]

वैशाख के माह में रम्य वन, मन्द पवन और वंशी की ध्वनि गोपियों के चित्त को चंचल कर देती है और वे सब कार्य छोड़कर वन की ओर चल देती हैं। इसी भाँति,

> सरद राति मालति सघन फूल रही बनराय।
> दीपक माला काम की हरिमग सुकच्य भाय॥
>
> छं० ३२६ समय २[2]

सघन मालती कुंज, पुष्प सुगंधि और शरद की निर्मल चन्द्रिका नायिका की कामेच्छा को उद्दीप्त करते हैं। वह अपने प्रिय से मिलने के लिये उत्कंठित हो जाती है।

वियोग पक्ष में भी कवि ने प्रकृति का उपयोग केवल कामोद्दीपन के ही लिये किया है। पृथ्वीराज भट द्वारा शशिव्रता की सौन्दर्य गरिमा को सुनकर इतना अधिक मुग्ध हो जाता है कि वर्षा ऋतु में उसे शशिव्रता का अभाव बुरा लगता है और घनघोर घटायें, मोरों का शोर तथा नन्हीं नन्हीं बूँदें उसकी काम वासना को सचेत करती हैं। देखिये

> मोर सोर चिहुँ ओर, घटा आसाढ़ बंधि नभ।
> बच्च दादुर झिंगुरन, रटन चातिग रंजत सुभ।
> नील वरन वसु मतिय, पहिर आभंन अलंकिय।
> चन्द वधू सिर कंज, धरे वसुमति सुरज्जिय।

---

१ पृथ्वीराज रासो छं० ३२७ समय ६।
२ पृथ्वीराज रासो छं० ३२५ समय ६

वरपतकुंद चन गेम रार, तन संनरे चन्द्व कुआरि ।
नग हरा धरि धीरज सुतन, दृप फुट्टे मथ्थ कर ।
[छं० ३५ समय २५][1]

वर्षा का रम्य दृश्य, दादुर और झींगुर की झंकार तथा चातक की रटन उसे कामातुर कर देते हैं और वह शशिव्रता की प्राप्ति के लिये अधिकाधिक आतुर हो जाता है।

ऋतु वर्णन में चन्द ने ग्रीष्म वर्षा और शरद का वर्णन किया है। वर्षा और शरद का उद्दीपन रूप में वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इन वर्णनों में न तो भावों की तीव्रता है और न मानव भावनाओं को प्रभावित करने का गुण। कवि ने परम्परा भुक्त कुछ वस्तुओं के नाम गिना कर उस ऋतु को कामोद्दीप्त करने वाली उल्लेख कर दिया है।

कहीं कहीं कवि ने ऋतु के वर्णन द्वारा आगामी क्रिया-कलाप और घटना की सूचना भी दी है। वह "जल घर बिन मेदिनी" सोम, सरिता और मल्लिका के वर्णन द्वारा शरद के आगमन की सूचना देता है और साथ ही;

पानम रित क्रीलन्त सु राजन, फिरि आइय दिन सरद लभाजन।
करन राज क्रीला आपेट, सक्रमि देस सद्धिमन भेट ॥[2]
[छं० ४६ समय २५]

आदि शब्दों से पृथ्वीराज की शिकार के लिये तैयारियों का भी उल्लेख करता है। इस प्रकार का ऋतु वर्णन, ऋतु वर्णन के अर्थ नहीं अपितु पृष्ठ भूमि के ही रूप में है।

उपमेय और उपमान में सादृश्य दिखाने के लिये भी चन्द ने प्रकृति का उपयोग किया है। पद्मावती की प्रसन्नता का कमल की प्रफुल्लता से सादृश्य दिखाते हुए उत्प्रेक्षा का चमत्कार देखिये।

मन अति भयो हुलास। बिगसि जनु कोक किरन रवि ॥ समय ५० [3]

तोते को देखकर पद्मावती को इतना ही सुख प्राप्त होता है जितना सूर्य किरण को देखकर कमल को। इसमें पद्मावती और कमल का साधारण धर्म एक ही है, प्रफुल्लित होना। उत्प्रेक्षा द्वारा सादृश्य दिखाकर कवि ने किया

१ पृथ्वीराज रासो छं० ३५ समय २५।
२ पृथ्वीराज रासो छं० ४६ समय २५।
३ पृथ्वीराज रासो समय ५०।

के प्रभाव में कोमलता का संचार कर दिया है। किया में सादृश्य दिखाते हुए, प्रकृति का उपमालंकार में भी सुन्दर प्रयोग किया है।

> जिम सरद चंद्रहि बढ़ पूरन किरन, कला कला बाढ़ंत गमत।
> चाहुआन बढ़ सोमेस सुत, दुग्ग सुक्ख दिन दिन अमत॥[1]
> [छं० ५३ समय १०]

पृथ्वीराज की सर्वांग वृद्धि दिन दिन इसी प्रकार हो रही है जिस प्रकार शरद में चन्द्रमा की कला प्रति दिन बढ़ती है। उपमेय और उपमान की क्रिया में साम्य दिखाया गया है। रूप और आकृति में उपमेय और उपमान में सादृश्य दिखाने के लिये कवि ने कहीं उपमा का आश्रय लिया है और कहीं उत्प्रेक्षा का। कुमोदमनि की सेना के वर्णन में उत्प्रेक्षा में प्रकृति का प्रयोग देखिये।

> मंद मंद गलित संपन्न दंती, मनो साम पाहार बग पंक्ति पंती।

सेना के हाथियों को श्याम पर्वत और शुभ्र दांतों को बक पंक्ति के समान बताया है। हाथी और पर्वत में वर्ण साम्यता है ही किन्तु उपमान पर्वत द्वारा हाथी की विशालता के प्रभाव में भी तीव्रता आ गई है। कहीं कहीं व्यतिरेक अलंकार द्वारा प्रकृति के उपमान रूप उपकरणों का उत्कर्ष द्वारा तिरस्कृत भी कराया है। निम्नलिखित पंक्तियों में कृष्ण-वदन की श्रुति का चन्द्र से साम्य दिखाया है।

> स्यामा केलि कन्दर्प बंदिर्व छलागयं, विशेष चन्द्र दुब्बभाम लज्जियं कुलीजयं।
> चमंकिता तड़ित मेघ माहि भांति दामिनी, दुति उपमा चन्द्र की कलं कलंकताहर्य।
> विराज प्रात पीत वस्त्र दमपती सुअंग यों, सावित मेन गग्ग पौ इन्द्र को धनुक्कयौं।
> [छं० ४९५ समय २][2]

यद्यपि इसमें मुख और चन्द्र के सौन्दर्य प्रभाव में साम्य है तथापि मुख की श्रेष्ठता अधिक है। क्योंकि चन्द्र सकलंक है और मुख निष्कलंक। अन्तिम पंक्ति में कृष्ण के पीताम्बर और श्याम वर्ण शरीर की दामिनी और मेघ माला से समानता दिखाई है। दोनों की छटा इन्द्र धनुष के समान प्रतीत होती है। इसी अध्याय में चन्द ने गोपी-वदन की अनुपमेयता का बड़ा सुन्दर निरूपण किया है :—

१ पृथ्वीराज रासो छं० ५३ समय १०।
२ पृथ्वीराज रासो छं० ४९५ समय २।

चन्द दरस गोपी बदन गयो समीप सुभज्ज।
घरकहीन तन छीन भो कला षोडसी भज्ज॥

[छ० ४०६ समय २][1]

गोपी-बदन की श्रेष्ठता दिखाने के लिये कवि ने ऊहा का आश्रय लिया है। पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा अपनी सोलहों कलाओं से सुसज्जित होकर गोपियों के सौन्दर्य दर्शन के लिये जाता है। वहाँ उनके अनुपम रूप-लावण्य को देखकर इतना लज्जित होता है कि दिन दिन उसका शरीर क्षीण होने लगता है। और सोलहों कलायें उसको छोड़कर भाग जाती हैं। इसमें हम मानवीकरण की भी भावना देखते हैं। कवि कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन क्षीण होते हुए चन्द्र में मानव भावना का आरोप करता है और उसको सोच वश दुर्बल होते हुए अनुमान करता है। कवि वाल्मीकि के राम की भाँति कृष्णावतार की कथा में कृष्ण के अन्तर्द्धान हो जाने पर चन्द की गोपियाँ भी वृक्ष और पशु पक्षी आदि से प्रश्न करती फिरती है।

सुनो तुम चंप कदम चकोर कहो कहु श्याम सुने पग मोर।
लही ललिता वन सोचन चग, कहो कहुँ कान्ह हुहे तुम संग॥

[छ० ३५७ समय २][2]

इस प्रकार इन्होंने श्री मद्भागवत की कथानुसार प्रकृति और मानव में साम्य स्थापित किया है प्रकृति में उपदेश और विश्वात्मा के दर्शन की भावना इनके काव्य में नहीं लक्षित होती।

जगनिक

जगनिक का आल्ह खंड वीर गीतों का संग्रह है। इसमें राजा परमाल के दो वीर आल्हा और ऊदल की वीरता का वर्णन है। इस ग्रन्थ में आद्योपान्त युद्धों का ही वर्णन है। युद्धों के कारण पारस्परिक वैमनस्य और विवाह ही हैं। माडो की लड़ाई तो केवल शौर्य प्रदर्शन के लिये होती है। उसके पश्चात तो सिरसा, पथरीगढ़, नैनागढ़ दिल्ली आदि के युद्धों का प्रमुख कारण विवाह ही रहा है। मुलिखान, आल्हा, ऊदल, चन्द्रावलि, इन्दल आदि सबके विवाहों में रक्त की नदियां बही हैं और अगणित वीरों के प्राण गये हैं। बेला और ब्रह्मा के विवाह ने महोबा को तो भस्मसात कर ही दिया साथ ही दिल्ली की जड़ भी हिला दी।

---

१ पृथ्वीराज रासो ४०६ समय २।
२ „ „ ३५७ समय २।

जीवन तो अपने आश्रयदाताओं के साथ युद्ध क्षेत्र में व्यतीत हुआ था। संग्राम भूमि में हाथी घोड़ों की अनेक जातियों का ही इन्होंने अवलोकन किया था। खड्ग-धार इन्हें विद्युत-प्रभा से अधिक प्रभावित करती थी, अतः इन्हीं वस्तुओं का इन कवियों ने पर्यालोचन किया और विस्तृत वर्णन किया।

ये राजकवि नागरिक थे, ग्रामों से दूर नगर के कृत्रिम वातावरण में राज-प्रासादों में इनका जीवन व्यतीत हुआ था। दिल्ली, अजमेर, महोबा आदि नगरों में इन्होंने अनेकों युद्धों का अवलोकन किया था। प्रकृति के स्वतन्त्र क्षेत्र में ये परिभ्रमण न कर सके और प्रकृति से सदा तटस्थ रहे।

प्रकृति से निरपेक्ष रहने का एक मुख्य कारण इन चारणों का सामन्तीय जीवन था। सामन्तीय जीवन के विलास और आतंकपूर्ण जीवन में सूक्ष्म सौन्दर्य-चेतना का इनमें सहज-अभाव था। प्रकृति-प्रेम एक सूक्ष्म सौन्दर्य-चेतना है जो इनके इस जीवन में दब गई थी। प्रकृति के स्थूल तत्त्व ही इनके अनुराग का विषय बन सके। उद्दीपन रूप में भी प्रकृति का प्रयोग बहुत कम है। प्रत्येक युद्ध का मुख्य कारण सुन्दरी कन्या होते हुए भी कहीं संयोग अथवा वियोग का अवसर नहीं आया है। केवल पूर्वानुराग के प्रसंग में कहीं कहीं प्रकृति का उद्दीपन रूप में प्रयोग है। इस काल के कवियों ने प्रकृति का सबसे अधिक प्रयोग मानव-सौन्दर्य के उपमान के रूप में किया है। क्योंकि इसके लिये उन्हें प्रकृति निरीक्षण की तो आवश्यकता थी नहीं। जो उपमान परम्परा से चले आरहे थे, उन्हीं का इन कवियों ने भी अपने काव्य में वर्णन कर दिया। प्रकृति का यदि पृष्ठ-भूमि आदि के रूप में कहीं वर्णन किया भी तो केवल वस्तु-परिगणन मात्र ही रहा, मानसिक उल्लास का तो यत्किञ्चित भी आभास नहीं प्रकट होता जिस प्रकार एक बालक किसी वस्तु को ज्यों का त्यों वर्णन कर देता है उसी प्रकार का वर्णन इन महानुभावों ने किया। हृदय का सामञ्जस्य अथवा उत्साह कहीं भी प्रकट नहीं होता। इनका समस्त प्रेम और उत्साह अपने आश्रयदाताओं के प्रति था। उन्हीं से सम्बन्धित घटनायें, मनुष्य तथा प्रकृति इनके उत्साह का कारण हुईं। अपने स्वतन्त्र रूप में प्रकृति इनके लिये कोई महत्व नहीं रखती थी। इस काल के समस्त कवियों की प्रवृत्ति अपने आश्रयदाताओं के गुण-गान की ही रही। भीषण रक्त पात और अग्नि के उस युग में उन्हें इतना अवकाश ही कहाँ था कि वे प्रकृति की ओर आंखें उठाकर देख पाते।

भक्ति काल

पहले कहा जा चुका है कि संवत् ९०० से १४०० तक का काल भारत के पराभव और विदेशी आक्रमणों का काल था। इस समय में प्रधानतः वीर काव्य की ही रचना हुई, किन्तु आगे चलकर वीर काव्य की रचना का लोप हो गया, इसके कई कारण थे।

आरम्भ में मुसलमानों के आक्रमण केवल लूट मार और धन-प्राप्ति के लिये हुए थे किन्तु जब वे विदेशी भारत की फूट और कलह से अवगत हुए तो इन्होंने यहाँ अपने पाँव जमा लिये, अपना राज्य स्थापित कर लिया और हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अमानुषिक अत्याचार करने लगे। हिन्दू अपने गृह-युद्ध और बार बार की पराजय से इतने अधिक निराश एवं अशक्त हो गये थे कि वे इन मुसलमान शासकों के प्रति सिर न उठा सके और भाग्य के विधान पर संतोष करके बैठ गये। ऐसे समय में वीरों का गुण गान करने वाले कवि जिनकी वीरता के गीत गाते और जिनको रणभूमि में उत्साहित करते, उनकी प्रशंसा के लिये कोई पात्र ही नहीं था। इसके अतिरिक्त कवि गण को इतनी स्वतंत्रता भी नहीं थी कि वे अपने मन के भावों को व्यक्त कर पाते। हिन्दू वीरों की वीरता का यह दबे शब्दों में बखान कर सकते थे। मुसलमानों के आतंक ने उनकी वाणी को अवरुद्ध कर दिया था। अतः कालान्तर में वीर काव्य का ह्रास हो गया।

मुसलमानों की राज्य-प्रतिष्ठा के पश्चात् हिन्दू परतंत्र थे, उनका धन, वैभव और देश सब विदेशियों के हाथों में था, उनकी मान-मर्यादा का विध्वंस हो रहा था अनेक प्रकार के कर लगाए जा रहे थे और आँखों देखते उनके देव-मन्दिरों तथा मूर्तियों को नष्ट किया जा रहा था। हिन्दू हताश हो गये थे इनमें जीवन के प्रति निराशा और मुसलमान शासकों के प्रति घृणा थी, इस समय हिन्दू जनता ने अपना ध्यान भगवान के गुण गान में लगाया। इनका मन लौकिक-अनुराग से हटकर भगवान् के रूप की उपासना में लग गया और वे अपने उपास्य के गुण-कथन में लीन हो गये। वे भगवान् अनन्य प्रेम और अतुल भक्ति द्वारा अपने आराध्य को प्रसन्न करना चाहते थे और उनसे अपने कष्ट-निवारण के लिये प्रार्थना करते थे। उन्हें विश्वास था कि भगवान

इनका दुःख निवेदन सुनेंगे और उन्हें अत्याचार एवं परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त करेंगे। इस प्रकार के विश्वास में ये जितने समय तक भगवान की अर्चना में लगे रहते थे उतने समय तक लौकिक चिन्ताओं और प्रतिबन्धनों से विमुक्त रहते थे और कुछ समय के लिये इनको दुःख की विस्मृति हो जाती थी, तथा मानसिक अशान्ति कुछ कम प्रतीत होती थी। इसी भावना से प्रेरित होकर हिन्दू जनता ने भगवान का अवलम्बन लिया और प्रेम तथा भक्ति के सरल मार्ग को अपनाया इस प्रकार भक्ति काल का प्रादुर्भाव हुआ।

भक्ति और प्रेम में विभोर होकर उस काल के प्रतिनिधि कवियों ने अपनी लेखनी से ऐसी स्रोतस्विनी प्रवाहित की कि दुःखी हिन्दू-जनता अपने ऊपर किये गये मुसलमानों के अत्याचारों को भूलकर भगवान के भक्ति-सरोवर में निमग्न हो गई, भगवान के लोक-रक्षक और लोक-रंजक रूपों का इन कवियों ने गुण-गान किया और सगुणोपासना को अपनाया हिन्दू भक्तों के इस भक्ति-प्रवाह में कुछ सहृदय मुसलमान भी बह चले। मूर्ति-पूजा के विरुद्ध इनके जन्म-जात संस्कार होने के कारण यद्यपि उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया किन्तु हिन्दू तथा मुसलमानों को राम और रहीम का एकता का दिग्दर्शन कराते हुए एक सामान्य मार्ग दिखाया ये कवि कभी अद्वैतवाद, कभी एकेश्वर-वाद, कभी ब्रह्मवाद और कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर झुक जाते थे। इन्होंने ऊँच नीच का भेद हटाकर भगवद्भक्ति के लिये सबको समान अधिकारी बताया।

इस प्रकार स्थूल रूप से भक्ति के दो मार्ग खुले निर्गुण और सगुण। निर्गुण पथ की दो शाखायें हुईं, ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। सगुण-भक्ति की दो शाखायें पल्लवित हुईं, एक राम-भक्त शाखा और दूसरी कृष्ण-भक्त शाखा। राम-भक्त कवियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के वीर रूप का गुण-गान किया और कृष्ण-भक्त कवियों ने वृन्दावन बिहारी कृष्ण के अनुरंजन-कारी रूप का दिग्दर्शन कराया।

ज्ञानाश्रयी शाखा

भारत में राज्य प्रतिष्ठा के पश्चात मुसलमान शासकों ने अपने धर्म-संस्थापन की ओर भी ध्यान दिया और हिन्दू जनता को मुस्लिम धर्म स्वीकार करने के लिये विवश किया, अस्वीकार करने पर उनके ऊपर अनेक प्रकार के अत्याचार किये। जीवित मनुष्य को अग्नि में जला देना अथवा दीवार में

परम तत्व अपने अंतर में ही व्याप्त है किन्तु मनुष्य अज्ञान के कारण उसका अनुभव नहीं कर पाता।

यही नहीं वह शक्ति सकल जगत में व्याप्त है मानवेतर जीव, पशु, पक्षी और जड़ पदार्थ भी उसी का अंश रूप हैं, समस्त प्रकृति का सृजन और संहार एक ही शक्ति द्वारा होता है प्रकृति के स्थूल और सूक्ष्म, जड़ और चेतन, समस्त पदार्थ उसी शक्ति द्वारा निर्मित हैं 'साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय' में कबीर ने अनेकता में एकता का अनुभव किया है और अभेदता का निरूपण करते हुए एकेश्वरवाद को अपनाया है।

प्रकृति की संचालिका शक्ति ब्रह्म ही है। जगत के समस्त पदार्थ ब्रह्म से उत्पन्न होकर ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। जगत का अपना अस्तित्व कुछ नहीं है प्रकृति से दृष्टान्त देकर अपने इस सिद्धान्त को उन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया है।

> पाणी ही तै हिम भया हिम ह्वै गया बिलाइ।
> जो कुछ था सोई भया अब कुछ कह्या न जाइ।[1]

जिस प्रकार जल के जम जाने पर हिम बन जाता है किन्तु उसके पिघल जाने पर पुनः जल हो जाता है उसी भांति प्रकृति का निर्माण ब्रह्म द्वारा ही होता है जो विनष्ट होने पर ब्रह्म में ही मिल जाती है।

परम तत्व प्रत्येक जीवात्मा में व्याप्त है, जिस प्रकार जल में पड़े हुए घड़े के अन्दर और बाहर एक ही जल है, केवल घड़े के कारण वह पृथक प्रतीत होता है, घड़े के टूट जाने पर तो सब जल एक ही हो जाता है, इसी प्रकार समस्त जगत में और प्राणी मात्र में एक ही सत्ता व्याप्त है। शरीर की भित्ति के नष्ट हो जाने पर जीवात्मा ब्रह्म में लीन हो जाता है।

अपने प्रियतम की सर्व व्यापकता को व्यक्त करने के लिये कबीर ने उपमा, रूपक, दृष्टान्त और अन्योक्ति आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

> तेरा साईं तुज्झ में ज्यों पुहुपन में बास।
> कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर ढूंढै घास।[2]

---

१ कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १३।

२ कबीर वचनावली, दोहा १९ पृष्ठ ३।

ब्रह्म इसी प्रकार घट घट में व्याप्त है जिस प्रकार पुष्प में सुगन्धि । अज्ञान के कारण उसका अनुभव नहीं कर पाता और कस्तूरी के मृग के समान उसको विश्व में ढूंढने की चेष्टा करता है, इसका समर्थन करने के लिये, प्रथम चरण में, उपमा द्वारा ब्रह्म की सर्वव्यापकता का दिग्दर्शन कराते हुए प्रकृति से दृष्टान्त लेकर कवि ने मानव की अनभिज्ञता का वर्णन किया है । जिस प्रकार अपने शरीर में बसी हुई कस्तूरी से अनभिज्ञ हरिण, उसकी सुगन्धि को बाहर में ढूंढता फिरता है, उसी प्रकार अन्तर में व्याप्त भगवान को मनुष्य देवालय आदि में ढूंढता है । सूफियों के प्रेम तत्व से प्रभावित कबीर अपने प्रियतम भगवान के वियोग में दिन दिन क्षीण हो रहे हैं, उनकी यह दशा है

राम वियोगी तन विकल, ताहि न चीन्हैं कोइ ।
तंबोली के पान ज्यूं, दिन दिन पीला होइ ॥[1]

शरीर तमोली के पान के समान प्रति दिन पीला पड़ता जाता है यह अपनी वियोग जन्य दुर्बलता को व्यक्त करने के लिये पान को उपमान मानते हैं यह उपमान कवि के निजी-निरीक्षण का परिचायक है ।

संसार में सब मनुष्य माया मोह में लिप्त हैं । भगवान के स्मरण में मन नहीं रमता, कोई विरला साधु ही हरि नाम की महिमा से अवगत होता है,

क्षीर रूप हरि नाम है, नीर आन व्यौहार ।
हंस रूप कोई साध है, तत का जाननहार ॥[2]

इसमें महात्मा कबीर ने रूपक का आश्रय लिया है । कवि प्रसिद्धि है कि हंस नीर तथा क्षीर को पृथक पृथक कर देता है, इसी को लेकर कवि ने रूपक बाँधा है कि हरि नाम क्षीर रूप है और संसार के समस्त व्यवहार नीर रूप हैं, किन्तु हंस रूप गुण ग्राही साधु बहुत कम हैं जो सांसारिक व्यवहारों को त्याग कर हरि नाम की महिमा को जान सकें ।

जगत और ब्रह्म की एकता को व्यक्त करने के लिये कवि ने अन्योक्ति का प्रयोग किया है, प्रकृति में वह कुम्हलायी हुई कमलिनी को देखते हैं तो प्रश्न करते हैं,

१ कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ५१ दोहा ९ ।
२ कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ५४ ।

काहेरी नलिनी तू कुमिलानी, तेरे ही नालि सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास।
ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि।
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहिं मूए हमारे जान।

जल ब्रह्म रूप है और नलिनी प्रकृति की प्रतीक। ब्रह्म रूप जल से जगत की उत्पत्ति और पोषण होता है, इस जल की शीतलता को कोई भी ताप नष्ट नहीं कर सकता, जिन मनुष्यों ने जल की इस वास्तविकता को जान लिया है व कभी नष्ट नहीं हो सकते, अर्थात् ब्रह्म के तत्व को समझ लेने वाला कभी मर नहीं सकता। क्योंकि ब्रह्म से उत्पन्न होकर वह ब्रह्म मे ही लीन हो जाता है। उसमें नलिनी को प्रकृति की प्रतिनिधि मान कर अन्योक्ति द्वारा ब्रह्मवाद का दिग्दर्शन कराया है। ब्रह्म जगत और जीव में इसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार बीज में विशाल वृक्ष और वृक्ष में बृहत् छाया।

कबीर सन्त थे। साधुओं की संगति और भगवत्प्रेम ही इनका उद्देश्य था। अतः इन्होंने अपने काव्य में नीति और ज्ञान के उपदेश का दिग्दर्शन कराया। इन्होंने बाह्योपचारों को व्यर्थ ठहराया और वेदान्तवादियों के "कमल पत्रमिव अम्भसि" के अनुसार संसार में रहकर भी सांसारिक विषय-वासना से निर्लिप्त रहने का उपदेश दिया, और इसके लिये प्रकृति को माध्यम बनाया। भगवत्भक्ति के लिये मन का शुद्ध होना अत्यावश्यक है।

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय।

मछली सदा जल में ही रहती है फिर भी इसमें इतनी दुर्गन्धि होती है कि अनेक बार धोने पर भी दूर नहीं होती। इसी प्रकार शरीर के शुद्ध करने से कुछ नहीं होता, मन शुद्ध चाहिये। काम, क्रोध, कपट, लोभ और मोह आदि से बचने के लिये कबीर ने प्रकृति को उदाहरण रूप में रखा है, कपटी मनुष्यों से दूर रहने की चेतावनी देते हुए वह कहते हैं।

कबिरा तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत।
जानो कली अनार की, तन राता मन सेत।[२]

अनार की कली ऊपर से लाल और अन्दर श्वेतवर्ण होती है, इसी प्रकार कपटी मनुष्य ऊपर से अनुराग प्रदर्शित करते हैं किन्तु मन से कपट

१. कबीर वचनावली पृष्ठ ४७।
२ ,, ,, ,, ।

भावना से पूर्ण और प्रेम विहीन होते हैं। इसी प्रकार सच्चे साधु विरले ही होते हैं। इस बात को वह एक नवीन ढंग से व्यक्त करते हैं,

> साधु साधु सब एक हैं, ज्यों पोस्ते का खेत।
> कोई विवेकी लाल है, नहीं सेत का सेत।[1]

उपर्युक्त दोनों दोहों में नीति का उद्देश्य प्रधान है किन्तु कवि का प्रकृति का सूक्ष्म दर्शन भी प्रकट होता है। कबीर ने अनार की बेरंगी कली का निरीक्षण किया, पोस्ते के दानों में किसी लाल दाने को देखा, प्रभावित हुए उसे अपने उपदेश का माध्यम बना लिया।

राम कबीर के प्रियतम थे और वह उनकी बहुरिया। इनको अपने प्रियतम का वियोग दुःख बहुत काल तक सहना पड़ा। वियोग में पावस दुःखदायिनी प्रकट हुई और बसन्त ने इनको प्रियतम से मिलने के लिये अत्यातुर बना दिया। इस प्रसंग में इन्होंने पावस और बसन्त का वर्णन किया है।

> मास असाढ रवि धरनि जरावे, जरत जरत जल आइ बुझावे।
> रुति सुभाइ जिमीं सब जागी, अमृत धार होइ झर लागी।
> जिमीं माँहि उठी हरियाई, बिरहिन पीव मिले जन जाई।
> मनिका मनिके भये उछाहा कारनि कौन बिसारी नाहा।

आसाढ़ मास में पृथ्वी की जलन का जल बुझाता है, हरियाली छाई हुई है विरहिणियों का उनके प्रियतम मिल गये हैं किन्तु कबीर के प्रियतम उनकी सुधि नहीं लेते। प्रकृति के सुख से उनके हृदय में और भी अधिक वेदना होती है। प्रिय की स्मृति व्यग्र बना देती है।

> माघ मास रुति फगुनि तुसारा, भयो बसंत तब काग गंभारा।
> अपने रंगि सब कोई राता, मधुकर बास लेहि मैमंता।
> बन कोकिला नाद गह गहांनां, रुति बसंत सब के मनि माना।
> बिरहन्य रजनी जुग प्रति भइया, बिन पीव मिले कलप टलि गइया।[2]

बसन्तागमन पर भौंरे, कोकिल आदि सब प्रसन्न हैं। समस्त प्रकृति मधु मास में उल्लसित है, किन्तु कबीर अपने 'राजा राम भरतार' से वियुक्त हैं, उनके लिये रजनी एक युग के समान और दिन कल्प के समान दीर्घ हो जाते

[1] कबीर बचनावली पृष्ठ ३४।
[2] कबीर ग्रन्थावली पद २२४।

हैं। प्रकृति का उल्लास उनकी प्रिय-मिलन की अभिलाषा को और अधिक तीव्र कर देता है।

प्रियतम के प्रति प्रेम की अनन्यता के आदर्श रूप मीन, चातक और मृग को उन्होंने दृष्टान्त रूप में वर्णन किया है।

कबीर के पश्चात धर्मदास, नानक, दादू, लालदास, हरिदास और सुन्दर-दास आदि अनेक संत कवि हुये। इन सब का उद्देश्य एक सर्वमान्य मत का प्रचार करना, वाह्याडम्बरों का खंडन करना, जाति-भेद मिटाना और निर्गुण-ब्रह्म की उपासना का उपदेश देना था। ज्ञानाश्रयी शाखा के समस्त कवि वैरागी थे प्रकृति के शोभन, अशोभन दृश्यों के प्रति इनका आकर्षण नहीं था, यही कारण है कि इनकी रचनाओं में प्रकृति का आलंबन रूप में वर्णन नहीं है।

प्रकृति अपने स्वतंत्र रूप में इन्हें प्रभावित न कर सकी। इन्होंने प्रकृति में या तो ब्रह्म की व्याप्ति देखी, अथवा प्रकृति को नीति एवं उपदेश का माध्यम बनाया। निर्गुण ब्रह्म के प्रचार-प्रसार को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये इन्होंने प्रकृति का उपमा, रूपक और अन्योक्ति आदि अलंकारों में प्रयोग किया। ये कवि संदेश-वाहक थे। अपने महान संदेश को उन्होंने अनेक प्रकार से जनता के सम्मुख रखा, कभी सूक्तियों के रूप में प्रकट किया और कभी चमत्कार पूर्ण काव्यमय ढंग में, अतः इनके काव्य में अलंकारों का स्थान गौण ही है। वर्षा और बसन्त का उल्लेख यद्यपि इन्होंने उद्दीपन रूप में किया है किन्तु वह लौकिक अर्थ में नहीं है वरन जीवात्मा की परमात्मा से मिलने के लिये आकुलता दिखाई है।

इन कवियों ने भगवान को अपने अन्तर में ही व्याप्त देखा। अतः इनकी दृष्टि अन्तर्मुखी रही, वाह्य प्रकृति से ये तटस्थ थे। स्वतंत्र रूप से इनके मन में प्रकृति के प्रति उल्लास नहीं था।

प्रेमाश्रयी शाखा

निर्गुण पंथ की दूसरी शाखा प्रेमाश्रयी शाखा थी। इस शाखा के अधिकांशतः कवि मुसलमान फकीर थे। ये मुसलमान सहृदय थे, इनके हृदय में हिन्दुओं के प्रति किये गये अत्याचारों के प्रति संवेदना और सहानुभूति थी, हिन्दू-धर्म के प्रति इनके मन में आस्था तथा प्रेम था। हिन्दू संस्कृति से प्रभावित इन सहृदय मुसलमानों ने अपने काव्य-निर्माण द्वारा दोनो जातियों

को स्नेह-सूत्र में बाँधने का प्रयास किया और प्रेम-कहानी का आश्रय लेकर मानव-हृदय को स्पर्श करने वाली कविता की रचना की।

ज्ञान-मार्गी कवि भी हिन्दू-मुसलिम-एक्य का उपदेश दे चुके थे और एकेश्वरवाद का प्रचार कर चुके थ। किन्तु उनकी राष्ट्रवादिता और शुष्कता के कारण जनता अधिक प्रभावित न हुई, उनके उदासीन हृदय प्रफुल्लित न हो सके। इसके विपरीत, जीवन में और भी अधिक कटुता तथा विरक्ति छा गई। ऐसे समय में सूफियों के प्रेम तत्व से प्रभावित मुसलमान फकीरों ने कल्पना का आधार लेकर दोनों जातियों में रागात्मक-सम्बन्ध स्थापित किया और मर्मस्थल को स्पर्श करने वाली प्रेम-कथाओं की रचना की। कबीर की वाणी में तर्क एवं बुद्धि की प्रधानता थी किन्तु इन्होंने हृदय-स्पर्शी घटनाओं का उल्लेख करके अपनी कल्पित कथाओं को सरस बनाया और प्रेम की प्रधानता तथा अद्भुत सौन्दर्य की अलौकिकता का दिग्दर्शन कराते हुए, माधुर्य भावना से पूर्ण बना दिया।

प्रेम-कहानी की परम्परा वीर गाथा काल में "नूरक चन्दा" की प्रेम-कथा से ही चली आ रही थी। प्रेम-मार्गी कवियों ने इसी परम्परा को अपनाया और दाम्पत्य प्रेम की मधुर-भावना से पूर्ण प्रेम-गाथाओं की रचना की। इन्होंने भारत की लोक कथाओं को कल्पना का पुट देकर फारस की प्रेम-पद्धति से पूर्ण कर दिया। इनकी कथाओं का कलेवर भारतीय और आत्मा सूफी थी। सूफियों के सिद्धान्तानुसार इन्होंने परमात्मा को प्रियतमा और आत्मा को प्रेमी प्रदर्शित किया और लौकिक प्रेम के अन्तर्पट में अलौकिक प्रेम की झाँकी दिखाई। इन्होंने प्रेमी को साधक और प्रेमिका को उपास्य दिखाया। और प्रेम-मार्ग में आने वाली अनेक आपत्तियों तथा विघ्न-बाधाओं का उल्लेख करते हुए साधक के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का दिग्दर्शन कराया। प्रेमी को प्रेमिका के वियोग में व्याकुल दिखाकर आत्मा की परमात्मा के लिये व्यग्रता प्रकट की और प्रेमाधिक्य के कारण समस्त-प्रकृति में उसी की अखण्ड ज्योति का निरीक्षण किया। प्रकृति में इन्होंने अपने प्रेमास्पद का प्रतिबिम्ब देखा और अन्तर्जगत का बाह्य-जगत से सामंजस्य स्थापित कर दिया। अन्त में इन्होंने प्रेम-मार्ग के कंटकाकीर्ण पथ के संकटों पर विजय पाकर प्रेमी का प्रेमिका से चिर-मिलन दिखाया और आत्मा तथा परमात्मा का एकीकरण कर दिया। इन कवियों की प्रेम कहानियों में प्रेमी साधक और प्रेमिका परम तत्व है। प्रेम साधन है जिसकी प्रेरणा से प्रेमी प्रेमिका से

मिलने का प्रयास करता है और प्रेम मार्ग में अग्रसर होता है। गुरु पथ-प्रदर्शन का कार्य करता है और दोनों का चिर-मिलन कराता है। प्रेमी-प्रेमिका का चिर-मिलन ही इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य है। यद्यपि इन प्रेम-कहानियों में किसी राजकुमार और राजकुमारी के लौकिक प्रेम की अभिव्यंजना है किन्तु वियोगावस्था मे एक ऐसी मार्मिक व्यथा का दिग्दर्शन है जो समस्त जगत में व्याप्त है, जिस प्रेम की पीर से समस्त जगत व्यग्र है और सम्पूर्ण चराचर जिस प्रेम-पीडा का अनुभव कर रहा है इस प्रकार का कथाओं का कुतुबन, मंझन, जायसी, शैख नबी आदि मुसलमान कवियों ने निर्माण किया। उनमें जायसी सबसे अधिक जगमगाते रत्न हुए। मसनवियों के ढग पर लिखे गये इनके पद्मावत ने जनता के हृदय को सबसे अधिक स्पर्श किया। उन्होंने उस परोक्ष सत्ता के प्रत्यक्ष रूप का अनुभव कराया और अपने इस ग्रन्थ में लौकिक एव आध्यात्मिक दोनों पक्षों का गंभीरता तथा सरसता पूर्वक निर्वाह किया।

जायसी ने यद्यपि पद्मावती और रत्नसेन के प्रेम को लौकिक-रूप प्रदान किया है किन्तु उसमें प्रधानता आध्यात्मिक पक्ष की ही है अतः सर्व प्रथम हम जायसी के आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर ही विचार करेंगे।

परम तत्व का आभास

जायसी के काव्य में हमें सर्ववाद के दर्शन होते हैं। इन्होंने सूफियों के प्रेम-तत्व का अपनाते हुए मानव और मानवेतर प्रकृति में उसी परम-सत्ता की झलक देखी है भारतीय अद्वैतवाद और सूफियों के ब्रह्मवाद का इन्होंने काव्य में दिग्दर्शन कराया है। ब्रह्म मे मिलन होने के पश्चात आत्मा का अस्तित्व नष्ट हो जाता है।

बूँद समुद्र जैस होइ मेरा। गा हिराइ जस मिलै न हेरा।[1]

जिस प्रकार समुद्र में बूंद नष्ट हो जाती है इसी प्रकार आत्मा ब्रह्म मे मिलकर ब्रह्ममय हो जाती है।

कबीर ने भी आत्मा और परमात्मा के एकात्म्य का इसी भाँति उल्लेख किया है।

हेरत हेरत हे सखी हेरत गया हेराय।
बूंद समानी समुद्र में सो कित हेरी जाय।[2]

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ ११४।

२ कबीर वचनावली ७०५ पृष्ठ ७१।

परमात्मा का चिन्तन करते करते आत्मा परमात्मा रूप हो जाती है उसका अस्तित्व मिट जाता है।

सूफियों की धार्मिक भावना के अनुसार वह परमात्मा रूप अपने प्रियतम की रूप गरिमा का समस्त चराचर प्रकृति में अवलोकन करते हैं उनके लिये समस्त प्रकृति में उसी अपूर्व सत्ता की ज्योति व्याप्त है उसी का अद्भुत दीप्ति से सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र प्रकाशित है। पत्थर उसी की दीप्ति से रत्न होगये हैं, प्रकृति के समस्त कार्य उसी की शक्ति से अनुप्राणित हैं उस सर्वेश्वर का सौन्दर्य इतना अनुपम है कि—

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोता। रतन पदारथ मानिक मोती ॥
जह जह विहँसि सुभावहिं हसी। तह तह छिटकि जोति परगसी ॥
दामिनि दमकि न सरवरि पूजी। पुनि ओहि जोति और को दूजी ॥
हँसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि।
दारिउ सरि जो न के सका फाटेउ हिया दरक्कि[1] ॥

इस अनन्त सौन्दर्यशाली रूप-राशि के दांतों की ज्योति की समता करने में दामिनी भी असमर्थ हो जाती है।

यही नहीं वह प्रकृति को परम-तत्व के समागम के लिये उल्लासपूर्ण, उत्कंठित और उसके वियोग से व्यथा से व्याकुल देखते हैं। प्रकृति अपने प्रियतम पुरुष के नयन बाणों से घायल है। उन नयनों में अपूर्व शक्ति और अनन्त सौन्दर्य है, कोई भी प्राणी उसके सौन्दर्य प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता जड़ और चेतन समस्त सृष्टि उन अद्वितीय नेत्र शरों से विद्ध है।

उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा।
गगन नखत जो जाहिं न गने। वै सब बान ओही के हने ॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी।
रोंवँ रोंवँ मानुस तन ठाढ़े। सूतहि सूत बेधि अस गाढ़े ॥
बरुनि बान अस ओपहँ, बेधे रन बन ढाँख।
सौजहिं तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख[2] ।

अतः अपने प्रियतम के वियोग में समस्त प्रकृति व्याकुल है।

बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीजि मजीठ टेसु बन राता[3] ।

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ ५०।
२ ,, ,, ४९।
३ ,, ,, ७७।

उस परम-तत्व के वियोग में समस्त प्रकृति व्यथित है, वृक्षों के पत्ते और पुष्प भी लाल होगये हैं, किन्तु उस अखंड ज्योतिरूप पुरुष से मिलन होने पर प्रकृति उल्लास से पूर्ण हो जाती है, बिरह-व्यथा से अनुतप्त प्रकृति अनुराग-रंग में रंग जाती है। प्रकृति और पुरुष का मिलन होते ही—

भा बसंत राती बनसपती। औ राते सब जोगी जती।
राती सती अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया।

बसंत की वनस्पतियों में प्रियतम से मिलने का उल्लास है, आकाश में मेघ उसी के प्रतिबिम्ब से लाल हैं। समस्त प्रकृति में उस अखंड ज्योति की प्रतिच्छाया का अनुभव करने के कारण जायसी के लिये जड़ प्रकृति भी सजीव हो उठी है, उन्होंने उसमें दुःख सुख आदि के प्रभावस्वरूप मानव-भावनाओं का अनुभव किया है।

प्रकृति में मानवी-करण की भावना हमें आदि कवि के काव्य से ही प्राप्त होती है। प्रकृति के उपासक काव्यकारों ने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते हुए उसमें प्रतिस्पन्दन का आभास पाया है और उसे मानव-भावनाओं को समझने में समर्थ समझा है। जायसी ने प्रकृति में सवेदन-शीलता का तो अनुभव किया ही है, इसके अतिरिक्त उन्होंने मानव क्रियाकलापों से भी प्रकृति को पूर्ण पाया है। बसन्त में—

नवल सिंगार बनसपति कीन्हा।
सीस परासहि सेंदुर दीन्हा।[1]

'प्रकृति ने नवीन शृंगार किया है और पलाश ने मांग में सेंदुर भरा है। कवि ने प्रकृति को सौभाग्यवती नारी का रूप प्रदान किया है। उद्दीपन में प्रकृति मानव भावनाओं को उत्तेजित करती है। मानव, प्रकृति का अनुगामी होता है। किन्तु मानवी-करण में प्रकृति मानव की मानसिक परिस्थिति के अनुसार उल्लसित और व्यथित प्रतीत होती है। अपने रागात्मक सम्बन्ध की मात्रानुसार मनुष्य प्रकृति मे अपनी अन्तर्वृतियों का सामंजस्य प्राप्त करता है, प्रकृति को वह अपने सुख और दुःख की सहचरी समझता और उसे सब कुछ समझ लेने में समर्थ मानता है। नागमती इसी भावनाओं से प्रेरित होकर अपनी विरह-व्यथा को पक्षियों से कहती फिरती है—

---

१ जायसी ग्रंथावली पृष्ठ ९१

पिउ सो कहेउ संदेसड़ा हे भौंरा हे काग।
सो धनि बिरहे जरि मुई, तेहिक धुआ हम्ह लाग[1]।

चारों ओर काग से नागमती अपने प्रिय के पास संदेश ले जाने की प्रार्थना करती है वह अपने विरह दुःख में अपना गर्व, मर्यादा और रानीत्व को भूलकर प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करती है और उससे मानव की ही भांति संवेदना एवं सहानुभूति प्राप्त करना चाहती है, वह उन्माद की अवस्था में वन के पशु पक्षियों से अपना दुःख प्रकट करती है। जायसी ने प्रकृति में इतनी अधिक संवेदन शक्ति का अनुभव किया है कि प्रकृति से नागमती को प्रत्युत्तर प्राप्त होता है, पक्षी का हृदय द्रवित हो जाता है और वह नागमती से प्रश्न करता है—

तूं फिरि फिरि दाहै सब पांखी।
केहि दुःख रैनि न लावसि आंखी[2]?

नागमती अपना विरह दुःख प्रकट करती है। और पक्षी उसका सन्देश उसके प्रियतम के निकट पहुँचा देता है। वाल्मीकि और तुलसी के राम ने भी वन के पशु के पक्षियों से अपना विरह-दुःख निवेदन किया है किन्तु उन्हें प्रत्युत्तर नहीं प्राप्त होता। जायसी चेतन-प्रकृति को तो मानव भावनाओं को समझने और उनका समाधान करने में समर्थ पाते ही हैं, साथ ही उन्हें जड़ प्रकृति भी मानव के दुःख से दुखी प्रतीत होती है।

तेहि दुख भये परास निपाते। लोहू बूंड़ि उठे होइ राते।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ[3]।

नागमती के वियोग दुःख की संवेदना में पलाश पत्र-शून्य हो जाता है, बिम्बाफल लाल हो जाता है और गेहूँ का हृदय विदीर्ण हो जाता है। इसी प्रकार पद्मावती के वियोग में व्यथित रत्नसेन को—

'पात बिछोह रूख जो फूला। सो महुआ रोवे अस भूला।
'टपके महुअ आंसु तस परहीं। होइ महुआ बसत ज्यों झरहीं।

महुआ रोता हुआ प्रतीत होता है। हृदय की दुःख-दशा में वह जड़ प्रकृति में संवेदना प्राप्त करता है। अतः शरद में उसको महुआ पतझड़ में

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ १७५
२ ,, ,, ,, १८०
३ ,, ,, ,, १८०

गिरे हुए पत्तों के वियोग में अश्रु बहाता हुआ सा भासित होता है। उसका वियोग दुःख समस्त जड़ और चेतन-प्रकृति में व्याप्त हो जाता है।

जब पद्मावती और रत्नसेन का विवाह हो जाता है तो अपने आनंद और उल्लास में उन्हे समस्त प्रकृति आनदमग्न प्रतीत होती है। शरद में 'सोन फूल भइ पुहुमी फूली' पृथ्वी सुनहरी पुष्पाभरणों को धारण कर प्रफुल्लित हो रही है प्रकृति में मानव अपनी मनोदशाओं का ही प्रतिबिम्ब देखता है। शृगार के सयाग और वियोग दोनों पक्षों में जायसी ने प्रकृति का मानव से तादात्म्य बड़े सुदर रूप में दिखाया है। यद्यपि विभाव के अन्तर्गत होने के कारण इस प्रकार के तादात्म्य में प्रधानता उद्दीपन की ही होती है किन्तु विचार करने पर वह रूप भी मानवीकरण की भावना से ही सम्बद्ध प्रतीत होता है।

उद्दीपन

जायसी ने उद्दीपन रूप में प्रकृति का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। संयोग और वियोग दोनों पक्षों में प्रकृति इनके काव्य में मानव भावनाओं को उद्दीप्त करने का साधन रही है। परम्परानुसार इन्होंने संयोग व षटऋतु और वियोग में बारहमासे का वर्णन किया है। पद्मावती को अपने प्रिय के वियोग में समस्त सुखद वस्तुऐं दुःखद प्रतीत होती हैं शीतोपचार; भी हृदय को दग्ध करते हैं।

> दहे चंद औ चंदन पीरु। दग्ध करे तन विरह गंभीरु।
> कलप समान रैनि तेह बाढ़ी। तिल तिल भर जुग जुग जिमि गाढ़ी।[1]

चन्द्र-दर्शन और चन्दन-लेपन पद्मावती की व्यथा को बढ़ाते हैं, रात्रि कल्प के समान लम्बी प्रतीत होती है, प्रिय के संयोग होने पर प्रकृति के यही तत्व उसके आनंद और सुख की अभिवृद्धि करते हैं—

> प्रथम वसंत नवल ऋतु आई। सु ऋतु चैत बैसाख सोहाई।
> चदन चीर पहिरि धनि अंगा। सेंदुर दीन विहंसि भरि गंगा।
> कुसुम हार औ परिमल वासू। मलयागिरि छिरका कविलासू।
> सौर सुपैती फूलन-डासी। धनि औ कंत मिलै सुख रासी।[2]

चंदन, पुष्पहार और सुगधि, पद्मावती के प्रेमोल्लास को बढ़ाते हैं और दोनों के मिलन को और भी अधिक सुखद बना देते हैं। पावस, संमिलन-सुख

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ ८२ २ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ १६८,

में, उसकी अभिलषित ऋतु हो जाती है, बूदें उसको शीतल लगती हैं, हरियाली उसके हृदय को शीतल करती और प्रियतम के संग हिंडोले पर झूलने के लिये उत्साहित करती है—

सीतल बूंद, ऊंच चौपारा, हरियर सब देखाइ संसारा।
हरियर भूमि कुसुंमी चोला, औ धनि पिउ संग रचा हिंडोला।
पवन झकोरे होइ हरष लागे सीतल बास।
धनि आने यह पवन है, पवन सों अपने पास ॥७॥[1]

प्रकृति की यह शीतलता अपने प्रिय के सामीप्य के ही कारण उसे आनंदित करती है। कल्प के समान व्यतीत होने वाली रात्रि प्रियतम के साथ आनंद-केलि में व्यतीत हो जाती है और भयंकरमेघ गर्जन उसके सहवास-सुख को और भी बढ़ा देता है।

रंगराती प्रीतम संग जागी, गरजे गगन चौंकि गर लागी।[2]

इस प्रकार संयोगावस्था में वर्षा-ऋतु अपने सौम्य और उग्र दोनों रुपों में प्रेमी-प्रेमिका के पारस्परिक आकर्षण और सुख की वृद्धि का साधन बन जाती है, किन्तु वही ऋतु वियोगिनी नागमती को दुःखदायिनी प्रतीत होती है, उसके लिये तो—

खड़ग बीजु चमकै चहुं ओरा, बुंदवान बरसहिं धन घोरा।
दादुर, मोर, कोकिला, पीऊ, गिरे बीजु घट रहै न जोऊ।[3]

के अनुसार पावस विरह दुःख को उद्दीप्त करने-वाली हो जाती है। वह व्यग्र हो उठती है और एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ती है।

पुष्य नखत सिर ऊपर आवा हौं बिनु नाह, मंदिर को छाया।
अद्रा लागि लागि भुंइ लेई, मोहिं बिनु पिउ को आदर देई।[4]

पुष्य-नक्षत्र आगया है, अद्रा लग गया है, खेत पानी से भर गये हैं। किन्तु नागमती विरहिणी है, उसके प्रिय के बिना उसे कौन आदर दे? प्रिय की स्मृति उसे और भी विकल बना देती है।

अपनी व्यथितावस्था में दूसरे का सुख मानव हृदय में एक प्रकार की वेदना उत्पन्न कर देता है। श्रावण की हरियाली से हर्षित होकर नागमती

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ १६८ २ ,, ,, १६९
३ ,, ,, १७३
४ ,, ,, १७३

की सखियाँ कुसुंमी साड़ी पहनकर प्रिय के संग हिंडोले पर झूल रही हैं, नाग-मती अपने विषय में विचारती है—तो विरह के झूले में अपने हृदय को झूलते हुए पाती है—

हिय हिंडोल अस डोलै मोरा, विरह झुलार देइ झकझोरा।[1]

इस वैपरीत्य के कारण उसको दुःख का अधिकाधिक आभास होता है क्वार के माह में वह दृष्टि-प्रसार करती है तो देखती है कि चातक तृप्त होगया है, सीपियां मुक्ताओं से भर गई हैं, हंस सरोवरों में आगये हैं और कांस वन में फूल रहा है, प्रकृति को अपने प्रियतम की प्राप्ति होगई है, इसी भांति फाल्गुन के मास में अपने प्रिय बसन्त के आगमन पर समस्त बनस्पतियाँ उल्लास से पूर्ण हो जाती हैं प्रकृति का उल्लास और वैभव नागमती को और भी अधिक पीड़ित करता है वह कहती है—

करहिं बनसपति हिये हुलाहू, मो कहं भा जग दून उदासू।[2]

प्रकृति में अपनी दुःखावस्था का सादृश्य देखकर उसका वियोगजन्य-संताप और अधिक हो जाता है, वह प्रकृति से अपनी दशा का मिलान करती है और व्यथित होकर कहती है—

नैन चुवहिं बस महवट नीरू, तोहि बिनु अग लाग सर चीरू।
टप टप बूंद परहि जस ओला, विरह पवन होइ मारइ झोला।
तन जस पियर पात भा मोरा, तेह पर विरह देइ झकझोरा।[3]

जब वह अपने आंसुओं को महावट के मेंह के समान समझती और कृश शरीर का सादृश्य पीले पत्तों में देखती है तो उसका कष्ट और बढ़ जाता है, प्रकृति का सादृश्य उसकी वियोग दशा का विस्मरण नहीं होने देता। उसकी इच्छा होती है कि उसका प्रियतम शीघ्रातिशीघ्र आजाये, अथवा वह स्वयं ही जाकर उससे मिल ले, किन्तु अपनी असहायावस्था का विचार करके निरुपाय सी बैठ जाती है, उस विवश अवस्था में उसके व्यथित हृदय से यही शब्द प्रस्फुटित होते हैं,

परवत समुद अगम बिच, बीहड़ बन बन ढाँख।
किमि के भेंटों कन्त तुम्ह, ना मोहिं पाव न पांख।[4]

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ १७४
२ ,, ,, ,, १७७
३ ,, ,, ,, १७६
४ ,, ,, ,, १७४

मिलन की अभिलाषा इतनी अधिक तीव्र हो जाती है कि नागमती अपनी पक्ष-विहीनता पर झुंझला पड़ती है, प्रकृति के पक्षियों का महत्व उसकी दृष्टि में मानव से अधिक हो जाता है।

जायसी ने प्राकृतिक पदार्थों का मानव-सौन्दर्य के उपमानों के रूप में भी सुन्दर प्रयोग किया है इन्होंने प्रकृति से उपमान लेकर प्रस्तुत (मानव) का अप्रस्तुत (प्रकृति) से सादृश्य मूलक अलंकारों द्वारा रूप, गुण और व्यापार में सामर्थ्य दिखाया है। सादृश्य प्रकट करने वाले अलंकार में इन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक को अधिक अपनाया है और इन अलंकारों को स्वरूप-बोध कराने में तथा भावों की उत्कर्ष व्यंजना में सहायक माना है। उपमा आदि अलकारों में इन्होंने अधिकतः परम्पराभुक्त उपमानों का ही प्रयोग किया है किन्तु कहीं कही सौन्दर्याधिक्य को व्यजित करने के लिये, प्रकृति से उदाहरण लेकर नवीन उद्भावना भी की है। सुआ पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है—

उअत सूर जस देखिय चाँद छपै तेहि धूप।
ऐसे सबै जाहिं छपि, पदमावति के रूप।[1]

इसमें कवि ने प्रकृति के व्यापार द्वारा पद्मावती को अद्वितीय रूपवती बताया है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर चन्द्रप्रभा द्युतिहीन होजाती है उसी प्रकार पद्मावती की रूप छटा के सम्मुख रूपवती नारियाँ शोभाहीन प्रतीत होती हैं, इसी भांति उत्प्रेक्षा द्वारा उसकी सेंदुर विहीन मांग का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन देखिये—

बिन सेंदुर अस जानहु दीआ, उजियर पंथ रैनि महँ कीआ।[2]

पद्मावती के कृष्ण केश-जाल में सेंदुर-विहीन श्वेत मांग का वर्णन किया गया है। केश-समूह की उपमा अप्रस्तुत रात्रि और मांग की उपमा प्रकाशित पथ से दी है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत में श्वेत और कृष्ण-वर्ण का सादृश्य है इसमें यद्यपि अंधकार पूर्ण रात्रि परम्पराभुक्त उपमान है तथापि इसमें प्रकाशित पथ की उदभावना कवि की अपनी है। कवि स्वय घनांधकार में दीप शिखा द्वारा आलोकित मार्ग को देखकर आनंदित हुआ है। इस प्रकार वह कवि की निजी वस्तु बन गई है। एक और उत्प्रेक्षा द्वारा माग के सौन्दर्य का चित्रण देखिये।

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ ४५
२ ,, ,, ४७

कंचन रेख कसौटी कसी, जनु घन मँह दामिनि पर गसी ।[1]

इसमें कवि ने मांग की कसौटी पर कसे हुए सोने के तार को घन-समूह में प्रकाशित दामिनी के समान दर्शित किया है, उपमेय और उपमान में किसी प्रकार भावों का साधर्म्य नहीं है केवल प्रस्तुत-अप्रस्तुत रूप में साम्य व्यक्त होता है।

रत्नसेन से भेंट करने के लिये जाते हुए वस्त्राभूषणों से सुसज्जित पद्मावली का प्रकृति से उपमान लेकर जायसी इस प्रकार वर्णन करते हैं।

पहिरि जराऊ ठाढि भइ, कहि न जाइ तस भाव।
मानहुं दरपन गगन भा, तेहि ससि तार दिखाव।

मुख को परम्परागत उपमान शशि और आभूषणों के लिये तारक समुदाय का साधारण प्रयोग न करके जायसी ने फलोत्प्रेक्षा द्वारा अपने भावों की व्यंजना की है, शशि और नक्षत्र मानो आकाश रूप दर्पण में पद्मावती के मुख और आभूषणों के प्रतिबिम्ब हैं।

प्रतीप अलकार द्वारा कवि-सम्प्रदाय-सिद्ध प्राकृतिक उपमानों का निरादर करते हुए जायसी पद्मावती के सौन्दर्य के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। अपने प्रिय रत्नसेन के पास गमन करते समय प्रकृति लज्जित सी हो जाती है।

पदमिनि गवन हंस गए दूरी। कुंजर लाज मेल सिर धूरी।
बदन देखि घट चंद समाना। दसन देखि के बीजु लजाना।
खंजन छपे देख के नैना, कोकिल छपी सुनत मधु बैना।
गीध देखि के छपा मयूरु, लंक देखि के छपा सुदूरु।
पहुँचहिं छपी कमल पीनारी, जध छपा कदली होइ बारी।[2]

जायसी के ग्रन्थ की मुख्य नायिका लौकिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों में पद्मावती ही है। उसके अलौकिक रूप लावण्य का कवि ने अद्भुत ढग से परम्परागत नख शिख वर्णन किया है। उन्होंने रूढिमुक्त उपमानों द्वारा भिन्न-भिन्न अलंकारों में उपमेय पद्मावती की शोभा का दिग्दर्शन कराया है। उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों की तो भरमार ही है, जहाँ कहीं कवि उपमान से भी अधिक उपमेय को महत्व देना चाहता है वहाँ प्रतीप और व्यतिरेक द्वारा प्रस्तुत को अप्रस्तुत से अधिक सुन्दर प्रदर्शित कर दिया

१ जायसी ग्रन्थावली पृ ४७
२ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ १५१

है, कहीं कहीं रूपक का आश्रय लेकर भी कवि ने पद्मावती के सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराया है।

सुभर सरोवर नयन वे, मानिक भरे तरंग।
आवत तीर फिरावहीं, काल भौंर तेहि संग।[१]

सजल नेत्र सरोवर रूप हैं, जिनकी उज्वलता मानिक और चंचलता तरंग है, पुतली काले भ्रमर हैं। नेत्रों का अप्रस्तुत सरोवर से सादृश्य दिखाकर कवि ने रूपक और तत्पश्चात केवल उपमान की व्यंजना द्वारा रूपकातिशयोक्ति का चमत्कार दिखाया है।

प्रकृति का अन्योक्ति रूप में भी जायसी ने प्रयोग किया है। भ्रमर और कमल की अन्योक्ति द्वारा रत्नसेन पद्मावती से प्रेम की याचना करता है—

भौंर जो पावे कँवल कँह, बहु आरति बहु आस।
भौंर होइ नेवछावरि, कँवल देइ हँसि बास।[२]

जिस प्रकार कमल प्रफुल्लित होकर अपने प्रेमी भ्रमर को सुरभि दान करता है उसी प्रकार पद्मावती से वह प्रसन्नता पूर्वक स्नेह-दान की अभिलाषा करता है।

जायसी पद्मावती के रूप में अलौकिकता का अनुभव करते हुए उसके सौन्दर्य के प्रभाव में अत्यधिक तीव्रता लाना चाहते हैं, फलतः कहीं कहीं वह वास्तविकता से हट जाते हैं। लौकिक पक्ष में तो इस प्रकार के अतिशयोक्ति-पूर्ण-वर्णन एक तमाशा सा बन जाते हैं, हाँ आध्यात्मिक-पक्ष में शेष प्रकृति उसी के सौन्दर्य से अनुरंजित प्रतीत होती है—

हंसत दसन अस चमके, पाहन उठे झरक्कि।
दारिउं सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि।[३]

प्रथम चरण में कवि ने अतिशयोक्ति द्वारा पद्मावती की दंत प्रभा से प्रभावित होकर पत्थर का उज्ज्वल (हीरा) हो जाना वर्णित किया है, और द्वितीय चरण में हेतूत्प्रेक्षा द्वारा, दाँतों की समानता में हीनता का अनुभव करके अनार के हृदय का विदीर्ण हो जाना उल्लेख किया है।

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ ४९
२ ,, ,, ,, १५१
३ ,, ,, ,, ५०

जायसी प्रकृति चित्रण के किसी भी रूप में आध्यात्मिक पक्ष का निर्वाह करना नही भूले हैं, इन्होंने पद्मावती और रत्नसेन के लौकिक पक्ष के आवरण मे अलौकिक प्रेम का वर्णन किया है, इनकी प्रेम कथा की समस्त घटनायें लोक-व्यापी रूप में घटित होती हैं; अतः प्रकृति में इन्होंने अपने अन्तर्तम की अनुभूतियों का ही सामंजस्य प्राप्त किया। मानव-कार्य-कलापों की पृष्ठ-भूमि अथवा सुखद एवं दुःखद स्थिति की ही अनुभूति इन्हें प्रकृति से मिली, प्रकृति के यथार्थ रूप की ओर इनका ध्यान ही नहीं गया, यही कारण है कि प्रकृति का आलंबन रूप में वर्णन हमें इनके काव्य में नहीं मिलता, जहाँ कहीं भी प्रकृति वर्णन का अवसर आया है जायसी केवल वस्तु परिगणन कराकर चुप हो गये हैं, इस प्रकार के वस्तुगत चित्रण से अर्थग्रहण तो हो जाता है किन्तु बिंबग्रहण नहीं होता। सिंहल द्वीप का वस्तुगत चित्रण देखिये—

फरे आम अति सघन सोहाए, जो जस फरे अधिक सिर नाए।
कटहर डार पींड सन पाके, बड़हर सो अनूप अति ताके।
बसहिं पखि बोलहिं बहु भाखा, करहिं हुलास देखि के साखा।
भोर होत बोलहिं चुहचूही, बोलहिं पाडुक "एकै तूही"[1]

इसी प्रकार उन्होंने अनेक प्रकार के फल के वृक्षों और विभिन्न पक्षियों के नामों की सूची दे दी है, इसमें कवि के हृदय का प्रकृति के प्रति लेश-मात्र भी उत्साह नहीं लक्षित होता, वर्णन में कहीं भी संश्लिष्टता नहीं है।

'पद्मावत' की कथा में प्रकृति चित्रण के अनेक अवसर आये हैं। चित्तौर से कलिंग तक की यात्रा में ही रत्नसेन को अनेक दुर्गम पर्वतों, सरिताओं और सुन्दर वनस्थलियों को पार करना पड़ा है, किन्तु जायसी अपने कथा-प्रसार में व्यस्त हैं मार्ग के सुन्दर-असुन्दर, आकर्षक-विकर्षक दृश्यों के प्रति वह उदासीन हैं मानव व्यापारों से संबधित प्रकृति का ही उन्होंने उल्लेख किया है।

परे आइ बन परवत माहा, दंडा करन बीझ बन जाहां।
सघन ढाक वन चहुँ दिसि फूला, बहु दुख पाव उहाँ कर भूला।
झाखर जहा सो छाडहुँ पथा, हिलगि मकोप न फारहु कंथा।[2]

इसमें कवि दंडकारण्य की भयकरता से प्रभावित हुआ है, किन्तु प्रकृति के प्रति हृदय के रागात्मक सम्बन्ध के कारण नहीं वरन मानव के सुख-दुख

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ १३
२ ,, ,, ,, ६५

से सम्बन्धित होने के कारण। झाखर और मकोय कवि की रागात्मक वृत्ति का स्पर्श नहीं करते, जायसी को इनका वर्णन केवल इसलिये करना पड़ा है क्योंकि वे मानव के कष्ट और असुविधा का कारण हैं, उन्हें डर है कि कहीं कांटों से वस्त्र जीर्ण शीर्ण न हो जायें। बसन्त खंड में बसन्त का वर्णन भी कवि ने प्रकृति के मनोरम रूप पर मुग्ध होकर नहीं, वरन मानव व्यापारों की पूर्वपीठिका के रूप में किया है वसन्त पचमी को महादेव के मंडप में पद्मावती और रत्नसेन के सम्मिलन को अधिक आकर्षक बनाने के लिये उन्हें बसन्त का पल्ला पकड़ना पड़ा है, किन्तु निम्न पंक्तियों में—

भएउ हुलास नवल ऋतु मांहा, खिन न सोहाइ धूप औ छाहां।[1]

कवि ने निजी निरीक्षण का परिचय दिया है। बसन्त में न अधिक शीत होता है और न अधिक उष्णता, कुछ क्षणों में ही धूप की उष्णता बुरी लगने लगती है और छाया में शीत का अनुभव होने लगता है। जायसी ने इसका स्वयं अनुभव करके उल्लेख किया है।

षट् ऋतु का वर्णन कवि ने यद्यपि पद्मावती और रत्नसेन के सुख सम्भोग की अभिवृद्धि के ही लिये किया है, तथापि उसमें कहीं कहीं कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय प्राप्त होता है,

चमक बीजु बरसे जल सोना, दादुर मोर सबद सुठि लोना।

में वर्षा ऋतु में विद्युत-प्रभा में चमकती हुई जल की बूंदों का वर्णन किया है। इसमें कवि का सूक्ष्म-निरीक्षण प्रतिभासित होता है। बारहमासे का वर्णन यद्यपि उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है और नागमती की वियोग गाथा से सम्बन्धित है, तथापि कहीं कहीं संश्लिष्ट चित्रण भी मिलता है, भाद्रपद के मास में प्रकृति चित्रण देखिए—

भा भादौं दूभर अति भारी, कैसे भरौं रैनि अँधियारी।
चमक बीजु, घन गरजि तरासा, बिरह काल होइ जीउ गरासा।
बरसे मघा झकोरि झकोरी, मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी।
पुरवा लाग भूमि जल पूरी, आक जवास भई तस झूरी।[2]

इसमें कवि ने पावस की अंधकार पूर्ण रात्रि, चपला की चमक मेघों की गर्जन आदि का परंपरागत वर्णन करते हुए सबको एकत्रित करके संश्लिष्ट-

१ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ ९३
२ ,, ,, ,, १७४

योजना कर दी है। जल पूरित पृथ्वी और झुलसे हुए आम तथा जवासे के पौधों के वर्णन से कवि का प्रकृति के प्रति रागात्मक सम्बन्ध प्रकट होता है।

प्रेमोपासक जायसी के प्रियतम प्रकृति में व्याप्त थे, इन्होंने समस्त चराचर प्रकृति में उसी की व्याप्ति का अनुभव किया, अलकार और उद्दीपन रूप में भी प्रधानता आध्यात्मिक पक्ष की ही रही, अतः इनके काव्य में प्रकृति में उपदेश और नीति की भावना का दिग्दर्शन नहीं है।

जायसी तथा अन्य प्रेम-मार्गी कवियों ने समस्त प्रकृति में अपने प्रेमास्पद का प्रतिबिम्ब देखा, इन्होंने अपने प्रियतम को अपने हृदय में व्याप्त तो पाया ही, साथ ही प्रेमाधिक्य और प्रेम की अनन्यता के कारण उसको समस्त जड़ और चेतन प्रकृति में व्याप्त देखा।

राम-भक्ति शाखा

मुसलमान शासकों के अत्याचारों से पीड़ित हिन्दू जनता निर्गुण ब्रह्म की उपासना में शान्ति लाभ न कर सकी। कबीर के शुष्क ज्ञानोपदेश से उनके मुरझाये हुये हृदय सुमन न खिल सके, हाँ, जायसी, कुतुबन, मंझन आदि प्रेम मार्गी सन्तों की प्रेम कथाओं द्वारा उनके निराश और उदासीन मन अवश्य कुछ बदले, किन्तु इन सब निर्गुणवादियों की उपासना लोकाचार एवं सामाजिक व्यवस्था की विरोधिनी थी। ज्ञान, वैराग्य और तर्क द्वारा इन्होंने ऐसे ब्रह्म का दिग्दर्शन कराया था जो आकार, गुण, आदि और अंत से रहित था, अतः हिन्दुओं के भटके हुये मन इस प्रकार के ब्रह्म में एकाग्र न हो सके फलतः कुछ ऐसे भक्त कवियों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने भगवान को 'विनाशाय च दुष्कृताम्' मर्त्य लोक में अवतरित किया और उन्हे लोक-धर्म, लोक-मर्यादा, लोक-रक्षण और सामाजिक-व्यवहारों का पालन करने में तत्पर दिखाया। भगवान को बाल-कौतुक और मानव-व्यापारों से पूर्ण हसते खेलते दिखाते हुए उनमें अपूर्व शक्ति और अनुपम रूप का दिग्दर्शन कराया। प्रभाव-स्वरूप हिन्दू जनता भगवान की रूप-माधुरी पर मुग्ध होती हुई उनके लोक रक्षक व्यापारों से प्रभावित होकर भक्ति सरोवर में निमग्न हो गई भगवान के लोक रक्षक और मर्यादावादी रूप का दिग्दर्शन राम भक्त कवियों ने और मनोमुग्धकारी मधुर रूप का चित्रण कृष्णोपासक कवियों ने किया।

राम-भक्ति-शाखा के प्रवर्तक रामानन्द थे, इन्हीं की राम-भक्ति परंपरा में तुलसीदास की मधुर वाणी प्रस्फुटित हुई और उनके मृदु मंजु घोष ने समस्त उत्तरी भारत को भक्ति रस में निमग्न कर दिया। मानव जीवन व्यापिनी प्रत्येक परिस्थिति का अवतार राम के जीवन से सम्बन्ध दिखाते हुए अपने रामचरितमानस को इन्होंने लोक प्रिय बना दिया। इनके मानस मार्तण्ड की तुलना में अन्य राम-भक्त काव्यकारों के ग्रन्थ दीपालोक के समान ही प्रतिभासित हुए।

तुलसी राम के भक्त थे, इन्होंने 'स्वान्तः सुखाय' राम का गुण गान किया। अपने इष्टदेव राम को इन्होंने इस लोक में मानव क्रियाएँ करते देखा, अतः मानव और प्रकृति का सम्बन्ध स्थापित हो गया। राम पदांकित वन, नगर, ग्राम आदि सब इनके अनुराग और भक्ति का विषय हो गये। वन में चित्रकूट इनके आराध्य का निवास-स्थान होने के कारण इनका विशेष प्रिय हुआ और भावों की गंभीरता में इनके हृदय से निकला।

'चल चित चैत चित्रकूटहि चलु'

अपने उपास्य का निवास-स्थान चित्रकूट, भक्ति और प्रेम के आवेश में उनको अत्यन्त प्रिय प्रतीत हुआ। उसके दर्शन से वह मानमग्न हो गये। हृदय में स्नेह और आनन्द की तरंगें उठने लगीं और वह अपनी आनन्दानुभूति को इस प्रकार अभिव्यक्त करने लगे।

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
वरषा ऋतु प्रवेस विशेष गिरि देखत मन अनुरागत ॥१॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रंग मगे सृङ्गनि।
मनहुं आदि अंभोज विराजत सेवित सुर मुनि भृङ्गनि ॥२॥
सिखर परसि घन घटहिं मिलति बग पांति सो छबि कवि बरनी।
आदि वराह बिहरि वारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ॥३॥
जल जुत विमल सिलनि झलकत नभ बन प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहु जग रचना विचित्र बिलसति विराट अग अंग[१] ॥४॥

इसमें तुलसीदास ने मेघ, पर्वत और बक-पंक्ति का केवल परिगणन ही नहीं कराया है अपितु इन सब की संश्लिष्ट योजना द्वारा एक मनोरम दृश्य उपस्थित कर दिया है। जल पूर्ण मेघों के लिये 'जलद' शब्द का प्रयोग करके

१ गीतावली अयोध्याकांड ५०

'स्याम' विशेषण द्वारा अपने स्वतः निरीक्षण का परिचय दिया है। इस चित्रण से पाठक के सन्मुख गेरु से रगे पर्वतों, श्यामवर्ण मेघों से ढके हुए पर्वत शिखरों और श्वेत बक-पक्ति का चित्र खिंच जाता है और बिम्बग्रहण द्वारा पाठक काव्यानद का अनुभव करता है। वर्षा ऋतु में शिलाओं के ऊपर जल एकत्रित हो जाता है और उस जल में आकाश तथा वन का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है इसका वर्णन कवि ने अंतिम दोनों पंक्तियों में किया है, इस चित्रण में कवि का स्वतः निरीक्षण और प्रकृति के प्रति अनुराग प्रकट होता है। इनके सूक्ष्म निरीक्षण का एक और चित्र देखिये—

पुरइनि सघन ओट जल, वेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुन ब्रह्म[1] ॥५०॥

पंपा-सरोवर में कमलिनी छाई हुई है दूर से देखने पर उसके पत्ते ही दिखाई देते हैं जल नहीं दिखाई देता, कवि ने स्वय उसका अवलोकन किया है और अपने अनुभव द्वारा प्राप्त प्रकृति-ज्ञान को आध्यात्मिक रूप में दृष्टात स्वरूप वर्णन कर दिया है केशव ने भी पंपासर का वर्णन किया है,

सुन्दर सेतु सरोरुह में करहाटक हाटक की द्युति सोहै।[2]

इसमें श्वेत कमल की बीच की छतरी को स्वर्ण से भी अधिक द्युतिमान वर्णन किया है कवि अपने हाटक शब्द मे यमक का चमत्कार दिखाने में अधिक व्यस्त दिखाई देता है, कमल अथवा पम्पा सरोवर के प्रति उनका अनुराग नहीं प्रकट होता।

तुलसीदास ने अधिकतः प्रकृति-चित्रण में वस्तु परिगणन की शैली का उपयोग किया है, प्रकृति की प्रत्येक वस्तु के नाम गिनाकर उनका विश्लेषणात्मक चित्रण करके पाठक को अर्थ ग्रहण कराते हुए पम्पा-सरोवर के तट का चित्रण देखिये,

चम्पक बकुल कदंब तमाला, पाटल पनस परास रसाला।
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना, चचरीक पटली कर नाना।
सीतल मद सुगध सुभाऊ, सतत बहइ मनोहर बाऊ।[3]

१ रामचरित मानस अरण्यकांड दोहा ५०
२ रामचद्रिका पृष्ठ ८९
३ रामचरित मानस अरण्यकांड ५०

इसमें कवि ने पम्पातीरवर्ती वस्तुओं के नाम गिनाकर शीतल मन्द सुगंध वायु का यथा तथ्य चित्रण किया है, कवि तटस्थ है। केशव ने भी तपोवन का उसी प्रकार वर्णन किया है,

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मञ्जुल बंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं।[1]

तुलसी की भांति केशव ने अयोध्या और मिथिला के बीच के वन में तमाल, तिलक, नारियल, एला, लवंग आदि के नाम गिना दिये हैं, वह वस्तु परिगणन की धुन और अनुप्रास की छटा दिखाने में इतने व्यस्त हो गये हैं कि देश और काल का ध्यान रखना भी भूल गये हैं। नारियल पूर्व भारत में और एला तथा लवंग दक्षिण भारत में उत्पन्न होने वाले वृक्षों के नाम वह उत्तर भारत में गिना गये हैं। गोस्वामी जी के चित्रण में हमें इस प्रकार की त्रुटि नहीं मिलती। इसके यथातथ्य चित्रण में यद्यपि कवि की निरपेक्षता और तटस्थता व्यक्त होती है, किन्तु उसमें प्रत्यक्ष दर्शन का आभास प्राप्त होता है, पुस्तकों द्वारा उपलब्ध ज्ञान के आधार पर वर्णित, देश काल की त्रुटि से पूर्ण वर्णन नहीं है।

गोस्वामी जी प्रकृति के कवि नहीं थे। वह तो राम की भक्ति और प्रेम के प्रतिष्ठापक थे "सबै मानिये राम के नाते" के अनुसार प्रकृति भी राम के नाते ही उनसे कुछ सम्बन्ध रखती थी, अन्यथा समस्त प्राकृतिक व्यापार उनके लिये निरर्थक थे। अतः भक्ति के आवेश में ही वह कहीं-कहीं प्रकृति का सश्लिष्ट चित्रण कर गये हैं नहीं तो वह प्रकृति से निरपेक्ष थे यही कारण है कि प्रकृति वर्णन में उन्होंने अधिकांशतः प्रचलित परिपाटी का ही अनुशीलन किया। चमत्कार प्रदर्शन के रुप में उनका प्रकृति वर्णन देखिये,

बिटप बिसाल लता अरुझानी। विविध बितान दिये जनु तानी।
कूजत पिक मानहुं गज माते, ढेक महोख ऊंट बिसराते।
रथ गिरि सिला दुदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना।[2]

कवि ने बसन्त के वृक्ष, लता, पक्षी और गिरि-शिला का कामदेव की सेना से रूपक बांधा है। तुलसी श्लेष और रूपक का चमत्कार दिखाते हुए बसन्त

१ रामचंद्रिका पृष्ठ १४
२ मानस अरण्यकांड ४८

का विशद वर्णन करते चले गये हैं। तुलसी के पश्चात केशव तो चमत्कार-प्रदर्शन में इतने अधिक व्यस्त होगये हैं कि प्रस्तुत अप्रस्तुत के रूप और प्रभाव के साम्य का भी निर्वाह नहीं कर पाये हैं। श्लेष की योजना में बैर उन्हें प्रलय काल के सूर्य के समान भयंकर लगते हैं उनके काव्य में शब्द सौन्दर्य की ही भावना व्यंजित होती है।

प्रकृति का यथातथ्यचित्रण गोस्वामी जी ने आगामी घटना की पृष्ठ भूमि के रूप में भी किया है। श्रीराम को जगाने के लिये माता कौशल्या प्रातःकाल के दृश्य का वर्णन करती है,—

भोर भयो जागहु रघुनन्दन[1]

ससि कर हीन, छीन दुति तारे। तमचुर मुखर सुनहु मेरे प्यारे। ॥२॥
विकसित कंज कुमुद बिलखाने। लै पराग रस मधुप उडाने। ॥३॥

इसमें प्रातःकाल सूर्योदय होने पर घटित होने वाले प्राकृतिक व्यापारों का चित्रण है, शशि और नक्षत्रों की प्रभा क्षीण होगई है, पक्षिगण कलरव करने लगे हैं, कमल प्रफुल्लित होगये हैं और कुमुद संकुचित होगये हैं, भ्रमर पराग-रस का पान करके उड़ रहे हैं, इन सब का वर्णन कवि ने श्रीराम को जगाने के हेतु किया है, वर्णन यथातथ्य और स्वाभाविक है।

भक्ति-सरोवर में मग्न तुलसीदास अपने इष्टदेव के गुण-गान में ही लीन रहे, उनके काव्य में राम पदांकित वन-भूमि और पर्वत आदि ही स्थान पासके, प्रकृति का स्वतन्त्र रूप में चित्रण उन्होंने नहीं किया। राम से सम्बंधित होने के कारण प्रकृति अपने सौम्य रूप में ही उनके सम्मुख आई, अतः प्रकृति का उग्र रूप उनके काव्य में लक्षित नहीं होता। केवल सीता को राम का अनुगमन करने से रोकने के लिये, वन के कष्ट तथा भयंकरता का वर्णन किया गया है। राम सीता से कहते हैं,—

कुश कंटक मग ककर नाना। चलत पयादेहि बिनु पद त्राना।
कन्दर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे।
लागइ अति पहार कर पानी। विपिन विपति नहिं जाइ बखानी।
व्याल कराल बिहंग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा।[2]

१ गीतावली बालकांड ३६
२ मानस अध्योयाकांड ६४

वन मार्ग के कुश-कंटकों का वर्णन करते हुये तुलसीदास कन्दरा, खोह और नदी को अगम तथा अगाध उल्लेख करते हैं, और 'न जाहिं निहारे' द्वारा उनके भयोत्पादक प्रभाव को तीव्र करते हैं 'पहाड़ का पानी लगता है' इससे उनका स्वानुभव व्यक्त होता है और प्रकट होता है कि विकट वस्तुओं का वर्णन परम्परायुक्त अथवा काव्याध्ययन द्वारा उपलब्ध नहीं है।

तुलसीदास ने अपने इष्टदेव राम का अत्यन्त मर्यादित शृंगार-वर्णन किया है। उनके राम लोक मर्यादा का पालन करते हुए, धर्म-संस्थापन और दुष्टदलन के हेतु अवतरित हुए थे। सीता तुलसी की भक्ति भावना के अनुसार जगज्जननी थीं। अतः इनकी शृंगार भावना बहुत मर्यादित रही। विवाह के पूर्व इन्होंने सीता-राम का मिलन दिखाया है। पुष्पवाटिका में सीता राम की छवि को देखकर मुग्ध हो जाती हैं और उनकी मूर्ति हृदय में बसा लेती हैं "धरि बड़ि धीर राम उर आने" राम भी अपने मन में सीता का चारु चित्र अंकित कर लेते हैं, किन्तु प्रकृति इनके इस आकस्मिक संयोग और पारस्परिक आकर्षण में उद्दीपन के रूप में नहीं आती, क्योंकि राम लक्ष्मण सहित हैं। और सीता सखियों के साथ। दोनों ओर संकोच, लज्जा और मर्यादा का पूर्ण प्रतिपालन है सीता को सखियों ने राम का दर्शन कराया, "लता ओट तब सखिन लखाये श्यामल गौर किसोर सुहाये" सीता ने राम को लताओं की ओट से लता भवन से प्रकट होते हुए देखा, इस प्रकार प्रकृति राम के सौन्दर्य वर्द्धन में सहायक हुई और सीता, राम के रूप से प्रकृति से सम्बन्धित होने के कारण अधिक प्रभावित हुईं, किन्तु दोनों की चेष्टायें मर्यादित ही रहीं, उनमें किसी प्रकार की अमर्यादित चेष्टा का प्रकाशन नहीं हुआ। अतएव दाम्पत्य रति के अन्तर्गत संयोग शृंगार में प्रकृति का उद्दीपन रूप में प्रयोग इनके काव्य में नहीं है। राम के जन्मोत्सव पर अवध में आनन्द मनाया जा रहा है, सभी अत्यन्त प्रसन्न हैं, प्रकृति का सुखद् वातावरण अयोध्यावासियों को और भी अधिक आनंदित करता है,

चैत चतुरदसि चाँदनी, अमल उदित निसिराज।
उडुगन अवलि प्रकासहीं, उमँगत आनंद आज।[१]

चैत्र चतुर्दशी का निर्मल चन्द्र और नक्षत्रगण राम जन्मोत्सव से प्रफुल्लित अवध्य निवासियों को और भी अधिक आनंदमग्न बना देता है, वे प्रसन्न होकर जन्मोत्सव मनाते हैं।

---

१ गीतावली पृष्ठ १५

प्रिय के सामीप्य का सुख अनिर्वचनीय होता हैं, प्रिय सहवास में समस्त कष्ट सरल हो जाते है और दुःख सुख मे परिवर्तित हो जाता है। सयोग सुख की आनन्दानुभूति और हार्दिक उल्लास कष्ट-कटकों को हसते हंसते पार कर देते हैं, प्रकृति का दुःखद वातावरण भी सुखद ही प्रतीत होता है,

खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम परन साल सुख मूल।[1]

राम के सयोग में, सीता के लिये वन के पशु पक्षी परिवार के समान, वलकल चीर रेशमी वस्त्रों के समान, और पर्णशाला सुर सदन के समान सुख दायिनी हो जाती है, प्रिय का सहवास समस्त संकटों को सुगम कर देता है।

वियोग में मनःस्थिति विषम होने के कारण समस्त सुखद वस्तुओं का प्रभाव भी विपरीत ही होता है सयोग में आमोद बढ़ाने वाली प्राकृतिक वस्तुऐं वियोग में दुःख की वृद्धि करती हैं। जिस उषःकाल से माता कौशल्या का वात्सल्यपूर्ण कोमल हृदय आनन्द विभोर हो जाता था और वह अपने प्रिय पुत्र को स्नेह-पूर्वक जगाती थीं, "भोर भयो जागहु रघुनन्दन" वही भोर राम के बन को चले जाने पर उन्हे और प्रकार का प्रतीत होता है, वह अत्यन्त व्यथा से कहती हैं, "आजु को भोर, और सो, माई" मन की दुःख दशा में प्रकृति का सौम्य सुन्दर रूप भी आकर्षक नहीं प्रतीत होता वरन अतीत की स्मृति को और अधिक सजग कर देता है।

वियोग दशा में, दुःख के आधिक्य में मनुष्य की मति भ्रम में पड़ जाती है, वियोगी अपने प्रिय की स्मृति में इतना अधिक तल्लीन रहता है कि उसे प्रकृति का मनोमुग्धकारी रूप भी प्रफुल्लित नहीं करता, वह अर्द्धचेतना वस्था में विश्व की प्रत्येक वस्तु के प्रति विरक्त और उदासीन हो जाता है। विरहाधिक्य की इसी अवस्था में राम वियोगिनी सीता को चन्द्रिका में धूप का भ्रम होता है और सारा संसार उन्हें उस धूप से जलता हुआ सा प्रतीत होता है।

इहकु न है उजियरिया, निसि नहिं घाम।
जगत जरत असु लागु, मोहि बिनु राम।

बरवै रामायण ॥३७॥

---

२ मानस अयोध्याकांड दो० ६६

शीतल चन्द्र ज्योत्स्ना वियोगिनी सीता के हृदय को दग्ध करती है, उन्हें वह धूप के समान प्रतीत होती है और समस्त संसार को दग्ध करती हुई सी लगती है। सीता के वियोग में श्रीराम पर भी प्रकृति के सुन्दर एवं सुखद पदार्थों का विपरीत प्रभाव होता है।

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू।
कुवलय विपिन कुन्त बन सरिसा। वारिद तपत तेल जनु बरिसा।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा।[1]

वृक्षों के नवांकुर अग्नि के समान, रात्रि काल-रात्रि के समान, चन्द्र तप्त सूर्य के समान, कमल भालों के बन के समान, वारि बुन्द तप्त तेल के समान भयंकर प्रतीत होती है, उन्हें यह विचार कर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि सीता के सहवास में हितु रहने वाली समस्त प्राकृतिक वस्तुऐं अब पीड़क क्यों प्रतीत होती हैं।

वियोगावस्था में अपने प्रिय की प्रिय वस्तु कभी सान्त्वना देती और कभी उसकी स्मृति को और भी सजग कर देती है। माता कौशल्या अपने प्रिय पुत्र के पालित पशु पक्षियों को देखकर राम की स्मृति में मग्न हो जाती हैं और जब वह देखती हैं कि पशु-पक्षी भी राम वियोग में विकल हैं तो उनकी पीड़ा और भी बढ़ जाती है, वह कहती हैं—

जिनके बिरह विषाद बटावन खग मृग जीव दुखारी।
मोहि कहा सजनी समुझावति, हौं तिन्ह की महतारी।[2]

जब राम के वियोग में खग मृग तक दुःखी हैं तो माता के कष्ट का तो वर्णन ही क्या किया जा सकता है। अपने प्रिय के रूप, आकृति अथवा गुण का साम्य रखने वाली वस्तुएँ भी वियोग में प्रिय के समान ही सुखद होती हैं। तुलसी के राम सीता हरण के पश्चात् सुन्दर अंगों के कवि-समय सिद्ध उपमानों को देखकर अत्यन्त दुखी होते हैं,

बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।[3]

---

१ मानस सुन्दरकांड २५
२ गीतावली अरण्यकांड ८५
३ मानस अरण्य कांड ३९

वह सीता की भौं, चाल और जघा आदि के उपमान धनुष, हंस, हाथी और केले के वृक्ष को देखकर अत्यन्त व्याकुल होते हैं, प्राकृतिक उपमान उन्हें सीता की स्मृति में व्यग्र बना देते है।

उद्दीपन रूप मे तुलसी ने ऋतुओं का भी उल्लेख किया है। श्री राम के राज्य मे प्रत्येक ऋतु अवध में आनन्द और सुख की वृष्टि करती है, सुख और समृद्धि का साम्राज्य है किन्तु वर्षा और वसन्त विशेष रूप से अयोध्यावासियों को सुखद प्रतीत होती हैं वर्षा का वर्णन देखिये :—

> वीर बहूटी विराजहीं, दादुर धुनि चहुँ ओर।
> मधुर गरजि घन बरषहिं, सुनि सुनि बोलत मोर।
> बोलत जो चातक मोर, कोकिल कीर पारावत घने।
> खग विपुल पाले बालकनि, कूजत, उडात सुहावने ॥[1]

सुख और संयोग के उस वातावरण में, वर्षा का रम्य रूप और भी सुन्दर प्रतीत होता है, जीव जन्तु तथा पक्षी सभी उल्लसित लगते और भीमकाय मेघों की गम्भीर गर्जन भी मधुर लगती है, किन्तु वियोग के कारण मन की अव्यवस्थित दशा में मेघ गर्जन राम के हृदय में भय का संचार कर देता है। उन्हे यहां कहना पड़ता है,

> घन घमड नभ गरजत घोरा,
> प्रिया हीन डरपत मन मोरा।[2]

मन की व्यथित अवस्था में प्रकृति का प्रभाव विपरीत ही प्रतीत होता है। इसी प्रकार बसन्त का सौन्दर्य भी उन्हे विकल बना देता है। बसन्त के नाना प्रकार के वृक्ष उन्हें कामदेव के वीर सैनिक, और पक्षी सेना के हाथी-घोड़ों के समान प्रतीत होते हैं। वसन्त का सुन्दर रूप उनमे भय और आशका उत्पन्न करता है, वह कामोतप्त होकर लक्ष्मण से कहते हैं,

> बिरह विकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल।
> सहित विपिन मधुकर खग, मदन कीन्हि बग मेल।[3]

विरह-व्यथित राम को विपिन, मधुकर, खग, मृग आदि सभी प्राकृतिक पदार्थ और जीव काम पीड़ित करते हैं। वह सीता की अनुपस्थिति में विवश भाव

१ गीतावली उत्तरकांड ॥१९॥२॥

२ मानस किष्किंधा कांड

३ मानस अरण्य कांड ॥४६॥

से उदासीन होकर बैठे रह जाते हैं, बसन्त के भव्य रूप के प्रति उन्हें विरक्ति और विकर्षण होता है किन्तु संयोगावस्था में, अयोध्या में वही बसंत अतीव सुन्दर प्रतीत होता है और प्रत्येक नर-नारी में उल्लास एवं स्फूर्ति का आविर्भाव कर देता है।

> वन उपवन नव किसलय, कुसुमित नाना रंग।
> बोलत मधुर मुखर खग, पिकवर, गुंजत भृंग!
> नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु।
> देखि राम छबि अतुलित उमगत उर अनुराग[1]।

बसंत का सुन्दर वातावरण उन्हें आनंदित करता है और हर्षातिरेक में वे सब फाग खेलने चल देते हैं, प्रकृति उनको उत्तेजित करती है, इसी भांति वर्षा की फुहारें उन्हें हिंडोले में झूलने के लिये प्रेरित करती है।

इस प्रकार तुलसी ने यद्यपि उद्दीपन रूप में प्रकृति का उपयोग किया है किन्तु उसमें कवि का विशेष उत्साह लक्षित नहीं होता, इनके काव्य में प्रकृति सदा राम से सम्बन्धित रही है,,राम की सम्बन्ध भावना से इन्होंने प्रकृति को सुखद अथवा दुःखद अर्थात् भव्य एवं विकराल रूप में देखा है,अतः राम का स्थान सदा विशिष्ट रहा है और प्रकृति को गौण स्थान ही मिला है।

मानवीकरण में मनुष्य का शेष सृष्टि के साथ ऐसा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि वह जड़ और चेतन सब में मानव भावनाओं का सा आदान-प्रदान प्राप्त कर लेता है। कवि प्रकृति में कभी उल्लास, कभी उत्साह, कभी आनन्द और कभी शोक की छाया देखता है। प्रकृति उसकी मानसिक अवस्था के साथ पूर्ण सहयोग प्रदान करती सी प्रतीत होती है। वियोगावस्था में तो प्रकृति कभी संवेदना प्रकट करती है, कभी खीझ उत्पन्न करती और कभी भयभीत बना देती है। इस प्रकार कवि अपनी मनः स्थिति के अनुसार प्रकृति में मानव भावनाओं का आरोप तो कर ही लेता है साथ ही उसमें मानव क्रियाओं का भी अवलोकन करता है।

तुलसी ने जड़ और चेतन प्रकृति में मानव व्यापार का सुन्दर दिग्दर्शन कराया है।

---

१ गीतावली उत्तर कांड २३

आलो हो इन्हहिं बुझावों कैसे ?
लेत हिये भरि भरि पति को हित, मातु हेतु सुत जैसे।
बार बार हिहिनात हेरि उत, जो बोले कोउ द्वारे।

... ...

लोचन सजल सदा सोवत से खान पान बिसराए।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम सुरति उर आये ॥८६॥[1]

राम के वियोग में घोड़ों की यह दशा है कि वे खाना-पीना भूलकर उदास और सजल नेत्र रहते हैं, राम का नाम सुनकर चौंक कर देखने लगते हैं, इस प्रकार सजीव प्रकृति में हमें मानव के प्रति प्रेम के भाव लक्षित होते हैं, किन्तु तुलसी की दृष्टि पशु पक्षियों तक ही सीमित नहीं रही है उन्होंने जड़ प्रकृति को भी मानव के सुख में हसते और दुःख में मलिन होते हुए देखा है। सीताहरण के पश्चात् विषाद और दुःख से पूर्ण प्रकृति का चित्रण देखियेः—

सरित जल मलिन, सरनि सूखे नालन,
अलि न गुजत, कल कूंजे न मराल
तरु जे जानकी लाये, ज्याये हरि करि कपि,
हेरें न हुंकरि, झरे फल न रसाल।[2]

सीता विरह में सरिताओं का जल मलिन हो गया, सरोवर सूख गये और पक्षियों ने अपना कल कूजन बन्द कर दिया, रसाल के फल भी नहीं झड़ते। चेतन प्रकृति में तो हर्ष, शोक, प्रेम की भावना विद्यमान रहती ही है, किन्तु सरिता,वृक्ष आदि का शोकानुभव करना तो वास्तविक तथ्य नहीं है, मानव को अपने मन अव्यवस्थित दशा के कारण और प्रकृति के प्रति रागात्मक सम्बन्ध होने के कारण इस प्रकार की संवेदना प्रकृति में प्राप्त होती है और अपनी मानसिक स्थिति का प्रतिविम्ब उसे प्रकृति में दृष्टिगोचर होता है, कवि इस वास्तविक तथ्य को कल्पना से रंजित कर उसे नवीन रूप प्रदान कर काव्य में वर्णन कर देता है। तुलसी के राम का वियोग इतना व्यापक हो जाता है कि उससे जीव और वृक्ष आदि ही नहीं वरन समस्त पृथ्वी ही व्याप्त हो जाती है।

---

१ गीतावली अयोध्या कांड ॥८६॥

२ गीतावली अरण्य कांड

सुनि पितु बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हे ।
अजहुं अवनि बिदरत मिस, सो अवसर सुधि कीन्हें ॥१२॥[1]

राम के वन गमन का दृश्य इतना अधिक करुणोत्पादक था कि उनके स्मरण से पृथ्वी का हृदय दरार के बहाने से अब भी विदीर्ण हो जाता है। जायसी ने भी इसी प्रकार का वर्णन किया है।

सरवर हिया घटत नित जाई, टूक टूक होइ के बिहराई।

किन्तु तुलसी के वर्णन में संवेदना अधिक लक्षित होती है और जायसी के में स्वानुभव, पृथ्वी में मानव भावों की कल्पना दोनों के चित्रण में समान ही है।

अलंकार

तुलसी ने मानव सौन्दर्य के उपमान के रूप में प्रकृति का बहुत अधिक उपयोग किया है। इनके द्वारा प्रयुक्त उपमान अधिकतः परम्परानुगत ही हैं। किन्तु उनका प्रयोग इतनी कुशलता से किया गया है कि वे कवि के निजी से ही प्रतीत होते हैं। इनके अलकार कहीं तो भावों के उत्कर्ष में सहायक होते है और कहीं अप्रस्तुत के रूप, गुण और क्रिया के प्रभाव में तीव्रता उत्पन्न करते हैं। निम्नांकित पंक्तियों में उपमा और रूपक अलकारों द्वारा उपमेय और उपमान में क्रिया और गुण का सादृश्य कितने आकर्षक रूप में दिखाया है,

सभा सरवर लोक कोकनद कोकगन प्रमुदित मन देखि दिन मनि भोर हैं।
अबुध असैले मन मैले महिपाल भये, कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं।[2]

जनक सभा श्रेष्ठ सरोवर के समान है, मनुष्य कमल और चकवा चकवी के तुल्य हैं जो राम रूप सूर्य को देखकर प्रसन्न हैं किन्तु ईर्ष्यालु महिपाल जो उल्लू और चकोर के समान हैं, राम रूप सूर्य को देखकर उदास हो गये हैं, इसमें गुण और प्रकृति का तो साम्य है ही, साथ ही हर्ष और संकोच का उत्कर्ष भी प्रकट किया गया है, उसी भाँति क्रिया का भी सादृश्य व्यक्त किया गया है।

भावों का उत्कर्ष दिखाने के लिये तुलसी ने कहीं कहीं नवीन उपमानों का भी प्रयोग किया है।

जनक बचन छुए बिरवा लजारु के से।
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ के ॥[3]

१ गीतावली अयोध्या कांड ॥१२॥

२ गीतावली बालकाण्ड

३ " " ॥ ॥८४

जनक के ये शब्द 'बरनि सिधारिये, सुधारिये आगिलो काज' सुन कर सब महीपति छुई मुई के पौधों के समान सिर झुकाकर रह गये। इसमें भूपतियों में लज्जा का उत्कर्ष तो दिखाया ही गया है, साथ ही कवि की नवीन उद्भावना का भी परिचय मिलता है। तुलसी ने कवि परम्परा प्राप्त उपमानों का प्रयोग करते हुए इस बात का ध्यान रखा है कि उपमेय उपमान में अधिकाधिक सादृश्य प्रकट हो। रंग भूमि में श्याम गौरांग राम लक्ष्मण का कमल, कनक मरकत, और घन दामिनी से साम्य प्रकट करते हुए उन्होंने उपमा का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है।

नील पीत नीरज कनक मरकत घन दामिनि बरन तनु, रूप के निचोरे हैं[1]

नील पीत नीरज द्वारा राम लक्ष्मण के श्याम-गौर वर्ण और सौकुमार्य का तो सादृश्य है ही, साथ ही नीरज शब्द निर्मलता का भी द्योतक है, इसी भाँति उत्प्रेक्षा का भी प्रयोग देखिये।

श्रवन अधर सुन्दर, द्विज छवि अनूप न्यारी।
मनहुँ अरुन कंज कोस मंजुल जुग पांति प्रसव,
कुंद कली जुगल जुगल परम सुभ्र बारी।[2]

बालक राम के दांत ऐसे प्रतीत होते हैं मानों अरुण कमल के बीच में अत्यन्त शुभ्र वर्ण कुन्दकली की दो दो पंक्तियाँ हों, इसमें यद्यपि मुख और दाँत के उपमान कमल और कुन्द दोनों ही कवि समय सिद्ध हैं, किन्तु तुलसीदास ने उनको इस प्रकार से प्रयुक्त किया है कि वे उनके निजी निरीक्षण द्वारा उद्भूत से प्रतीत होते हैं।

सादृश्य मूलक अलंकारों में तुलसी ने रूपकालंकार का बड़ा सुन्दर निर्वाह किया है कहीं कहीं तो सांग रूपक में प्रकृति का पूरा दृश्य ही चित्रित कर दिया है।

उदित उदय गिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग।
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी, बचन नखत अवली न प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने, कपटी भूप उलूक लुकाने।
भये बिलोक लोक मुनि देवा, बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा।[3]

१ गीतावली बालकांड ॥७३॥
२ ,, ,, ॥२५॥
३ मानस बालकांड ॥२८७॥

मंच रूप उदयाचल पर राम रूप बाल सूर्य उदित हुआ, उस समय संत रूपी कमल खिल गये और उनके नेत्र रूप भ्रमर हर्षित हुए। अभिमानी भूपतियों की सीता को प्राप्त करने की आशा रूपी रात्रि नष्ट हो गई और उनके वचन रूप नक्षत्र छिप गये। मानी नरपति उस राम रूप सूर्य को देखकर कुमुद और उल्लू की भाँति कुम्हलित हुए और चकवा-चकवी रूप मुनि तथा देवगण प्रसन्न हुए। इस रूपक में कवि ने धनुष तोड़ने के लिये मंच पर खड़े हुए, रामचन्द्र के साथ प्रातःकाल का सांगोपांग निरूपण कर दिया है और रूपक का निर्वाह इस प्रकार किया है कि पाठक के हृदय पट पर मंच पर खड़े हुए राम और प्रातःकाल उदित होते हुएसूर्य दोनों के चित्र अंकित हो जाते हैं, उसे इस अलंकार-योजना द्वारा केवल अर्थ बोध ही नहीं होता वरन प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का बिंब ग्रहण हो जाता है।

शारीरिक कान्ति के लिये दीप शिखा कवि समयानुसार प्रसिद्ध उपमान है, तुलसी ने इस उपमान का प्रयोग किया है और रूपक अलंकार द्वारा क्रिया का अनुभव कराने के लिये नवीन रूप प्रदान किया है।

बाल केलि बात बस झलकि झलमलत,
सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है[1] ॥१०॥

बाल राम ऐसे जान पड़ते हैं मानो शोभा की दीवट पर रूपमय दीपक बाल-केलि रूप वायु के झकोरों से झिलमिला रहा हो, इस परम्परागत उपमान में भी कवि का अपना निरीक्षण प्रतिभासित होता है, कवि स्वयं वायु के झकोरों से झिलमिलाती दीप शिखा से प्रभावित हुआ है, और उस स्वानुभव को बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से राम के सौन्दर्य वर्णन में प्रयुक्त कर दिया है।

कभी कभी तुलसी अपने आराध्य सीताराम के सौन्दर्य से इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि उस अनुपम रूप द्वारा उपमान का निरादर करके प्रतीप अलंकार का प्रयोग करते हैं और उपमेय को उपमान से श्रेष्ठ ठहराते हैं।

सोहत सहज सुहाये नैन।
खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कवि देन ॥३५॥

राम के नेत्रों की तुलना में कवि को प्राकृतिक उपमान खंजन, मत्स्य और कमल अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार अलंकार द्वारा वह सीता के मुख को प्रसिद्ध उपमान चन्द्र से श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं।

---

१ गीतावली बालकांड।

जनम सिंधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंकु।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द्र बापुरो रंकु ॥२७०॥

सीता के मुख से चन्द्र का निरादर कराया गया है क्योंकि चन्द्र का जन्म खारी सागर से हुआ है, उसका बंधु विष है, दिन में वह मलिन हो जाता है और कलकी है, किन्तु सीता का मुख तो इन सब दुर्गुणों से रहित है। अतः चन्द्र से श्रेष्ठ है; इस प्रकार उन्होंने अप्रस्तुत में अपकर्ष दिखाकर प्रस्तुत की श्रेष्ठता सिद्ध करदी है। इसी भाँति वह शरद कमल को अनुपयुक्त मानते हैं:—

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाय ॥३॥[1]

सीता का मुख कमल के समान कैसे कहा जा सकता है जबकि कमल रात्रि में संकुचित हो जाता है और मुख रात्रि-दिवस प्रफुल्लित रहता है। कमल के अपकर्ष और मुख के उत्कर्ष द्वारा उन्होंने प्रस्तुत के अनुपमेय सौन्दर्य का वर्णन किया है।

कहीं कहीं पर तुलसी ने प्रसिद्ध प्राकृतिक उपमानों द्वारा रूपकातिशयोक्ति अलंकार में उपमेय का बोध कर दिया है।

खंजन सुक कपोत मृग मीना, मधुप निकर कोकिला प्रबीना।
कुंद कली दाड़िम दामिनी, कमल सरद ससि अहि भामिनी।
वरुन पास मनोज धनु हंसा, गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।[2]

इसमें सीता के सुन्दर नेत्र, नासिका, ग्रीवा, केश, वाणी, दाँत, कान्ति, मुख, चोटी, नाभि, भ्रू और गति आदि के परम्परागत प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग किया है। उपमेयों का वर्णन कवि ने नहीं किया उपमानों से ही पाठक को उपमेयों का बोध हो जाता है।

गोस्वामी जी कहीं कहीं तो कवि प्रसिद्धि के अनुसार प्राकृतिक उपमानों को उपमेय के साथ रखकर सादृश्य प्रकट करते गये हैं और कहीं उन्होंने अपने रागात्मक सम्बन्ध द्वारा उन्हीं उपमानो को नवीन बनाकर रूप-छटा के प्रभाव को तीव्र कर दिया है।

---

१ बरवै रामायण बालकांड।
२ मानस अरण्य कांड २९।

जब वह भक्ति के आवेश में परम्परा भुक्त उपमानों का अपने इष्ट देव के सुन्दर शरीरांगों के लिये प्रयोग करते चले जाते हैं, तो प्रकृति के प्रति उनका रागात्मक सम्बन्ध नहीं व्यक्त होता। किन्तु जब इन्हीं उपमानों का नवीन प्रयोग करते हैं तो उनके कवि-हृदय की कोमल-कान्त कमनीय-भावुकता का मधुर परिचय मिलता है:—

पियरी झीनी झगुली सांवरे सरीर खुली।
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारें बारिधर ॥[1]

राम के श्याम शरीर के लिये मेघ कवि समय-सिद्ध उपमान है। उनके बाल श्याम शरीर के लिये, 'बारे बारिधर' और पीली झंगुली के लिये बालक दामिनी का प्रयोग करके कवि ने अपनी सुकुमार और ललित-भावना का परिचय दिया है। 'बारे बारिधर' उपमान द्वारा बालक राम और छोटे से बादल के टुकड़े का चित्रांकन हो जाता है।

तुलसी रामोपासक थे, अतः उनके अनुपम सौन्दर्य का इन्होंने अधिकाधिक वर्णन किया है। इनके सौन्दर्य वर्णन में अधिकतः सभी प्रचलित उपमानों का प्रयोग है। सुकुमारता के लिये शिरस-सुमन और पद तल की लालिमा के लिये बंधूक-पुष्प आदि कुछ नवीन उपमानों को भी इन्होंने अपनाया है। भावों के उत्कर्ष के लिये 'बिरवा लजारु के से' बहुत सुन्दर उपमान हैं।

उपदेश ग्रहण

प्रकृति से उपदेश ग्रहण की भावना में तुलसी पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव है। इनके वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन भागवत के दशम् स्कंध के बीसवें अध्याय से मिलते जुलते हैं तुलसी धर्मोपदेशक थे, इनके काव्य का मुख्य विषय राम का लोक रक्षक रूप था, अतः यह प्रकृति के रम्य अथवा भयावह वातावरण से प्रभावित न होकर लोक-कल्याण की कामना में ही रमे रहे। वर्षा शरद तथा अन्य ऋतुओं का जहां आदि कवि कालिदास ने अत्यन्त विस्तृत और विशद वर्णन किया, वहाँ तुलसी ने राम द्वारा लक्ष्मण को खल के प्रेम की अस्थिरता एवं माया और ब्रह्म के विषय में विस्तृत व्याख्यान दिलवाया। वर्षा काल में प्रकृति का रूप कैसा हो जाता है—

१ गितावलि कांड ॥२३॥

हरित भूमि तृन सकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड विवाद तें, गुप्त होहिं सद ग्रन्थ ॥१६॥
दादुर धुनि चहुं दिसा सुहाई। वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।
नव पल्लव भये विटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका।
अर्क जवास पात बिन भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ[1]।

वर्षा काल में वह हरी घास से ढकी हुई पृथ्वी, नवीन पल्लव और वृक्ष तथा पत्र-विहीन आक जवास के वृक्षों को उपदेश का माध्यम बनाते हैं, प्रकृति के प्रत्येक व्यापार में वह उपदेश और ज्ञान की खोज करते हैं इसी प्रकार शरद का भी चित्रण देखिये,

रस रस सूखि सरित सर पानी। ममता त्याग करहि जिमि ज्ञानी।
जानि सरद ऋतु खजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये।
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप के जसि करनी।
जल संकोच विकल भई मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना[1]।

इस वर्णन में भी कवि ने उपदेश को ही ढूढा। यद्यपि उन्होंने प्रकृति का यथा तथ्य चित्रण किया है किन्तु केन्द्रीय भावना उपदेश की ही रही है। प्रकृति का प्रत्येक जीव पदार्थ और व्यापार उन्हे उपदेश देता हुआ सा प्रतीत होता है, तो भी इस चित्रण में कवि का प्रकृति के प्रति कुछ अनुराग और स्नेह प्रकट होता है; क्योंकि जहां उन्होंने वर्षा ऋतु में नवीन पल्लव और हरित भूमि का वर्णन किया है वहां वह आक और जवासे के पत्र-विहीन सूखे वृक्षों का वर्णन करना भी नहीं भूले हैं, इसी प्रकार शरद में उन्होंने खंजन पक्षी की प्रफुल्लता का वर्णन किया है किन्तु वह जल-संकोच के कारण व्याकुल मछली की भी उपेक्षा नहीं कर सके हैं, उन्होंने प्रकृति के सुन्दर और असुन्दर दोनों रूपों को अपने उपदेश का माध्यम बनाया है, केन्द्रस्थ भावना उपदेश की रख कर भी उन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। उपदेश के आधार पर किया गया उनका प्रकृति चित्रण कल्पना व्यंजक नहीं है वर्षा ऋतु में श्याम मेघाच्छन्न आकाश का चित्रण देखिए :—

कबहुँ प्रबल चल मारुत जंह तह मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं।
कबहुँ दिवस में निबड़तम, कबहुँक प्रकट पतंग।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।

१ मानस किष्किधा कांड। ॥१७-१८॥

वर्षा में वायु के चलने से मेघ इधर उधर हो जाते हैं, कभी श्याम घटाओं से अंधकार छा जाता है और कभी उनके बीच से सूर्य प्रकट हो जाता है। इसका उन्होंने उपर्युक्त दोहों में वर्णन किया है। उपदेश की प्रधानता होते हुए भी इसमें कवि का निजी निरीक्षण प्रकट होता है।

ऋतुओं के अतिरिक्त उन्होंने चराचर प्रकृति से दृष्टान्त देकर नीति और हित के अनेक उपदेश दिये हैं। प्रेम की अनन्यता के लिये चातक का उदाहरण देते हुये वह कहते हैं :—

उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर [1] ॥२८३॥

मेघ चाहे ओले बरसाये, चाहे पवि पात करें, किन्तु प्रेमी चातक कभी दूसरी ओर नहीं ताकता, वह प्रेम की अनन्यता का पालन करता है, इसी प्रकार के एकांगी प्रेम के आदर्श स्वरूप सर्प, मीन, मृग, कमल और मयूर-शिखा बूटी के राशिभूत उदाहरण देते हुए उन्होंने अनन्य प्रेम का उपदेश दिया है।

जब अपने कुटुम्बी साथ छोड़ देते हैं तो संसार में कोई भी हित करने वाला नहीं रह जाता, मित्र भी शत्रुवत् व्यवहार करने लगते हैं कमल का जनक जल जब सूख जाता है तो मित्र सूर्य भी उसको सुखा देता है।

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अंबुज अंबु बिनु, तरनि तासु रिपु होइ [2] ॥२३४॥

संसार में सब सरल हृदय वालों को ही तंग करते हैं। इसका वह प्रकृति से दृष्टांत देकर समर्थन करते हैं।

सरल बक्रगति पंच ग्रह, चपरि न चितवत काहु।
तुलसी सूधे सूर ससि, समय बिडम्बित राहु [3] ॥३६७॥

राहु टेढ़ी सीधी चाल चलने वाले पांच ग्रहों की ओर तो देखता ही नहीं किन्तु सीधी गति वाले सूर्य और चन्द्र को ग्रस लेता है।

तुलसी ने ऋतु-वर्णन में उपदेश और दृष्टान्त तथा उदाहरण द्वारा नीति का संदेश दिया है। स्वभाव से विरक्त और महात्मा होने के कारण इनके प्रकृति-वर्णन में उपदेश और ज्ञान का संदेश स्वतः ही प्रस्फुटित हो गया है, उसके लिये कवि ने प्रयास नहीं किया है।

---

१ दोहावली।
२ मानस उत्तर कांड। ३ मानस उत्तर कांड १८९।

भक्ति में तत्व-दर्शन

तुलसी राम के सगुण रूप के उपासक थे, निर्गुण मत इनकी भक्ति-भावना से बहुत दूर था इनके मत में सगुण उपासना ईश्वर को प्राप्त करने का सबसे सरल और सुगम उपाय था, इन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है।

निर्गुन मति नहिं मोहि सुहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई[1]।

इनके हृदय में सगुण ब्रह्म के प्रति विश्वास और प्रेम था, निर्गुण वादियों का यह सिद्धान्त,

सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। वारि वीचि इव गावहिं बेदा[2]।

इनके सगुण ब्रह्म का विरोधी था, अतः इनके हृदय-पट पर यह मत अंकित न हो सका इनकी दृढ़ भावना थी,

एक भरोसो एक बल एक आस विस्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।[3]

इनके ब्रह्म को 'परित्राणाय साधूनाम्' अनेक बार पृथ्वी पर अवतरित होना पड़ा और उन्होंने अपने भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का दलन किया था' राम भी इसी प्रकार अवतार थे, वह अनत शक्ति, सौन्दर्य और शील से पूर्ण थे उनमें इतनी अपरिमित सामर्थ्य थी कि,

चेतन कह जड़ करई, जड़हिं करइ चैतन्य।

राम के अद्भुत सौन्दर्य पर समस्त प्रकृति मुग्ध हो जाती है, उनके कष्ट का ध्यान करके मेघ छाया करते, भूमि मृदुल हो जाती है और वृक्ष मधुर फलदान करते हैं वन में राम के आगमन से समस्त सचराचर प्रकृति प्रफुल्लित हो उठती है।

जब तें आइ रहे रघुनायक। तब तें भयउ बन मंगल दायक।
फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना।
गुंज मंजुतर मधुकर स्रेनी। त्रिविध बयारि बहइ सुख देनी ॥१३८॥*

फूल, फल, वृक्ष, भ्रमर और पक्षी आदि सभी राम के आगमन से प्रसन्न हैं, शीतल मंद सुगंधित समीर प्रवाहित होती रहती है, जड़ और चेतन प्रकृति में उल्लास छाया हुआ है।

---

१ मानस उत्तर कांड।
२ मानस उत्तर कांड।
३ दोहावली।

निर्गुणवादियों के अनुसार तुलसी 'अहं ब्रह्मास्मि' के उपासक नहीं थे, भारतीय भक्ति-पद्धति के अनुसार इन्होंने तो अपने ब्रह्म को लोक के बीच में हसते खेलते और दुष्टों का दलन करते देखा, इन्होंने जीव और ब्रह्म को पृथक माना और ब्रह्म की प्राप्ति के लिये हृदय की निश्छलता की अनिवार्यता प्रकट की।

दूरि न सो हितू हेरि हिये ही है।
छलहिं छांड़ सुमिरि छाँहु किये ही है॥१३५॥

भगवान की सच्ची भक्ति उन्हीं को प्राप्त हो सकती है जो हृदय से निष्कपट और शुद्ध हैं भक्ति और प्रेम की पराकाष्ठा में समस्त जगत भक्त के लिये "सिया-राम-मय' हो जाता है और उस समय वह अन्दर और बाहर अर्थात हृदय में और प्रकृति में उसी का प्रतिबिम्ब देखता है, उसे अपना ब्रह्म दूर प्रतीत नहीं होता, समस्त प्रकृति उसी का रूप प्रतीत होती है और भक्त को यही कहना पड़ता है,

'अचर चर रूप हरि, सरबगत, सरबदा बसत' उस सर्वव्यापी और नित्य भगवान की भक्ति-भावना में सर्व-वाद का अनुयायी हो जाता है।

तुलसी सर्ववाद के अनुसार यद्यपि ब्रह्म को अन्तर में भी व्याप्त देखते हैं किन्तु श्रेष्ठता भगवान के वाह्य सौन्दर्य की ही मानते हैं, ब्रह्म का लोक में सगुणरूप देखकर ही भक्त उसका अन्तर में अनुभव करता है, प्रत्यक्ष दर्शन के पश्चात् भक्त उसकी मूर्ति को हृदय में बसाता है, अतः भगवान का वाह्य सौन्दर्य ही भक्ति का प्रमुख साधन है —

अन्तर्जामिहु तें बड़ बाहरजामी हैं राम जो नाम लिए तें।
पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिए तें।

तुलसी के मतानुसार केवल हृदय में व्याप्त निर्गुण ब्रह्म कुछ काम नहीं आता, भक्तों की रक्षा सगुण ब्रह्म ही करता है और सगुण ब्रह्म के लिये उसकी अखिल विश्व में व्यापकता मानना अनिवार्य है, मनुष्य विश्व में ब्रह्म को प्रतिष्ठित करके ही उसके दर्शन कर सकता है, जगत के बीच में ही आत्मा और परमात्मा का मिलन अर्थात् अन्तर्वाह्य का सामंजस्य स्थापित हो सकता है।

१ विनय पत्रिका।

केशव

राम भक्तों में तुलसी के पश्चात् केशव का प्रमुख स्थान है। 'कवि प्रिया' और 'रसिक प्रिया' की रचनानुसार यह रीतिशास्त्र के आचार्य माने जाते हैं, किन्तु 'राम चन्द्रिका' के निर्माण द्वारा इनकी गणना रामभक्त कवियों में की जाती है। वह आचार्य पहिले थे और भक्त पीछे। अतः इनके काव्य में हमें राम के प्रति भक्ति और अनुराग के भाव लक्षित नहीं होते। तुलसी ने राम के पदानुराग में तल्लीन होकर उनके पदांकित प्रत्येक स्थल के प्रति अपनी भक्ति प्रकट की और राम के सम्बन्ध से उनका प्रेम पूर्वक चित्रण किया। केशव की रामचन्द्रिका में राम का भक्ति-भावना से पूर्ण रूप नहीं व्यक्त होता, वह एक लोकनायक की भाँति प्रतिभासित होते हैं। कवि का ध्यान सर्वदा कथा-प्रसार और श्लिष्ट-योजना की ओर अधिक रहा है यही कारण है कि हमें केशव की रामचन्द्रिका में प्रकृति के आलम्बन रूप में दर्शन नहीं होते। प्रकृति के यथातथ्य चित्रण में प्रकृति कहीं तो मानव कार्यकलापों की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकट होती है, कहीं केशव का काव्य चमत्कार प्रदर्शित करती है और कहीं केवल परिगणन मात्र है। चमत्कार प्रदर्शन और शब्द सौन्दर्य के लिये किये गये प्रकृति का वर्णन देखिये,

> घनघोर घने दशहूँ दिशि छाये। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
> अपराध बिना क्षिति के तन ताये। तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये॥
> अति गाजत बाजत दुंदुभि मानौ। निरघात सबै पविं पात बखानौ॥
> धनु है यह गौर मदाइनि नाहीं। शर जाल बहै जल धार वृथा ही॥[1]

कवि ने वर्षा का चित्रण किया है किन्तु ऐसा प्रकट होता है कि कवि का ध्यान वर्षा के रम्य अथवा भयंकर रूप की ओर नहीं है वरन अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार की छटा दिखाने की ओर है।

सूर्योदय के समय ऊषा की मन्द मुस्कान, प्रफुल्लित पुष्पों का सौरभ और पक्षि-शावकों का कलित कूजन प्रत्येक प्राणी को आनन्दमग्न बना देता है। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक कवि ने प्रातःकालीन दृश्य के प्रति आकर्षित होकर ऊषा की मधुरिमा का अपने काव्य में वर्णन किया है केशव ने भी

---

१ केशव राम चन्द्रिका। किष्किधा कांड ॥३०-३१॥

इस परम्परानुसार अपने प्रबन्ध काव्य रामचन्द्रिका में सूर्योदय की अनिवार्यता का अनुभव करते हुए प्रातःकाल का वर्णन किया है।

अरुणगात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ भय।
मानहुं केशवदास कोकनद कोक प्रेम मय।
परिपूरण सिंदूर पूर कैधौं मंगल घट।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो मानिक मयूख पट।
कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कपालिका काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को।[1]

यद्यपि कवि ने उत्प्रेक्षा और संदेह अलंकार द्वारा प्रातः कालीन दृश्य का चित्रांकन किया है किन्तु इस चित्रण से कवि का प्रकृति के प्रति अनुराग नहीं व्यक्त होता। कपालिका के श्रोणित कलित कपाल की उपमा के कारण वर्णन में वीभत्सता आगई है कहां तो प्रातःकाल का रमणीक दृश्य और कहां श्रोणित-कलित कपाल। यदि कवि का प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध होता तो इस प्रकार के काव्याभास का प्रादुर्भाव कभी न हो पाता।

वन आदि के वर्णन में केशव ने प्रत्येक वस्तु की स्थिति का वर्णन करते हुए परिगणन करा दिया है उनका ध्यान केवल उन्हीं वस्तुओं की ओर गया है जो परम्परागत हैं। नवीन वस्तुओं की ओर इन्होंने दृष्टि उठाकर नहीं देखा। पंचवटी का यथातथ्य वर्णन देखिये,

फल फूलन पूरे तरुवर रूरे, कोकिल कुल कलरव बोलें।
अति मत्त मयूरी प्रियरस पूरी, वन वन प्रति नाचति डोलें।
सारी शुक पंडित, गुण गण मंडित, भावनि में अरथ बखाने।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मदन सरति मधु सब जानें।[2]

कवि ने वन के फल फूल और सुन्दर वृक्ष तथा पक्षियों का उल्लेख मात्र कर दिया है।

ऋषि आश्रम के निस्तब्ध, शान्त और मनो मालिन्य रहित वातावरण का 'कवि प्रिया' में कवि ने यद्यपि यथातथ्य और परम्परानुगत वर्णन किया है किन्तु उसमें स्वाभाविकता और काव्य प्रतिभा दोनों का समान रूप से दिग्दर्शन है,

---

१ रामचन्द्रिका बाल काण्ड ॥९२॥

२ अरण्य काण्ड ॥१७॥

केशोदास मृगज बछेरुक चूखैं बाघिनीन चाटत सुरभि बाघ बालक बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचे करम कर निकरि सिंहनि को आसन गयंद को रदन है।
फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर क्रोध न विरोध जहां मदन मदन है।
बानत फिरत डोरे डोरे तपसीनि ऋषि को निवास कीधौं शिव को सदन है।[1]

'कवि प्रिया' में काव्य के अंगों का निरूपण करते हुए उन्होंने प्रत्येक ऋतु और वर्ष के प्रत्येक मास का वर्णन किया है, प्रायः प्रत्येक ऋतु में चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति लक्षित होती है, किन्तु कहीं कहीं चित्रण स्वाभाविक सा प्रतीत होता है, ग्रीष्म ऋतु का उदाहरण देखिये,

चंडकर कलित बलित बल सदागति कंद मूल फूल फल दलनि को नास है।
कीच बीच मीन बचैं व्याल बिल कोल कुल द्विरद दरीन दिनकत को विलास है।
थिर चर जीवन हरन बन बन प्रति केशोदास मृग शिर श्रवन निवास है।
धावत बलित धनु शोभत न पाणि शर समर समूह कीधौं ग्रीषम प्रकास है ॥३०॥

ग्रीष्म की तपन और जड़ एवं चेतन प्रकृति की व्याकुलता का यथावत वर्णन करते हुए कवि को पुनः अलंकार योजना का ध्यान आता है और अंतिम पंक्ति में वह संदेह अलंकार की नियुक्त कर देते हैं, इस प्रकार प्रकृति वर्णन में वह कहीं भी अपने अलंकार प्रेम और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो सके है।

प्रकृति के उग्र रूप का वर्णन केशव ने सीता को बन की आपदाओं से भयभीत करने के लिये किया है,

बन में विकट विविध दुःख सुनिये।
गिरि गह्वर मग अगमहि गुनिये।
कहुं अरि हरि, कहुं निशिचर चरहीं।
कहुं दन दहन दुसह दुख दहहीं।[2]

उद्दीपन

रामचन्द्रिका में उद्दीपन रूप में केशव ने बहुत कम प्रयोग किया है। संयोग शृंगार में वात्सल्य के अन्तर्गत राम के बाल रूप का तो उन्होंने वर्णन ही नहीं किया, दाम्पत्य रति में भी वह सीता राम के संयोग के प्रसंग को उड़ा गये हैं, उनका मन वैवाहिक उपचारों और भोजन आदि के वर्णन में

१ कवि प्रिया ॥११॥

२ रामचन्द्रिका अयोध्या कांड ॥ १२ ॥

अधिक रमा है। अयोध्या नगरी में दशरथ के बाग को उन्होंने कामोत्तेजक करने वाला वर्णन किया है।

देखि बाग अनुराग उपज्जिय।
बोलत कलध्वनि कोकिल सज्जिय॥
राजति रति की सखी सुवेषनि।
मनहुं बहति मनमथ संदेशनि॥[1]

बाग में कोकिल का कल कूजन मन्मथ का संदेश सुनाता है, यह कह कर ही कवि ने उद्दीपन का दिग्दर्शन कराया है, किन्तु इसमें आलम्बन और आश्रय की अनुपस्थिति के कारण उद्दीपन रूप, पूर्ण रूपेण प्रस्फुटित नहीं होता।

संयोग सुख में मनुष्य प्रकृति की भीषणता और जीवन की आपदाओं को भूल जाता है, पति-पत्नी का सहयोग जीवन की विषम परिस्थिति में भी प्रेम की वृद्धि करता है। वन में सीता और राम सूर्यातप और उष्ण वायु के झकोरों को सहन करते हुये चले जारहे हैं मार्ग में तमाल की शीतल छाया में विश्राम करने के लिये बैठ जाते हैं। राम वल्कल वस्त्र से हवा करते हुये सीता के श्रम को हरते हैं, सीता भी राम की ओर अनुराग पूर्ण दृष्टि से देखती हैं—

बहु बाग तड़ाग तरंगनि तीर तमाल की छांह विलोकि भली।
घटिका इक बैठत हैं सुख पाय बिछाय तहां कुस कास थली॥
मग को श्रम श्रीपति दूर करें सिय के सुभ बाकल अंचल सौं।
श्रम तेऊ हरें तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सौं॥[2]

तमाल की सुखद छाया में, एक दूसरे के कष्ट का ध्यान करके सीता राम प्रेम सरोवर में निमग्न हो जाते हैं, पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम की वृद्धि में दोनों मार्ग के कष्टों को भूल जाते हैं और नवीन स्फूर्ति का अनुभव करते हैं सीता को तो राम के संयोग में कष्टदायिनी प्रकृति आनन्द प्रद ही प्रतीत होती है—

घाम को राम समीप महाबल। सीतहिं लागत है अति सीतल॥
ज्यों घन संयुत दामिनी के तन। होत हैं पूषन के कर भूषन।

१ रामचन्द्रिका बालकाण्ड ॥ १८ ॥
२ ,, अयोध्याकांड॥ ३३ ॥

मारग की रज तापित है अति । केशव सीतहि सीतल लागति ।
ज्यौं पद-पंकज ऊपर पाँयनि । दै जो चलै तेहि ते सुखदायनि ।[1]

धूप और तापित धूल सीता को शीतल प्रतीत होती है । अपने प्रिय के सहवास में आनन्द ही आनन्द है, किन्तु वियोगावस्था में तो सुखद वस्तु भी दुःखद ही प्रतीत होती है । सीता के वियोग में राम की दशा देखिये—

हिमांशु सूर सो लगै सो बात बज्र सो बहै ।
दिशा लगै कृशानु ज्यों विलेप अंग को दहै ॥
विशेषि कालराति सो कराल राति मानिए ।
वियोग सीय को न काल लोकहार जानिए ॥[2]

प्रकृति वियोगी राम के मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के तापों को बढ़ाती है । विरहोन्माद में चन्द्र उन्हे सूर्य के समान तप्त और दिशाएँ अग्नि के समान प्रज्वलित प्रतीत होती हैं । चन्दन आदि के विलेप जो अपने शीतल स्पर्श द्वारा शरीर को सुख प्रदान करते थे वही अब वियोग में दग्ध करते हैं विरह की उद्वेगावस्था में वह प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित करते हैं और चकोर से प्रश्न करते हैं—

शशि के अवलोकन दूरि किये । जिनके मुख की छबि देखि जिये ॥
कृत चित्त चकोर कछूक धरौ । सिय देहु बताय सहाय करौ ॥[3]

वह चकोर से सीता का पता पूछते हैं और उससे सहायता की याचना करते हैं । वियोग में राम को सीता के अगों के प्राकृतिक उपमानों को देखकर आत्मसतोष होता है, वह हस, खजन, चन्द्र आदि को देखकर और सीता की गति, नेत्र और मुख का साम्य देखकर धैर्य धारण करते हैं किन्तु वर्षा मे इन सब उपमानों के विलुप्त हो जाने पर वह अत्यन्त व्यग्र होते हैं,

कल हस, कलानिधि, खञ्जन, कञ्ज, कछू दिन केशव देखि जिये ।
गति, आनन, लोचन, पायन के अनुरूपक से मन मानि लिये ॥
यहि काल कराल तैं शोधि सबै हठि कै बरषा मिस दूरि किये ।
अवधौं बिनु प्रान-प्रिया रहि है कहि कौन हितू अवलम्बि हिये ॥[4]

---

१ रामचन्द्रिका अयोध्या कांड ॥ २६-२७ ॥
२ रामचन्द्रिका अरण्य कांड ॥७८॥
३ रामचन्द्रिका किष्किंधा कांड ॥३६॥
४ अरण्य काण्ड । ॥७६॥

वर्षा के आगमन पर उपमानों का जमाव राम के विरह-दुःख को अत्यन्त तीव्र कर देता है, उन्हें यही चिन्ता होती है कि अब किसके सहारे प्राण रहें।

वर्षा काल में राम अपने शोकाकुल हृदय का प्रकृति में प्रतिबिम्ब देखते हैं। अनवरत जलवर्षण और मेघाच्छन्न आकाश के कारण सूर्य की ज्योति कम होगई है वह मन्दद्युति सूर्य और अपने प्रसन्नता रहित हृदय में साम्य देखते हैं और कहते हैं,—

मित्र देखि यह सभित हैं यों। राजसाज बिनु सीतहिं हौं ज्यों ॥[1]

इस साम्य से उनकी स्मृति तीव्र हो जाती है और सीता का अभाव उन्हें विकल बना देता है।

विरह दशा धन्य है इसमें मानव इतना अधिक दीन और उदासीन हो जाता है कि प्रकृति का एक-एक कण उसे अपने साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता हुआ सा प्रतीत होता है। वह प्रकृति में चेतन प्राणी की सी संवेदना प्राप्त करता है और प्रकृति के साथ तादात्म्य होजाने पर उसमें हर्ष, विषाद, ओज आदि सभी भावों का निरीक्षण करता है। प्रकृति के प्रेमी कवियों ने प्रकृति में इसी प्रकार की मानवीय भावनाओं का अवलोकन किया है। केशव प्रकृति के कवि नहीं थे, इनके काव्य में हमें संस्कृत काव्यकारों की भाँति प्रकृति से रागात्मक सबंध नहीं लक्षित होता, किन्तु विरह की उद्वेगावस्था में इन्होंने प्रकृति में कहीं कहीं मानवीकरण की प्रवृत्ति दिखाई है। सीता के वियोग में राम करुणा नाम के वृक्ष से सीता का पता पूछते हैं,—

कहि केशव याचक के अरि चम्पक शोक अशोक लिये हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्ष्ण जानि तजे डरि कै॥
मुनि साधु तुम्हें हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय सो करुणा करुणा करिकै॥[2]

वह याचक भौंरा के शत्रु चम्पक, शोक रहित अशोक, तीक्ष्ण काँटों से पूर्ण केतकी और गुलाब से प्रश्न नहीं करते; बल्कि करुणा के वृक्ष को, करुणा से पूर्ण जानकर अपना दुःख संदेश सुनाने आये हैं। इसमें आदि कवि के राम के दुःख-निवेदन और कालिदास के कण्व के शाकुन्तला के पति-गृह-

---

१ रामचन्द्रिका किष्किंधा कांड ॥२४॥ २ रामचन्द्रिका अरण्यकाण्ड ॥ ७७ ॥

गमन के अवसर पर व्यक्त किये हृदयोद्‌गारों की स्पष्ट छाप है किन्तु केशव के उपर्युक्त वर्णन में न तो आदि कवि और कालिदास की भाँति भा-व्यजना है और न प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण हैं। करुणा की पुनरावृत्ति द्वारा यमकालंकार को आकर्षक रूप में प्रयुक्त करने की काव्य प्रतिभा अवश्य व्यक्त होती है।

वियोग की व्याधि दशा का भी केशव ने चित्रण किया है, विरह के अतिशय परिताप के कारण शरीर प्रतिक्षण क्षीण होता जाता है, शरीर की दशा दीपशिखा की भाँति है जो स्नेह के कारण प्रति क्षण जलती जाती है। राम कहते हैं—

अपनी दशा कहा कहों दीप दसा सी देह।
जरति जाति बासर निसा केशव सहित सनेह ॥[1]

केशव ने उद्दीपन रूप मे सयोग और वियोग दोनों पक्षों में प्रकृति का वर्णन किया है किन्तु सयोग में उनके चित्रण सफल नहीं हो सके हैं, संयोग की उद्दीप्त भावना का वह स्पष्ट चित्र नहीं अंकित कर सके हैं। वियोग में उन्होंने सीता और राम दोनों को वियोग की दशाओं में कष्ट पाते हुए वर्णन किया है, दोनों ही विरह के प्रत्याघातों से संत्रस्त हैं, इस दशा में उन्होंने मानव और प्रकृति के बीच में एक समान और कोमल भावना को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है किन्तु वह प्रकृति और मानव में तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाये हैं।

अलंकार

केशव अलंकार शास्त्र के आचार्य थे, अतः अलंकार रूप में प्रकृति का इन्होंने बहुत अधिक वर्णन किया है। इनके सबसे प्रिय अलंकार शब्दालंकारों में अनुप्रास और श्लेष हैं, श्लेष मे इन्होंने ढूंढ ढूंढ कर द्विअर्थक, त्रिअर्थक शब्दों का प्रयोग किया है, कहीं कहीं तो उनके इस प्रयास में काव्याभास हो जाता है। सादृश्य व्यक्त करने वाले अलंकारों में इन्हे उपमा और उत्प्रेक्षा बहुत प्रिय हैं। यह अधिकतः परम्परानुगत उपमानों का ही प्रयोग करते गये हैं। सीता के नख शिख वर्णन में भी वह प्रचलित उपमानों द्वारा ही सौन्दर्य का दिग्दर्शन करते चले गये हैं, प्रकृति से नवीन उपमान ढूंढ कर,

१ रामचन्द्रिका सुन्दरकाण्ड ॥५३॥

उनको प्रयोग करने का प्रयास नहीं किया है। प्रकृति के प्रति इनका तनिक भी अनुराग नहीं प्रदर्शित होता, जहाँ कहीं इन्होंने निजी उपमानों की उद्भावना की है वहाँ इतनी अधिक अस्वाभाविकता आगई है कि काव्य के रसास्वादन में व्याघात पहुँचता है और काव्य सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। राम के विरह निवेदन में उपमा का प्रयोग देखिये।

दीरघ दरीन बसे केसोदास केसरी ज्यौं, केसरी को देखि बन करी ज्यौं कँपत है।
बासर की सपति उलूक ज्यों न चितवत, चकवा ज्यों चन्द्र चितै चौगुनो चँपत है॥
केका सुन व्याल ज्यौं, बिलात जात घनस्याम, घनन की घोरनि जवासो
ज्यौं तपत है ॥१॥

इसमें कवि ने राम का उपमानों के साथ गुण-साम्य तो प्रकट कर दिया है किन्तु हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव का ध्यान नहीं रखा "बासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत," में विरक्ति का गुण तो राम और उल्लू में है किन्तु इस गुण के कारण राम को उल्लू के समान कह देना अनुपयुक्त जँचता है, इससे प्रस्तुत-अप्रस्तुत का यथार्थ रूप हमारे सम्मुख नहीं आता, वरन् उल्लू उपमान द्वारा हृदय पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, इससे प्रकट होता है कि केशव का प्रकृति के प्रति अनुराग अथवा उसका यथार्थ ज्ञान नहीं था, उनके नवीन उपमान काव्याभास मात्र थे, उनमें निजी-निरीक्षण का अभाव था। नवीन उपमानों में जहाँ कहीं केशव ने अपने प्रत्यक्ष अनुभव से काम लिया है वहाँ उनका प्रयोग अति सुन्दर हुआ है, भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक और क्रिया के प्रभाव में तीव्रता उत्पन्न करने में उपमालंकार का निर्वाह देखिये—

मातु सबै मिलिबे कँह आईं। ज्यों सुत को सुरभी सुलवाई ॥

वन में मातायें राम से मिलने के लिये इसी प्रकार दौड़ती हैं जिस प्रकार गायें अपने बछड़ों के लिये दौड़ती हैं। इसमें माँ के सन्तति के प्रति ममत्व में तो साम्य है ही साथ ही गाय के बछड़े से मिलने की तत्परता द्वारा माँ और गाय की क्रिया में भी सादृश्य प्रकट किया गया है इसी प्रकार,

धरे एक बैनी मिली मैल सारी। मृणाली मनौ पंक सौं काढि डारी ॥२

---

१ रामचन्द्रिका सुंदर कांड पृष्ठ ॥४९॥
२ रामचंद्रिका सुन्दर कांड ॥१५॥

उत्प्रेक्षा द्वारा राम-विरह-जन्य-सन्ताप के कारण मलिन मना सीता का वर्णन किया गया है। सीता मैली सारी में ऐसी प्रतीत होती है जैसे जल से वियुक्त मुरझाई कमलिनी। इस उत्प्रेक्षा में गुण और प्रभाव में सहज साहश्य है।

राम के सुन्दर मुख की शोभा के वर्णन में कवि ने उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक आदि सभी साहश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग किया है, निम्नलिखित पक्तियों में कवि ने उत्प्रेक्षा और सांगरूपक की एक साथ योजना की है,

अति वदन सोभ सरसी सुरंग। तंह कमल नयन नासा तरंग।
जनु युवति चित्त विभ्रम विलास। तह भ्रमर भँवत रस रूप आस ॥[1]

राम-वदन सरोवर के समान है उसमे नयन रूपी कमल और नासिका रूपी तरग है युवतियो की उत्सुक दृष्टि मानो भ्रमर है। इसमे यद्यपि सभी उपमान परम्पराभुक्त है तथापि रूपक और उत्प्रेक्षा के संयुक्त प्रयोग ने एक प्रकार की नवीनता उत्पन्न करदी है।

केशव की अलकार योजना की प्रतिभा अद्भुत है। कहीं कहीं तो वह कई अलकारों का एक साथ प्रयोग कुशलतापूर्वक करते चले हैं। सीता के मुख की शोभा का वर्णन करते हुए वह कहते हैं –

एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जू को एक कहैं चन्द्र सम आनन्द को कन्द री।
होइ जो कमल तो रयनि में सकुचै री चन्द जो तो बासर ना होइ द्युति मद री॥
बासर ही कमल रजनि ही में चन्द्र मुख बासर हू रजनि बिराजै जगबद री।
देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द तातै मुख मुखै, सखी, कमलौ न चंद री॥[2]

प्रथम उपमेय मुख में उत्कर्ष और उपमान कमल तथा चन्द्र में अपकर्ष दिखाकर व्यतिरेक अलकार का प्रयोग करते हैं तदनतर अप्रस्तुत की अनुपयुक्तता के कारण अनन्वय द्वारा सीता के मुख को अनुपमेय निश्चित करते हैं।

केशव के कुछ अलंकार तो अलकार अर्थात् काव्य सौन्दर्य के अर्थ न होकर केवल चमत्कार-प्रदर्शन के लिये ही प्रयुक्त किये गये हैं। शब्दों की कलाबाजी दिखाने के लिये वह एक से शब्द प्रयुक्त करते गये हैं उनके अर्थ और प्रभाव की ओर उन्होंने तनिक भी ध्यान देने का प्रयास नहीं किया है।

पाडव की प्रतिमा सम लेखो, अर्जुन भीम महा मति देखो।

---

१ बा कांड ॥१६३॥
२ अयोध्य कांड ॥३१॥

पंचवटी के इस वर्णन में अर्जुन से अर्जुन के वृक्ष और भीम से बेंत के वृक्ष के अर्थ लिये हैं। इसमें श्लेष के चमत्कार के अतिरिक्त रूप गुण और क्रिया किसी का भी साम्य नहीं है।

केशव संस्कृत के विद्वान और अलंकार-शास्त्र के आचार्य थे। इनका उद्देश्य भिन्न भिन्न अलकारों का प्रयोग करना था, शब्दो के चमत्कार और पांडित्य प्रदर्शन के अतिरिक्त इनके काव्य में प्रकृति के प्रति प्रेम की झलक नहीं मिलती। प्रकृति के प्रति इनमें लेशमात्र भी अनुराग नही था इनका समस्त अनुराग नवीन और श्लिष्ट पद-योजना के प्रति था। यही कारण है कि शब्दों में चकाचौंध उत्पन्न करने के लिये इन्हे वर्षा को कालिका के समान और बेरों को प्रलयकाल के सूर्य के समान लिखना पड़ा।

प्रकृति से निरपेक्ष रह कर कवि केशव प्रकृति से नीति और उपदेश ग्रहण कैसे कर सकते थे; इनके काव्य में उपदेश की भावना नहीं लक्षित होती। कही कहीं पर उदाहरण रूप में प्रकृति उपदेशिका के रूप में प्रकट होती है। लका दहन के समय कवि वर्णन करता है।

> बाजि वारण सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं।
> छुद्र ज्यों विपदाहिं आवत छोड़ि जात न लाजहीं॥[1]

लका में अग्नि प्रज्वलित होने पर हाथी घोड़े पक्षी आदि इसी प्रकार भाग निकलते हैं जिस प्रकार नीच मनुष्य विपत्ति के समय मित्रों को छोड़कर भाग जाते हैं।

इसी भाँति अंगद रावण को हितोपदेश देते हुए नीति रूप में प्रकृति से दृष्टान्त देता है।

> इनको विलगु न मानिए, सुनि रावन पल आधु।
> पानी, पावक, पवन, प्रभु ज्यौं असाधु त्यौं साधु॥

प्रकृति में परम तत्व के दर्शन हमें इनके काव्य में नहीं मिलते 'कवि प्रिया' और 'रसिक प्रिया' इनके लक्षण ग्रन्थ हैं जिनमें अलंकार निरूपण और नायिका भेद का विवेचन है रामचन्द्रिका में कवि अपने कथा-प्रसार और अलकार-प्रयोग तथा चमत्कार-प्रदर्शन में व्यस्त रहा है। राम की महिमा का वर्णन करते हुए कथारंभ में हमें सर्ववाद का आभास मिलता है वह कहते हैं,

---

१ रामचन्द्रिका सुदर काण्ड ॥६१॥

जानति जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छन्द ।
रामचन्द्र की चंद्रिका वरणत हों बहु छन्द ॥[1]

कवि उसी परम तत्व की ज्योति का समस्त जगत में प्रसार देखता है।

राम भक्त कवियों ने प्रकृति का बहुत ही कम चित्रण किया है यह कवि-गण केवल भक्त थे। विक्षुब्ध और निराश हिन्दू जनता को भगवान का कल्याणकारी रूप दिखाकर उन्हे भक्ति का मार्ग दिखाना ही इनका उद्देश्य था। तुलसी के समस्त सांसारिक सबंध राम के नाते ही से थे। अतः जहाँ जहाँ राम के पावन-चरित का विकास हुआ, जिन स्थलो में उनके पुनीत पद पड़े वही तुलसी के प्रकृति-वर्णन का विषय बने। इसी कारण वन उनका अत्यन्त प्रिय स्थान रहा, अन्यथा प्रकृति इनके लिये अर्थ शून्य थी। भवभूति की भाँति पर्वत-कन्दराओं के मनोरम अथवा विकराल दृश्य इन्हे प्रभावित न कर सके, पुष्पों की मृदु-मुसकान पर यह मुग्ध नहीं हुए, निर्झरों का गान इनमें माधुर्य न भर सका प्रकृति के समस्त कार्य इनके लिये वैज्ञानिक दृष्टि-कोण रखते थे प्रकृति के साथ इनका सहज सम्पर्क नहीं था । इन्होंने अपने भगवान को लोक के बीच में मानव लीलायें करते देखा अतः मानव और प्रकृति का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से सम्बन्ध उतर आया और उसी सम्बन्ध भावना से प्रकृति के विभिन्न रूपों का इन्होने अपने काव्य में वर्णन किया।

---

१ रामचन्द्रिका लका काण्ड ॥२९॥

कृष्ण भक्ति शाखा

सगुणोपासक भक्तों की दूसरी शाखा कृष्ण भक्त शाखा थी। इन भक्तों ने श्रीकृष्ण के लोक रंजक रूप का दिग्दर्शन कराया और भगवान को वृन्दावन के बन और ब्रज के करील कुंजों में हँसते खेलते तथा मानव लीलायें करते देखा। उनके कृष्ण ग्राम के गोपाल थे, गोचारण और गो-दोहन इनकी प्रति-दिन की चर्या थी; अतः उस ग्राम्य-वातावरण के बीच मानव और प्रकृति का सम्बन्ध स्थापित हो गया। अपने आराध्य कृष्ण के विहार-स्थल, जमुना-कछार, कालिन्दी-तट, वंशी-वट और करील-कुंज तुलसी के चित्रकूट की भाँति इनके प्रिय होगये और मानव व्यापारों तथा भावों की पृष्ठ-भूमि के रूप में इनके काव्य का विषय बन गये। यह कवि कभी तो बालकृष्ण की रूप-माधुरी और चांचल्य पूर्ण क्रियाओं पर मुग्ध हुए, कभी गोपियों और ग्वाल-सखाओं के साथ आनन्द मग्न किशोर कृष्ण की ललित क्रीड़ाओं पर तन मन वार बैठे और कभी विरहिणी गोपियों की व्यथा से द्रवित हो आँसू बहाने लगे ब्रज का प्राकृतिक वातावरण कृष्ण के संसर्ग से आनन्द-वर्धक और सुखद प्रतीत हुआ और कृष्ण वियोग में समस्त प्रकृति श्री विहीन होगई, अतः इनके काव्य में हमें प्रकृति का उद्दीपन रूप बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

काव्य परम्परा में प्रकृति का उपमान रूप में प्रयोग चला ही आरहा था। अलंकार शास्त्र के आचार्य मानव-सौन्दर्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये प्राकृतिक उपमानों की एक लम्बी सूची तैयार कर चुके थे, कृष्ण भक्त कवियों ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण के सौन्दर्य वर्णन में प्रायः सभी प्रचलित उपमानों का प्रयोग किया।

इन्होंने, प्रकृति के स्वतंत्र महत्व से प्रभावित न होने के कारण प्रकृति में मानवी करण की भावना तो नहीं, हाँ, प्रकृति को मानव भावनाओं से रंजित अवश्य दिखाया। सयोग में इन कवियों ने प्रकृति को उल्लसित और वियोग में संतप्त व्यक्त किया, कहीं कहीं आगामी घटना की पृष्ठ-भूमि के रूप में भी प्रकृति का चित्रण किया।

कृष्ण भक्त काव्यकारो में हमें सर्व प्रथम विद्यापति का मंजु-घोष सुनाई देता है। विद्यापति ने जय देव के गीत गोविन्द की शैली के माधुर्य पर अनुरक्त होकर गीतिकाव्य की रचना की और मिथिला की अमराइयों की शीतल छाया में अपने कोकिल-कंठ से ऐसा काव्य-सुधा-रस-वर्षण किया जिससे केवल मिथिला और वंग प्रदेश ही नहीं बरन समस्त उत्तरी भारत सिक्त होगया और राधा कृष्ण की युगल-मूर्ति सबके हृदय में व्याप्त होगई।

विद्यापति के आराध्य राधा कृष्ण थे। इन्होंने राधाकृष्ण को मानवीक्षेत्र में लाकर उनकी लौकिक लीलाओं का वर्णन किया है। इनके काव्य का मुख्य विषय राधाकृष्ण का दाम्पत्य प्रेम है, भावावेश मे इनके राधा कृष्ण साधारण नायक नायिका मात्र हैं अतः कहीं कहीं इनका दाम्पत्य प्रेम मर्यादा का अतिक्रमण कर जाता है। इनके काव्य में हमें अधिकतः नायक नायिका के भावो को उद्दीप्त करने में प्रकृति के दर्शन होते हैं वसन्त का महीना है, उसका सुखद शीतल वातावरण नायक नायिका में जीवन उमग भर देता है—

नव वृन्दावन नव नव तरुगन नव नव विकसित फूल।
नवल वसन्त नवल मलियानिल मातल नव अलि कूल॥

विहरई नवल किसोर। कालिन्दि पुलिन कुंज वन सोभन नव नव प्रेम विभोर॥

नवल रसाल मुकुल मधु मातल नव कोकिल कुल गाय।
नव जुवती गत चित उमताअई नव रस कानन धाय॥
नव जुवराज नवल वर नागरि मीलए नव नव भाँति।
निति निति ऐसन नव नव खेलन विद्यापति मति माँति॥[1]

बसन्त के विकसित पुष्प, नवीन रसाल के मुकुल, कोकिल का कल-गान और यमुना का तट युवक युवतियो के मन को चंचल बनाता है, प्रकृति विभाव-पक्ष में आलम्बन और आश्रय दोनों को उत्तेजित करती है, दोनो आनन्द विहार करते और नव नव प्रकार से खेलते हे। प्रकृति ने इतने अधिक उल्लास का संचार किया है कि मानिनियों का मान छूट जाता है।

पाइक मधुकर कर मधु पान।
भमि भमि जोहए मानिनि मान॥[2]

---

१ विद्यापति पदावली ॥१७६॥
२ ,, ,, ॥१८१॥

भौंरे की गुंजान मानो उन्हें मान त्याग देने का संकेत करती है वे प्रकृति में भौंरे को भी प्रेमोन्मत्त होकर गुनगुनाते देखकर अपने मान को त्यागकर संयोग सहवास को सुखद बनाती हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति के तत्व शारीरिक उपभोग की सामग्री भी बन जाते हैं। कर्पूर की सुगंधि तथा चन्दन और पुष्प का शीतल स्पर्श सुखद प्रतीत होता है, पुष्पाभरण और ताम्बूल की लाली सुख के साथ ही सौन्दर्य वृद्धि करते हैं और नायक नायिका के आकर्षण को बढ़ाते हैं,

गोरी सामरि एक बूढ़ि बारि।

विविध भाँति कएलन्हि सिंगार, पहिरल पटोर गम भूल हार॥
कैओ अगर चन्दन घसि भर कटोर, ककरहु खीईछा कर पुर तमोर॥
कैओ कुमकुम मरदाब आँग, ककरहु मोतिअ भल छाज माँग॥[1]

केवड़ा, कुमकुम और चन्दन आदि के लेपन से सभी स्त्रियाँ अपने शरीर को सुवासित कर रही हैं उनके मन में प्रकृति के सुन्दर वातावरण ने उत्साह भर दिया है और प्रिय मिलन को अधिक सुखदायी बना दिया है किन्तु शारीरिक उपभोग की ये ही वस्तुएं वियोग में संतप्त करती हैं प्रिय वियोग में मन के क्षुब्ध हो जाने पर चन्दनादि सुख सामग्रियाँ व्यथित बना देती हैं,

सहि हे कतहु देखि मधाई।

मृग मद चानन परिमल कुंकुम के घोल सीतल चन्दा।
पिया विसलेख अनल ज्यौं बसिए विपत्ति चिन्हिए भल मन्दा।[2]

कस्तूरी, चन्दन और कुंकुम के लेपन प्रिय-विच्छेद में वियोगिनी को अग्नि के समान तप्त करने वाले प्रतीत होते हैं। बसन्त में शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन उन्हें प्रिय-सहवास के सुखद दिनों की याद दिलाता है—

चौदिस भमर भम कुसुम कुसुम रस नीरस मांजरि पीवइ।
मन्द पवन चल मिल कुहु कुहु कह सुनि बिरहिन कइसे जीवइ॥[3]

भौंरे भ्रमण कर रहे हैं, कोयल कूक रही है और मलय समीर प्रवाहित हो रहा है ऐसे समय में विरहिनी व्यग्र हो जाती है और वियोग दुःख सहने में असमर्थ हो जाती है, सूर की गोपियों ने भी उद्धव के सम्मुख 'कोकिल कूजत

---

१ वियापति पदावली ॥१९२॥
२ ,, ,, ॥१७८॥
३ ,, ,, ॥१९१॥

कानन' कहकर अपनी असमर्थता प्रकट की है। विरह-दुःख की अधिकता में समस्त सुखद प्रकृति विपरीत प्रभाव डालती है, कोकिल डाकिन सी लगती है और चन्द्रमा अग्नि के गोले के समान। उसकी समझ में स्वयं ही नहीं आता कि समस्त आनन्द प्रदायिनी वस्तुएँ अब क्यों प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं—

चन्दन तरु जब सौरभ छोड़ब ससधर बरिखब आगि।
चिन्तामणि जब निज गुन छोडब की मोर करम अभागि ॥[1]

वह अपना अभाग्य समझकर ही सन्तोष कर लेती है।

विद्यापति ने वियोग में बारहमासे का सुन्दर वर्णन किया है। वियोगिनी को प्रत्येक मास विकल बनाता है। कभी वह भयभीत होती है, कभी प्रकृति को सुखी देखकर ईर्ष्या करती है, कभी काम वश होती है और कभी सुख के दिनों की स्मृति में आँसू बहाने लगती है। श्रावण मास में देखिये,

साओन मास बरिस घन वारि, पंथ न सूझै निसि अँधियारि ॥
चौदिस देखिए बिजुरी रेह, से सखि कामिनि जीवन सँदेह ॥[2]

श्रावण मास की अंधेरी रात और बिजली की चमक विरहिणी में भय का संचार करती है।

आश्विन मास में प्रकृति के चेतन जीवों को क्रीड़ा मग्न देखकर उसके हृदय में ईर्ष्या का प्रादुर्भाव होता है, वह चाहती है कि समस्त प्रकृति उसी की भाँति व्यग्र हो।

आसिन मास आस घर चीत। नाह निकारुन न मेलोह हीत ॥
सरवर खेलए चकवा हास। विरहिन बैरि मेल आसिन मास ॥[3]
विद्यापति पदावली

चकवा-चकवी सरोवर में क्रीड़ा कर रहे हैं, विरहिणी को ईर्ष्या होती है क्योंकि उसका निष्करुण प्रियतम लौटकर नहीं आया।

जब प्रिय की आशा में हृदय निराशा और क्षोभ से भर जाता है तो एकमात्र प्रकृति ही अपनी सहचरी प्रतीत होती है। उस समय मानव अपना

---

१ विद्यापति पदावली ॥२०८॥
२ ,, ,, ॥२०५॥
३ ,, ,, ॥२०८॥

अभिमान त्यागकर स्वय को अत्यन्त तुच्छ समझने लगता है वियोग की इसी अवस्था में नागमती अपने रानीत्व को भूलकर 'पिउ सो कहेउ संदेसड़ा हे भौंरा हे काग' काग और भौंरे से अपना दुःख कहती फिरती थी। विद्यापति की वियोगिनी राधा भी कौवे को खीर खांड़ और सोने के कटोरे की रिश्वत देकर अपने प्रिय के आगमन के विषय में प्रश्न करती है—

काक भाख निज भाखह रे पहु आओत मोरा।
खीर खांड भोजन देव रे भरि कनक कटोरा ॥[1]

तुलसी की कौशल्या अयोध्या में राम के आगमन के लिये शकुन मना रही है।

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु काग फुरि बाता ॥
१६ लंका कांड

इस प्रकार के एकालाप में नारी के प्रेम पूरित हृदय की कोमलता और दीनता की सुन्दर व्यजना है।

विद्यापति के काव्य में संयोग में वसन्त और वियोग शृगार में बारहमासे का वर्णन यद्यपि उद्दीपन की ही दृष्टि से है किन्तु कहीं कहीं पर उद्दीपन की पृष्ठिभूमि के रूप में अच्छा चित्रण मिलता है, देखिये—

चल देखए जाऊ रितु वसन्त। जहाँ कुंद कुसुम केतकि हसन्त ॥
जहाँ चंदा निरमल भमर कार। जहाँ रयनि उजागर दिन अधार ॥[2]

बसन्त में चन्द्रिका इतनी निर्मल और कुन्द तथा केतकी के श्वेत पुष्प इतनी अधिकता से विकसित हुए हैं कि रात्रि प्रकाशमयी और भ्रमरों के आधिक्य के कारण दिन अधकार पूर्ण प्रतीत होता है जहाँ इन्होंने ऋतुपति का शक्तिशाली राजा से रूपक बाँधा है वहाँ भी वर्णन गुथा हुआ और सुन्दर है,

आएल ऋतुपति राज बसन्त। धाओल अलिकुल माधवि-पंथ ॥
दिनकर किरन भेल पौगंड़। केसर कुसुम धएल हेमदंड ॥
नृप आसन नव पीठल पात। कांचन कुसुम छत्र धरू माथ ॥
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताय। समुखिहि कोकिल पचम गाय ॥

---

१ विद्यापति पदावली ॥१९०॥
२ ,, ,, ॥१८४॥

सिखिकुल नाचत अलिकुल यत्र। द्विज कुल आन पढ़ आसिख मन्त्र॥
कुन्दबल्ली तरु धएल निसान। पाटलतूल असोक-दलवान॥
किंसुक लवग लता एक सग। हेरि सिसिर ऋतु आगे दल भग॥
सैन साजल मधु-मखिका कूल। सिसिरक सबहु कएल निरमूल॥[1]

इसमे कवि ने बसन्त में विकसित माधवी, कुन्द, केतकी, चम्पा, अशोक, पलाश, आम्र, पाटल आदि के पुष्पों और कोकिल मयूर तथा मधु-मक्खियों आदि के वर्णन में केवल नाम परिगणन नहीं कराये हैं अपितु गलिश्ट चित्रण किया है। यह वर्णन परम्परानुगत नहीं है कवि का अपना निरीक्षण भी है कवि परम्परा में बसन्त में मयूर के नृत्य का वर्णन नहीं किया जाता किन्तु विद्यापति ने आँखों देखी वस्तु की उपेक्षा न करके मयूर को अपने ऋतु वर्णन में स्थान दिया है।

राधाकृष्ण के अनुपम सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिये विद्यापति ने प्रकृति से उपमान लिये हैं। ये उपमान अधिकतः परम्परा प्राप्त हैं। किन्तु विद्यापति ने उनको ऐसे आकर्षक रूप मे प्रयुक्त किया है कि मनुष्य मुग्ध हो जाता है।

नयन नलिनि दओ अजन रजइ भौंह विभग विलासा।
चकित चकोर जोर विधि बाँधल केवल काजर पासा।[2]

नेत्रों के लिये चकोर और कमल कवि-समय-सिद्ध उपमान हैं। राधा के नेत्रो के लिये दोनों उपमानो का प्रयोग करते हुए कवि उत्प्रेक्षा द्वारा कहते हैं कि राधा के कमल नेत्रों में अंजन ऐसे प्रतीत होता है मानो काजल के पाश में चकोर के जोड़े को बांध रखा हो।

कहीं कहीं विरोधी वस्तुओं को एक स्थान पर एकत्रित दिखाकर रूप वर्णन को और भी अधिक प्रभावशाली बना दिया है।

चिकुर निकर तम सम पुनु आनन पुनिम ससी।
नयन पकज के पतिआओत एक ठाम रहु बसी॥[3]

राधा के केश अधकार के समान (कृष्ण वर्ण) हैं मुख पूर्ण चन्द्र के समान प्रफुल्लित है और नेत्र कमल के समान हैं। तीनों वस्तुओं में विरोधा-

१ विद्यापति पदावली ॥१७५॥
२ ,, ॥१८॥
३ ,, ॥१७॥

भास है, पूर्ण चन्द्र के सम्मुख अधकार नही ठहर सकता और न कमल ही विकसित हो सकता है, किन्तु राधा के मुख में तीनों विरोधी वस्तुओं का समावेश है। सूर ने इसी भाव को उत्प्रेक्षा द्वारा व्यक्त किया है—श्रीकृष्ण मुख पर हाथ रख कर खड़े हैं उनका मुख चन्द्र के समान द्युतिमान और कर कमल के समान कोमल है सूरदास को बाल-कृष्ण, इस मुद्रा में अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते हैं और वह उत्प्रेक्षा अलंकार में अपने हरि जू की छबि का इस भाँति वर्णन करते हैं—

सुन्दर कर आनन समीप अति राजत इंहि आकार।
जलरुह मनों बैर बिधु सो तजि मिलत लए उपहार ॥[1]

विद्यापति और सूर दोनो ने असभाव्य की सभावना की है विद्यापति ने उपमालंकार द्वारा कमल और चन्द्र को एक स्थान पर ला दिया है और पाठक के लिये तर्क-वितर्क का विषय बना दिया है किन्तु सूर ने शशि और कमल उपमान में सकारण संभावना का आरोप किया है उन्होंने स्पष्टतः कह दिया है कि चन्द्र और कमल ने अपना स्वाभाविक विरोध त्याग दिया है। इसी प्रकार जब कृष्ण राधा के मुख पर अपना मुख रखते हैं तो कवि दोनो के मुखों का कमल और चन्द्र से सादृश्य दिखाते हैं, फलतः दोनों के नेत्रों को रूपकातिशयोक्ति द्वारा भ्रमर और चकोर ठहराते हैं।

वदन मेराए धएल मुख मंडल कमल मिलल जनि चन्दा ॥
भमर चकोर दुज्जो अरखाएल पीबि अमिय मकरन्दा ॥[2]

कहीं कहीं इन्हीं सादृश्य मूलक उपमानो का अत्युक्तिपूर्ण उपयोग किया है राधा के अंग उपमानों की सृष्टि करते चलते हैं।

जहाँ जहाँ पग जुग धरई। तहिं तहिं सरोरुह भरई।
जहाँ जहाँ झलकत अग। तहिं तहिं बिजुरि तरंग ॥[3]

तुलसी ने भी सीता के नेत्रों का इसी प्रकार वर्णन किया है।

जहँ बिलोकि मृग सावक नयनी। जनु तहँ बरिस कमल सित सेनी ॥
२६४ बा० का०

राधा के सौन्दर्य को अप्रस्तुत से अधिक तीव्र व्यक्त करने के लिये विद्यापति ने उपमान का निरादर कराया है।

---

१ सूर सुषमा ॥३७॥
२ ,, ,, ॥८६॥
३ ,, ,, ॥३५॥

कवरी भय चामरि गिरि कन्दर, मुख भय चाँद अकासे।
हरिन नयन भय सर भय कोकिल गति भय गज बनवासे ॥[1]

राधा के केश की उपमान चँवरवाली गौ गिरि कन्दरा में, और मुख का उपमान चन्द्र विलीन होकर आकाश में छिप जाता है, नेत्र, स्वर और गति के उपमान हरिण, कोकिल तथा गज, वन मे निवास करते हैं प्रतीप अलंकार द्वारा कवि ने उपमेय से उपमान का निरादर कराया है। कृष्ण की समता के लिये तो उन्हे कोई उपमान ही नहीं जँचता, अपने आराध्य की उत्कृष्टता के सम्मुख समस्त प्रकृति हेय है—

माधव, कत तोर करब बड़ाई।
जौं श्री खंडक सौरभ अति दुरलभ तौ पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीस निसाकर तौ पुनः एकहि पच्छ उजोर।
तोहर सरिस एक तोह माधव मन होइछ अनुमान।[2]

इस भाँति आरम्भ में व्यतिरेक और अन्तिम पक्ति में अनन्वय द्वारा वह अपने माधव को उत्कृष्ट एव अनुपमेय ठहराते हैं।

दूती नायिका को उसके प्रेमी के पास लिवा जाना चाहती है। वह नायिका को नायक की विकलता का अन्योक्ति द्वारा दिग्दर्शन कराती है।

कटक माँझ कुसुम परगास। भमर विकल नहिं पावए पास ॥
भमरा मेल घुरए सबै ठाम। तोहे बिनु मालति नहिं बिसराम ॥[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति ने प्रकृति का उपयोग उद्दीपन और अलकार रूप मे किया है। राधा कृष्ण के हास विलास और अद्भुत रूप के वर्णन में और किसी प्रकार के उपयोग के लिये अवसर ही कहाँ था। इनकी दृष्टि तो अपने उपास्य की रम-माधुरी में ही उलझ रही थी। उन्हीं की क्रीड़ा-भूमि में ये विचरण करते रहे, उन्हीं से सम्बन्धित प्रकृति इनके काव्य में स्थान पासकी। राधाकृष्ण के दुःख-सुख में प्रकृति दुःख-सुख पूर्ण प्रतिभासित हुई। प्रकृति हृदय की अवस्था से अतिरजित हुई अतः प्रकृति में मानवी करण की भावना हमें नहीं मिलती। जहाँ कहीं उन्होंने बसत को

---

१ सूर सुषमा ॥२०॥
२ ,, ॥२५१॥
३ ,, ॥४७॥

बालक, किशोर अथवा नृप रूप प्रदान किया है वहाँ मानव-व्यापारों का रूपक और उत्प्रेक्षा, अलंकारों में दिग्दर्शन कराया है, किन्तु उसमें प्रधानता अलंकारों की ही है, मानव व्यापारों की नहीं, अतः सफल मानवीकरण नहीं कहा जा सकता। जहाँ इन्होंने बसंत में एक नव-जात शिशु का आरोप किया है वहाँ इनका सूक्ष्म निरीक्षण प्रकट होता है—

पीअर पाँडरि महुअरि गाबए,
काहरकार धतूरा।
नागेसर-कलि सख धूनि पूर,
तकर ताल समतूरा ॥१०॥
पअोनार तोरि सूत बाधल कटि,
केसर कएलि बधनाई ॥१२॥[1]

शिशु के जन्मोत्सव पर मंगल-गीत, तुरही-शंख-नाद, रागड़ी और बाघनख आदि का आरोप पांडरि, धतूरा, नागकेशर की कली, पद्म-नाल और केसर की पंक्तियों में किया है। धतूरा और नाग केशर की कली वास्तव में तुरही और शंख की आकृति के होते हैं, इसमें कवि का निजी निरीक्षण है कवि ने जन्मोत्सव को अलंकरण द्वारा सजीव बना दिया है।

प्रकृति में परम तत्व की अभिव्यजना भी हमें इनके काव्य में नहीं प्राप्त होती, कबीर की भाँति अद्वैतवाद की थोड़ी सी झलक हमें प्रार्थना में मिलती है।

तोहे जनमि पुन तोहे समाओत सागर लहरि समाना।[2]

आत्मा-परमात्मा में इसी प्रकार विलीन हो जाती है जिस प्रकार समुद्र में लहर, इस प्रकार के विचार ज्ञानवादी कबीर के प्रभाव स्वरूप हैं।

---

१ सूर सुषमा ॥१७४॥
२ ,, ॥२५३॥

सूरदास

विद्यापति के पश्चात् वैष्णव भक्तों में सबसे अधिक मधुर संगीत हमें अधे सूरदास का सुनाई देता है। सूरदास के उपास्य राधा कृष्ण थे। कृष्ण के बाल-रूप का सूर ने अत्यन्त सूक्ष्म और चित्ताकर्षक वर्णन किया। उनकी बालकों की सी प्रत्येक स्वाभाविक चेष्टा पर सूर ने मुग्ध होकर संगीत की तान छेड़ दी। उन्होंने बालक कृष्ण की बाल-चापल्य-पूर्ण अटपटी बातों और उनकी रस-सिक्त लीलाओं के मधुर गान से हिन्दू जनता के मुरझाये मन खिला दिये। दाम्पत्य-रति के अन्तर्गत भी सूर ने सयोग और वियोग दोनों पक्षों का विस्तृत वर्णन किया। गोपियों के साथ की गई रास-क्रीड़ाओं की सयोग शृगार में अनुपम छटा विलीन करदी। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों की विरह-वेदना में कहे गये पद तो हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है।

राम-भक्त कवियों की भाँति कृष्णोपासक भक्तों का क्षेत्र जीवन-व्यापी नहीं था। इनका क्षेत्र एकदेशीय था और मुख्य विषय था शृगार वर्णन। इनके कृष्ण एक चपल बालक अथवा प्रेमी नायक थे अतः वात्सल्य और दाम्पत्य रति को ही इनके काव्य में प्राधान्य मिला। कृष्ण की मधुर एव प्रेममयी त्रिभगी मूर्ति सूर के अन्तर्तम में बस गई और सुधि बुधि खोकर अन्ध कवि सूरदास अपने उपास्य के अनुपम रूप और हास-विलास का वर्णन करने लगे, अतः इनके काव्य में हमें केवल उद्दीपन और सौन्दर्य के उपमान के रूप में ही प्रकृति का उपयोग मिलता है।

सयोग में कृष्ण की समस्त बाल-लीलाएँ और गौचारण आदि माँ के वात्सल्य पूर्ण प्रेम को बढाते हैं। प्रातःकाल यशोदा और नन्द के हृदय में नवीन उत्साह भर देता है वे अपने दुलारे पुत्र को जगाते हैं:—

प्रात भयो जागो गोपाल।
नवल सुन्दरी आई बोलन तुमहिं सबै ब्रजवाल।
प्रगटो भानु मन्द उडुपति भयो फूले तरुन तमाल।
दरसन को ठाड़ी ब्रजबनिता लाई कुसुम बन माल।[1]

---

१ सूर पंचरत्न बालकृष्ण ॥६५॥

सूर्योदय हो गया है, चन्द्र अस्त हो गया है और तमाल का वृक्ष फूल रहा है। माता-पिता के हृदय में अनेक भाव उठते हैं, वे इस समय अपने पुत्र को भी प्रफुल्लित देखना चाहते हैं, उसकी बाल क्रीड़ाओं को वे अपने आँगन में देखने के लिये विकल हो उठते हैं प्रभात का सुखद वातावरण उन्हें प्रिय पुत्र की बाल लीलाओं का अधिकाधिक ध्यान दिलाता है और वे कृष्ण को जगाने लगते हैं। वात्सल्य रस के अन्तर्गत विभाव पक्ष में आलम्बन कृष्ण की नटखटियाँ, उनके बाल सुलभ कौतुक और उनके गौचरण आदि कर्म प्रकृति के संसर्ग से माता पिता के संयोग सुख में वृद्धि करते हैं, हठी कृष्ण कहते हैं,—

लैहो री माँ चाँद लहोंगौ।

कहा करो जल पुट भीतर को बाहर क्योंकि गहोंगौ।
यह तो झलमलात झकझोरत कैसे कै जु चहोंगौ।
वह तो निपट निकट ही दीखत बरज्यों हौ न रहोंगौ।[1]

बालक कृष्ण चन्द्र को लेने के लिये हठ करते हैं। माता पानी में चन्द्र दिखाती है किन्तु कृष्ण नहीं मानते। इस प्रकार के कृत्यों से माता खीझकर भी रीझ जाती है। इसमें बालक का प्रकृति प्रेम भी दृष्टिगोचर होता है वह प्रतिबिम्ब की अपेक्षा प्राकृतिक चन्द्र के प्रति आकर्षित होता है। गोप-कुमार कृष्ण गौ चारण के पश्चात प्रथम दिन जब आते हैं तो,

जसुमति दौरि लिये हरि कनियाँ,
आजु गयौ मेरो गाय चरावन हौं बलि जाऊ निछनियाँ ॥[2]

पूरे दिन बन में रहने के पश्चात् जब कृष्ण घर आते हैं तो माँ का हृदय आनन्द और उत्साह से भर उठता है, वह अपने पुत्र को हृदय से लगा लेती है।

झाउ के सघन वन में बलदेव कृष्ण को डरा देते हैं उस समय की शिकायत माँ यशोदा से की जाती है—

मैया बहुत बुरौ बलदाऊ।
कहन लग्यौ वन बड़ौ तमासो सब मौड़ा मिलि आऊ।

---

१ सूर सुषमा ॥२१॥
२ ,, ,, ॥४१॥

मोहू कौ चुचकारि गयौ लै जहाँ सघन बन भाऊ।
भागि चल्यौ कहि गयौ उहाँ तैं काटि खाइ रे हाऊ ॥[1]

बालक की इस प्रकार की बातें माँ के हृदय को ममत्व और प्रेम से पूर्ण कर देती है माँ मुग्ध होकर अथवा किसी आशङ्का से शङ्कित हो बालक को हृदय से लगाकर चुम्बन कर लेती है।

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर माता का हृदय अपने लाड़िले को देखने के लिये तड़प उठता है। मन को समझाने पर भी नवनीत को देखकर शूल होता है। गायों को देखकर कहने लगती हैं "अब इन गेयन कौन चरावे भरि भरि लेत हियो"। प्रातःकाल होता है तो मन में उठता है "प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन मांगे दै है"।

शृंगार में दाम्पत्य रति के अन्तर्गत सूर ने विभाव-पक्ष में प्रकृति का वात्सल्य से अधिक विशद और मधुर वर्णन किया है। ब्रज के निकुञ्ज, कालिंदी कूल और बसन्त का सुखद वातावरण राधाकृष्ण और गोपियोंको उत्साहित करता है और सब मिल कर फाग खेलने लगते हैं :—

सुन्दर वर नग ललना विहरति बसन्त सरस रितु आई।
लै ले छरी कुमार राधिका कमल नैन पर धाई ॥
सरिता सीतल बहति मन्द गति रवि उत्तर दिसि आयो।
अति रस भरी कोकिला बोली विरहिनि विरह जगायो ॥
द्वादस वन रतनारे देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले।
भौंरे अबुजा अरु द्रुम वेली मधुकर परिमल भूले ॥
इत श्रीराधा उत श्री गिरधर इत गोपी उत ग्वाल।
खेलत फागु रसिक ब्रज बनिता सुन्दर स्याम तमाल ॥[2]

उस प्रकार उद्दीपन रूप में पारस्परिक रति-भाव की अभिवृद्धि करती हुई प्रकृति शारीरिक उपभोग की वस्तु बन जाती है और उसके शीतल स्पर्श तथा सुगधि से सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं। प्रकृति से उत्साहित हो वे परस्पर "चौना चंदन अबिर कुमकुमा छिरकत भरि पिचकारी।"

सूर ने ऋतु वर्णन की परम्परा का भी पालन किया है। पावस में सरि-ताएँ जल पूर्ण हो जाती हैं, सूखे वृक्ष हरे भरे हो जाते हैं, पृथ्वी की हरियाली

१ सूर सुषमा ॥४७॥
२ „ „ ॥९३॥

नेत्रों को तृप्त करती है, एव प्रकृति का सुन्दर एव उत्फुल्लरूप मनुष्यों की प्रेम भावना को उत्तेजित करता है। दूती पावस के उत्तेजक रूप का वर्णन करते हुए राधा को कृष्ण के पास ले जाना चाहती है—

यह ऋतु रुसिबे की नाहीं।
बरसत मेघ मेदनी के हित प्रीतम हरषि मिलाहीं।
जेती बेलि ग्रीष्म ऋतु डाहीं ते तरुवर लपटाही॥
जे जल बिनु सरिता ते पूरन मिलन समुद्रहिं जाहीं।
सूरदास उठि चलहु राधिका सङ्ग दूती पिय पाहीं॥[1]

शरद में जमुना-तट पर मल्लिका की सुगंधि और निर्मल ज्योत्स्ना गोपियों के हृदय में उमग भर देती है और वे कृष्ण के साथ रास रचने में मग्न हो जाती हैं,

जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर शरद सुहाई जामिन।
रच्यौ रास मिलि रसिकराइसों मुदित भई ब्रज भामिन॥[2]

विप्रलम्भ-शृंगार में तो सूर के उद्दीपन-रूप में किये गये प्रकृति वर्णन इतने अनूठे, सूक्ष्म तथा सरस हैं कि गोस्वामी तुलसीदास भी उनकी समता में नहीं लाये जा सकते। वियोग की दस काम दशाओं के अतिरिक्त उन्होंने कितनी ही ऐसी दशाओं का वर्णन किया है जो साहित्य में पहले नही पाई जातीं।

वियोग में मनुष्य को जब अतीत के सुखद दिवसों की स्मृति सताती है तो पुराने छाया-चित्र उसके नेत्रों के सम्मुख प्रकट होने लगते हैं, उस समय उन स्थलों की स्मृति जहाँ सुख के दिवस व्यतीत किये थे एक पीड़ा उत्पन्न करती रहती है,

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कगरी अरु कुञ्जन की छाहीं।
वे सुरभी वे बच्छ दोहिनी, खरिक दोहावन जाहीं॥१८०॥
भ्रमर गीत

मथुरा के ऐश्वर्य, वैभव और राज-प्रासाद में कृष्ण को अपने बाल-जीवन की स्मृति व्याकुल कर देती है। ब्रज के कालिन्दी-कूल और निकुञ्ज-

---

१ सूर सुषमा ॥८६॥
२ ,, ,, ॥८१॥

छाया के प्राकृतिक वातावरण की तुलना में उन्हें मथुरा का कृत्रिम और वैभवशाली वातावरण अरुचिकर प्रतीत होता है। गोपियाँ भी कृष्ण के वियोग में समस्त रास-कुञ्जों और यमुना कछारों के प्रति उदासीन हो जाती हैं। उन स्थानों में उनके जाने की इच्छा नहीं होती। उन स्थानों को देखकर उन्हें सुख के दिनों की याद आती है। स्मृति, पूर्वानुभूत सुखों की कल्पना के चित्रपट पर लाकर उनकी तुलना में वर्तमान की हीनावस्था को और भी गहरे रङ्ग में रङ्ग देती है और विरहाधिक्य में तो वे सब प्राकृतिक वस्तुएँ विपरीत प्रभाव प्रकट करने वाली प्रतीत होती हैं। राधा कहती हैं—

फूल बिनन नहिं जाऊँ सखी री, हरि बिन कैसे बीनों फूल।
सुन री, सखी, मोहिं राम दुहाई, फूल लगत तिरसूल।
वै जो देखियत राते राते फूलन फूली डार।
हरि बिन फूल झार से लागत झरि झरि परत अँगार।
कैसे कै पनघट जाऊँ सखी री! डोलौं सरिता तीर।
भरि भरि जमुना उमड़ि चली है इन नैनन के तीर॥[1]

उपवन, पनघट और यमुना-तट जो कभी उनके आमोद-प्रमोद के स्थल थे वे सब उनको अब वियोगावस्था में पीड़ित करते हैं। अपनी भावुकता में वे प्रकृति के वास्तविक रूप को नहीं देख पातीं। उसका सुन्दर और सौम्य रूप उन्हें दग्धकारी ही प्रतीत होता है।

मन के कुछ स्वस्थ होने पर वह प्रकृति को उसके यथार्थ रूप में देखती हैं तो उनके हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न होती है उनकी इच्छा होती है कि उनकी वेदना का अनुभव समस्त भू-मण्डल को हो, उपवन सूख जायें, संसार उजड़ जाये और जड़ तथा चेतन सब पदार्थ उन्हीं की भाँति वेदना से पूर्ण हो जाये। मधुवन को हराभरा देखकर वह ईर्ष्या से झुँझला उठती हैं—

मधुवन तुम कत रहत हरे।
बिरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाडे क्यों न जरे॥ सूर सुषमा ॥१०४॥

इसी प्रकार पावस में मोर उन्हें शत्रु के समान प्रतीत होते हैं—

हमारे माई मोरऊ बैर परे।
घन गरजे बरजें नहिं मानत त्यों त्यों रटत खरे॥ सूर सुषमा १२०॥

---

१ भ्रमर गीत १६३

किन्तु प्रकृति को सम-दुःखी देखकर उनका हृदय सहानुभूति से भर उठता है —

बहुत दिन जियो पपीहा प्यारे।

बासर रैनि नाँव लै बोलत भयो बिरह जुर कारो॥ सूर सुषमा १२१॥

अपने प्रिय से वियुक्त होने पर उनकी समस्त वस्तुएँ प्रिय और शान्ति-प्रदायिनी प्रतीत होती हैं। प्रकृति में अपने प्रिय के से रूप अथवा गुण को देख कर प्रिय की स्मृति घेर लेती है —

आज घन स्याम की अनुहारि।

उनै आए, साँवरे, सखि री, लेहि रूप निहारि।

इन्द्र धनुष मनो पीत बसन छवि, दामिनि दसन विचारि।

जनु बग पाँति माल मोतिन की, चितवत चित्त लेत हैं हारि॥ ३२३॥

भ्रमर गीत सार

श्याम मेघों में उन्हें प्रिय की श्यामता, इन्द्र धनुष में पीत पट की छवि, विद्युत में दाँतों की द्युति और बक-पंक्ति में मुक्ताहार का पूर्ण सादृश्य प्रतीत होता है। वे मुग्ध हो जाती हैं। प्रेम की अवस्था में उन्हें यह सादृश्य मोहक होता है किन्तु झुंझलाहट, नैराश्य और क्षोभ में वे कृष्ण के वर्ण से सादृश्य रखने वाली प्रकृति को अनेक फटकार सुना देती हैं। भ्रमर, कोकिल, काग, सभी कृष्ण-वर्ण जीव उनके क्रोध एवं क्षोभ के पात्र हो जाते हैं। वियोग में बारहमासे की परम्परानुगत प्रथा के अनुसार सूर ने बसन्त, पावस, और शरद ऋतु का वर्णन किया है।

बसन्त का मलय-समीर, भ्रमर गुंजन और कोकिल का कल-कूजन उन्हें प्रिय-मिलन के लिये उत्तेजित कर देता है, कृष्ण का विरह उनके लिये असह्य हो जाता है, उनकी दबी हुई वासनायें उद्दीप्त हो जाती हैं —

ऊधो कोकिल कूजत कानन।

तुम हमको उपदेश करत हो भस्म लगावन आनन।

पावस में उनकी बुद्धि कुंठित हो जाती है। वे यही विचारती हैं—

परम वियोगिनि गोविन्द बिन कैसे बितवें दिन सावन के ?

हरित भूमि, भरे सलिल सरोवर, मिटे मग मोहन आवन के।

घुमरि घमडि दामिनी मदन धनुष धरि धावन के ।
दादुर मोर सोर सारंग मिल सोहैं निसा सूरमा बन के ॥२१०॥
भ्रमर गीत सार ।

प्रकृति उन्हें कामोत्तेजित करती है । वे कृष्ण मिलन के लिये व्यग्र हो जाती है । उन्हें यह विचार कर बड़ा आश्चर्य होता है कि उनके कृष्ण उत्तप्त होकर उनसे मिलने का प्रयास क्यों नहीं करते, सम्भवतः वहाँ पावस ऋतु कभी नहीं होती "किंधौं घन गरजत नहिं उन देसनि" तभी तो कृष्ण कामोत्तप्त नहीं होते ।

शरद में उनका समदुःखी पपीहा भी तुष्ट हो जाता है किन्तु उनके कृष्ण उन्हें नहीं मिलते, वे निराशा और कष्ट से कराह सी उठती हैं,

"ऊधो, सरद समय हू आयो"
बहुते दिवस रटत चातक तकि तेउ स्वाति जल पायो ।२५१।
भ्रमर गीत सार ।

कभी कभी वे अपने शरीर मे ही ऋतुओं का अनुभव करती हैं,

ब्रज तें द्वै ऋतु पै न गई ।
पावस अरु ग्रीषम प्रचंड सखि हरि बिनु अधिक भई ।
अरध स्वास समीर, नयन घन, सब जल जोग जुरे,
बरषि जो प्रकट किये दुख दादुर हुते जे दूर दुरे ॥भ्रमर गीत सार॥३०४॥

वियोग में चन्द्रोपालम्भ की प्रथा कालिदास के समय से ही चली आ रही थी सूर ने इस प्रथा का भी पूर्णतः पालन किया —

कोऊ माई बरजै या चन्द्रहिं ।
करत है कोप बहुत हम्ह ऊपर, कुमुदिन करत अनन्दहिं ।
कहाँ कुहू, कहँ रवि अरु तमचुर, कहाँ बलाहक कारे ।
चलत न चपल चहत रथ थकि करि बिरहिनि के तन जारे ॥३२०॥
भ्रमर गीत सार ।

कुमुदिनी को आनन्दित करने वाला चन्द्र गोपियों को सन्तप्त करता है, वे चन्द्र को छिपा देने वाले अधकार, मेघ और रवि की दुहाई देती हैं ।

विरह के अनवरत दुःख से दुःखी होकर वे प्रकृति से अपना एकात्म्य स्थापित करती हैं । चेतन-अचेतन का भेद भूलकर प्रकृति को अपनी सखी

समझ लेती हैं और अपना दुःख निवेदन करती हैं। प्रकृति उनकी अन्तरंगिनी बन जाती है; कभी वे पपीहे से अपना सन्देश कहती हैं,—

'कराव रे, सारग स्यामहि सुरत कराव' ॥३५२॥

और कभी कोकिल से प्रार्थना करती हैं कि वह किसी प्रकार उनके प्रियतम को ब्रज में ले आवे।

कोकिल हरि को बोल सुनाव।
मधुवन तें उचटारि स्याम कँह या ब्रज लै कै आव ॥३४६॥
भ्रमर गीत सार।

सूर की गोपियाँ प्राकृतिक उद्दीपन के महत्व को मानती हैं प्रकृति उनके सम्मुख उत्तेजक रूप में प्रकट होती है, अतः उनके लिये वैराग्य और योग असम्भव हो जाता है।

गोपियाँ प्रकृति के जीवों को अपनी ही भाँति दुःखी और संतप्त देखती हैं। उनके कृष्ण-वियोग में गाये तक दुखी है। गौओं की ऐसी अवस्था है,

बाल बिलख, मुख गौ न चरत तृन, बछरन छीर न प्यावें ॥२०५॥
भ्रमर गीत सार।

उनका विरह दुःख केवल जीवों तक ही व्याप्त नहीं है वरन् ब्रज की समस्त प्रकृति उसमें व्याप्त है,

ऊधो, यह ब्रज विरह बढ्यौ।
घर, बाहिर, सरिता, बन, उपवन बल्ली द्रुमन चढ्यौ॥ ॥२०४॥
भ्रमर गीत सार।

कृष्ण के वियोग का दुःख सरिता, उपवन और वृक्षों तक में समा गया है।

जायसी ने भी समस्त प्रकृति को नागमती के साथ रुलाया है। जड़ और चेतन प्रकृति नागमती की विरह वेदना से व्यथित होकर आँसू बहाती हैं,

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत आँसु घुंघची बन बोई॥
जँह जँह ठाढि होइ बनवासी। तँह तँह होइ घुंघुचि कै रासी॥
तेहि दुःख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते॥

नागमती के रंग में सचराचर प्रकृति रंग जाती है, पक्षी और पलाश वृक्ष सभी उसके साथ आँसू बहाते हैं। सूर ने गोपियों के साथ समस्त विश्व को न रुलाकर केवल कृष्ण से सम्बन्धित प्रकृति को ही अनुतप्त वर्णन किया है,

सजीव प्राणियों में कृष्ण की पालित गायें ही दुःखी हैं, वन के स्वच्छन्द वातावरण में मग्न रहने वाली कोकिल तथा अन्य पक्षी सब सुखी हैं। इसी भाँति कृष्ण वियोग में केवल कालिन्दी-तट और तटस्थ वृक्ष समूह ही श्री-विहीन प्रतीत होते हैं संसार के समस्त तरु नहीं। अतः सूर के उद्दीपन रूप में किये गये प्रकृति चित्रण में स्वाभाविकता अधिक है।

अलंकार

अलंकार रूप में सूर ने प्रकृति का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है उन्होंने अपने आराध्य के सौन्दर्य के वर्णन के लिये प्रायः सभी परम्परायुक्त उपमानों को अपनाया है। उपमा और उत्प्रेक्षा की उनके काव्य में भरमार है। साँग रूपक के भी विस्तृत चित्रण हैं। रूप और सौन्दर्य के वर्णन में सूर उपमा और उत्प्रेक्षा के अनेक उदाहरण देते चले गये हैं,

> नटवर बेष काछे स्याम।
> पद कमल नख इन्दु सोभा ध्यान पूरन काम।
> जानु जंघ सुघट निकाइ नाहिं रम्भा तूल।
> पीत पट काछनी मानहु जलज केसरी झूल।
> चिबुक पर अधरन दसन दुति बिंब बीजु लजाइ।
> नासिका सुक नैन खजन कहत कवि सरमाइ॥२४॥

सूर पंचरत्न माधुरी।

कृष्ण के इस सौन्दर्य वर्णन में अंगों के उपमान सब परम्परायुक्त हैं। सूर की काव्य प्रतिभा विलक्षण थी। उन्होंने कवि समय-सिद्ध उपमानों द्वारा रूप-साहश्य दिखाते हुए समान गुणों का भी आरोप किया है और अपने वाग्वैदग्ध्य द्वारा उपमानों को उचित सिद्ध कर दिया है,

> ऊधो अब यह समुझि भई।
> नदनन्दन के अंग अंग प्रति उपमा न्याय दई।
> कुन्तल कुटिल भँवर भरि भाँवरि मालति भुरै लई।
> तजत न गहरू कियो कपटी जब जानी निरस गई।
> आनन इन्दु बरन सम्पुट तजि करखे ते न नई।
> निरमोही नहिं नेह कुमुदिनी अन्तहि हेम हई॥१०७॥

भ्रमर गीत सार।

गोपियाँ लुब्ध होकर केश और मुख के उपमान भ्रमर तथा चन्द्र में कृष्ण की निर्ममता का प्रतिबिम्ब देखती हैं। भ्रमर रस लेने के पश्चात भोली मालती को त्याग देता है और चन्द्र कुमुदिनी की ओर से निरपेक्ष हो जाता है इसी भावना से उन्होंने अपने निरमोही प्रियतम कृष्ण का कोकिल से भी सादृश्य दिखाया है।

विरह की दशा में गोपियों की व्यग्रता बहुत बढ़ जाती है वे कृष्ण मिलन के लिये व्याकुल हो जाती हैं और अपनी निराशा से क्षुब्ध होकर अपने नेत्रों के समस्त उपमानों को अनुपयुक्त ठहरा देती हैं।

उपमा नैननि एक रही।

कविजन कहत कहत चलि आए सुधि करि नाहिं कही।
कहै चकोर मुख विधु बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़िजात।
आए बधन व्याध ह्वै ऊधो जो मृग क्यों न पलात।

... ...

खंजन मन रंजन न होहि ये काहूं नहिं अकुलात।
सूरदास मीनता कछू इक जल भर संग न छाँड़त॥१११॥

सूर सुषमा।

वे नेत्रों के उपमान चकोर, भ्रमर, मृग और खंजन को अनुपयुक्त ठहराती हैं क्योंकि उनके नेत्र प्रस्तुत उपमानों के व्यापार में असमर्थ हैं।

उत्प्रेक्षा की तो सूर के काव्य में भरमार है। वह अपने हरि के रूप वर्णन में प्रत्येक पद में उत्प्रेक्षा की योजना करते चलते हैं। उत्प्रेक्षालंकार में भी उपमान परम्परानुगत ही हैं।

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई।

कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहु विधि सुरंग बनाई।
मानों नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई।
अति सुदेश मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई।
मानों प्रकट कंज पर मंजुल अवली अलि घिर आई॥३४॥

सूर पंचरत्न बालकृष्ण।

उस प्रकार की उत्प्रेक्षा सूर और तुलसी की एक सी है। इनमें कवि का पना निजीपन नहीं है। किन्तु कहीं कहीं सूर ने परम्परा-पालन के साथ

अपने निजी-निरीक्षण से भी काम लिया है। किसी स्थल पर तो इस प्रकार के उनके उपमान इतने स्वाभाविक हैं कि पाठक को बिम्ब-ग्रहण हो जाता है और उपमान कवि के निजी से प्रतीत होते हैं। अपने श्याम की भुजाओं का वर्णन करते हुए वह कहते हैं—

स्याम भुजा की सुन्दरताई।
बड़े बिसाल जानु लौं परसत एक उपमा मन आई।
मनौ भुजग गगन ते उतरत अधमुख रह्यौ झुलाई ॥१६॥

रूप माधुरी।

भुजाओं के लिये सर्प कवि-समय-सिद्ध उपमान है; किन्तु सूर ने उसका ऐसा स्वाभाविक चित्रण किया है कि नीचे को मुख करके लटकते हुए सर्प का चित्र सा खिंच जाता है। इसी प्रकार, श्याम के अधरों की लाली के वर्णन में भी प्रकृति का अतीव सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण है, पढ़कर पाठक मुग्ध हो जाता है।

देखि सखी अधरन की लाली।
मनि मरकत ते सुभग कलेवर ऐसे हैं बन माली।
मनो प्रात की घटा साँवरी तापर अरून प्रकास।
ज्यों दामिनि बिच चमकि रहत है फहरत पीत सुबास॥
कीधौं तरून तमाल बेलि चढ़ि जुग फल बिम्ब पाके।
नासा कीर आय मनो बैठो लेत बनत नहिं ताके।
हँसत दसन एक सोभा उपजति उपमा जात लजाई।
मनो नील मनि पुट मुकुतागन बंदन भरि बगराई॥
किधौं बज्रकन लाल नगन खचि, तापर बिद्रुम पाँति।
किधौं सुभग बंधूक सुमन पर झलकत जल कन काँति ॥१२॥

सूर पचरत्न रूप माधुरी।

इसमें यद्यपि पीताम्बर और कृष्ण के श्याम शरीर के उपमान परम्परा-भुक्त हैं किन्तु कवि ने उनको ऐसे अनूठे ढग से वर्णन किया है कि कवि का प्रकृति के प्रति उत्साह लक्षित होता है। अन्तिम पंक्ति में, अधरों और दाँतों की उपमा बंधूक सुमन पर झलकते हुए ओस कणों से दी है जो कवि की अपनी है। कवि प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया है और अपनी सौन्दर्यानुभूति को उसने अपने श्याम के सौन्दर्य वर्णन द्वारा अभिव्यक्त कर दिया है।

कृष्ण के मनोहर रूप का कहीं कहीं तो सूर ने ऐसा रूपक बाँधा है कि पूरा दृश्य ही सम्मुख आजाता है।

देखो भाई सुन्दरता को सागर।
तनु अति श्याम अगाध अम्बुनिधि कटि पट-पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भँवर परत अँग अंग॥
मीन नैन मकराकृत कुंडल भुज बल सुभग भुजंग।
मुकुत-माल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिये संग॥
मोर मुकुट मनिगन आभूषण कटि किंकिन नख चन्द।
मनु अडोल वारिधि मैं बिम्बित राका उड़गन वृन्द॥१॥

रूप माधुरी।

सागर का कृष्ण के शोभाशाली रूप से सादृश्य प्रकट किया है। इस सांग रूपक के चित्रण में कृष्ण और सागर मन-मानस में प्रतिबिम्बित होते चलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों सागर के तट पर खड़े होकर सूरदास सागर की चपल वीचियां, भ्रमर, जाल, मत्स्यादि, सुरसरि मिलन और गगन मंडल के प्रतिबिम्ब को देख रहे हैं और वही अपने हरि जू की छवि में सबका सादृश्य देखकर वर्णन करते चले जाते हैं। कवि का अनुराग, सागर और अपने प्रियतम सखा दोनों के प्रति समान रूप से है।

सूर अपने बालकृष्ण की रूप-माधुरी पर इतने मुग्ध हो जाते हैं कि उन्हें कृष्ण के शरीरांगों के लिये समस्त प्राकृतिक उपमान अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं—

हरि जू की बाल छबि कहौं बरनि।
भुज भुजंग सरोज नयननि बदन बिधु जित्यौ लरनि।
रहे बिबरन, सलिल, नभ, उपमा ऊपर दुरी डरनि॥३५॥

बाल कांड।

भुजा, नेत्र और मुख के उपमान सर्प, सरोज एवं चन्द्र लज्जित होकर छिप जाते हैं।

जब उपमानों को लज्जित संकेत करके भी कवि को सन्तोष नहीं होता तो वह अप्रस्तुत में अवगुण बताकर प्रस्तुत को श्रेष्ठतर निश्चित करते हैं।

देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृग चपलाई नहिं पटतर एक सैन।
राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल कुसंसय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहिं वे विकसत, ये विकसत, दिन राति ॥१०॥

रूप माधुरी।

व्यतिरेक द्वारा अप्रस्तुत कमल में रात्रि मे सकुचित होजाने का अवगुण दिखाकर प्रस्तुत नेत्रों में उत्कर्ष प्रकट किया है। तुलसी ने भी सीता के मुख की श्रेष्ठता इसी भाँति वर्णित की है—

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसि दिन यह बिगसाइ ॥३॥

बरवै रामायण बालकांड।

जब कवि प्रस्तुत-अप्रस्तुत में समान सौन्दर्य का निरीक्षण करता है तो केवल उपमानों द्वारा उपमेय का ज्ञान कराता है—

तब तें इन सबहिन सचु पायो।
जब तें हरि सन्देस तिहारो सुनत साँवरो आयो।
फूल व्याल दुरे तें प्रगटे पवन पेट भरि खायो।
भूखे मृगा चौंकि चरनन ते हुतो जो जिय बिगरायो॥
ऊँचे बैठि बिहंग सभा बिच कोकिल मगल गायो।
निकस कदरा ते केहरि हू माथे पूछ हिलायो।
गृह बन ते गजराज निकसि कै अग अग गर्व जनायो॥१७८॥

भ्रमर गीत।

रूपकातिशयोक्ति द्वारा राधा के शरीरांगो के उपमानो का उसके कृष्ण वियोग में द्युति विहीन हो जाने पर हर्षित होना वर्णन किया है। व्यगात्मक शैली में कवि ने राधा की म्लानता और उपमानों के हर्ष को व्यक्त करके अनुपम सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण किया है। और उपमानो के हर्ष को व्यक्त करके अनुपम सौन्दर्य का प्रकाशन किया है। म्लानता द्वारा श्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराते हुए उन्होंने अद्भुत चमत्कार की सृष्टि कर दी है। अलकार स्पष्ट नहीं है, किन्तु वर्णन सजीव और प्रभावशाली है। कवि समय-सिद्ध उपमानो का रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों में सूर ने अनुपम वर्णन किया है श्रीकृष्ण की छवि का एक बाग में आरोप करते हुए वह कहते हैं—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
युगल कमल पर गज क्रीडत है तापर सिंह करत अनुराग।

कृष्ण का समस्त शरीर एक बाग के समान है जिसमें कमल-पुष्प विकसित है और हाथी एवं सिंह आदि पशु विचरण करते हैं। कृष्ण के चरण कमल, जंघायें हाथी और कटि सिंह है। कमल पर हाथी नहीं खड़ा हो सकता और सिंह प्राकृतिक विरोध को त्यागकर हाथी के प्रति अनुराग नहीं प्रदर्शित कर सकता। कवि ने असंभव को सभव बनाकर प्राकृतिक उपमानो के प्रयोग में आद्भुत्य उत्पन्न कर दिया है।

कहीं कहीं पर सूर ने पूरे प्रसंग को अप्रस्तुत रूप में रख दिया है,

प्रीत कर दीन्हीं गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगाय कपटकन पाछे करत बुरी॥ भ्रमर गीत ७५॥

गोपियों को प्रेमोन्मत्त बनाकर कृष्ण मथुरा चले गये हैं इस पूरे प्रसंग मे तीव्रता लाने के लिये कवि ने बधिक के, पक्षियो को जाल में फँसाने के प्रसंग का प्रयोग किया है "सागर कूल मीन तरफत है, हुलसि होत जल मीन" से भी उन्होंने गोपियों की दशा का चित्रांकन किया है।

ऊधो के ब्रह्मज्ञान को निरर्थक बताते हुये गोपियाँ अपने प्रेम मार्ग को श्रेष्ठ बताती हैं और प्रेम की अनन्यता के लिये चातक का उदाहरण देती हैं,

देखु प्रगट सरिता, सागर सर सीतल सुभग स्वाद रुचि रूरी।
सूर स्वाति जल बसै जिय चातक चित्त लागत सब भूरी॥

जिस प्रकार चातक केवल स्वाति जल को ही स्नेह करता है अन्य सब जल नीरस हैं; इसी प्रकार गोपियाँ भी केवल सगुण ब्रह्म श्री कृष्ण के ही प्रेमामृत को पान करना चाहती हैं। कृष्ण की निर्ममता और स्वार्थ सिद्धि को सूर ने अन्योक्ति द्वारा व्यक्त किया है:—

मधुप रावरी पहचानि।
बास रस लै अनत बैठे पहुप की तजि कानि। भ्रमर गीत सार॥१४५॥

गोपियाँ भौंरे को अपने क्षोभ और कटूक्तियों का लक्ष्य बनाती हैं और अन्योक्ति का आश्रय लेकर अपनी दुखानुभूति की अभिव्यक्ति करती हैं।

गोपियाँ ऊधो को प्रेम रस में सिक्त न हो सकने के लिये दोषी नहीं ठहरातीं। "दादुर बसै निकट कमलनि के जन्म न रस पहिचाने" शब्दों में

वे प्रकृति से उदाहरण देकर मीठी चुटकी लेती हुई उसे सान्त्वना देती है।

निर्गुण ब्रह्म की उपासना में गोपियाँ अशक्त हैं क्योंकि उनके सगुण कृष्ण उनके रोम-रोम में बस गये हैं वह कृष्णमयी हो गई हैं। "यह मन एक, एक वह मूरति भृंग कीट सम माने" वे और कृष्ण एक रूप हो गये हैं। शरीर के व्यवधान के कारण आत्मा और परम तत्व पृथक प्रतीत होते हैं किन्तु अन्त में "जैसे उडि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै" की भाँति आत्मा परमात्मा के समीप आती है और भृंगकीट के समान उसी में मिल जाती है।

सूर ने कहीं कहीं प्रकृति के व्यापार में उपदेश का भी आभास दिया है संसार के मनुष्यों के मोह जाल को भ्रमात्मक बताते हुये वह कहते हैं:—

यह जग प्रीति सुआ सेंमर ज्यों चाखत ही उडि जात ॥५३॥

॥विनय सूर पंचरत्न॥

संसार की प्रीति इस प्रकार भ्रम पूर्ण है जिस प्रकार सेंमर का फूल। तोते को सेंमर के पुष्प में फल का भ्रम होता है किन्तु चखने पर केवल रुई ही प्राप्त होती है।

अपने शत्रु के प्रति भी दयाभाव रखना चाहिये। इसके लिये वह उदाहरण देते हैं:—

जदपि मलय वृक्ष जड़ काटत कर कुठार पकरै।
तऊ सुभाय सुगंध सुशीतल रिपु तन ताप हरै ॥७७॥ विनय।

जिस प्रकार मलय-वृक्ष अपने काटने वाले को भी सुरभि दान देता है उसी प्रकार मनुष्य को भी अपनी स्वाभाविक सहानुभूति का त्याग नहीं करना चाहिये। संसार की नश्वरता और क्षण भंगुरता का दिग्दर्शन कराते हुए सूरदास कहते हैं:—

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं ॥११॥सूर सुषमा॥

पहिले ही कहा जा चुका है कि सूर प्रकृति के कवि नहीं थे। अपने उपास्य का गुण-गान करना और प्रेम तथा भक्ति की स्रोतस्विनी प्रवाहित करना ही उनका उद्देश्य था। अतः इनके काव्य में हमें प्रकृति का आलंबन रूप में वर्णन नहीं प्राप्त होता। कृष्ण के क्रिया कलापों की पृष्ठभूमि के ही रूप में हमें कहीं कहीं प्रकृति का यथातथ्य चित्रण मिलता है। प्रातःकाल के दृश्य का वर्णन करते हुये माता यशोदा पुत्र को जगा रही हैं—

भोर भयो जागो नन्द नंदन । संग सखा ठाड़े पग बदन ॥
सुरभि पय हित बच्छ पियावें । पंछी तरु तजि चहुँ दिसि धावें ॥
अरुन गगन तमचुरनि पुकारें । जागे साधु मलिन भये तारे ।
निसि निघटी रवि-रथ-रुचि साजी । चंद मलिन चकई भई राजी ॥
कुमुदिनि सकुची वारिज फूले । गुंजत फिरत मधुपगन भूले ।
बालकृष्ण ॥८२॥

प्रातःकाल का वर्णन केवल कृष्ण के ही संबध से किया गया है किन्तु चित्र स्वाभाविक है । और निजी निरीक्षण का परिचायक है । गायों का बच्चों को दूध पिलाना और पक्षियों का वृक्षों को छोड़कर भागना कवि का अपने स्वतः ज्ञान द्वारा वर्णित प्रतीत होता है ।

सूर का क्षेत्र वात्सल्य और शृंगार तक ही सीमित था । उन्होंने कृष्ण के जीवन की संपूर्ण घटनाओं को न लेकर उनके केवल मनोमुग्धकारी लोक रक्षक रूप को ही अपनाया, अतः उनके काव्य में हमें प्रकृति चित्रण केवल कृष्ण की रूप माधुरी के दिग्दर्शन और मानव-भावनाओं की पृष्ठ-भूमि के ही रूप में मिलता है । उनका क्षेत्र यद्यपि संकुचित है किन्तु छोटे से क्षेत्र में भी उनकी दृष्टि का अद्भुत विस्तार है । प्रकृति के व्यापारों का मानव व्यापारों से उन्होंने ऐसा सुन्दर समन्वय किया है कि कोई कवि उनकी समता नहीं कर सकता । सादृश्य मूलक अलंकारों में उनके प्रकृति चित्रण संश्लिष्ट हैं ।

सूर ने प्रकृति की नैसर्गिक छटा से पूर्ण ग्राम्य वातावरण को अपने काव्य में श्रेष्ठ प्रकट किया है और नगर के कृत्रिम वैभव और नागरिक जीवन के प्रति उपेक्षा प्रकट की है, कृष्ण बार बार यही कहते हैं—

यह चित होत जाऊँ मैं अब हीं, यहाँ नहीं मन लागत ।
गोप सुग्वाल गाय बन चारत, अति दुख पायो त्यागत ॥

रत्नाकर के कृष्ण भी इसी भाँति मुक्तामाला और स्वर्ण प्रासादों के प्रति उदासीनता प्रकट करते हैं । उन्हें अपनी ब्रज की गुंजाओं की माला और मुकुट ही अधिक प्रिय था । वह अपने सखा के सम्मुख अपनी वेदना मिश्रित उपेक्षा को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

फिरत हुते जू जिन कुंजन में आठों जाम,
नैननि में अब सोई कुंज फिरिबौ करैं ॥
॥ उद्धव शतक ॥पृष्ठ ७॥

नन्ददास

अष्ट-छाप के कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास के पश्चात् नन्द दास ने उत्कृष्ट काव्य रचना की है। नन्ददास के काव्य पर भी श्री मद्भागवत के दशम् स्कन्ध का पूर्ण प्रभाव है। इनके राधाकृष्ण अलौकिक गुणों से युक्त माधुर्य और अनुपम सौन्दर्य से पूर्ण हैं। इन्होंने इनके लोक-रंजक रूप को ही प्रधानता दी है, अतः प्रकृति-चित्रण या तो शृंगार रस के अन्तर्गत विभाव-पक्ष में है अथवा राधा-कृष्ण के सौन्दर्य को अतिरंजित करने के लिये उपमान रूप में। यही कारण है कि इनके काव्य में आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण कहीं नहीं है। कहीं कहीं आगामी घटना की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का यथातथ्य वर्णन प्राप्त होता है। बृन्दावन का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं:—

> थलज जलज झलमलत, ललित बहु भँवर उड़ावे।
> उड़ि उड़ि परत पराग, विमल छवि कहत न आवे ॥३६॥
> जमुनाजू अति प्रेम भरी, तट बहति जु गहरी।
> मनि मंडित महिं माँझि दूरि लौं उपजत लहरी ॥३७॥
> तँह इक मनि में सिंह पीठि सोभित सुन्दर अति।
> ता पै षोडस दल सरोज अद्भुत चक्राकृति ॥३८॥
> मधि कमनीय करनिका सब सुख सुन्दर कन्दर।
> तहँ खेलत ब्रजराज कुंवर वर रसिक पुरन्दर ॥३९॥[1]

कवि के निकट वृन्दावन का स्वतंत्र महत्व नहीं है। कृष्ण की क्रीड़ा-भूमि होने के कारण तुलसी की चित्रकूट की भावना की भाँति उन्हें वृन्दावन के प्राकृतिक दृश्य का चित्रण करना पड़ा है। पृष्ठाधार के रूप में होते हुए भी चित्रण संश्लिष्ट है और पाठक को बिम्ब-ग्रहण हो जाता है।

कहीं पर कवि ने संयोग शृंगार में वस्तु परिगणन-मात्र करा दिया है। जिससे पाठक को अर्थ-बोध हो जाता है:—

> इत महकति मालती, चारु चंपक चित चोरत।
> उत घनसार तुसार, मिली मन्दार झकोरत ॥११८॥
> इत लवंग नव रंग, एलची झेलि रही रस।
> उत कुरवक, कैवरौ, केतकी गंध बंध बस ॥११९॥

१ रास पंचाध्यायी प्रथम अध्याय।

इसमें कवि ने वृन्दावन के मालती, चम्पक आदि पुष्पों के नाम गिनाकर उनका अर्थ-बोध करा दिया है। कवि ने जो कुछ देखा उसका यथा-तथ्य वर्णन कर दिया। किन्तु वह वर्णन भी नितान्त निरर्थक नहीं है। कवि ने प्राकृतिक वैभव से प्रभावित होकर सुन्दर वस्तुओं को एकत्रित कर दिया है और अपने हृदय का उल्लास प्रकट किया है।

प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत नन्ददास ने शरद और चन्द्रोदय का भी वर्णन किया है किन्तु उन वर्णनो में प्रधानता अलकारो को दी गई है। शरद-वर्णन अथवा चन्द्रोदय वर्णन स्वाभाविक नहीं है, अथच कवि ने प्रकृति पर अलंकार लाद दिये हैं जिनकी चकाचौंध में प्रकृति चित्रण की स्वाभाविकता नष्ट होगई है और चमत्कार-मात्र रह गया है शरद की रात्रि की शोभा का वर्णन देखिये—

> रजनी मुख सुख देखि, ललित मुकुलित जु मालती।
> ज्यों नव जीवन पाइ, बसति गुनवती बाल सी ॥४६॥
> छबि सों फूले फूल अवर अस लगी लुनाई।
> मनो सरद की छपा छबीली विलसति आई ॥५०॥

चन्द्रोदय का वर्णन भी इसी भाँति अलकारों से पूर्ण है,

> ताही छिन उड़िराज उदित, रस रास सहाइक।
> कुंकुम मंडित प्रिया वदन, जनु नागर नाइक ॥५१॥
> कोयल किरन अरुन नभ बन में व्यापि रही यौं?
> मनसिज खेल्यो फागु, घुमरि घुरि रह्यौ गुलाल ज्यौं ॥५२॥
> फटिक छटा सी किरन कुंज रन्ध्रन ह्वै आई।
> मानौं बितन बितान सुदेस तनाव तनाई ॥५३॥
> मन्द मन्द चलि चारु चन्द्रमा अस छबि पाई।
> उझकत है जनु रमा-रमन-पिय कौतुक पाई ॥५४॥[1]

इसमें चन्द्रोदय इतना महत्वपूर्ण नहीं प्रतिभासित होता जितना उसका अलंकार भार से लदा हुआ ऊपरी ठाट बाट। जो इस अवसर को प्रधानता देने के लिये इसी रूप मे आवश्यक था। चमत्कार प्रदर्शन और अलंकार प्रयोग की अपेक्षा प्रकृति चित्रण गौण सा हो जाता है।

नन्ददास ने प्रकृति का सबसे अधिक प्रयोग शृंगार वर्णन में मानव-भावनाओं की पूर्व पीठिका अर्थात् मानव अन्तर्वृत्तियों को उद्दीप्त करने के रूप

---

१ रास पंचाध्यायी।

में किया है। संयोग शृंगार में प्रकृति का उपभोग शरीर को स्वस्थ बनाता और उसका सुखप्रद वातावरण मन को उत्फुल्ल करता है,

> बिहसि मिले नन्दलाल, निरखि ब्रज बाल विरह बस।
> जदपि आतमाराम, रमत भए परम-प्रेम-रस॥ ॥११०॥
> विहरत बिपिन-बिहार, उदार-नवल नँदनन्दन।
> नव-कुमकुम-घनसारु, चारु, चरचित चित चन्दन॥ ॥१११॥

कुमकुम, कर्पूर और चन्दन का उपयोग उपचार रूप में शारीरिक सुख तो प्रदान करता ही है साथ ही कृष्ण और गोपियों के सम्मिलन को अधिक आनन्द-प्रद बना देता है। शारीरिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हुए पुष्पाभरण आदि पारस्परिक आकर्षण को भी बढ़ाते हैं प्रकृति का शीतल स्पर्श मन को भी प्रभावित करता है और गोपी-कृष्ण का मिलन अधिक सुखपूर्ण हो जाता है।

प्रकृति के उपयोग का इस प्रकार प्रभाव मनः-स्थिति के अनुसार प्रभावित करता है। चन्दनादि जो वस्तुएँ सयोग में सुशीतल और सुखप्रद प्रतीत होतीं हैं उन्हीं का वियोग में विपरीत प्रभाव होता है:—

> ज्यौ चन्दन, चन्द्रमा, तपन तैं सीतल करहीं।
> पिय-बिरही जे लोग, तिनहिं लगि आग बितरहीं॥[1]

कृष्ण वियोग में गोपियों को चन्दन, चन्द्र आदि अग्नि-वर्षण करने वाले प्रतीत होते हैं। प्रकृति के ये तत्व शीतलता के उपचार में प्रयुक्त होते हुए भी वियोगाग्नि को प्रदीप्त करते हैं। सयोग सुख में प्रकृति का सुख-पूर्ण वातावरण और भी अधिक आनन्द की वृद्धि करता है। वैसे तो प्रिय का सयोग सदा ही सुखदायी है किन्तु निर्झर-तट, सुमन-सुरभि और मलय-समीर आदि सुप्त भावनाओं को उद्दीप्त करते हैं और प्रेमी प्रेमिका को मिलन के लिये उत्तेजित करते हुए पारस्परिक आकर्षण की वृद्धि करते हैं:—

> सुभ सरिता के तीर, धीर, बलबीर गए तँह।
> कोमल-मलै-समीर, छबिन की महा-भीर जँह॥ ॥१६१॥[2]

---

१ रास पंचध्यायी तृतीय अध्याय ॥२१॥
२ ,, ,, ,, ॥११६॥

कुसुम धूरि धूंवरी कुंज, छबि पुंजन छाई।
गुंजत मंजु मलिन्द नैनु जनु बजति सुहाई। ॥११७॥
फूलन माल बनाइ, लाल पहिरति पहिरावति।
सुमन सरोज सुधाकर ओज मनोज बढावति। ॥१२१॥
रस पंचाध्यायी प्रथम अध्याय।

किन्तु वियोग में तो सब का प्रभाव विपरीत ही होता है विरह में लता, कुंज वन और निर्झर तट सब दु:ख के प्रवर्द्धक प्रतीत होते हैं,

जिनको नैन निमेष ओट कोटन जुग जाहीं।
तिनको घर, बन, कुंज, ओट दुख गनना नाहीं ॥३॥
रास पंचाध्यायी द्वितीय अध्याय।

जिन श्रीकृष्ण का वियोग गोपियों को एक क्षण के लिये भी सहन नहीं होता था उनके वियोग में बन और कुंज अत्यन्त दुःखप्रद प्रतीत होते हैं। गोपियों को कृष्ण की स्मृति एक क्षण के लिये भी नहीं भूलती। पुराने चित्र उनके हृदय को दग्ध करते रहते हैं,

जब पसु चारन चलत, चरन कोमल धरि बन मैं।
सिल, तृन, कटक अटकत, कसकत हमरे मन मैं ॥७॥

काम विवश होकर गोपियां, "जड़ को चैतन्य, न जानति कछु विरही जन" के अनुसार प्रकृति से एकात्म्य स्थापित कर लेती हैं वे वन के समस्त वृक्षों और पशु पक्षियों से कृष्ण का पता पूछती फिरती हैं,

हे मालति, हे जाति जूथिके सुनि हित दै चित।
मान हरन मन हरन लाल गिरिधरन लखै इत ॥ ॥६॥
पूंछौरी इन लतन फूलि रहीं फूलन जोई।
सुन्दर पिय के परसि बिना, अस फूल न होई ॥ ॥११॥
हे सखि, ए मृग बधू, इनहिं किन पूंछौ अनुसरि।
डहडहे इनके नैंन, अबहि कहूँ देखे हैं हरि। ॥१२॥
अहो! पवन सुभ गमन, सुगंध संग फिर जु रही चलि।
दुःख-दलन, सुख-भवन, रवन, कहुं तैं चितए बलि। ॥१३॥
हे अवनी! नवनीत चोर, चित चोर हमारे।
राखे कितै दुराइ, बतावहु प्रान पियारे। ॥१८॥[1]

[1] रास पंचाध्यायी द्वितीय अध्याय ॥८४॥

लता, मालती पुंज, मृग, पवन, पृथ्वी, अशोक, मन्दार आदि समस्त वृक्ष गोपियों के विरह दुःख को समझने में समर्थ प्रतीत होते हैं। वे प्रत्येक से अपने प्रियतम कृष्ण के विषय में पूछती फिरती हैं। सर्ववाद की भावना से अभिभूत होकर, जायसी ने भी अखिल विश्व में उसी अखंड ज्योति की व्याप्ति देखी थी "रवि ससि नखत दिपहिं ओहिं जोती। रतन पदारथ मानिक मोती" उसी प्रकार गोपियों ने भी शाखाओं की प्रफुल्लता में प्रिय के स्पर्श और मृगों के नेत्रों की तरलता में उनके दर्शन का आभास प्राप्त किया है गोपियों की, प्रेम की तन्मयता में प्रिय के साथ अद्वैतता हो जाती है; समस्त विश्व प्रिय-मय हो जाता है।

नन्ददास भक्त थे। अपने आराध्य श्रीकृष्ण के मधुर एवं मनोमुग्धकारी रूप के उपासक थे। इन्होंने श्रीकृष्ण के रूप-लावण्य का विशद-वर्णन किया है। और सौन्दर्य-वर्णन में परम्परामुक्त उपमानों का उपयोग किया है, किन्तु इनके उपमान इतने नवीन ढंग में प्रयुक्त हुए हैं कि वे परम्परागत से नहीं प्रतीत होते, उनमें विशेष सद्यता का आभास आगया है और उपमानों ने नवीन रूप सा धारण कर लिया है। परम्परामुक्त-उपमानों को निजी बनाने की विदग्धता इनमें सूर की अपेक्षा कम नहीं है, कृष्ण गोपियों की ओर देख रहे हैं इसका नन्ददास वर्णन करते हैं,

> सबके मुख अवलोकति पिय के नैन बने यौं।
> सुचि सुन्दर ससि मांझि अरबरे द्वै चकोर ज्यौं ॥[1]

कृष्ण के नेत्र ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे निर्मल चन्द्र में दो चकोर हों। चन्द्र और चकोर मुख और नेत्रों के परम्परामुक्त उपमान हैं; परन्तु कवि ने उनका उपयोग ऐसे अद्भुत रूप से किया है, कि चन्द्र और कृष्ण के मुख का सादृश्य स्पष्ट हो जाता है और बिम्ब-ग्रहण हो जाता है, इससे यह भी व्यक्त होता है कि केवल परम्परा पालन के लिये कवि ने उपमालंकार का प्रयोग नहीं कर दिया है। कहीं-कहीं पर तो उपमा द्वारा प्रस्तुत-अप्रस्तुत में गुण, क्रिया और प्रभाव में इतना अधिक सादृश्य दिखाया है कि अप्रस्तुत का दृश्य नेत्रों के सम्मुख आजाता है, देखियेः—

---

१ रास पंचाध्यायी द्वितीय अध्याय ॥८४॥

लाल रसालहिं बक-बचन सुनि थकित भई यों ।
बाल मृगिनि की पाँति सघन बन भूलि परी त्यों ॥६१॥
दुःख सों दबि छबि सीन ग्रीव लै चली नाल सी ।
अलक अलिन के भार नमित जनु कमल मालसी ॥६४॥[1]

कृष्ण के वचन सुनकर गोपियाँ इसी प्रकार निराश होकर देखने लगीं; जिस प्रकार बाल-मृगी सघन-वन में मार्ग भूल जाने पर देखने लगती है। मृग-शावक-नेत्र, मानव-नेत्रों के उपमान हैं, इस उपमान का प्रयोग पूरे प्रसग के साथ बड़े अनूठे ढग से किया है। इसी भाँति उनकी क्षोभ और निराशा से झुकी हुई ग्रीवा ऐसी प्रतीत होती है जैसे भ्रमरों के भार से झुकी हुई कमल-नाल। ग्रीवा के लिये कमल-नाल और केशों के लिये भ्रमर समूह कवि-समय-सिद्ध उपमान हैं, कवि का प्रयोग ऐसा स्वाभाविक है कि उपमेय और उपमान बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से प्रभावित करते हैं; इसी प्रकार रूप गुण और क्रिया तीनों का एक स्थान में ही सादृश्य देखिये,

चपल तियन के पाछै आछै बिलुलित बैनी ।
चंचल रूप लतानि सग लीलति ज्यों अलि सैनी ॥[2]

रास क्रीड़ा करते समय गोपियों की चोटी इस प्रकार प्रतीत होती है जिस प्रकार भ्रमर-श्रेणी रूप लता के साथ घूम रही हो। इसमें रूप, गुण और क्रिया का सादृश्य तो है ही, साथ ही कवि की नवीन उद्‌भावना भी है चोटी के लिये सर्पिणी उपमान प्रसिद्ध है; किन्तु कवि ने भ्रमर—पंक्ति द्वारा रूप और आकार का सादृश्य दिखाकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

उत्प्रेक्षा के प्रयोग में भी कवि ने अनूठे वर्णन किये हैं। गोपियाँ कृष्ण के साथ जब क्रीड़ा कर रही हैं; उस समय का चित्रण देखियेः—

मञ्जुल-अञ्जुल भरि-भरि, पिय पैं तिय जल मेलति ।
जनु अलि सों अरविन्द-बृन्द, मकरन्दन-खेलति ॥५२॥[3]

गोपियाँ अञ्जुलि में भर-भर कर कृष्ण के ऊपर पानी डालती हुई ऐसी प्रतीत होती हैं मानो कमल समूह भ्रमर के साथ मकरन्द से खेल रहे हों। कृष्ण के वर्णसाम्य के लिये कवि ने नवीन उपमान भ्रमर का प्रयोग किया है, इससे प्रतीत होता है कि इन्होंने केवल प्राचीन परिपाटी का ही पालन नहीं किया है

१ रास पंचाध्यायी प्रथम अध्याय ॥६५॥
२ पचम अध्याय ॥६५॥
३ रास पंचाध्यायी पचम अध्याय

अपितु स्वतंत्रता और स्वानुभव से भी काम लिया है मुख के लिये केवल कमल कह कर ही यह सतुष्ट नहीं हो गये हैं। अधिकतः इन्होंने कनक कज का उपयोग किया है।

तिय-गन-तन झलमलत, सु सुन्दर अति-छवि-छाये।
फूलि रहे जनु जमुन, कनक के कमल सुहाये ॥५०॥

। रास पंचाध्यायी।

कनक कमल उपमान से मुख की प्रफुल्लता और दीप्ति दोनों का बोध होता है। कवि कनक-कंज जैसे गोपियों के मुख के सौन्दर्य से इतना अधिक प्रभावित होता है कि उसको वास्तविक कमलों में सौन्दर्य का अनुभव नहीं होता। उपमेय के उत्कर्ष के कारण उपमान का सौन्दर्य हेय हो जाता है।

मुख अरबिंदन आगे जल अरविन्द लगैं अस।
भोर भए भवनन के दीपक, मंद परत जस ॥५१॥ पं अ।

व्यतिरेक के प्रयोग द्वारा उदाहरण देकर कवि ने उपमेय की उत्कृष्टता व्यक्त करदी है।

साहश्य-मूलक अलंकारों में कवि ने अधिकतः उपमा और उत्प्रेक्षा का ही वर्णन किया है। रूपकालंकार का भी कहीं-कहीं प्रयोग है, किन्तु उसमें परम्परा-पालन ही है। कवि के हृदय का उत्साह अथवा रागात्मक-सम्बन्ध नहीं लक्षित होता।

नव-मरकत-मनि-स्याम, कनकमनि-गन-ब्रज-बाला।
बृन्दावन कौं रीझि, मनौं पहिराई माला ॥१०॥

। रास पचाध्यायी पंचम अध्याय।

कृष्ण को मरकत-मणि-रूप और गोपियों को कनक-मणि-रूप कहकर कवि का ध्यान पुनः उत्प्रेक्षा की ओर चला जाता है और प्रधान अलंकार उत्प्रेक्षा ही प्रतीत होता है; रूपक अलकार में कवि का ध्यान नहीं रमा है।

अन्योक्ति अलंकार से तो समस्त भ्रमर गीत ही भरा हुआ है। भ्रमर को अपना लक्ष्य बनाकर उन्होंने कृष्ण की स्वार्थपरता और निर्भयता का वर्णन किया है। भ्रमर भी कृष्ण वर्ण होता है और उनके कृष्ण भी काले हैं, इस वर्ण साम्य और स्वार्थमयी प्रवृत्ति के गुण-साम्य के कारण भ्रमर उनके क्षोभ का कारण हो जाता है वे अन्योक्ति द्वारा कहती हैं—

कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस को जानै।
बहुत कुसुम पै नैठि सबे आपन सम मानै॥
आपन सम हमको कियौ चाहत है मतिमंद।
द्विविध ज्ञान उपजाय कै दुखित प्रेम आनन्द। कपट के छंद सौं।
॥ ५० ॥ भवर गीत।

सूर की गोपियों ने भी इसी प्रकार कृष्ण के वर्ण से साम्य रखने वाले और स्वार्थ से पूर्ण समस्त पक्षियों के प्रति अपना क्षोभ प्रकट किया है—

भंवर, भुजंग, काक अरु कोकिल जनि पतियाहु चितै तुम देहु।
। भ्रमर गीत सार ॥ २५४ ॥

किन्तु नन्ददास की उक्तियाँ भ्रमर गीत की परम्परानुसार ही भ्रमर के प्रति कही गई नहीं है, वरन उन्होंने स्वतः भ्रमर का निरीक्षण किया है,

कारो तन, अति पातकी, मुख पियरो जग निन्द।
गुन अवगुन सब आपनो, आपुहि जान अलिन्द॥
देखिलै आरसी ॥४६॥ भंवर गीत।

भ्रमर का कृष्ण शरीर तो कुटिल है ही, उसका पीला मुख भी तो निन्द-नीय है। उनका यह कथन उनके अपने अनुभव और ज्ञान की वस्तु है।

नन्ददास सगुणोपासक थे। इन्होंने कृष्ण की मधुर मूर्ति को संसार में हँसते खेलते और क्रीड़ा करते देखा और उसी की माया से व्याप्त समस्त संसार को पाया। गोपियों की विरह-व्यथा का वर्णन करके आत्मा को पर-मात्मा के वियोग में व्यथित दिखाया और कृष्ण-मिलन के लिये उत्साह तथा उल्लास वर्णन करके आत्मा की परमात्मा मे लीन होने की उत्सुकता प्रकट की। लौकिक-पक्ष में वर्णित कृष्ण और गोपियों का प्रेम आध्यात्मिक-पक्ष में आत्मा और परमात्मा के प्रेम में व्यक्त किया है। गोपियाँ कृष्ण से इस प्रकार उमंग से आकर मिलती हैं जिस प्रकार समुद्र से नदी मिलती है; अन्त में आत्मा अपना अस्तित्व त्यागकर परमात्मा में इसी प्रकार विलीन हो जाती है जिस प्रकार जल में तरंग। श्रीकृष्ण इसी अद्वैत भावना का दिग्दर्शन उद्धव को कराते हैं,

मो मैं उनमें अन्तरौ एकौ छिन भरि नाहिं।
ज्यौं देखो मो माहिं वै त्यौं मैं उनही माहिं॥
तरंगिन वारि ज्यौं ॥७४॥ भवर गीत।

जल और तरंग में जिस प्रकार कोई अन्तर नहीं है उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में भी कोई अन्तर नहीं है।

आत्मा और परमात्मा के मिलन से उद्भूत आनन्द विश्व व्यापी आनन्द है। समस्त सचराचर प्रकृति उस अलौकिक आनन्द का अनुभव करती है और उस आनन्द की अनुभूति में प्रकृति से अपने नियत कार्यों तक में भूल हो जाती है:—

अद्भुत रस रह्यो रास, गीति धुनि सुनि मोहे मुनि।
सिला सलिल ह्वै गई, सलिल ह्वै गयौ सिला पुनि ॥४४॥
पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उडुमंडल सगरौ।
पाछें रवि रथ थक्यो, चल्यौ नहिं आगे डगरौ ॥४५॥

कृष्ण और गोपियों के उस अद्भुत आनन्द विलास को देखकर पत्थर भी द्रवित हो गये और जल आश्चर्य के कारण पत्थर हो गये। सूर्य, चन्द्र नक्षत्र सब अपनी गति भूलकर निश्चल हो गये। उस परम तत्व के मिलन के आनन्द से समस्त प्रकृति प्रभावित हो गई।

तुलसी अथवा सूर की भाँति प्रकृति के पशु पक्षियों को कृष्ण-वियोग में नन्ददास ने भी विकल दिखाया है। जिस प्रकार-तुलसी की यशोदा ने:—

राघौ एक बार पुनि आवौ।

ए वर वाजि विलोकि आपने फिर तुम बनहिं सिधारौ ॥

और सूर की गोपियों ने।

ऊधौ इतनी कहियो जाय।

अति कृश गात भई हैं तुम बिन अधिक दुखारी गाय ॥

कहकर अपना संदेश भेजा है। उसी भाँति नन्ददास की गोपियों ने भी गउओं की दुःख-दशा का वर्णन किया है।

अहो! नाथ श्री-नाथ, और जदुनाथ गुसाईं।
नंद-नंदन बिडराति, फिरति तुम बिन सब गाईं ॥३०॥

। भंवर गीत।

कृष्ण के वियोग में गऊएँ बिलखती फिरती हैं।

गोपियों और कृष्ण के विहार के आनन्दातिरेक से प्रकृति रूपिणी स्त्री का हृदय अब भी धड़कता है।

निरखि परस्पर छबि सों, विहरति प्रेम-मदन-भरि।
प्रकृति-बाम की छाती, अजहूँ धरकति धरि-धरि ॥६१॥
। पचम अध्याय ।

इसमें कवि ने मानवीकरण की भावना प्रदर्शित की है। वियोगावस्था में तो आदि कवि से लेकर प्रायः सभी कवियों ने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया था और प्रकृति में सवेदना प्राप्त की थी। जायसी को वियोग दुःख से गेहूँ का हृदय फटा हुआ प्रतीत हुआ था, और तुलसी तो राम बन-गमन के करुण दृश्य से इतने अधिक प्रभावित हुए कि प्रकृति उसका ध्यान करके अब भी व्यग्र हो जाती है,

"अजहुं अवनि बिदरत दरार मिस, सो अवसर सुधि कीन्हे"

किन्तु नन्ददास ने प्रकृति में मानवीकरण का आरोप केवल मानव के कष्ट में ही नहीं किया, वरन मानव के आनन्द में भी पूर्ण सामंजस्य रखती हुई व्यक्त किया। कृष्ण और गोपियों की रास-क्रीड़ा को देखकर प्रकृति को अत्यधिक हर्ष हुआ, हर्षातिरेक के कारण प्रकृति रानी का हृदय अब भी धड़कता रहता है यह तो प्राकृतिक सत्य है कि हर्ष और विषाद दोनों की अतिशयता मे हृदय की गति तीव्र हो जाती है, इसका अनुभव नन्ददास ने प्रकृति में भी किया।

प्रेम की अनन्यता को प्रकट करने के लिये इन्होंने मीन का उदाहरण रखा है, गोपियाँ उद्धव से प्रश्न करती हैं—

जल बिनु कहु कैसे जियें गहिरे जल की मीन ॥३२॥

उनका जीवन बृन्दावन-विहारी के बिना इसी भाँति असम्भव है जिस भाँति जल के बिना मीन का। गोपियो के स्नेह की गभीरता को कवि ने सरिता के गहरे नीर और भँवर द्वारा प्रदर्शित किया है,

नदी नीर गंभीर तहीं, भल भँवरी परहीं।
छिल-छिल सलिल न परैं, परैं तो छवि नहिं करहीं ॥१३१॥

गोपियों को अपने प्रियतम के स्नेह का अभिमान है, उनका स्नेह नदी-नीर के समान गभीर है जिसमें अनेक भंवर पड़ते हैं। प्रेम की अगाधता और गंभीरता के ही कारण उनके हृदय में अभिमान का उदय होता है। यह एक प्राकृतिक सत्य है कि गभीर जल में ही भँवर पड़ते हैं।

अन्त में उनका प्रेम चरम सीमा पर पहुँच जाता है और वे अपना अस्तित्व त्यागकर कृष्ण रूप हो जाती है। जिस प्रकार भृंग कीड़े को भृंग बना लेता है इसी भाँति कृष्ण प्रेम में वे कृष्ण रूप हो गई है:—

भृंगी मैं तैं भृंग होइ, जब कीट महा जड़।
कृष्ण-प्रेम तैं कृष्ण होइ, तब का अचरज बड़ ॥२८॥

। भवर गीत।

यह वेदान्तियों की शब्दावलि है इसमें द्वैतवाद और अद्वैतवाद की एकता प्रदर्शित की है।

कृष्णोपासक कवियों में मीरां और हितहरिवंश की अन्य रचनाओं में भी प्रकृति-चित्रण मिलता है। भक्त कवियों की परम्परानुसार इनकी कविताओं में भी प्रकृति के वही प्रचलित रूप मिलते हैं—एक तो अपने आराध्य के अद्भुत रुप-वर्णन के लिये उपमान रूप में और दूसरे उद्दीपन रुप में। हित-हरिवंश ने अपने उपास्य की प्रेमिका राधा को भी उतनी ही श्रद्धा सहित उपास्या माना और "राधा सुधानिधि"नामक एक ग्रन्थ लिखा। राधा के अनुपम सौन्दर्य को चित्रित करने के लिये उपमा और उत्प्रेक्षा की छटा देखिये।

ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुट मणि श्यामा आजु बनी।
नख सिख लौं अंग अंग माधुरी, मोहे श्याम धनी॥
यौं राजत कवरी गूंथित कच कनक कंज बदनी।
चिकुर चन्द्र कनि बीच अरध विधु मानहुं ग्रसत बदनी॥
भाल तिलक ताटंक गंड पर नासा जलज मनी।
दसन कुन्द सरसाधर पल्लव पीतम मन समनी॥
नाभि गभीर मीन मोहन मन खेलन को ह्रदिनी।
कृश कटि पृथु नितम्ब किंकिन वृत कदलि खंभ जवनी॥

। कविता कौमुदी राम नरेश त्रिपाठी।

राधा के प्रत्यगों के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिये कवि ने कवि-परम्परा-सिद्ध प्राकृतिक उपमानों का उपयोग सादृश्य मूलक अलकार उपमा और उत्प्रेक्षा द्वारा किया है। मीरा ने भी इन्हीं उपमानों को अपनाया है श्री कृष्ण के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वह कहती है।

कुटिल भृकुटि तिलक भाल चितवन में टौना।
खंजन और मधुप मीन भूले मृग छौना॥

अधर विम्ब अरुन नैन मधुर मन्द हाँसी।
दसन दमक दाडिम दुति चमके चपला सी ॥६७॥
। मीराबाई की शब्दावली, वेलवेडियर प्रेस।

उपर्युक्त पदों में शरीरांगों के समस्त उपमान परम्परानुगत ही हैं। मीरां का इनके प्रति विशेष अनुराग प्रकट नही होता। खंजन, मीन, मृग-शावक, दाडिम और दामिनी आदि उपमानो का प्रयोग परम्परावश ही हुआ है। कवियित्री के निजी निरीक्षण और स्वानुभव का परिचय नहीं मिलता।

उद्दीपन-रूप में हितहरिवंश ने प्रकृति का संयोग और वियोग दोनों पक्षों में चित्रण किया है। संयोग में परम्परानुसार वही यमुनातट और करील-कुंजों का वर्णन है।

आज बन नीको रास बनायौ।
पुलिन पवित्र सुभग यमुनातट मोहत बेनु बजायौ॥
कल-ककन, किंकिन, नूपुर धुनि, सुनि खग-मृग सचु पायौ।
जुवतिन मंडल मध्य श्यामघन सारंग-राग जमायौ॥
। कविता कौमुदी।

कालिन्दी-कूल और शीतल-सुखद-वातावरण राधा-कृष्ण के रास विहार को अधिक सुखप्रद बना देते हैं, परन्तु राधा के मान करने पर कृष्ण को वही वातावरण दुःखप्रद प्रतीत होने लगता है—

ससी बिसिख, काल मालावलि, पंचानन पिक पीर।
मलयुज गरल हुतासन मारुत साखा मृग रिपु चीर॥
। कविता कौमुदी।

चन्दनादि शीतलता प्रदान करने के स्थान में अग्नि के समान तप्त करते हैं।

मीरा के गिरिधर-गोपाल तो उनके प्रियतम हैं। कृष्ण के प्रेम की दीवानी मीरा को अपने प्रियतम के वियोग में प्रकृति की प्रत्येक ऋतु और भी दीवानी बना देती है। बसन्त की मधुरता, मीरा को अपने प्रियतम की स्मृति में व्यग्र बना देती है और उनके अन्तर से यही ध्वनि निकलती है:—

होली पिया बिन मोहिं न भावै।
घर आंगन न सुहावै॥
। मीरा की शब्दावली पृष्ठ ४४।

वर्षा की काली घटायें उसे भयभीत करती हैं:—

मतवारो बादल आयो रे,

दादुर मोर पपीहा बोलै, कोमल शब्द सुनायो रे।
कारी अंधियारी बिजली चमकै, बिरहिन जाति डरपायो रे ॥४६॥

कभी पृथ्वी का सुखद रूप उसे प्रियतम से मिलने के लिये उत्तेजित करता है,

दादुर मोर पपीहा बोलै, कोइल मधुरे साज।
उमग्यो इन्द्र चहुँ दिस बरसै, दामिन छोड़ी लाज॥
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलन के काज।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बेग मिलौ महाराज॥ पृष्ठ ४७॥

वह देखती है कि समस्त प्रकृति उमंग और उत्साह से पूर्ण है, दादुर, मोर, पपीहा आदि मधुर-गान गारहे हैं, पृथ्वी ने भी अपने प्रियतम से मिलने के लिये हरे वस्त्र धारण कर लिये हैं उनके वियोग विदग्ध हृदय में अपने प्रियतम की स्मृति सजग हो जाती है।

किन्तु प्रियतम के मिल जाने पर वही मेघ उसके मित्र बन जाते हैं। प्रकृति से उसका एकात्म्य स्थापित हो जाता है और वह मेघों से प्रार्थना करती है,

मेहा! बरसबो करे रे, आज तो रमियो मेरे घरे रे।
नान्ही नान्ही बूँद मेघ धन बरसे, सूखे सरवर भरै रे॥
बहुत दिनों से प्रीतम पायो, बिछुरन को मोहिं डर रे॥८८॥

उनकी इच्छा होती है कि मेघ बरसते ही रहें, जिससे उनके प्रीतम रुके रहें। वर्षा थम जाने पर उन्हे डर है कि कहीं प्रियतम से वियुक्त न हो जायें। प्रिय वियोग में भय उत्पन्न करने वाले मेघ अब संयोग मे उनकी कृतज्ञता के पात्र बन जाते हैं।

प्रेम की अनन्यता के लिये उन्होंने चकोर पतंग और मीन के उदाहरण लिये हैं,

चन्द को चकोर चाहै दीपक पतंग दाहै,
जल बिना मीन जैसे तैसे प्रीति प्यारी है।

वह अपने स्नेह को जल और मीन के स्नेह के समान बताती हैं। रसखान ने भी राधा के नेत्रों को सजल वर्णन करते हुए उन्हे जल-हीन-मीन के समान विकल व्यक्त किया है,

उनहीं के मनेहन सानों रहैं,
उनहीं के जु नेह दिवानी रहैं।
उनहीं बिन ज्यौं जलहीन ह्वै मीन सी,
आंखि मेरी असुवानी रहैं ॥४२॥
। रसखान रत्नावली ।

विरह के कारण शारीरिक कृशता को प्रकट करने के लिये उन्होंने दृष्टान्त और अलकार रूप में प्रकृति का उपयोग किया है,

पाना ज्यूं पीली पड़ी रे अन्न नहीं खाती।
हरि बिनु जिवड़ों यूं जले रे ज्यों दीपक संग बाती ॥

समस्त कृष्ण-भक्त कवियों में माधुर्य की भावना प्रधान थी, इन्होंने अपने आराध्य के कोमल सौन्दर्य-मय पक्ष को ही अपनाया, अतः या तो उन्होंने उस अनुपम रूप माधुरी का वर्णन करने के लिये अलंकार-रूप में प्रकृति का उपयोग किया। अथवा आत्मा को परम तत्व से मिलने के लिये विकलता प्रदर्शित करते हुए लौकिक पक्षका आरोप करके प्रकृति को उद्दीपन-रूप में वर्णन किया। इस काल में यद्यपि संयोग और वियोग दोनों पक्षों में प्रकृति मानव-भावनाओं की पोषिका रही है, किन्तु विप्रलभ शृंगार में मानव और प्रकृति का सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ व्यक्त किया। वियोग में मानव का प्रकृति से-पूर्ण तादात्म्य स्पष्टतः दिखाकर प्रेम और भक्ति की अतिशयता में कृष्ण की विहार-भूमि को भी इन्होंने आदर और पवित्रता की दृष्टि से देखा और प्रेमाधिक्य में वृन्दा-वन, करीलकुंज, कालिन्दी-कूल तथा वशी-वट का विशद और संश्लिष्ट चित्रण किया। इनके इस प्रकार के वर्णन में प्रकृति आलम्बन सी हो जाती है यद्यपि उसमें प्रधानता अपने उपास्य की सबध-भावना को ही दी गई है।

रीति काल

हिन्दी में यद्यपि रीति ग्रन्थों की रचना का सूत्रपात भक्तिकाल से ही आरम्भ हो गया था किन्तु काव्य-शास्त्र के प्रथम आचार्य केशव ही माने जाते है। भक्तिकाल में कृपाराम और मोहनलाल मिश्र ने रस-निरूपण और अलकार विवेचन किया था, किन्तु काव्य-शास्त्र का सम्यक्-प्रतिपादन और विशद विवेचन सर्व-प्रथम केशवदास ने ही किया। 'कवि प्रिया' और 'रसिक प्रिया' नामक पुस्तकों में इन्होंने काव्य के सब अगों का विधिपूर्वक निरूपण और प्रतिपादन किया। इन ग्रन्थों में कुछ नवीनता थी और दृष्टिकोण शास्त्रीय था। केशव के पश्चात् लगभग ५० वर्ष तक रीति ग्रंथों का रचना-प्रवाह अवरुद्ध रहा, तदन्तर चिन्तामणि ने चन्द्रालोक और कुवलयानन्द की रीतिशैली को अपनाया और रीति-ग्रन्थ-रचना-प्रवाह द्रुतगति से बह चला। काव्यकारों ने एक ही रीति का पालन किया—एक दोहे में लक्षणों का वर्णन करना और उसके अनुसार सवैया अथवा कविता की रचना करना। इस प्रकार, रीति काल के रचयिता आचार्य और कवि दोनों हुए। किन्तु इस प्रकार के लक्षण ग्रन्थों में काव्य का शास्त्रीय-पद्धति में विवेचन और तर्क की प्रवृत्ति बहुत कम रही वरन् हृदय की भावुकता और कवित्व की ओर विशेष ध्यान दिया गया। रीति-ग्रन्थकार सफल काव्य-शास्त्रकार न बन सके, वे भावुक कवि ही रहे, काव्य शास्त्र का तो वे यत्किंचित आभास मात्र ही दे सके। लक्षणों की अपेक्षा उन्होंने उदाहरणों में अधिक सफलता प्राप्त की। फलतः काव्य-शास्त्र का स्थान गौण हो गया और, कवित्व एक आकर्षक और मनोहर रूप में प्रकट हुआ। अलकार, रस, नायिकाभेद आदि के उदाहरण रूप में उनकी काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित हुई।

रीतिकाल की परम्परा जयदेव और विद्यापति के समय से ही चली आ रही थी। विद्यापति ने नखशिख, दूती, मान, विरह, प्रवास और अभिसार आदि का अपने काव्य में वर्णन किया था। भक्तिकाल के कवियों ने यद्यपि विरह आदि में विद्यापति का अनुकरण किया और राधा कृष्ण का शृगार रसपूर्ण वर्णन किया तथापि उनकी भावना भक्ति-प्रधान ही रही। राधा कृष्ण उनके प्रमुख पात्र रहे, और उनकी क्रीडाऍ तथा विहार-स्थल उनके मुख्य

विषय बने। कृष्णभक्ति कवियों ने सख्य-भाव से अपने आराध्य की प्रत्येक क्रिया का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण किया और भक्ति के आवेश में मान लीला, दान लीला आदि में श्लीलता आदि का भी अतिक्रमण किया, किन्तु उनका पक्ष आध्यात्मिक ही रहा। लौकिक-पक्ष के पटावरण में उन्होंने अलौकिक पक्ष की अपूर्व झाँकी दिखाई थी और आत्मा तथा परमात्मा के एकीकरण का दिग्दर्शन कराया था। राधाकृष्ण की रति भी उनकी भक्ति का ही अंग थी। भक्ति की अतिशयता के कारण लौकिक-पक्ष गौण ही रहा, किन्तु क्रमशः रीति-काल तक आते आते आध्यात्मिक रूप नष्ट प्रायः हो गया और राधाकृष्ण लौकिक नायक-नायिका मात्र रह गये। राधा-कृष्ण का लौकिक-शृंगार-वर्णन ही रीति काव्य के कवियों का मुख्य विषय हो गया।

राजनीतिक परिस्थिति ने भी शृंगार-रस-प्रासाद को सुदृढ़ बनाया। जहाँ-गीर और शाहजहाँ आदि मुगल शासकों के शासनकाल में, देश में शांति और पूर्ण व्यवस्था थी। गुलाम, खिलजी, तुगलक वंश के शासकों द्वारा पीड़ित हिन्दू जनता अब अत्याचारों से विमुक्त थी। हिन्दू आनन्दपूर्ण और सन्तुष्ट थे। अतः अब उन्हें भगवान को पुकारने की आवश्यकता नहीं रह गई थी। जहाँगीर की विलासप्रियता और शाहजहाँ के कला-प्रेम ने काव्या कारों को कला-प्रदर्शन के लिये उत्साहित किया। कविगण पुरस्कार के लालच से मुगल शासकों और उनके जागीरदारों की प्रसन्नता के लिये शृंगारा-रस-पूर्ण काव्य-रचना करने लगे। इसके लिये काव्य कर्त्ताओं ने नायिका-भेद और नखशिख वर्णन को अपना विषय बनाया। कृष्ण भक्त कवि माधुर्य और शृंगार का क्षेत्र तैयार कर ही चुके थे, रीतिकालीन कवियों ने अपनी कविता-कौमुदी का उसी क्षेत्र में प्रसार किया।

इन कवियों का मुख्य विषय शृङ्गार वर्णन ही था। राज प्रासादों के विलासपूर्ण वातावरण में नायिकाओं के हाव भावों और सौंदर्य का वर्णन करना ही इनका उद्देश्य था, अतः इस काल में हमें मानव-सौंदर्य के उप-मान के रूप में प्रकृति का सबसे अधिक उपयोग प्राप्त होता है। शृङ्गार रस के आलम्बन, नायक-नायिका के भावों को प्रदीप्त करने के लिये ऋतु-वर्णन और बारहमासे के रूप में भी प्रकृति का प्रयोग प्राप्त होता है। स्वतन्त्र प्रकृति वर्णन का इस काल में नितांत अभाव है। राज प्रासादों के विलास-पूर्ण-जीवन तक इस काल के कवियों की दृष्टि सीमित थी, प्रकृति के उन्मुक्त-क्षेत्र

से वे बहुत दूर थे। अतएव जहाँ कहीं आखेट अथवा उपवन आदि के वर्णन हैं वे भी रीतिबद्ध। आचार्य केशव ने कुछ इस प्रकार के नियम से प्रतिपादित कर दिये थे जिनके अनुसार कविगण काव्य में प्राकृतिक दृश्यों का नेत्र बद करके वर्णन कर देते थे। उन्हें स्वतः निरीक्षण की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता था और प्रायः वर्णन देशकाल के दोष से पूर्ण होते थे।

रीतिकाल में सबसे अधिक स्वाभाविक प्रकृति-चित्रण हमें कविवर सेनापति का मिलता है। क्वार के महीने का चित्रण देखिये —

खंड खंड रवि दिगमण्डल जलद सेत सेनापति मानो सृङ्ग फटिक पहार के।
अंबर अडंबर सों उमड़ि घुमड़ि, छिन छिछके छछारे छिति अधिक उछार के।
सलिल सहल मानो सुधा के महल नभ तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब को भाजत हैं, रजन से राजत हैं गग गग गाजत हैं गगन घन क्वार के।
॥ ३८ ॥

सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग।

वर्षा के पश्चात् क्वार के महीने में जल-रहित-मेघ श्वेत रङ्ग के होते हैं। वे स्फटिक मणि के पर्वत से प्रतीत होते हैं। रजत खंड के समान ये मेघ गर्जन करते और हलके होने के कारण वायु-प्रवाह से इधर उधर उड़ जाते हैं। सेनापति का यह वर्णन परम्पराभुक्त नहीं है, उन्होंने इसमें अपने निजी-निरीक्षण का परिचय दिया है, इसी प्रकार शरद का वर्णन देखिये :—

पाउस निकास तातैं पायो अवकास,
भयो जोन्ह को प्रकास सोभा तासे हिय रमनीय कौं।
निमल अकास होन वारिज विकास,
सेनापति फूले कास हित हसन के हीय कौं।
छिति न गरद, मानों रगे हैं हरद,
सलिल सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय कौं।
मत्त है दुरद, मिट्यो खजन दरद,
रितु आई है सरद, सुखदाई सब जीय कौं ॥३७॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग।

यह शरद में प्रकृति का यथातथ्य चित्रण है, यद्यपि हरि का नाम आ जाने से यह चित्रण उद्दीपन के अन्तर्गत रखा जा सकता है तथापि इसमें मुख्य प्रवृत्ति प्रकृति के वास्तविक चित्रण की ही है। कवि ने शरद के मनो-

मुग्धकारी रूप का चित्रण किया है। वर्षाऋतु की अनवरत जलवृष्टि के पश्चात् शरद के सुन्दर सुन्दर वातावरण ने कवि को प्रभावित किया है। पृथ्वी रेणु विहीन है, आकाश शुभ्र है, हंस और खंजन आदि पक्षी प्रफुल्लित हैं, कवि मुग्ध हो जाता है और अपनी प्रफुल्लता का शब्दों में चित्रांकन कर देता है। सेनापति अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति प्रकृति के सौम्य रूप के ही प्रशंसक नहीं थे वरन् सच्चे भावुक और सूक्ष्म निरीक्षक थे। ग्रीष्म की प्रचण्डता का वह कैसा स्वाभाविक वर्णन करते हैं—

वृष को तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल विकराल बरसत हैं।
तपति धरनि, जग जरति झरनि,
सीरी छाँह कौं पकरि पंछी पछी विरमत हैं।
सेनापति नैंक दुपहरी के ढरत,
होत धमका विषम ज्यों न पात खरकत हैं।
मेरे जान पौनौ सीरी ठौर कौ पकरि कौनौ,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत हैं ॥११॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरङ्ग।

ग्रीष्म में सूर्यातप की भीषणता, पृथ्वी की तपन और पक्षियों की व्याकुलता का कवि ने स्वाभाविक चित्रण किया है। दोपहर को वायु की स्थिरता और पूर्ण निस्तब्धता का वर्णन कवि के अपने निरीक्षण की वस्तु है। प्रकृति के उग्र रूप का वास्तविक दिग्दर्शन है।

सेनापति दरबारी कवि थे, राज दरबार के भोग विलास पूर्ण वातावरण में उनका अधिकतः समय व्यतीत होता था, अतः उनके काव्य में प्रधानतः उसी जीवन का निदर्शन है। ज्येष्ठ के समीप आने पर उन्हें राजकीय वैभव का वर्णन करना पड़ता है।

जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने,
तल ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होति है मरम्मत विविध जल जंत्रन की,
ऊँचे ऊँचे अटा ते सुधा सुधारियत हैं।
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरङ्ग ॥१०॥

जब वह प्रकृति के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो उन्हे समस्त पृथ्वी त्रस्त और सतप्त दृष्टिगोचर होती है उनकी आकुल अनुभूति उन्हे यही कहने के लिए विवश करती है —

गगन गरद धूंधि दसों दिसा रही रूंधि,
मानो नभ भार का भसम बरसत है।

किन्तु राज प्रासाद में प्रविष्ट होते ही वह प्रकृति के वास्तविक रूप को भूल कर अपने आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिए कृत्रिम वैभव का वर्णन करने लगते हैं —

छूटत फुहारे सोई बरसा सरस रितु,
और सुखदाई है सरद छिरकाइ की।
हेमन्त सिसिर हूँ ते सीरे खसखाने,
जहाँ छिन रहैं तपति मिटत सब काइ की।

सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरङ्ग ॥२०॥

जहाँ समस्त प्रकृति आतप ज्वाल पुञ्जों से भस्म हो रही है वहीं उनके प्रभु के राज प्रासादों के खसखाने शिशिर से भी अधिक शीतल हैं। इसी प्रकार जब शीत के प्रबल वेग से सकल विश्व त्रस्त है—

धायो हिमदल, हिम भूधर तें सेनापति,
अग अंग जग, थिर जङ्गम ठिरत है।

तब भी गर्म हमाम और मूल्यवान दुशालों और सूर्य की धूप की सुविधा से पूर्ण राज-प्रासाद सब सुखों से पूर्ण है, अतः कवि को यही कहना पड़ता है —

आए अगहन, हिम पवन चलन लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कों होत बिसराम है।

रीतिकाल, कल्पना, ऊहात्मक-व्यञ्जना और चमत्कार-प्रदर्शन का काल था। साधारण बात को जितने हेर फेर और आकर्षक ढंग से कहा जाय उतना ही काव्यकार सफल समझा जाता था। सेनापति कवि-कल्पना की इस उड़ान से स्वयं को मुक्त न रख सके और शीतकाल में दिन की छोटाई को उन्हें इस प्रकार व्यक्त करना पड़ा —

द्योस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
सेनापति पाई कछु सोचि कै सुमिरि कै।
सीत तें सहस कर सहस चरन ह्वै कै,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै ॥५१॥

सेनापति कवित्त रत्नाकर।

उनकी कल्पना में सहस्र-करों वाला सूर्य अब सहस्र चरणों वाला हो गया है, इसी कारण वह शीघ्रातिशीघ्र भाग जाता है। कभी-कभी वह इसी बात को प्रसङ्ग द्वारा एक अनूठे ही रूप में व्यक्त करते हैं—

जौ लौं कोक कोकी कौं मिलत तौ लौं होति राति,
कोक अध-बीच ही तें आवत है फिरि के ॥

कवि समय सिद्ध चकवा-चकवी के रात्रि के वियोग के प्रसङ्ग को वह प्रकृति में इस भाँति मिला देते हैं कि पाठक स्वयं ही कल्पना के सागर में निमग्न हो जाता है। प्रसङ्ग का ऐसा सुन्दर चित्रांकन हुआ है कि भावुक हृदय मुग्ध हो जाता है।

इसी प्रकार शिशिर में सूर्य की धूप के निस्तेज होने पर कवि एक अनोखा दृश्य खड़ा कर देता है:—

सिसिर में ससि कौं सरूप पावे सविताऊ,
घाम हूँ में चाँदिनी की दुति दमकति है।
चन्द के भरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
ससि सक पकजिनी फूलि न सकति है ॥५०॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग॥

शीतकाल में सूर्य की उष्णता बहुत कम होजाती है, फलस्वरूप कुमुद और कमलिनी बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से प्रभावित होते हैं—कुमुदिनी चन्द्र के भ्रम में सर्वदा प्रफुल्लित है और कमलिनी संकुचित रहती है। सूर्य की तेज-विहीनता का कवि ने कितने कौशल से वर्णन किया है।

सेनापति का प्रकृति वर्णन अधिकतः उद्दीपन के हेतु है। शृंगार-रस के अन्तर्गत संयोग और वियोग दोनों पक्षों में उन्होंने उद्दीपन-रूप में प्रकृति का वर्णन किया है। सयोग में,प्रकृति का सुन्दर रूपनायक-नायिका को सुख-प्रदान करता और उनको उत्साहित करता है। बसन्त का शीतल-मन्द-सुगंधित समीर संयोगियों के हृदय में उल्लास भर देता है:—

मलय समीर सुभ सौरभ धरन धीर,
सरवर नीर जन मज्जन के काज के।
मधुकर पुंज पुनि मञ्जुल करत गुंज,
सुधरत कुंज सम सदन समाज के ॥

व्याकुल वियोगी, जोग कै सकैं न जोगी, तहाँ
बिहरत भोगी सेनापति सुख साज कें ॥
सघन तरु लसत, बोलैं पिक-कुल सत,
देखौ हिय हुलसत आए रितुराज कें ॥ ॥२॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग ॥

सघन तरु और पक्षियों के कलरव नायक-नायिका को उत्साहित करते हैं, वे प्रसन्नता पूर्वक आनन्द-विहार करते और फाग खेलते हैं:—

लालन गुपाल, घोरि केसरि कौ रंग लाल,
भरि पिचकारी मुह और कौ चलाई है ॥६०॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग ॥

नायक प्रकृति से प्रभावित होकर नायिका की ओर पिचकारी चलाता है। इसी प्रकार नायिका भी प्रसन्न चित्त होकर फाग खेलने में व्यस्त है:—

नवल किसोरी भोरी केसरि तें गोरी छैल
होरी में रही है मद जोवन के छकि कै ॥६१॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग ॥

वही फाग जो प्रिय से खेलते समय नायिका को उमंग और उत्साह से पूर्ण कर देता है और दोनो के प्रेम की वृद्धि करता है वही फाग का समय प्रिय के वियुक्त होने पर नायिका को क्षुब्ध और दुःखी बना देता है। विषाद और कष्ट से उसको यही कहना पड़ता है:—

फूल्यौ है रसाल, सो तौ भयो उरसाल, सखी
डार न गुलाल, प्यारे लाल परदेस है ॥५६॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर

प्रिय के विदेश में होने पर नायिका को इनके प्रति आकर्षण नहीं प्रतीत होता।

प्रकृति का मधुर रूप तो नायक नायिका में माधुर्य भाव की सृष्टि करता ही है, किन्तु इसका विकराल और कष्टकारो रूप भी दोनों को मिलन के लिए लालायित करता है। इसी से काव्यकारों ने वर्षा और शिशिर को मान-भंग करने वाली ऋतु वर्णित किया है। वर्षा में मेघों का गम्भीर-गर्जन चपला की चमक आदि से नायक-नायिका के हृदय में भय का संचार होता है, वे मान

को त्याग कर मिलन के लिये उत्सुक हो जाते हैं। तुलसी के राम भी गंभीर मेघ गर्जन को सुनकर भयभीत हो गये थे—

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥

सेनापति ने भी परम्परानुसार वर्षा और शिशिर दोनों ऋतुओं को मान खण्डन करने वाली व्यक्त किया है। शिशिर के लिये यह कहते हैं:—

भए नेक माहोटि, कठिन लागे सुठि हिमकर।
सेनापति गुन यहै, कुपित दम्पति सगम कर ॥६२॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरग।

शिशिर में माघ मास में वृष्टि होने पर जब शीत और अधिक पड़ता है तो मानो पति-पत्नी मान भूलकर पारस्परिक मिलन के लिये उत्तेजित हो जाते हैं। इसी भाँति वर्षा में,

सबै रहे मनुहारि, जे न माने जुवती जन।
ते आपुन तें जाइ, धाई भेंटति प्रीतम तन।
गत न मान के चलहिं, देखि जलधर चपला रंग॥
सेनापति अति मुदित, देखि बासरे निसा रग ॥३६॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरग॥

जलधर और चपला को देखकर नायिका मान त्याग कर प्रिय का आलिंगन कर लेती है। प्रकृति, संयोग में, शारीरिक-सुख का भी साधन बन जाती है। चन्दन, गुलाब जल, आदि शारीरिक सुख प्रदान करते हैं और शरीर की स्वस्थता से मानसिक स्वस्थता में भी अभिवृद्धि होती है,

सुन्दर विराजे राज मन्दिर सरस, ताके
बीच सुख देनी, सैनी सीरक उसीर की।
उछरे सलिल, जल जंत्र है बिमल उठे,
सीतल सुगंध मन्द लहर सरीर की
भीने हैं गुलाब तन सने हैं अरगजा सों,
छिरकी पर्टीर नीर टाटी नीर नीर की।
ऐसे विहरत दिन ग्रीषम के वितवत,
सेनापति दम्पति मया तें रघुबीर की।१७।
सेनापति कवित्त रत्नाकर।

गुलाब और अरगजा तथा चन्दन आदि शीतोपचार दम्पति को सुख प्रदान करते हैं। शीतल जल की फुहारे, त्रिविध समीर तथा वाह्योपचार नेत्रों को आनन्दित करते, नासिका को सुवासित करते और स्पर्श का सुख प्रदान करते हैं। पति-पत्नी सुख पूर्वक विहार करते हैं।

वियोग-श्रृंगार में तो सुख और शीतलता के सभी बाह्योपचार हृदय को दग्ध करते हैं, प्रिय की स्मृति अधिकाधिक व्याकुल करने लगती है :—

प्रीतम अरग जातें, ताही तें अरगजा तें, सीरक न होति, जुर जारत है मारकौ।
सीतल गुलाब हूँ सों घिसि उर पर कीनो, लेप घनसार को सो मानों घनसार कौ।
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग ४३।

प्रिय की पृथकता के कारण अरगजा शीतल नहीं प्रतीत होता, कर्पूर का लेप अग्नि के समान दग्धकारी प्रतीत होता है इस भाव को व्यक्त करने के लिये कहीं कही कवि ने ऊहा का आश्रय लिया है:—

सीरी जानि छाती धरी बाल के कमल माल सेनापति जाके दल सीतल तुषार से।
लागत न वारि बिन हरि के विहार ताही हार के सरोज सूकि होते हैं सुहार से।
॥५२॥

विरह ताप के कारण कमलों का सूख कर सुहाल के समान हो जाना एक तमाशा सा लगता है। इसी भाँति सयोग के समय वसन्त में मलय-समीर के सौरभ, मधुकर पुज और पिक-वाणी को सुनकर जिस नायिका के आनन्दोद्गार "देखो हिय हुलसत आए रितुराज के" शब्दों में प्रस्फुटित होते थे, वही नायिका प्रिय से वियुक्त होने पर प्रिय की स्मृति में व्यग्र हो जाती है, बसन्त के समस्त पुष्प आदि उसे व्याकुल कर देते हैं।

कतकि, असोक, नव चम्पक वकुल कुल,
कौन धौं वियोगिनी कौ ऐसो विकराल है।
सेनापति साँवरे की, सूरति की सुरति की,
सुरति कराह करि डारत विहाल है ॥५॥

जब प्रकृति का सुखद वातावरण ही वियोग मे सतापकारी प्रतीत होता है तो मान भंग करने वाली ऋतुएँ तो वियोगियों के लिये अत्यधिक कष्ट दायिनी हो जाती हैं :—

धीर जलधर की, सुनत धुनि धरकी है,
दरकी सुहागिल की छोह भरी छतियाँ।

बीती औध आवन की, लाल मन भावन की,
डग भई बावन की, सावन की रतियाँ ॥२८॥

और शिशिर में—

बरसे तुसार, बहै सीतल समीर नीर,
कपमान उर क्योंहू धीर न धरत है।
राति न सिराति सरसाति बिथा बिरह की,
मदन अराति जोर जोवन करति है।
सेनापति कवित्त रत्नाकर दूसरी तरंग।

मेघों की गम्भीर-गर्जन सुनकर पत्नी का हृदय व्याकुल हो जाता है। श्रावण मास की रात छोटी होने पर भी अत्यन्त दीर्घ प्रतीत होती है। शीत-काल में उसकी विरह-व्यथा और भी बढ़ जाती है और वह कामोद्दीप्त हो जाती है।

प्रिय वियोग में उससे सम्बन्धित समस्त वस्तुएँ प्रिय-मिलन का सा ही सुख प्रदान करती हैं, सूरदास की गोपियाँ श्याम की पत्री पाकर ही प्रेम मग्न हो गई थीं :—

निरखत अंक श्याम सुन्दर के बार बार लावति छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि के ह्वै गई श्याम-श्याम की पाती॥

यही नहीं प्रकृति में भी अपने प्रिय की आकृति अथवा वर्ण का साम्य देखकर नायिका की स्मृति सजग हो जाती है, सेनापति ने वियोगिनी को इस भावना से पूर्ण वर्णन किया है :—

सारंग धुनि सुनि पीय की, सुधि आवत अनुहारि।
तजि धीरज, बिरहिनि विकल, सबै रहैं अनुहारि ॥२६॥

सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग।

जलद में अपने प्रिय के श्याम-वर्ण का साम्य देखकर विरहिणी व्यग्र हो जाती है।

वियुक्त होने पर अतीत के दृश्य मानव नेत्रों के सम्मुख नाचते रहते हैं। साहचर्य के सुख के दिनों की स्मृति हृदय को विकल कर देती है। हृदय पट पर अंकित चित्र एक प्रकार की पीड़ा का अनुभव कराते हैं, इसी वेदना से व्यग्र होकर कृष्ण ने उद्धव से कहा था :—

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कगरी अरु कुंजन की छाहीं ॥

सेनापति ने भी एक कवित्त मे कृष्ण को इसी भाँति प्राचीन स्मृति से व्यग्र प्रदर्शित किया है:—

लोल हैं कलोल पारावार के अपार, तऊ,
जमुना लहरि मेरे हिय को डरति हैं।
सेनापति नीकी पटवास हूँ तें ब्रज रज,
पारिजात हू तें बन लता सम्मति हैं।
अंग सुकुमारी संग सोरह सहस रानी,
तऊ छिन एक मे न राधा बिसरति है।
कंचन घटा पर जगाऊ परजंक, तऊ,
कुंजन की सजें वे करेजे खरकति हैं ॥४२॥

सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग।

प्रियतमा राधा के सहवास सुख से पूर्ण जमुना-तट, ब्रज-रज और कुंजों के चित्र अपनी अमिट रेखायें बनाये हुए हैं। अमित स्नेह की उस पावन-स्मृति की तुलना में उन्हें द्वारका का राजकीय-वैभव तुच्छ प्रतीत होता है।

विरहावस्था में मानव का पारुष्य कोमलता मे परिणत हो जाता है। समस्त प्रकृति से मानव का एकात्म्य स्थापित हो जाता है। स्वभाव से ही मृदुल होने के कारण यह कोमलता और तादात्म्य नारी में अधिक मात्रा में मिलता है। उसी स्वाभाविक मृदुलता के वश नारी का काग उड़ाना, अपने प्रिय के आगमन के लिये शकुन मनाना आदि का कवियों ने वर्णन किया है। तुलसी और सूर ने नारी हृदय की इस कोमल भावना का वर्णन किया है। सेनापति ने भी इसका अपने काव्य में उल्लेख किया है:—

कागहिं उड़ावे, कोहू कोहू करे सगुनौती,
कोहू बैठि अवधि के बासर गनति हैं ॥६१॥

किन्तु इसमें तुलसी के समान मानव हृदय को स्पर्श करने वाली अभि-व्यंजना नहीं है। तुलसी के इन शब्दों मे—

बैठी सगुन मनावति माता।
कब आवहिं मेरे लाल कुसल घर, कहहु काग फुरि बाता।

मातृ हृदय की मृदुलता, ममता और स्नेह की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है और सेनापति का केवल परम्परावश एक कथन मात्र।

अपने कष्ट में मानव दूसरे को उल्लसित देखकर ईर्ष्या से जल उठता है। उसकी इच्छा होती है कि सब चाहे उसी की भाँति संतप्त न हों, किन्तु आनन्द मग्न भी न हों। वियोग की अव्यवस्थित दशा में मनुष्य समस्त प्रकृति को संतप्त ही देखने की इच्छा करता है। तभी तो—"धुनि सुनि कोकिल की विरहिन को किलकी" विरहिणी कोकिल की मधुर ध्वनि को सुन कर बेचैन हो जाती है किन्तु अपने प्रिय के विरह में 'पिउ पिउ' करने वाले केका के प्रति उसको सहानुभूति होती है और वह यही विचार करती है कि मैं ही दुःखी नहीं हूँ अपितु अन्य प्राकृतिक जीव जन्तु भी इसी वियोग दुःख का अनुभव कर रहे हैं "केका के सुने ते प्रान एकाके रहत है" केका के शब्दों में उसे शान्ति प्राप्त होती है। प्रकृति से उसे इतना अधिक तादात्म्य हो जाता है कि शिशिर में उसे समस्त प्रकृति ही वियोग दुःख से दुःखी प्रतीत होती है। जिस प्रकार वह अपने प्रवासी-प्रियतम के मिलन के लिये व्यग्र है उसी भाँति समस्त जड़ और चेतन प्रकृति अपने प्रियतम वसन्त के वियोग दुःख से विकल दृष्टिगोचर होती है:—

परे तें तुसार, भयो झार पतझार रही,
पीरी सब डार, सो वियोग सरसति है।
बोलत न पिक, सोई मौन ह्वै रही है आस,
पास निरजास, नैन नीर बरसति है।
सेनापति कली बिनु सुन री सहेली माह,
मास न अकेली बन बेली बिलसति है।
विरह ते छीन तन भूषण विहीन दीन,
मानहुँ बसन्त कन्त काज तरसति है ॥५६॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर तीसरी तरंग।

इस भाँति हम देखते हैं कि सेनापति का ऋतु वर्णन, शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की उद्दीप्त भावना से पूर्ण है, यद्यपि उसमें कहीं-कहीं प्रकृति के यथार्थ चित्र भी हैं किन्तु प्रधानता उद्दीपन की ही है।

नायक-नायिका के सौन्दर्य के प्रभाव को तीव्र करने के लिये अलंकार रूप में सेनापति ने प्रकृति का प्रचुर-मात्रा में प्रयोग किया है। सादृश्य-मूलक

अलंकारों में अधिकतः उपमा, व्यतिरेक और उत्प्रेक्षा का उपयोग है। रूपक अलकार का इतनी अधिक मात्रा में नहीं है। जहाँ इन्हें नायक अथवा नायिका के सौन्दर्य का वर्णन अभीष्ट है वहाँ उपमा और प्रतीप का प्राधान्य है और जहाँ बाह्य प्रकृति चित्रण है वहाँ उत्प्रेक्षालकार की प्रचुरता है। उपमालकार में इन्होंने परम्परा भुक्त उपमानों का प्रयोग किया है। कवि की अपनी मौलिकता सुन्दर शब्दों के चयन में प्रदर्शित होती है, नवीन उपमानों के प्रयोग में नहीं। परम्परा-भुक्त उपमानों से युक्त उपमालंकार की छटा देखिए:—

कुंद से दसन घन, कुन्दन बरन तन,
कुंद सी उतारि धरी क्यों बनै बिछुरि के।
सोभा सुख कन्द, देख्यो चाहिये बदन-चन्द
प्यारी जब मन्द मुसकाति नेक मुरि के।
सेनापति कमल से फूलि रहै अचल मैं,
रहै दृग चंचल दुराए हू न दुरि के।
पलकै न लागैं देखि ललकैं तरुन मन,
झलकैं कपोल, रहीं अलकैं बिथुरि के ॥१०॥
। सेनापति कवित्त रत्नाकर दूसरी तरंग।

इसमें कुन्द, चन्द्र और कमल, दाँत, मुख तथा नेत्रों के परम्परानुगत उपमान हैं। इनमें न तो कवि की मौलिकता प्रकट होती है और न प्रकृति के प्रति अनुराग। कवि ने परम्परावश नायिका के अंगों के सौन्दर्य का वर्णन कर दिया है। नायिका के सौन्दर्य के प्रभाव को तीव्र करना ही इनका उद्देश्य है। परम्पराभुक्त उपमानों का चयन इन्होंने कहीं कहीं बड़े अनूठे ढग से किया है।

मुख मृग लछन सों कटि मृगराज की सी,
मृग के से दृग, भाल बेंदी मृग मद की ॥११॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर दूसरी तरंग।

कवि ने उपमा और अनुप्रास की छटा दिखाई है। नायिका के सौंदर्य को व्यक्त करने के लिये इन्होंने उपमा से भी अधिक प्रतीप और व्यतिरेक अलंकार का उपयोग किया है, प्रचलित उपमान इन्हें अपनी नायिका के अंगों की उपमा में अनुपयुक्त प्रतीत हुए हैं। नायिका के नेत्रों को देखकर इन्हें यही कहना पड़ता है:—

नाहि नैं समान, उपमान और सेनापति,
छाया कछू धरत चकित मृग छौना है ।।

केवल मृग के चकित दृगों मे यत्किंचित समानता प्रतीत होती है। इसी प्रकार—

चन्द दुति मन्द कीने, नलिन मलिन तैं ही,
तो तै देव अगनाऊ रभादिक तर है ।।५३।।

सेनापति कवित्त रत्नाकर दूसरी तरंग।

नायिका चन्द्र की द्युति को भी मन्द कर देती है, कमल भी मलिन हो जाते हैं। उसके सौंदर्य की उपमा में ठहरने की क्षमता किसी में भी नहीं है। बस कवि को यही कहना पड़ता है "तो सी एक तुही।"

सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिये इन्होंने रूपक-अलंकार का प्रयोग नहीं किया है किन्तु नायिका के अंगों के गुण और क्रिया में प्रकृति के साथ एक—रूपता स्थापित की है। अपने प्रेम विवश नेत्रों की एक मदमत्त हाथी से समानता दिखाते हुए नायिका कहती है :—

अति ही चपल ये बिलोचन हठीले आली,
कुल को कलंक कछू मन में न आन्यौ है।
सेनापति प्यारे मुख सोभा सुधा कीच बीच,
जाइ परे जोरावर बरज्यौ न मान्यौ है।
मैं तो मति हीन फेरिबे को मन हाथी,
पठयौ मनाइ नेह आइ उरझान्यौ है।
पकज की पंक में चलाए गज की सी भाँति,
मन तो समेत नैन तहाँ मस सान्यौ है।।६४।।

सेनापति कवित्त रत्नाकर दूसरी तरंग।

नायिका के नेत्र कमल-रूपी मुख की शोभा की पंक में जा फँसे। उसने मन रूपी हाथी को नेत्रों को निकाल लाने को भेजा किन्तु मन भी प्रेम की शृंखला में बँध गया। फिर उसने कमल मुख की शोभा की पंक में मन रूपी हाथी को चलाया किन्तु नेत्र सहित मन भी उस दल दल में फँस गया। कवि ने नायिका के हृदगत भावों की इस रूपक द्वारा तीव्रता व्यंजित की है।

प्रथम नायिका के नेत्र नायक को देखकर मुग्ध हो जाते हैं, तत्पश्चात् मन प्रेम विवश हो जाता है।

कहीं कहीं पर कवि ने प्रातःकाल के दृश्य का मुग्धा नायिका के साथ सुन्दर सामंजस्य दिखाया है। मुग्धा नायिका के शैशव रूपी रात्रि का अवसान और यौवन रूपी दिवस का उदय हो रहा है। वयः सन्धि की इस अवस्था का कवि ने प्रातःकाल के दृश्य से रूपक बाधा है।

लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल, सोई,
सोभा मन्द पवन चलत जल जात की।
पीत हैं कपोल तहाँ आई अरुनाई नई,
ताही छबि करि ससि आभा पात पात की।
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है,
उज्वल विमल दुति पैये गात गात की।
सैसव निसा अथौत जोबन दिन उदोत,
बीच बाल बधू झाँई पाई परभात की ॥२६॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर दूसरी तरंग।

नेत्रों में थोड़ी थोड़ी चपलता आगई है वही मन्द पवन है। कपोलों का पीलापन हट गया है और लालिमा छागई है, वही चन्द्र की द्युति-हीनता और उषःकाल की प्रफुल्लता है। शैशव-रूपी-रात्रि अस्त हो रही है और प्रभात-काल का आरम्भ हो रहा है।

उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग यद्यपि सेनापति ने अधिकतः प्राकृतिक दृश्यों के ही वर्णन में किया है, किन्तु कहीं कहीं परम्परा युक्त उपमानों का मानव-सौन्दर्य में भी आरोप किया है। नायिका की गति और शरीर की कान्त का उल्लेख करते हुए कवि कहता है :—

सोहि तरुनाई सेनापति बनि आई, चाल
चलति सुहाई मानों मन्थर मराल है।
नैंक देखि पाई, मो पै बरनी न जाई, तेरी
देह की निकाई सब गेह की मसाल है॥

नायिका की मथर-गति हंस की गति के समान है और शरीर की कान्ति मशाल के सदृश है। दीप शिखा के स्थान में इन्होंने मशाल का आरोप किया है। यह दरबारी कवि थे। राज प्रासादों के कृत्रिम वैभव से प्रभावित होना स्वाभाविक था, कृत्रिम-सौन्दर्य और आश्रयदाताओं के भोग-विलास एवं ऐश्वर्य से पूर्ण सामग्री प्रतिपल इनके मस्तिष्क में अपना प्रभाव जमाये

रखती थी। अतः मानव-सौन्दर्य के उपमान के लिये भी यह प्राकृतिक उपमानों को भूलकर राज प्रासादों से सम्बन्धित उपमानों को लाये हैं :—

देखी प्रीत गाढ़ी, पौचे तनसुख ठाढी जोर
जोवन की बाढी खिन खिन और होति है।
गोरी देह भीने बसन में झलकति मानों
फानुस के अन्तर दिपति दीप जोति है ॥५७॥

तनसुख की झीनी साड़ी में सुन्दरी नायिका का शरीर फानूस के अन्दर जलती हुई दीप शिखा के समान प्रतीत होता है। दरबारी कवि होते हुए भी सेनापति प्रकृति से पूर्णतः तटस्थ न रह सके थे। उनमें भावुकता थी और प्रकृति के प्रति उल्लास था। राजप्रासादों से बाहर उन्होंने यत्र-तत्र प्रकृति के सौन्दर्य का भी अवलोकन किया। वर्षा ऋतु में वह अरुण कमल पर बैठी हुई वीर-बहूटियों को देखकर मुग्ध हो गये हैं। नायिका के सुन्दर हाथों में मेंहदी की रची हुई बूंदों को देख कर उन्हे उसी दृश्य की याद आती है और वह अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त करते हैं :—

मिहँदी की बिन्दकी विराजै तिन बीच लाल,
सेनापति देख पाई उपमा बिचारि है।
प्रात ही अनंद से अरुन अरविन्द मध्य,
बैठी इन्द्र गोपन की मानों पँनवारि है ॥५५॥ दू. त.

प्रकृति वर्णन में भी कवि ने उत्प्रेक्षा का उपयोग किया है; वर्षा का चित्रण देखिये:—

गगन अँगन घना घन तें सघन तम,
सेनापति नैक हूँ न नैन मटकत है।
दीप की दमक, जीगनान की झमक छाड़ि,
चपला चमक और सों न अटकत है।
रवि गयौ दबि मानों ससि सोऊ धँसि गयो,
तारे तोरि डारे से न कहूँ फटकत है।
मानों महा तिमिरि तें भूलि परी बाट तातें,
रवि, ससि, तारे कहूँ भूले भटकत हैं ॥

हेतूत्प्रेक्षा द्वारा कवि वर्षा ऋतु की अनवरत वृष्टि और श्याम मेघों के कारण अप्रत्यक्ष सूर्य, चन्द्र और तारों का वर्णन करता है। इनके प्रकृति वर्णन में अधिकतः मानवीकरण की अतिशयतापूर्ण उत्प्रेक्षा का प्रयोग है।

शृंगारी-कवि होने के कारण इनका ध्यान नायिका के हाव-भावों तक ही सीमित रहा है। नायक-नायिका के मनोनुकूल-भावों के अनुसार ही वह प्रकृति से प्रभावित हुए हैं। शृंगार-रस पूर्ण लौकिक-प्रेम की भावना में परमतत्व के दर्शनों की भावना असम्भव है। यद्यपि इन्होंने राम-रसायन लिखा है किन्तु उसमें घटनाओं की ही प्रधानता है। राम की विश्व व्याप्ति, अथवा भक्ति का दिग्दर्शन नहीं है।

प्रकृति के प्रति वास्तविक-अनुराग न होने के कारण इनके काव्य में प्रकृति में मानवी-करण की भावना नहीं प्राप्त होती। काग उड़ाने आदि में ही हम कुछ मानव का प्रकृति से तादात्म्य अनुभव करते हैं, किन्तु इसमें प्रधानता उद्दीपन की है। प्रकृति का अपना स्वतन्त्र महत्त्व न होने के कारण उपदेश का विचार तो इनके मस्तिष्क में आ ही नहीं सकता, शृंगार के साथ उपदेश की भावना में तो विरोधाभास हो जाती है।

बिहारी

बिहारी रीति काल के प्रतिभा-सम्पन्न कवि हुए हैं। इन्होंने ७०० दोहों की सतसई लिखी है। इनके दोहे हिन्दी-साहित्य की अमूल्य-निधि हैं और माधुर्य, चमत्कार एव अलङ्कारो से पूर्ण है। नायिकाओं के नख-शिख वर्णन, हाव-भाव और उनके पारस्परिक-प्रेम का इनमें समावेश है। प्रधान स्थान नायक नायिका का ही होने के कारण प्रकृति का उपयोग या तो उनके सौन्दर्य वर्णन के लिये अलङ्कार-रूप मे हुआ है अथवा उनकी भावनाओं के उद्दीपन के हेतु। उस काल की परम्परानुसार इनका षट-ऋतु-वर्णन शृंगार-रस-पूर्ण है। सयोग शृगारमें प्रत्येक ऋतु सुख की अभिवृद्धि करती और वियोग में दुःख की अधिकता प्रदान करती है। कहीं-कहीं इनका सूक्ष्म और संश्लिष्ट चित्रण भी है। वसन्त का वर्णन देखिये :—

> छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गध।
> ठौर ठौर झूमत, झपत भौर झौरमधु अध ॥५६०॥ बिहारी-बोधिनी।

आम की मजरी की सुगधि से छक कर माधवी की मधुर सुरभि से सने हुए मधु से मतवाले भ्रमर स्थान-स्थान पर झूमते फिरते हैं। इसमें कवि ने वसन्त में विकसित आम्र-मजरी, माधवी-लता और भ्रमर-समूह की संश्लिष्ट योजना की है, कवि प्रकृति के वातावरण से तटस्थ नहीं है, वसन्त का उप-युक्त वर्णन उसने चमत्कार प्रदर्शन अथवा परम्परापालन के हेतु नहीं किया है अपितु प्रकृति के रम्य रूप पर मुग्ध होकर अपने हृदय का अनुराग प्रदर्शित किया है। यही नही ग्रीष्म के आतपाकुल जीवो का भी उन्होंने निरीक्षण किया है :—

> कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
> जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ ॥५६५॥ बिहारी-बोधिनी।

ग्रीष्म की सूर्य की प्रचण्डता के कारण सर्प और मयूर तथा मृग और बाघ अपने सहज-वैर-भाव का परित्याग कर एक ही स्थान पर छाया में बैठे हैं, वे गर्मी के कारण इतने अधिक सतत हैं कि वैर और स्वार्थ को त्यागकर

मिश्रवत् शान्त बैठे हैं। जीवों के कष्ट और उनकी विवशता का इसमें दिग्द-र्शन है। आगामी-घटना के पृष्ठाधार के रूप में भी बिहारी ने प्रकृति का वर्णन किया है। अभिसारिका को अभिसार के ले लिये चलने के लिये उत्ते-जित करती हुई सखी कहती है :—

गोप अथाइन तें उठे, गोरज छाई गैल।
चलि बलि अलि अभिसारिके, भली सम्झौसी सैल ॥ २०८ बिहारी बोधिनी

इसमें संध्या का वर्णन अभिसारिका नायिका के आगामी कार्यक्रम की पृष्ठि भूमि के रूप में है। सध्या समय के चित्रण का अपना स्वतत्र महत्व नहीं है। अपितु नायिका से सम्बन्धित है।

प्रकृति का उद्दीपन रूप मे उपयोग बिहारी ने सयोग और वियोग दोनों पक्षों में किया है। सयोग में प्रकृति नायक नायिका की भावनाओं को उत्तेजित करती है। वन-विहार मे स्वय दूतत्व करती हुई नायिका उष्ण-आतप, जमुना-तट, तमाल-तरु, मालती-कुञ्ज और भ्रमर-गुञ्जन की ओर सकेत करती हुई नायक को उत्तेजित करती है :—

घाम घरीक निवारिये, कलित ललित अलि पुञ्ज।
जमुना तीर तमाल तरु, मिलत मालती कुञ्ज। २६३ बिहारी बोधिनी।

जल बिहार के समय नायक-नायिका के नेत्रों में जल छिड़कता है। और नायिका के नेत्रों में अनुराग की लाली छा जाती है। वह प्रेम-विमुग्ध हो जाती है :—

छिरके नाह नवोढ दृग, कर पिचकी जल जोर।
रोचन रङ्ग लालो भई, बिय तिय लोचन कोर ॥३६७॥

इसी भाँति प्रकृति के तत्व चन्दन, कर्पूर आदि शीतल-स्पर्श द्वारा शरीर को सुशीतल करते और मानसिक उल्लास को बढाते हैं। प्रिय के सान्निध्य में कष्ट-दायिनी वस्तुयें भी सुखद प्रतीत होती है, इसकी ओर बिहारी ने सकेत किया है:—

यहिं काटे भौं पाइगड़ि, लीनी मरति जिवाइ।
प्रीति जनावत मीतिं सौं, मीत जु काढ्यो आइ। २३५ बिहारी बोधनी

नायिका काँटे के गड़ने से उत्पन्न कष्ट को लेश-मात्र भी परवाह न कर, काँटा निकालते समय नायक के स्पर्श से उत्पन्न रोमाच का ध्यान कर प्रेम-

मग्न हो रही है। अपने प्रिय के स्पर्श के आनन्द में वह काँटे के कष्ट को भूल गई है। प्रेम की अतिशयता में अपने प्रिय से सम्बन्धित वस्तुएँ हृदय में स्नेह का सञ्चार करती हैं। मनुष्य प्रिय की सम्बन्ध-भावना में इतना अधिक लीन हो जाता है कि वह जड़ और चेतन का भेद भी भूल जाता है। इसी सम्बन्ध-भावना से प्रेरित होकर सूर की गोपियों ने श्याम सुन्दर की पाती को पुनरपि हृदय से लगाया था। बिहारी की नायिका भी इसी भाँति अपने प्रिय द्वारा उड़ाये हुए कबूतर की कलाबाजी देखकर पुलकित हो जाती है :—

ऊँचे चितै सराहियत गिरह कबूतरु लेतु।
झलकित दृग, मुलकत वदन, तन पुलकित किहिं हेतु ॥ ६१३ बिहारी बोधनी

वियोग में प्रिय से संबंधित समस्त वस्तुएँ हृदय को व्यथित करती हैं। प्रिय की स्मृति विकल कर देती है। सहवास-सुख के चित्र नेत्रों के सम्मुख नाचने लगते हैं। प्रिय का अभाव हृदय को विदीर्ण कर देता है:—

स्याम सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा तीर।
असुँवन करति तरौंस को, खि खौरौंहौं नीर ॥५२५॥

जमुना जल का श्याम-वर्ण देखकर और अपने प्रियतम के साथ वर्ण साम्य को देख कर राधा के अश्रु-प्रवाह आरम्भ हो जाता है, वर्ण-साम्य के अतिरिक्त उसको बार बार श्याम सान्निध्य सुख के दिवस याद आते हैं। वही जमुना-तीर जो प्रिय के संयोग में सुख प्रदान करता था अब व्यथा उत्पन्न करता है। समस्त प्राकृतिक वस्तुएँ जो रूप, रस, गंध, स्पर्श द्वारा सुखद प्रतीत होती थीं अब प्रिय से वियुक्त होने पर विपरीत प्रभाव करती हैं। ऐसी दशा में नायिका को यही कहना पड़ता है :—

अरी परे न करे हियो, खरे जरे पर जार।
लावति घोरि गुलाब सों, मिले भले घनसार ॥४६३ बिहारी बोधिनी।

समस्त शीतल उपचारों का स्पर्श वियोगिनी नायिका को दग्धकारी प्रतीत होता है। नायिका वैसे ही दुःखित है, गुलाब और कपूर आदि उसे और भी अधिक संतप्त करते हैं। जब वह देखती है कि प्रकृति की कोई भी वस्तु उसके विरह-दुःख को कम करने में सहायक नहीं होती वरन् कष्ट की ही अभिवृद्धि करती है तो उसे अत्यन्त सतोष और संताप के साथ यही कहना पड़ता है :—

भो यह ऐसोई सभो, जहाँ सुखद दुख देत।
चैत चाँद की चाँदनी, डारत किये अचेत। ५३५ बिहारी-बोधिनी।

चैत्र की चद्रिका भी तो उसको दग्ध करती है। जब सुखदायिनी वस्तुओं की ही यह दशा है तो दुःखदायिनी प्राकृतिक वस्तुएँ तो और भी अधिक कष्टकारिणी प्रतीत होती है। वर्षा के श्याम मेघ वियोगिनी को भयभीत करते हैं उसे अपने प्रियतम की स्मृति व्यग्र करती है और वह क्षुब्ध तथा भयभीत होकर कहती है :—

कौन सुने कासों कहौं, सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी जिय लेत है, ये बदरा बदराह। ५११ बिहारी बोधिनी।

विरहाधिक्य में उसे उन्माद सा हो जाता है। वियोग-भार सहन करने में वह असमर्थ हो जाती है और प्रकृति में विपरीत प्रभाव देखकर उन्माद की अवस्था में मरने की इच्छा से वह चन्द्रिका, कमल और शीतल-सुगधित-समीर के सम्मुख दौड़ने लगती है। इन शीतल वस्तुओं से वियोगावस्था में संतप्त होकर वह इनकी वास्तविकता को भूल जाती है और इनके द्वारा विदग्ध हो जाने की कल्पना करती है :—

मरिबै को साहस ककै, बढ़े विरह की पीर।
दौरति है समुहै सभी, सरसिज सुरभि समीर ॥४८६ बिहारी बोधिनी।

अंत में उसका वियोग-दुःख प्रकृति में व्याप्त हो जाता है, तोता भी उसके करुण शब्दों को इतने मार्मिक रूप में दोहराता है कि सुनने वाले व्यथित हो जाते हैं :—

कहे जु बचन वियोगिनी, विरह विकल बिलखाय।
किये न केहि अँसुवा सहित, सुवा सु बोल सुनाय ॥४६४ बिहारी बोधिनी

इस प्रकार छोटे से छन्द दोहे में बिहारी ने प्रकृति को उद्दीपन का हेतु बनाकर संयोग और वियोग दोनों पक्षों में कुशलता-पूर्वक निर्वाह किया है, प्रायः प्रत्येक ऋतु और वियोग की दश दशाओं में से मुख्य दशाओं का सफल चित्रण है। इस प्रकार का साफल्य कवि की काव्य-प्रतिभा को व्यक्त करता है। प्रकृति का दूसरा प्रधान उपयोग अलंकार रूप में है।

अलंकार

समस्त रीति-कालीन कवियों के प्रधान पात्र नायक और नायिका ही रहे हैं। किन्तु कवियों का मन नायिका के सौन्दर्य-वर्णन में ही अधिक रमा

है। बिहारी ने भी इसी परम्परा का पालन करते हुए नायिका के नख-शिख के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए टीका और बिन्दी तक को नहीं छोड़ा है। नायिका के सौन्दर्य के उपमान रूप में इन्होंने प्रकृति का उपयोग किया है। इन उपमानों में अधिकांशतः रूढ़ि मुक्त ही हैं। किन्तु लाक्षणिक प्रयोग के कारण उनमें वैचित्र्य और अनूठेपन का आभास मिलता है। नायिका के मुख की उपमा चन्द्र से देते हुए कवि ने किस कौशल से उपमेय उपमान के प्रभाव में सादृश्य दिखाते हुए तीव्रता उत्पन्न कर दी है :—

छप्यौ छपाकर छिति छयौ, तम ससिहरि न सभारि।
हँसति हँसति चलि ससि मुखी, मुख ते घूघट टारि।२१३ बि० बो०

नायिका के सजल और चचल नेत्रो का मीन से सादृश्य दिखाते हुऐ निम्न दोहे में, वस्तूत्प्रेक्षा का कैसा सुन्दर प्रयोग है :—

चमचमात चंचल नयन, बिच घूंघट पट झीन।
मानहु सुर सरिता विमल, जल उछरत जुग मीन।।८२ बिहारी बोधनी

नायिका के नेत्र घूंघट के झीने वस्त्र में से ऐसे प्रतीत होते हैं मानो दो मछलियाँ जल उछाल रही हो।

सादृश्य मूलक अलकारो में कहीं-कहीं कवि के प्रकृति निरीक्षण का भी परिचय प्राप्त होता है :—

छप्यो छबीलो मुख लसै, नीले आँचर चीर।
मनौ कला-निधि झलमलै, कालिंदी के नीर।।११६ बिहारी बोधन

इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि कालिन्दी के जल में चन्द्र का प्रतिबिम्ब कवि के अनुराग और उल्लास का कारण बना है। नीले अंचल में नायिका के सुन्दर मुख को देखकर उसकी स्मृति सजग होजाती है और उसकी पूर्व अनुभूति नायिका के सौन्दर्य वर्णन के रुप में अभिव्यक्त होती है।

बिहारी नायिका के अग प्रत्यग के सौन्दर्य से इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि समस्त परम्परा-मुक्त प्राकृतिक उपमान उन्हें तुच्छ प्रतीत होते हैं। मुख की दीप्ति से चन्द्र लज्जित हो जाता है और चन्द्र-ज्योत्सना छाँह सी हो जाती है। नेत्रों की सुन्दरता से प्रभावित होकर उन्हे यही कहना पड़ता है :—

रस सिंगार भंजन किये, कंचन मंजन दैन।
अजन रंजन हू बिना, खजन गजन नैन।।५० बि० बो०

नयन, कमल और खंजन पक्षी का मान-मर्दन करते हैं और प्राकृतिक उपमान अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं। नायिका के मुख के रूपाधिक्य को पर्यायोक्ति द्वारा भी व्यक्त किया है, कार्तिक चतुर्थी के व्रत के दिन रात्रि को सखी कहती है:—

तू रह सखी हौं लखौं, चढ़ि न अटा बलि बाल।
सब ही बिनु ससि ही उदै, दै है अरघु अकाल॥ २८६ बि० बो०

सखी को नायिका और चन्द्र में इतना अधिक सादृश्य लक्षित होता है कि वह उसे ऊपर नहीं चढ़ने देती है, उसे शंका होती है कि कहीं अर्घ्य देने वाली स्त्रियाँ नायिका के मुख को चन्द्र समझ कर समय से पूर्व ही अर्घ्य न देने लग जायें। बिहारी के काव्य में इस प्रकार के अत्युक्तिपूर्ण राशिभूत उदाहरण हैं।

रूप और गुण में साम्य दिखाने के लिए बिहारी ने मुख्यतः उपमा और उत्प्रेक्षा का ही उपयोग किया है किन्तु जहाँ उपमेय और उपमान में क्रिया और प्रभाव का सादृश्य व्यक्त किया है वहाँ रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। नायिका रूपी बेला के सूखने पर पानी नायक रूपी घनश्याम से दूती कहती है :—

बाल बेलि सूखी सुखद, यहि रूखे रुख घाम।
फेरि डहडही कीजिये सुरस सींचि घनश्याम ॥२८७ बि० बो

उपमेय और उपमान के प्रभाव में समता व्यक्त करने के लिए बिहारी ने अपह्नुति का आश्रय लिया है, परम्परानुगत प्राकृतिक उपमान की उपेक्षा कर वह नवीन उपमान का आरोप करते हैं :—

कहत सबै कवि कमल से, मो मत नैन पषानु।
नतरकु इन बिय लगत कत, उपजत बिरह कृसानु ॥२४६॥

विरहिनी नायिका नेत्रों को कमल के समान न कह कर पत्थर के समान कहती है क्योंकि जिस प्रकार दो पत्थरों के टकराने से अग्नि उत्पन्न होती है उसी भाँति दो व्यक्तियों के नेत्रों के परस्पर मुग्ध होने पर वियोग की अग्नि प्रज्वलित होती है। पत्थर और नेत्रों के कार्य और तज्जन्य प्रभाव में समानता है।

मीलित और तद्‌गुण अलंकारों की तो बिहारी के काव्य में भरमार है। इन अलंकारों के प्रयोग में वह तुलसी की बरवै रामायण में सीता के सौंदर्य

वर्णन से अधिक प्रभावित हुए हैं। तुलसी की भाँति इनके भी सौन्दर्य के उपमान नायिका की अङ्ग दीप्ति में मलीन हो जाते और श्री-विहीन होने पर ही लज्जित होते हैं।

अन्योक्ति अलंकार में बिहारी ने प्रकृति को बहुत अधिक अपनाया है, नहिं पराग नहिं मधुर मधु 'दोहे के विषय में तो प्रसिद्ध है कि इसी दोहे से प्रभावित होकर राजा जयसिंह भोग-विलास का त्याग कर राज-कर्म में पुनः प्रवृत्त हुए थे, इसके अतिरिक्त कोयल, कुरग, परेवा, बक, मराल, बाज और भ्रमर आदि पर अनेक अन्योक्तियाँ कहीं हैं। भ्रमर से वह कहते हैं।

जिन दिन देखे वे सुमन, गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की, अपत कटीली डार ॥६५५ बि० बो०

यह अन्योक्ति सम्पत्ति-विहीन व्यक्ति के प्रति है, भ्रमर को माध्यम बनाकर इन्होंने प्राचीन वैभव और अब की दरिद्रावस्था का वर्णन किया है।

प्रेम की अनन्यता के लिये इन्होंने चकोर को दृष्टान्त रूप में लिया है।

इस प्रकार हमें विदित होता है कि बिहारी का मन उद्दीपन और अलंकारों की अद्भुत छटा के प्रदर्शन में अधिक रमा है। प्रकृति नायक नायिका की क्रियाओं की आधार-स्तम्भ रही है, उसका निजी अस्तित्व नहीं है। अलंकार रूप में भी प्रकृति परम्परा पालन की रुढ़ियों से बद्ध है। शृंगारी रुचि के अनुसार ही इन्होंने प्रकृति का वर्णन किया है।

भूषण

भूषण की गणना यद्यपि रीतिकालीन कवियों में की जाती है पर यथार्थ में यह वीर काव्य के स्रष्टा थे। मुगल-शासन के अवसान काल में जब समस्त कवि अपनी काव्य-प्रतिभा को नायक-नायिका के चरणों पर न्यौछावर कर रहे थे, उस समय इन्होंने रीति काल की पद्धति को अपनाते हुये भी समय के विपरीत विषय को बदल दिया और आर्य जाति के उन्नायक, महाराष्ट्र केशरी शिवाजी के आश्रय में रह कर देश के गौरव के गीत गाये। साथ ही अपने आश्रयदाता का गुण-गान करते हुये उसमें वीर-रस का सचार किया। बुन्देलाधिपति छत्रसाल के भी वीर कृत्यों का इन्होंने दस छन्दों में गुणगान किया। वीर गाथा-काल के कवियों की भाँति सामन्तीय जीवन व्यतीत करने के कारण इनका प्रकृति से सीधा सम्बन्ध नहीं था, अतः आलम्बन रूप में प्रकृति का सर्वथा अभाव रहा। इनके काव्य का प्रधान विषय वीर दर्प से पूर्ण शिवाजी थे, विलासी नरेशों के शृंगार-पूर्ण राज-प्रासादों की सुन्दरी नायिका नहीं। अतः नायक-नायिका के हाव भावों और विषय वासना पूर्ण चेष्टाओं से युक्त शृङ्गार-रस का वर्णन नहीं है, अतएव उद्दीपन रूप में भी प्रकृति का उपयोग बहुत कम है। शिवाजी और छत्रसाल के शौर्य तथा वैभव को व्यक्त करने में अलकार रूप में ही हमें प्रकृति के अधिकतः दर्शन होते हैं। यद्यपि भूषण का तथा वीर गाथा काल के काव्यकारों का विषय समान ही है किन्तु रीतिकाल के प्रभाव स्वरूप इनके अलङ्कारों में अधिक सजीवता और स्वाभाविकता है। शिवाजी की वीरता का कभी वह उपमा द्वारा दिग्दर्शन कराते हैं:—

दावा द्रुम दड पर चीता मृग झुड पर,
भूषण' वितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छवश पर सेर सिवराज है।३।

भूषण शिवा बावनी

और कभी प्रकृति से उदाहरण देकर शिवाजी के दबदबे का वर्णन करते हैं:—

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नागजूह पर सिंह सिर ताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को॥
'भूषण' अखंड नव खंड महि-मंडल में,
तम पर दावा रवि किरन-समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन ते उत्तर लों,
जहाँ पादसाही तहाँ दावा सिरताज को। ३५।
भूषण शिवा बावनी।

कवि ने प्रकट किया है कि जहाँ-जहाँ मुगल-सम्राट् का शासन है वहाँ वहाँ शिवराज की भी धाक है। सम्राट् का वैभव अपने प्रतिद्वन्दी के प्रभाव से सब स्थलों में नष्ट प्रायः हो जाता है। शिवाजी के आतङ्क के प्रभाव को अधिक तीव्र करने के लिए उन्होंने प्रकृति से अनेक उदाहरण दे डाले हैं। शिवाजी के गुण-कथन में वह अत्युक्ति की चरम सीमा पर पहुंच गये हैं। उसकी सेना के प्रभाव से दृश्य-जगत ही नहीं पृथ्वी-तल में स्थित कच्छप और शेष नाग की भी यह दशा होती है।

दल के खरारे हूले कमठ करारे फूटे,
केरा कैसे पात बिहराने फन सेस के॥३॥
भूषण शिवा बावनी

पत्ते की दरार की भाँति कच्छप की कमर विदीर्ण हो गई है और शेष नाग के फन केले के पत्ते की भाँति हिलने लगे हैं। कवि-कल्पना की उड़ान की पराकाष्ठा होगई है। अपन्हुति अलङ्कार का प्रयोग करते हुए वह वर्षा के प्राकृतिक-दृश्य और शिवाजी के सैन्य-बल का अनूठा चित्रण करते हैं।

बद्दल न होंहि दल दच्छिण घमंड माहिं
घटाहू न होंहिं हमि शिवाजी हँकारी के।
दामिनी दमक नाहिं खुले खग्ग बीरन के
इन्द्र धनु नहिं ये निसान हैं सवारी के॥
देखि देखि मुगलों की हरमें भवन त्यागें,
उझकि उझकि उठे बहर बयारी के।

दिल्ली मति भूली कहै बात घन घोर घोर
बाजत नगारे जे सितारे गढ धारी के ॥५॥

भूषण शिवा बावनी

छत्रसाल के पराक्रम का वर्णन करते हुए इन्होंने रूपक का चित्र बड़े आकर्षक रूप में अंकित किया है:—

निकसत म्यान तें मयूखें प्रलै भानु कैसी,
फारे तम तोम से गयन्दन के जाल को
लागति लपकि कंठ बैरिन के नागिन सी,
रुद्रहि रिझावे दै दै मुन्डन की माल को ॥१॥

छत्रसाल दसक

छत्रसाल की करवाल को यह कभी रूपकालंकार द्वारा प्रलय काल के सूर्य की किरणों के समान भयङ्कर बताते है और कभी नागिनी के समान शीघ्र-गति-गामिनी ।

प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन इन्होंने अपने वीर काव्य 'शिवा-बावनी' और 'छत्रसाल-दशक' मे कहीं नहीं किया है । यह दोना वीरो के वीर कृत्यो, पराक्रम और आतक का उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अपन्हुति आदि अलकारों में प्रकृति को उपमान रूप मे प्रयुक्त करके करते चले गये हैं, किन्तु रीति काल की तत्कालीन शृंगारिक प्रवृत्ति से यह अछूते न रह सके और स्फुट-काव्य में संयोग में सुरत आदि के एक दो छन्द लिख ही डाले । सयोग-शृगार के छन्दों में प्रकृति का उपयोग उद्दीपन रूप मे नहीं है, उपमान रूप में ही है, किन्तु विप्रलम्भ में इन्होंने वर्षा वसन्त आदि ऋतुओं को उत्तेजक वर्णन किया है । वसन्त के शोभन रूप को देखकर नायिका का मन उत्तप्त हो जाता है, वह पथिक से वसन्तागमन का सन्देश अपने प्रवासी पति को भिजवाती है—

वन उपवन फूले अबीन के झौर झूले, अवनि सुहाति आभा और सरसाई हैं ।
अति मदमत्त भये केतकी बसंती फूली, भूषन बखाने सोभा समै सुखदाई है ॥

विषम विडारिबे को वहत समीर मद,
कोकिला की कूक कान कानन सुनाई है ।
इतनो सदेसो हैं जू पथिक, तुम्हारे हाथ,
कहो जाय कंत सौं बसन्त ऋतु आई है ॥

भूषण ग्रन्थावली स्फुट काव्य ।

वर्षा को प्रायः प्रत्येक कवि ने कामोत्तेजित करने वाली और विरही जनों के लिये दुःख-दायिनी वर्णित किया है, भूषण ने इस प्रसंग को लेकर एक कवित्त की रचना की है और मेघ के पर्यायवाची जीवनद तथा घनश्याम दोनों को अनुपयुक्त ठहराया है क्योंकि समस्त धरित्री के हृदय को शीतल करके भी मेघ उसे दग्ध ही करते हैं, मेघाच्छन्न आकाश को देखकर वह अत्यन्त व्यथित होती हैं और मेघ को उपालम्भ देती हैं :—

देखत है जीवन बिडारो तौ निहारो
जान्यो जीवनद नाम कहिबे ही को कहानी में।
कैधों घनश्याम जो कहावैं सौ सतावै
मोहिं निहचै के आजु यह बात उर आनी में॥
भूषण सुकवि कीजै कौन पर रोसु निज
भागिही को दोसु आगि उठति ज्यों पानी में।
रविरेहू आये हाय हाय मेघराय सब
धरती जुडानी पै न बरती जुडानी में॥२०॥

। भूषण ग्रन्थावली स्फुट काव्य।

मेघ ने अपने जीवन-धन नाम को, सकल पृथ्वी को शीतल करके सार्थक किया किन्तु विधिवशात् विरहिणी के लिये वह दग्धकारी ही रहे। नायिका, उद्दीपन-मलय-समीर को तो क्षमा कर देती है क्योंकि वह यमराज की दिशा से आता है और सर्प उसके सहचर हैं किन्तु कलानिधि चन्द्र को वह किसी भी भाँति क्षमा नहीं कर सकती।

मलय समीर परलै को जो करत महा,
जम की दिशा ते आयो जम ही को गोतु है॥
साँपन को साथी न्याय चदन हुए ते डसै,
सदा सहवासी विष गुण को उदोतु है॥
सिंधु को सपूत कल्पद्रुम को बंधु' दीनबन्धु को है,
लोचन, सुधा को तनु सोत है।
भूपन भनेरे भुव भूषण द्विजेस तें,
कलानिधि कहाय के कसाई कत होत है॥ २२

विरहिणी यह नहीं समझ पाती कि चन्द्र का नाम तो कलानिधि है किन्तु वह कसाई की भाँति निर्दय होकर उसको संतप्त क्यों करता है।

अपने प्रिय के काले रंग से साम्य रखने वाली जमुना के जल को देख कर विरहिणी अत्यन्त दुखी होती है। जिस जमुना जल में उसने प्रिय के साथ क्रीड़ाएँ की थीं अब वह जल उसे सर्प के समान भयङ्कर प्रतीत होता है।

कारौ जल जमुना को काल सो लगत आली,
मानौ विष भरयो रोम रोम कारे नाग को ॥२४॥

दुःखाधिक्य में उन्हें प्रत्येक काली वस्तु के प्रति विरक्ति और उदासीनता का अनुभव होने लगता है, वह विचारती है कि प्रत्येक कृष्णवर्ण वस्तु उसके प्रियतम श्याम की ही भाँति वियोग दुःख के अतल सागर में निमग्न करने वाली होती हैं। कृष्णवर्ण वस्तु से सुख की आशा करना उन्हें व्यर्थ प्रतीत होता है। सखी को सुखद संदेश लाने के लिये काग को उड़ाते हुए देखकर दूसरी सखी कहती है—

कारो घन घेरि घेरि मारयौ अब चाहत हैं,
तापै तू भरोसो री करत कारे काग कौ ॥२४॥

इन्होंने यद्यपि विशेष रूप से वीर रस को अपनाया किन्तु समय के प्रभाव से न बच सके।

शिवाजी की राजधानी रायगढ़ के वर्णन में इन्होंने वहाँ के वैभव का चित्रांकन किया है, उसमें प्रकृति का भी चित्रण है किन्तु वह चित्रण परम्परानुगत ही है। प्राकृतिक वस्तुओं का परिगणन मात्र है और अलकारों की भरमार है—

आनन्द सों सुन्दरिन के कहुँ बदन इन्दु उदोत है।
नभसरित के प्रफुल्लित कुमुद मुकलित कमल कुल होत हैं॥
कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्ध-मनि सोपान हैं।
जँह हंस सारस चक्रवाक बिहार करत सनान हैं॥१६ भूषण ग्रंथावली

इसमें शिवाजी के कृत्रिम-वैभव का प्रदर्शन है। कवि के हृदय का अनुराग प्रकृति के प्रति लक्षित नहीं होता। कहीं-कहीं पर तो यह वस्तु परिगणन के फेर में देश काल का ध्यान भूल कर परम्परानुसार वर्णन करते चले गए हैं—

चम्पा चमेली चारु चन्दन चारि हू दिशि देखिये।
लवली लवंग बलानि केरे लाखहिं लगि लेखिये॥

कहुँ केतकी कदली करौंदा कुन्द अरु करबीर है।
कहुँ दाख दाडिम सेव कटहल तूत अरु जम्बीर है ॥२१

भूषण ग्रंथावली।

केशव के निम्न चित्रण से मिलान करने पर कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता:—

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल अंजुल तिलक लकुच कुल नारि केरवर ॥
एला ललित लवंग संग पुङ्गीफल सौहैं।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मौहैं ॥ रामचन्द्रिका।

इससे प्रकट होता है कि भूषण का प्रकृति चित्रण केवल परम्परा-पालन के लिये था। वस्तुतः वह वीर काव्य के ही रचयिता थे। उनका उद्देश्य अपने आश्रयदाता शिवाजी और छत्रसाल के गुणों का गान करना और उनमें चैतन्य का संचार करना था।

मतिराम

रीति परम्परानुसार मतिराम ने भी अपने काव्य का नायिका भेद और अलंकार शास्त्र को अपने काव्य को विषय बनाया। इनका 'रस-राज' रस निरूपण तथा नायक और नायिका की अवस्था और प्रकृति के अनुसार प्रतिष्ठित किए गए अनेक भेदों से पूर्ण है और 'ललित ललाम' में अलङ्कारों का विवेचन है। काव्य रचना-रस, नायक-नायिका, तथा अलङ्कारों के उदाहरण रूप में हैं अतः हमे मानव सौन्दर्य के अभिव्यक्तीकरण के लिये उपमान रूप में अथवा नायक नायिका के भावों के उद्दीपन के हेतु प्रकृति के दर्शन होते हैं।

मतिराम ने प्रकृति का सबसे अधिक उपयोग अलङ्कार रूप में किया है। इन्होंने रीति-परिपाटी के अनुसार नख-शिख-वर्णन नहीं किया है। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण प्राकृतिक सत्य है। इन्होंने भी सौन्दर्य की सीमा को माना है और रूपाभिव्यक्ति मे परम्परानुगत उपमानो तक ही सीमित न रह कर—सरस, सूक्ष्म और उत्कृष्ट उपमानों का प्रयोग करते हुए सौन्दर्य के प्रति अपना उत्साह प्रकट किया है और कहीं कवि के सूक्ष्म-निरीक्षण के परिचायक हैं। सादृश्य मूलक अलङ्कारों मे अधिकतः उपमेय-उपमान मे गुण और क्रिया में साम्य प्रदर्शित किये है। केवल रूप अथवा वर्ण के आधार पर अलङ्कार योजना करने मे यह व्यस्त नहीं रहे हैं। नायिका के चन्द्र के समान मुख, दीप-शिखा के समान दीप्ति और कमल से नेत्रों का रूढ़िमुक्त उपमानों द्वारा वर्णन देखिये—

होत प्रभात चल्यो चहै प्रीतम,
सुन्दरि के हिये मे दुःख भारे।
चन्द सों आनन, दीप सी दीपति,
श्याम सरोज से नैन निहारे। ३४ रस राज।

मतिराम ग्रंथावली।

प्रौढा नायिका के अङ्गों के सौन्दर्य का दिग्दर्शन है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने परम्परावश उपमानो की योजना करदी है। कवि वास्तव में नायक के रूप के लिए सामग्री एकत्रित करने मे असमर्थ है। उसे पूर्ववर्ती काव्यकारों

द्वारा अपनाई हुई वस्तुओं का ही आयोजन करना पड़ा है, किन्तु मतिराम की यह विशिष्टता है कि उन्होंने रीति कालीन कवियों में सबसे अधिक स्वेच्छा से काम लिया है। अधिकतः उन्होंने क्रिया और प्रभाव का सादृश्य दिखाया है और इसके लिये सूक्ष्म-निरीक्षण और कवि-कल्पना की सुन्दर अभिव्यंजना है। भय और लाज से सिमटी हुई नव विवाहिता वधू का कैसा सुंदर चित्रण किया हैं।

ज्यों ज्यों परसत लाल तन, त्यों त्यों राखे गोय।
नवल वधू डर लाजि तें, इन्द्र वधू सी होय ॥२६॥ रस राज।

प्रस्तुत वधू के लिये अप्रस्तुत इन्द्र वधू, कवि की अपनी वस्तु है। कवि ने रूप, वर्ण, अथवा आकार का सादृश्य न दिखाकर उसको स्पर्श करने के प्रभाव-स्वरूप सिमटने की क्रिया और गुण में साम्य स्थापित किया है। लज्जा की लाली और इन्द्र वधू के लाल-वर्ण में भी सादृश्य है। इस सादृश्य को कवि ने ऐसे रूप में प्रदर्शित किया है कि पाठक के हृदय पट पर चित्रांकन सा हो जाता है। नायिका का लज्जा से सिमटना और इन्द्र वधू का स्पर्श द्वारा सकुचित होना दोनों चित्र बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से प्रभावित करते हैं, इसी भाँति ज्ञात-यौवना नायिका का चित्रण देखिये :—

पानिप अमल की झलक झलकन लागी।
काई सी गई है लरिकाई कढ़ि अंग ते ॥ ॥२२॥
रस-राज।

नायिका ने किशोरावस्था को समाप्त कर युवावस्था में पदार्पण किया है। यौवनागम से शरीर ने अपूर्व कान्ति प्राप्त की है, नायिका अतीव सुन्दरी प्रतीत होती है जिस प्रकार काई के फट जाने पर निर्मल जल दिखाई देने लगता है उसी प्रकार किशोरावस्था के समाप्त होने पर यौवनागम के उपरान्त नायिका का स्वस्थ सुंदर शरीर कवि को आकर्षित करता है। इसमें मतिराम के स्वानुभव और सूक्ष्म-निरीक्षण ने प्रस्तुत-अप्रस्तुत की ऐसी सुन्दर और संश्लिष्ट योजना करदी है कि उपमेय और उपमान दोनों के अभिव्यक्त-रूप का मानव हृदय पर स्थायी प्रभाव हो जाता है। इनके काव्य में इस प्रकार के उदाहरण राशि-राशि मिलते हैं—

पिय आयौ नव-बाल-तन बाढ़यौ हरष विलास।
प्रथम बारि-बूंदन उठै, ज्यों बसुमती सुबास ॥२१८॥

नायिका मुग्धा आगत-पतिका है। प्रिय विरह से शिथिल शरीर, प्रिय आगमनकी बात सुनकर इसी भाँति उल्लास एवं स्फूर्ति से पूर्ण हो जाता है, जिस प्रकार प्रथम बार पानी बरसने से पृथ्वी पर मिट्टी से सुगन्धि उठती है। इस उदाहरण से प्रकट होता है कि केवल नेत्रों को आनन्दित करने वाले ही प्रकृति के मनोहर-तत्वों का उन्होंने चयन नहीं किया है अपितु रूप, रस, गन्ध, स्पर्श द्वारा प्रकृति का अनुभव किया है। मिट्टी में से उठती हुई सुगंधि से उनकी घ्राणेन्द्रियाँ प्रभावित हुई हैं। आगत-पतिका नायिका के उल्लास को देखकर उन्हें पृथ्वी के उल्लास की याद आती है और वह अप्रस्तुत-रूप में उसका अपने काव्य में दिग्दर्शन करा देते हैं।

शारीरिक-सौन्दर्य के उपमान रूप में तो उन्होंने प्रकृति का उपयोग किया ही है, किन्तु भाव-साम्य के लिये भी प्रकृति को अप्रस्तुत रूप में उनके काव्य में स्थान मिला है। नायिका साँवरे के प्रेम-सरोवर में निमग्न है। उसकी मति प्रिय के ध्यान में उसी प्रकार भ्रमा करती है जिस प्रकार बवंडर में पड़ा हुआ पत्ता बवंडर में ही चक्कर लगाया करता है। बवंडर के पत्ते के साथ साम्य दिखाकर कवि ने नायिका के भावों का सुन्दर और स्वाभाविक दिग्दर्शन कराया है। अपने प्रियतम के आने की सूचना पाकर मन में अनेक सुखद कल्पनाओं के चित्र खींचती हुई नायिका गृहकार्यों में ध्यान लगाना चाहती है किन्तु पुनः पुनः उसे अपने प्रियतम का ही ध्यान आ जाता है। अन्य रीति कालीन कवियों की रचनाओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर हमें मति राम की सूक्ष्म अनुभूति का अधिक परिचय प्राप्त होगा। देव आगत-पतिका नायिका के हार्दिक भावों का किस प्रकार वर्णन करते हैं :—

आनक की झनक अचानक ही कान परी
देवजू सुनत सबही के सुधि काज सों।
औध गुण बाँधी देह अचल सनेह नाधी
आनँद की आँधी उड़ि गयो मन बाज सों ॥ ६६७ ॥

सुखसागर तरंग।

देव ने हर्ष की आँधी में मन को बाज के समान उड़ा दिया है। देव के इस चित्रण से मतिराम के चित्रण में भावुकता और बारीकी अधिक है। अप्रस्तुत आँधी के पत्ते में बाज से अधिक स्वाभाविकता और सूक्ष्मता

है। पद्माकर की आगत-पतिका नायिका तो विलास और ऐश्वर्य के सामान सजाने में व्यस्त हो जाती है। हार्दिक अनुभूति और वास्तविक प्रेम का नितान्त अभाव सा प्रतीत होता है।—

कान सुनि आगम सुजान प्रान प्रीतम को,
आनि सखियान सजी सुन्दरी के आस पास।
कहै पद्माकर सु पन्नन के हौज भरे,
ललित लबालब भरे हैं जल वास वास।
गूंदि गेंदे गुल गज गौहरिन गंज, गुल
गुपत गुलाबी गुल गजरे गुलाब पास।
खासे खस बीजन सुपौंन पौन खाने खुले
खस के खजाने खसखाने खूब खास-खास। २५८।

पद्माकर जगद्विनोद।

नायिका के हृदय का उल्लास कृत्रिम-वैभव को एकत्रित करने में ही व्यक्त किया है।

परम्परायुक्त उपमानो के भी मतिराम के काव्य में राशि-भूत उदाहरण मिलेंगे, किन्तु उनमें भी कवि का निजीपन होगा। मुख के कवि-समय-सिद्ध उपमान कमल और चन्द्रिका का वह किस कौशल से उपयोग करते हैं:—

निसि नियराति निहारियति सौति बदन अरविन्दु।
सखी एक यह देखिये. तेरो आनन इन्दु ॥१७१॥

कवि ने दोनों नायिकाओं के मुख को कमल और इन्दु द्वारा सुन्दर व्यक्त किया है किन्तु चन्द्रोदय होने पर कमल के संकुचित हो जाने के प्रकृत-सत्य मे सपत्नी की ईर्ष्या को भी प्रकट कर दिया है। रूपक का कैसा सुन्दर प्रयोग है। प्रतीप अलकार में इन्हीं उपमानों को वह उपमेय द्वारा निन्द्य ठहरा देते हैं।

तेरे मुख की मधुरई, जो चाखी चख चाहि।
लगत जलज जम्भीर सो, चन्द्र चूक सौ ताहि ॥११२॥

मतिराम के अलंकारों में हमें आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है। एक ही नायिका के नेत्रों में, एक ही समय, एक ही स्थान पर उत्प्रेक्षा द्वारा समस्त सादृश्य मूलक कवि प्रसिद्ध उपमानों की योजना कितने आकर्षक रूप में की है:—

पीतम बिहारी की निहारिबे को बाट ऐसी,
चहुँ ओर दीरघ दृगन करी दौर है।
एक ओर मीन मनो एक ओर कंज-पुंज,
एक ओर खंजन, चकोर एक ओर हैं ॥१६३॥

भाव-सबलता का यह अनुपम उदाहरण है। उत्कंठिता नायिका है, प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है, उसके नेत्र कभी सजल हो जाते हैं कभी उत्सुक नेत्रों से देखती है, कभी-कभी दृष्टि चंचल हो जाती है और कभी स्थिर दृष्टि से मार्ग की ओर देखने लगती है। सजलता, प्रफुल्लता, चंचलता और स्थिरता के गुण साम्य द्वारा कवि क्रमशः मीन, कमल खंजन और चकोर से समता प्रदर्शित करता है। नेत्रों की इस प्रकार की सौन्दर्यानुभूति वस्तु-परक न होकर भावना-परक है। वर्ण और गुण का सादृश्य उत्प्रेक्षा-लंकार में वह इस प्रकार प्रकट करते हैं :—

बिहँसति नील दुकूल में, लसत बदन अरबिंदु।
झलकत जमुना रूप मे, मानो पूरन इन्दु ॥४७६॥

नायिका के फहराते हुए नील-परिधान में उसका सुन्दर मुख ऐसा प्रतीत होता है मानों जमुना के नील वर्ण चंचल नीर में चन्द्रमा झलकता हो। इसमे रूप, गुण, क्रिया तीनों की समष्टि प्रस्तुत अप्रस्तुत में प्रकट की है। बिहारी ने भी नीले वस्त्र में से झाँकते हुए नायिका के चन्द्रमुख का इसी प्रकार वर्णन किया है—

छप्यो छबीली मुख लसै, नीले आंचरि चीर।
मनहुँ कलानिधि झलमलै कालिन्दी के तीर ॥११६॥ बि० बो।

यद्यपि बिहारी और मतिराम के नायिका के इस चित्रण में एक ही से उपमानों का प्रयोग किया गया है किन्तु मतिराम के 'बिहँसत नील दुकूल' अर्थात फहराते हुए नीले वस्त्र मे सुशोभित मुख और तरंगित जमुना जल में झलकते हुए चन्द्र में स्वाभाविकता और सौन्दर्य अधिक है।

मतिराम राव मानसिंह के आश्रित कवि थे। उनका गुण-गान इनके लिये अनिवार्य था। मानसिंह के काव्य-प्रेम का परिचय वह अपन्हुति अलंकार में इस प्रकार देते हैं :—

पावस भीति वियोगिनी बालनिं यौ समुझाय, सखी मुख साजैं।
जोति जवाहिर की 'मतिराम' नहीं सुर चाप छिनों छबि छाजैं।

दन्त लसैं वक पाँति नहीं धुनि दुंदुभि की न घने घन गाजैं।
रीझि के भाव नरिन्द दिये कवि राजन के गज राज विराजैं।
[६७ ललित ललाम]

सखी वियोगिनी नायिका को वास्तविक-तथ्य इन्द्र धनुष, वक-पंक्ति और घन-गर्जन आदि को छिपाकर हाथियों के हीरक-हार और शुभ्र-दाँत आदि बता रही है, प्रकृत-सत्य को छिपाकर असत्य की व्यंजना की गई है।

नायिका की कोमलता का मतिराम ने बड़ा अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन किया है प्रकृति का रूप, सुगन्धि और स्पर्श उसमें प्रफुल्लता का सञ्चार नहीं करता वरन् अंगों की सुकुमारता के कारण वह प्रकृति के उपभोग में असमर्थ रहती है। उसकी सुकुमारता की यह दशा है :—

चरन धरै न भूमि बिहरैं तहाँई, जहाँ,
फूले फूले फूलनि बिछाया परजंक है।
भार के डरनि सुकुमारि चारु अंगनि में,
करति न अंगराग कुंकुम को पंक है।
छबि 'मतिराम' देखि वातायन बीच आयो,
आतप मलीन होत बदन मयंक है।
कैसे वह बाल लाल बाहिर विजन आवे,
बिजन बयारि लागे लचकत लंक है।
[२०४ रस राज]

नायिका इतनी सुकुमार है कि वह पृथ्वी पर चरण नहीं रखती, भार के डर से अंगराग नहीं लगाती, वातायन से आई हुई यत्किंचित् धूप से ही उसका मुख मलिन हो जाता है और पंखे की हवा से ही उसकी कमर लचक जाती है। इस प्रकार के अत्युक्ति-पूर्ण वर्णन फारस के कवियों के प्रभाव-रूप हैं।

परम्परानुसार अन्योक्ति के रूप में भी इन्होंने प्रकृति का उपयोग किया है। किसी ग्रामीण व्यक्ति के प्रति वह भ्रमर को लक्ष्य करते हुए कहते हैं—

सुबरन बरन सुबासुजुत, सरस दलनि सुकुमार।
ऐसे चंपक को तजै, तैं ही भोंर गवार ॥७४॥ म० सतसई

अलंकारों में प्रकृति का उपयोग अधिकतः परम्परानुगत उपमानों में करते हुए भी, कवि ने नवीन और आकर्षक दृश्य अंकित किये हैं, शृंगारी कवि

होते हुए भी हमें इनके अलंकारिक उपयोग में प्रकृति के प्रति अनुराग और उल्लास की झलक प्राप्त होती है।

उद्दीपन

सभी शृंगारी कवियों ने शृंगार-रस को अपने काव्य में उच्चतम स्थान दिया है, और शृंगार रस के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर निर्वाह किया है। स्व-रचित रसराज में इन्होंने नायक-नायिका के भेद तथा उनके हाव-भावों का विशद-विवेचन किया है। इसमें हमें शृंगार-रस के पूर्ण-परिपाक के दर्शन होते हैं। उद्दीपन-विभाव में प्रकृति आलम्बन के स्थायी-भावो को प्रदीप्त करने का मुख्य-साधन बन जाती है, प्रसुप्त भावनाएँ सजग हो उठती हैं और प्रेमी प्रेमिका पारस्परिक आकर्षण के वश होकर मिलन के लिये व्यग्र हो जाते हैं :—

पूरन चन्द उदोत कियो पग, फूलि रही बन जाति सुहाई।
भौंरन की अवली कल कैरव कुंजन पुंजन में मृदु गाई।
बांसुरीताननि काम के बाननि लै 'मतिराम' सबै अकुलाई।
गोपिन गोप कछू न गने, अपने अपने घर तैं उठि धाई॥

[१८५ रस-राज]

पूर्ण-चन्द्रोदय, पुष्प-विकास, भ्रमर-गुंजन, कैरव-कुंज और वंशी-ध्वनि नायिका की भावनाओं को उद्दीप्त करते हैं, वह मंत्र-मुग्ध सी प्रिय-मिलन के हेतु चल देती हैं। कृष्ण के प्रति प्रेम उसमें स्थायी रूप से विद्यमान है प्रकृति का सौम्य एव मनहरण रूप उसमें रति-भाव का सचार करता है और नायक नायिका के मिलन को अधिक आकर्षक बना देता है। सयोग सुख में प्रकृति के तत्वों का शारीरिक उपभोग भी शरीर को सुखद प्रतीत होता और मन को स्वस्थ बनाता है। प्रेमी प्रेमिका गध और स्पर्श द्वारा आनन्द लाभ करते हैं। पुष्पादि शारीरिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते और पारस्परिक आकर्षण को बढ़ाते हैं। उनका मिलन अधिक सुखद हो जाता है। अपने प्रियतम से मिलने के लिए जाते समय नायिका की छटा देखिये।

अंगन में चंदन चढाय घनसार सेत,
सारी छीर फेन की सी आभा उफनाति हैं।
राजत रुचिर सुरुचि मोतिन के आभरन,
कुसुम कलित केत सोभा सरसाति है।

[१९६ रस-राज]

चन्दन का अंगराग और पुष्पाभरण नायिका के शरीर को शीतलता प्रदान करते हैं। इनके संयोग से उसकी सौन्दर्य-वृद्धि नायक को आकर्षित करती है और उनका मिलन अधिक सुखद हो जाता है।

प्रेमातिरेक और उल्लास के आधिक्य में मनुष्य समस्त कष्टों को भूल जाता है; पथ के शूल भी फूल हो जाते हैं। प्रेमी के पास जाती हुई नायिका की यह दशा होती है :—

ग्रीषम ऋतु की दुपहरी चली बाल बन कुंज।
अंग लपट तीछन लुएँ, मलय-पवन के पुंज ॥२०२॥

ग्रीष्म ऋतु की प्रचंड धूप की ओर ध्यान न देकर वह वन-कुंज को जा रही है। उष्ण-वायु और तीक्ष्ण लुएँ उसे उल्लास में मलय-समीर के समान सुखद प्रतीत होती हैं। प्रेम के ऐसे सच्चे स्वरूप के हमें तुलसी के काव्य में भी दर्शन होते हैं। वनगमन के लिये तत्पर सीता को यही कहना पड़ता है—

बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको, जो पै पिय परिहरयो राजु।
वलकल विमल दुकूल मनोहर, कन्द-मूल-फल अमिय नाजु ॥

[गीतावली अ० का० ७]

विरह में तो चित्त-वृत्ति ही विपरीत हो जाती है। प्रकृति का उल्लास और उसका सुन्दर रूप नेत्रों में दाह उत्पन्न करता है और उसका स्पर्श हृदय को दग्ध करता है। प्रोषित-पतिका नायिका की वियोगावस्था कितनी शोच-पूर्ण हो जाती है :—

चन्द के उदोत होत नैन-कंज तपै कंत,
छायो परदेस देह दाहनि दगतु हैं।
उसिर, गुलाब-नीर, करपूर परसत,
विरह-अनल-ज्वाल-जालन जगतु है।
लाजनि ते कछू न जनावै काहू सखी हूँ सौं,
उर को उदार अनुराग उमँगतु है।
कहा करौं ? मेरी बीर ! उठी है अधिक पीर,
सुरभी-समीर सीरो तीर सौ लगतु है।

[११४ रस राज]

नेत्रों को आनन्दित करने वाला पूर्णेन्दु और सुगन्धित वायु नायिका के हृदय को व्यग्र करते हैं. और खस, गुलाब-जल तथा कर्पूर आदि के अंगराग

शरीर को शीतलता प्रदान करने के स्थान में विरह ज्वाला को प्रदीप्त करते हैं। नायिका का वियोग-दुःख बढ जाता है और वह अपने प्रिय के आगमन के लिये अधीर हो उठती है।

दामिनी की दमक और पर्वताकार श्याम-घटाओं का भयङ्कर-रूप संयोग में भी भय का संचार करता है, फिर वियोगियों के कष्ट और त्रास के विषय में तो कहा ही क्या जाय? विरही जनों के लिये तो यह ऋतु काल स्वरूपिणी ही प्रतीत होती है, विरहिणी को त्रस्त होकर यही कहना पड़ता है।

ज्वाल-जाल बिज्जुलि-छटा घटा धूम अनुहारि।
विरहिनि जारनि को मनो लाई मदन दॅवारि॥

[५०६ मतिराम सतसई]

उद्वेग की अवस्था में मनुष्य की दशा बड़ी दयनीय हो जाती है। अपने प्रेमास्पद का ध्यान प्रति-क्षण हृदय को व्यथित करता रहता है। यद्यपि शरीरांग अपने नियमित कार्य करते रहते हैं किन्तु हृदय तो प्रतिक्षण प्रेम-पात्र के ध्यान में ही मग्न रहता है, प्रिय की स्मृति सदा मन में बनी रहती है, हृदय की इस प्रकार की उद्वेग-पूर्ण व्यग्रावस्था में अपने प्रिय के रूप, आकार अथवा गुण में साम्य रखने वाले प्राकृतिक-तत्व उसके उद्वेग को बढ़ाते हैं, नायिका की इसी अवस्था का मतिराम ने निम्न पक्तियो में चित्रण किया है।

तिय को मिलौ न प्रान प्रिय, सजल-जलद-तन-मैन।
सजल-जलद लखि कै भये, सजल जलद से नैन॥१४८॥

अपने प्राण-प्रिय के श्याम-वर्ण का सजल श्याम-मेघों में सादृश्य देख कर नायिका के नेत्रों में आँसू भर आते हैं, उसे ध्यान आता हैं कि उसका प्रेमी भी इसी भाँति कृष्ण-वर्ण है। वर्ण, आकार आदि का सादृश्य न होने पर भी अपने प्रिय से संबंधित समस्त वस्तुएँ उसके प्रेम और व्यथा का हेतु हो जाती हैं, उन्माद की दशा में नायिका आलिंगन आदि द्वारा प्रिय की निर्जीव अथवा सजीव वस्तुओं के प्रति प्रेम-प्रकाशन करती हैं और कुछ स्वस्थ दशा में वह अतीत के सुख की याद करके दुःखी होती है, अपने विहार आदि के स्थानों को देखकर उसे अत्यन्त पीड़ा के साथ यही कहना पड़ता है :—

ह्वाँ मिलि मोहन सो 'मतिराम' सुकेलि करी अति आनंदवारी।
तेई लता-द्रुम देखत दुःख चले अँसुआ अँखियान ते भारी।

आवति हौं जमुना तट कों, नहिं जानि परै बिछुरे गिरधारी।
जानति हौं सखि आवन चाहत कुजन तैं कढ़ि कुंज बिहारी॥
[११८ रस राज]

अतीत की क्रीड़ा-केलि इतनी साकार हो जाती है कि नायिका को यही प्रतीत होता है मानों कुंज-बिहारी कुज से निकल कर चले आ रहे हैं।

विरह-जन्य-उन्माद की अवस्था में नायिका का प्रकृति से एकात्म्य हो जाता है। नायक की प्रिय अथवा उससे सबधित वस्तुओं के प्रति उसका प्रेम उमॅडता है और वह उन प्राकृतिक वस्तुओं के स्पर्श को प्रिय के स्पर्श के समान सुखद समझती है। वह कभी तो :—

पोछति है कर सों किसले, गहि बूझति श्याम शरीर गुपालहिं।
भौरी गई है मयक-मुखी, झुकि भेंटति है भरि अक तमालहि॥
[४१६ रस राज]

उन्माद की ही अवस्था में जब मनुष्य जड़-चेतन का भेद भूल जाता है, उसकी बुद्धि और ज्ञान विलुप्त हो जाता है, तो वह प्रलाप करने लगता है। समस्त जगत में उसे अपने प्रिय की ही छाया दिखाई देती है। वियोगी नायक अपनी प्रिया के स्वर के उपमान कोकिल से ही प्रेम वार्तालाप करने लगता है। कोकिल के कल कूजन में उसे प्रिया के मधुर स्वर का आभास प्राप्त होता है :—

विकल लाल कौ बाल तू, क्यो न बिलोकति आनि।
बोलि कोकिलनि सौ कहै, बोल तिहारे जानि॥४१७

इस प्रकार प्रकट होता है कि मतिराम ने नायिका भेद और अलंकारों का सूक्ष्म विवेचन करते हुए रीतिकाल की परम्परा का पूर्ण निर्वाह किया है, प्रकृति का प्रयोग इन्होंने नायक-नायिका के सौन्दर्य-चित्रण और उद्दीपन के ही रूप में किया है, स्वतंत्र प्रकृति-चित्रण का नितान्त अभाव है, नायक-नायिका के संयोग-सुख और वियोग दुःख के उद्दीपन के हेतु जायसी, सेना-पति और बिहारी आदि पूर्ववर्ती काव्यकारों ने षट्ऋतु तथा बारहमासे के रूप में प्रकृति का कहीं सूक्ष्म, कहीं याथा-तथ्य और कही संश्लिष्ट चित्रण किया है। 'मतिराम' ने यद्यपि ऋतु-वर्णन को अपने काव्य का अंग नहीं बनाया है तथापि बसन्त आदि के चित्र यत्र-तत्र मिलते हैं।

मलय समीर लागौ चलन सुगंध सीरौ,
पथिकन कीने परदेसन ते आवने।

'मतिराम' सुकवि समूहनि सुमन फूले ,
कोकिल मधुप लागे बोलन सुहावने ।
आयो है बसन्त भए पल्लवित जल-जात ॥
तुम लागे चलिवे की चरचा चलावने ॥२१०।रस राज।

इसमें बसन्त का परम्परा-बद्ध चित्रण है, कवि का बसन्त के प्रति उल्लास अथवा अनुराग नहीं प्रगट होता है उसे तो केवल नायिका के भावों का ही ध्यान है, इनका उद्दीपन रूप में प्रकृति का उपयोग सर्वथा रीतिबद्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि कवि तटस्थ रहकर उदासीन भाव से अपने आश्रयदाता की प्रसन्नता पूर्ति के लिये लिखता जाता है, किन्तु मानव-सौन्दर्य की अभिव्यजना के लिये उपमान रूप में प्रयुक्त प्रकृति के प्रति इनका उल्लास लक्षित होता है। इन्होंने अपने काव्य में न तो नख-शिख वर्णन ही किया है और न डिठौना तथा बिन्दी आदि के लिये रवि-शशि, मेघ, आदि को ढूँढते फिरे हैं, इन्होंने शारीरिक सौन्दर्य की ओर अधिक रुचि न प्रकट कर लजा, रोष आदि अन्तर्वृत्तियों का निरीक्षण किया है और इसके उपमान इनके प्रकृति-प्रेम और सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति के प्रमाण हैं। बाल-बधू का लजा के कारण सिमटने और मति के बवण्डर के समान भ्रमित होने में कवि की नवीन उद्भावना और स्वानुभव का परिचय प्राप्त होता है।

आगामी मिलन की पृष्ठभूमि के रूप में इन्होंने कहीं-कहीं सकेत-स्थल का यथा-तथ्य चित्रण किया है। वचन-विदग्ध नायक प्रकृति के नीरव और निर्जन वातावरण का कथन करते हुए नायिका को सकेत स्थल में चलने के लिये सकेत करता है—

दूसरे की बात सुनि परत न ऐसी जहाँ,
कोकिल कपोतन की धुनि सरसाति है।
छाई रहे जहाँ द्रुम बेलिन सौं मिलि,
'मतिराम' अलि-कुलन अंध्यारी अधिकाति है।
नखत से फूल रहे फूलन के पुंज घन,
कुंजन में होति जहाँ दिन ही में राति है।
ता बन की बाट कोऊ संग न सहेली साथ,
कैसे तू अकेली दधि बेचन को जाति है।
२६७। रस राज।

इसमें प्रधानता उद्दीपन की ही होते हुए भी संकेत स्थल की निस्तब्धता, अंधकारमयता और पुष्प-विकास से पूर्ण सुन्दरता की कवि ने स्वाभाविक और सुन्दर व्यंजना की है।

नायक-नायिका की चेष्टाओं के प्रत्यक्ष अनुभव का इन्होंने अपने काव्य में वर्णन किया। इनका प्रेम लौकिक और ऐन्द्रिय सुख की भावना से पूर्ण था, और दृष्टि सीमित थी, अतः इनके काव्य में प्रकृति चित्रण में हमें उपदेश या परम-तत्व के दर्शन नहीं होते। मानवी-करण की भावना उद्दीपन में ही मिल जाती है। विरह की उद्योगावस्था में मनुष्य का प्रकृति से एकात्म्य स्थापित हो जाता है और उस समय मानव प्रकृति मे संवेदना प्राप्त करता है, इनका मानवीकरण रीति-परम्परानुसार ही है।

देव

कविवर देव ने रीति-परम्परा का सम्यक् प्रतिपालन किया है। शृंगार-रस का इनके काव्य में पूर्ण-विवेचन है। शृंगार-रस के आलम्बन नायिका-नायक के गुण, अवस्था और स्वभाव के अनुसार समस्त भेदों का विद्वता-पूर्ण विवेचन है। नायिक के नख-शिख वर्णन मे शरीर के प्रमुख अंगों के अतिरिक्त रोमावलि, नाभि, त्रिवली, पिंडली आदि का भी उल्लेख किया है। शरीर के वाह्य-सौन्दर्य को बढ़ाने वाली कंचुकी, हार और विन्दी आदि के वर्णन में भी वह पीछे नहीं रहे हैं ; वाह्योपचार चन्दन, चौआ आदि को भी काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। अष्टयाम में, शृंगारपरक दैनिक-क्रिया-कलाप का वर्णन है, उद्दीपन विभाव मे—संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर निर्वाह किया है। वियोग की दश काम-दशाओं का पूर्ण विवेचन है। षटऋतुओं के वर्णन मे प्रकृति को संयोग और वियोग दोनों पक्षों में उद्दीपन का साधन व्यक्त किया है, इस प्रकार का प्रकृति का उपयोग नायक नायिका की सौन्दर्याभिव्यक्ति और भावों की अभिवृद्धि के ही लिये है।

अलंकार

रीति-काल की परम्परानुसार देव की रचना में अलंकारों की अतिशय प्रचुरता है। प्रायः अलकार नायिका की शोभा और सौन्दर्य-वर्णन के प्रभाव को अधिक स्थायी और तीव्र बनाने के लिये प्रयुक्त हुए हैं। सादृश्यमूलक अलंकारों मे प्रतीप,उपमा उत्प्रेक्षा और रूपक का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है। इनकी अलकार-योजना में हमें इनका भाव-स्रोत कई उपशाखाओं मे प्रवाहित होता हुआ लक्षित होता है। कहीं-कहीं तो इनका सौन्दर्य-वर्णन सर्वथा परम्परामुक्त है—

सूरजमुखी सों चन्द्रमुखी को विराजे मुख,
कुंदकली दन्त नासा किंशुक सुआरी सो।
मधुप से लोचन मधूक दल ऐसे ओंठ,
श्रीफल से कुच कच बेलि तिमिरारी सी।
मोती बेल कैसे फूली मोतिन में भूषण,

सुचीर गुल चादनी सों चंपक की डारी सी।
केलिके महल फूलि रही फुलवारी 'देव,'
ताही में उज्यारी प्यारी भूली फुलवारी सी।
कविता कौमुदी भाग १ पृष्ठ ४७५।

कवि की प्यारी के मुख, दांत, नेत्र, ओष्ठ आदि अंगों के उपमान परम्परा-भुक्त हैं। नायिका के सौन्दर्य से कवि की आत्मा प्रफुल्लित नहीं हुई है, प्रकृति में उसने उस सौन्दर्य की झलक नहीं देखी है और न उसका हृदय ही प्रकृति से उल्लसित हुआ है। चन्द्र को उपमान बनाने में उसके निजी-उत्साह के दर्शन नहीं होते और विदित होता है कि वास्तविक चन्द्र में उसका मन नहीं रमा है। कुन्दकली की शुभ्रता का उसके हृदय पर स्थायी प्रभाव नहीं है, इन सब उपमानों का प्रयोग उसने इसलिये किया है क्योंकि वे परम्परा से कवि सम्प्रदाय-द्वारा प्रयुक्त होते चले आए हैं। सादृश्य को कभी वह उपमालंकार द्वारा प्रकट करते हैं और कभी नायिका को उपमानों से श्रेष्ठ ठहरा कर अप्रस्तुत की निन्दा करते हुए व्यक्त करते हैं—

मीन मृगीन करे दृग दीन, सकंज सुखंजन दीन निहारो।
रूप को मंदिर सो मुख सुन्दर, बिन्दु सो पूरण इन्दु विचारो ॥३६८॥
सुख सागर तरंग ॥

मीन, मृग और कमल दीनता-पूर्वक उसके मुख की ओर निहारने लगते हैं। उसकी दीप्ति की तुलना में पूर्णेन्दु बिन्दु सा प्रतीत होता है। मीन, मृग, कमल, और चन्द्र सब परम्परानुगत उपमान हैं, कवि की सौन्दर्यानुभूति के निजी परिचायक नहीं। इसी प्रकार वह अन्य उपमानों का नायिका के अंगों में संभावना करते हुए वर्णन करते हैं :—

बेनी बनाइ के माँग गुही, तेहि माँह रही लर हीरन की फबि।
सोम के शीश मनो तम तोमहिं, मध्य ते चीरि कढ़ी रबि की छबि। ॥२४१॥
सुख सागर तरंग।

नायिका की माँग में हीरों की लड़ गुंथी हुई है, वह ऐसी प्रतीत होती है मानो चन्द्रमा के सिर पर अंधकार-समूह को विदीर्ण करती हुई सूर्य किरण फूटी पड़ती हो। कवि ने उत्प्रेक्षा में मुख, केश समूह और अंग में शशि, तम तोम, तथा 'रवि की छबि' की संभावना करली है। उपमान सब परम्परा द्वारा प्राप्त हैं; इस वर्णन में प्रकृति और मानव सौन्दर्य के प्रति कवि का विशेष

अनुराग नहीं लक्षित होता। अपने आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिये उनकी प्यारी की छवि का वर्णन उन्हें करना है, साधुवाद पाना है, अतः उपमानों का चयन करके नायिका का वर्णन कर दिया है। इसमें प्रस्तुत नारी के सौन्दर्य का अर्थ-ग्रहण तो हो जाता है किन्तु बिंब ग्रहण नहीं होता। अप्रस्तुत के प्रति तो कवि पूर्णतः निरपेक्ष है, उसके हृदय की भावुकता का परिचय नहीं प्राप्त होता। इसके विपरीत तुलसी के आलंकारिक चित्रण में प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनों के प्रति उत्साह उमड़ा पड़ता है—

लता भवन तें प्रकट भए, तेहि अवसर दोउ भाइ।
विकसे जनु जुग विमल विधु जलद पटल बिलगाइ॥

इस चित्रण में एक ओर कवि राम-लक्ष्मण की रूप-प्रभा से प्रभावित होता है और दूसरी ओर श्याम मेघों से प्रकाशित होते हुए चन्द्र से। दोनों के सौन्दर्य प्रभाव से वर्णन मे सजीवता और अलौकिकता का समावेश होगया है। परम्परागत उपमानों के अतिरिक्त उन्होंने राजकीय-वैभव के प्रतीक मशाल आदि का भी उपमान रूप में उपयोग किया है। नायिका की शरीर कान्ति कवि को इस प्रकार प्रभावित करती है :—

बोलनि हँसनि मन्द चलनि चितौन,
चारुताई चतुराई चित चोरिबे की चाल सी
संग में सहेली सों नवेली सों नवेली बाल
रंगमगे अंग जगमगति मसाल सी।२०१।
सुख सागर तरंग।

राज प्रासादों के मसाल आदि आलोक-पूर्ण उपकरणों की उपेक्षा कवि को अपेक्षित नहीं।

देव की अलंकार-योजना में दूसरी प्रकृति चमत्कार-प्रदर्शन की है इसमें नायक-नायिका के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन और कल्पना की ऊँची उडान की प्रधानता रहती है। कवि उपमेय और उपमान दोनों के प्रति पूर्व की ही भाँति निरपेक्ष रहता है और परम्परा-भुक्त उपमानों का प्रयोग करता है। सखी रूपवती नायिका से कहती है :—

देयन दुराउ मुख नतरु तरैयन को,
मंडल ओ मदकि चटाकि टूटि परैगो।
तो चितै सकोचि शोचि मोचि मृदु मूरिछ कै
छोर ते छपाकरु छता सों छूट परैगो।२११।
सुख सागर तरंग।

नायिका के मुख द्वारा उपमान की निन्दा कराई है, किन्तु वास्तव में पाठक के हृदय पर इस वर्णन से नायिका के सौन्दर्य का प्रभाव नहीं पड़ता। वह छन्द के प्रभाव और अनुप्रास की छटा की ओर ही अधिक आकर्षित होता है। तरैयन के चटाक टूट पड़ने और छपाकर के छूट पड़ने में कवि कल्पना पर मुग्ध होकर चमत्कार प्रेमी विलासी राजा और दरबारियों ने साधुवाद किया होगा, भावुक हृदय इस चमत्कारिक-योजना से प्रभावित नहीं हो सकता। इसमें हमें वेतन-भोगी राजाश्रित देव के दर्शन होते हैं भावुक-कवि के नहीं। तरैयन के टूटने तक तो स्वाभाविकता बनी रहती और उत्प्रेक्षा तथा वास्तविकता में साम्य हो जाता किन्तु छपाकर के टूटने में तो विचित्रता ही व्यक्त होती है इस प्रकार के चमत्कार और आद्भुत्य से पूर्ण वर्णन में बिहारी की ऊहात्मक व्यजना से साम्य प्रकट होता है :—

पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्योई रहत, आनन ओप उजास।१०२। बिहारी बोधिनी

स्वानुभव को भी अपनाया है, किन्तु अपने उस निजी-अनुभव में वह राजप्रासादों के सीमित-क्षेत्र से आगे बहुत कम बढ़े हैं। अधिकतः पालित पशु-पक्षी आदि ही इनकी समता के पात्र बन सके हैं। प्रकृति के विशुद्ध और उन्मुक्त वातावरण से यह यथेष्ट तटस्थ रहे हैं। स्वप्न दर्शन के पश्चात नायिका की विकलता का वह इस प्रकार दिग्दर्शन कराते हैं:—

ह्वै सपने तिय को पिय आय दई हिय लाय बनाइ बिरी त्यौं।
चुबत ही चख चौंकि परी सुचिते चकि सेज ते भूमि गिरी त्यौं।
देव जु द्वार किवारन हू झँझरीन झरोखन झाँकि फिरी त्यौं।
दीन ज्यौं मीन जरा की भई सु फिरै फरकै पिंजरा की चिरी त्यौं ॥६१॥
सुख सागर तरंग।

निजी-उपमानों में उनकी दृष्टि पिंजड़े की चिड़िया तक ही सीमित रही। राज-प्रासादों के बाहर स्वच्छन्द और उन्मुक्त पक्षी उन्हे आकर्षित न कर सके।

प्रेम के बीजारोपण में नेत्र सर्व-प्रथम प्रभावित होते हैं। नेत्रों की मध्यस्थता से प्रिय का चित्र हृदय में अपना स्थायी स्थान बनाता है। नायक के रूप पर मुग्ध हुई नायिका के विवश नेत्रों का मधुरस में डूबी हुई मधु-मक्खी के साथ इन्होंने सुन्दर सामजस्य प्रकट किया है—

देव कछू अपनो बसु ना रसु लालच लाल चितै भईं चेरी।
बेगि ही बूड़ि गईं पँखियाँ अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी ॥१०२॥
देव सुधा।

इस वर्णन में कवि के उपमान की मौलिकता प्रदर्शित होती है। मधु सौन्दर्य का भी प्रतीक है और लिपट जाने की क्रिया द्वारा गुण तथा व्यापार में भी साम्य प्रकट किया है। "गोरो गोरो मुख आजु ओरो सो बिलोनो जात," में कवि की इससे भी अधिक सूक्ष्म-भावना प्रकट होती है, आँसुओं से मुख की कान्ति के क्रमशः मलिन होने में नायिका की सुकुमारता व्यक्त होती है, अपने स्थान से च्युत होकर ओले के घुलने और खंडिता नायिका के अनुतप्त होने के प्रभाव में भी सफल सादृश्य विधान का उपयोग है, नायिका की गुराई और ओले में वर्ण-साम्य तो है ही, एक ही उपमान में क्रिया, वर्ण और प्रभाव का धर्म-सादृश्य अपूर्व है। कवि देव ने पति-प्रेम वंचिता दुःखनी सुकुमारी नारी के प्रति अपनी सवेदना प्रकट की है और अप्रस्तुत विधान के उपयोग द्वारा उसकी लज्जा शीलता का भी दिग्दर्शन कराया है, उपर्युक्त नारी, पति के परस्त्री प्रेम के दुःख को किसी से नहीं कहती। 'रत्नाकर' के 'रही, सही सोऊ कहि दीनी हिच कीन सों', और रहीम के 'रहिमन अँसुआ नयन ढरि जिय दुःख प्रकट करेइ,' के अनुसार उसके आँसू ही उसके दुःखावेग को व्यक्त कर देते हैं। इस सादृश्य विधान में ऐसा वेदना-पूर्ण वैचित्र्य है कि पाठक का हृदय भी इस नारी के प्रति करुणा और संवेदना से पूर्ण हो जाता है। रूप रस में डूबे हुए नेत्रों के इस धर्म साम्य में कवि की भावुकता प्रकट होती है। नायिका के प्रेम विवश भाव का प्रभाव तीव्र होता है। इस भाव साम्य के समकक्ष "पिंजरा की चिरी" एक खिलवाड़ सी प्रतीत होती है। यद्यपि देव राजाश्रित कवि थे। किन्तु जब कभी इन्हें अवसर मिला है इन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है, मुग्ध हुए हैं और नायिका में उसका सादृश्य ढूंढा है। नायिका ने शिशुता का अतिक्रमण कर तरुणावस्था में पदार्पण किया है, वयः-संधि का समय है, कपोलों पर तारुण्य की लालिमा छागई है, कवि को उस समय उपमा सूझती है :—

"प्रात पयोदन ज्यों अरुणाई दिखाई दई तरुणाई प्रवीने"

। ३६७ । सु० सा० त०।

अलंकार-प्रयोग में कवि की एक प्रवृति वास्तविक सौन्दर्य के प्रति आकर्षण की है। उपमानों की संयोजना और चमत्कार प्रदर्शन में कवि की सौन्दर्य-भावना उपेक्षिता ही रही थी, कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा राज-कवि के नाते विकीर्ण की, मस्तिष्क काव्य-निर्माण में व्यस्त रहा और

हृदय की भावनायें सुप्त ही रहीं, अतः इस प्रकार की रचना में शुष्कता और नीरसता ही व्यक्त होती है—हृदय को स्पर्श करने वाली मधुरता नहीं, परन्तु जब वह नायिका के सौन्दर्य से स्वयं प्रभावित होते हैं, उनका हृदय उसके हाव भावों के प्रति आकर्षित होता है, तो उनके हृदय से मधुर-स्रोत प्रवाहित होने लगता है। नायिका के कोमल, स्निग्ध शरीर, उसकी सलज्जता और हाव भावों की मधुरता के प्रति आकर्षित होकर कवि को इस प्रकार अपने निजी निरीक्षण द्वारा अप्रस्तुत-योजना करनी पड़ती है।

परे पर्यंक पर परत न पी के कर छरहरे छुवत बिछौना पै छुरत है।
चीकने चलेई जात अंग लागे अगिरात गाढ़े गहे ठहरात गूढ़ ह्वै ढुरत है।
विमल विलास ललचावत लला को चित ऐंचत इतै को वे उतै ही को मुरत हैं
पारे ही के मोती किधौं प्यारी के शिथिल गात ज्योंही ज्यों बटोरियत त्यौं त्यौं बिथुरत हैं
। २०७। सु० सा० त०

इस उपमा द्वारा सौन्दर्य प्रभाव तीव्र होता है, और प्रस्तुत अप्रस्तुत दोनों का बिम्बग्रहण हो जाता है। इसमें नारी के गौरांग और पारे के शुभ्र-वर्ण के प्रति कवि का इतना अधिक आकर्षण नहीं है जितना स्पर्श के प्रभाव के सामर्थ में है। नायिका के प्रणय-मान और सहज-संकोच का पारे के बिछुरने के सादृश्य-विधान में पूर्ण निर्वाह है। कवि की अन्तर्बाह्य की सौन्दर्य-भावना मानव हृदय को स्पर्श करती है। इसी प्रकार की सौन्दर्यानुभूति जब कवि के प्राणों में समा जाती है, उसके हृदय को मधु-सिक्त कर देती है, उसकी अन्तर्वृत्तियों को अत्यधिक अनुरंजित करती है तो सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिये उसके हृदयाब्धि में उत्ताल तरंगे उठने लगती हैं, उसका भावप्रवाह प्रखर वेग से बहने लगता है। उसको अत्यन्त उत्साह, उमंग और आनन्द सहित कहना पड़ता है :—

अंग अंग उमड्यो परत रूप रंग नव योवन अनूपम उज्यासन उज्यारी सी।
डगर डगर बगरावति अगर अंग जगर मगर आपु आवति दिवारी सी।
सुख सागर तरंग ३२२।

कवि नायिका के अनुपम रूप लावण्य से इतना अधिक आनन्दित होता है कि वह अपनी उस आनन्दानुभूति को अधिकाधिक आकर्षक एवं अतिरंजित बनाना चाहता है। उसके हृदय का समस्त उत्साह उस रूप-छटा पर न्योछावर हो जाता है। कवि का एक-एक शब्द उसकी सौन्दर्यानुभूति की उमंग को व्यक्त कर रहा है, केशव ने भी आभूषणों से सज्जित नायिका को दी॰ मालिका के समान वर्णन किया है :—

बेनी फूल माँग फूल, सीस फूल, कर्ण फूल,
खुटिला तिलक नक मोती बनी बालिका।
केसौदास बीन बास जोति जगमगि रही,
देह धरे देखियत मानो दीप मालिका।

इसी से मिलता जुलता वर्णन कवि बेनी प्रवीण ने भी किया है :—

नव जगमगत जगत जोति जोबन की,
सारी जरतारी अंग तैसी संग आलिका।
झलक मलक झलकत झाँई झाँझरीन,
मानो मनि महल समानी दीप मालिका ॥

उपर्युक्त तीनो अवतरणों में उत्प्रेक्षा-अलंकार द्वारा नायिका के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया है। किन्तु इस सौन्दर्य के प्रति जितनी तीव्रानुभूति, जितना अतुल उत्साह, देव का लक्षित होता है उतना केशव और बेनी प्रवीन का नहीं। देव की नायिका सक्रिय और सजीव प्रतीत होती है और अन्य दोनों काव्यकारों की निश्चेष्ट एवं निर्जीव, देव की सौन्दर्यानुभूति अनुपम है।

इसी भाँति उत्प्रेक्षा और रूपक अलकारों में कवि मुग्ध नायक की दशा और नायिका के ललित अंगों का वर्णन करता है—

मन मन-भावन को मानों किलकिला शोभा
सिंधु मैंथिरकि चाव चख झख पै झपट पर्‌यो।
नीलाम्बर नील जाल बीच ही उरझि देव
मुरझि सिवल लट जाल में लिपट पर्‌यो।
भाल छबि भूल्यो सींक सेंदुर बेसर सूल्यो
बींध्यो बरुणीन भौंह दीपति दपटि पर्‌यो।
ठोडी से ढरक पर्‌यो चीकने कपोल गड़्यो
गाड़न सरकि रूप कूप में रपटि पर्‌यो ॥ ४३३

सुख सागर तरङ्ग।

प्रेमी का मन नायिका के मस्तक, बरुणी और नेत्रों पर मुग्ध होता हुआ, वेणी-पाश में उलझता हुआ भौंहों से आहत होता हुआ, स्निग्ध कपोलों को पार करता हुआ, चिबुक के गढ़े को निहारता रह जाता है, अर्थात् वह मुख के सौन्दर्य पान में ही सुधि-बुधि भूल जाता है, नायिका के अन्य अंगों की शोभा को निरखने का उसे ध्यान ही नहीं रहता।

शरीर की अतिशय-कोमलता में उन्होंने रीति-कालीन कवियों की परिपाटी के अनुसार अतिशयोक्ति का उपयोग किया है, उसकी नायिका इतनी अधिक कोमलांगी है कि वन-विहार के समय उन्हें यही भय लगा रहता है।

"गड़ि जनि जाय पाँय पाँखुरी पुहुप की"।

पद्मिनी नायिका के पीछे भ्रमरावली के लग जाने का रीति-काल के लगभग सभी कवियों ने वर्णन किया है, देव ने इसका पूर्ण रूपेण प्रतिपालन किया है। इनकी नायिका के अंग प्रत्यङ्गों की उपमा पर तो स्वयं प्रकृति ही मुग्ध हो जाती है और उपमान इसके पीछे लग जाते हैं। जब वह निकलती है तो उसकी यह दशा होती है "देवजू भौंरन घेरि लई चहुँ ओर ते मोर चकोरन घेरी" शरीर की सुगन्धि पर मुग्ध होकर भ्रमर, ग्रीवा को अपना प्रतिद्वन्दी समझकर मयूर और मुख चन्द्र के प्रति आकर्षित होकर चकोर उसको घेर लेते हैं। कवि-शिरोमणि कालिदास के काव्य में तो शकुन्तला के चित्र पर भी भौंरों की भीड़ रहती है।

उद्दीपन

शृङ्गार में उद्दीपन-विभाव में संयोग-शृंगार और विप्रलभ-शृंगार दोनों में कवि ने प्रकृति का पूर्ण निर्वाह किया है। इनके परम्पराभुक्त ऋतु-वर्णन मे समीप होने पर प्रकृति दम्पति को शारीरिक-उपभोग द्वारा तृप्त करती और इन्द्रिय-सुख की वृद्धि करती है। विप्रलम्भ में प्रकृति वियोग-दुःख को बढाती और सन्ताप-कारिणी प्रतीत होती है।

संयोग और वियोग दोनों पक्षों में देव के काव्य में प्रकृति मानव-मनोवृत्ति की आधार-भूमि रही है। मानव भावनाओं को उद्दीप्त करने में इन्होंने प्रकृति के भयोत्पादक और शान्त दोनों रूपों का अवलोकन किया है। संयोगावस्था में प्रकृति का मन-मोहक रूप मानव को सुख प्रदान करता है, हृदय की स्वस्थ व्यवस्था नायक को नायिका से मिलने के लिए प्रेरित करती है और उसकी दूती मानिनी नायिका से यही कहती है:—

कन्त बिन विषम वसन्त ऋतु तामैं अति
विषम विषम सर बेधत न स्यान कै।
माधव को मिलिये विमाधव कितै हो मास,
माधव बिते होगी उमाधव को ध्यान कै॥ २३५॥

बसन्त की शीतल समीर, कोकिल की मधुर वाणी और भ्रमरों का गुंजन, प्रेमी-प्रेमिका के हृदयों में मधुर भावना की सृष्टि कर देता है। प्रकृति का सुख उनके मन में स्फुरन और आनन्द की उद्भावना कर देता है, दोनों एक दूसरे पर अपना अतुल स्नेह, माधुर्य और सरसता न्योछावर कर देते हैं। प्रेमातिरेक में उनकी यह दशा हो जाती है:—

नील बसन्त उठे अकुलाई सुने किल कोकिल की किलकारी।
भांउरे सी भरे सामरे सामरी होत निछावरि से सहचारी॥
देव दुहूँ को दुहूँ दुरि के रङ्गि दै पठई अग अग उज्यारी।
केसरिया खुले नन्दकिशोर किशोरी की केसरि की रङ्ग सारी॥८१॥

सुख सागर तरङ्ग।

देव राजाश्रित कवि थे। विलास और वैभव के उस वातावरण में उन्हें प्रकृति के कृत्रिम रूप का ही अधिकतः अवलोकन करना पड़ता था। राज-प्रासादों का वैभव वैसे ही अनुपम था। प्रकृति के सौम्य रूप के संसर्ग से तो उसकी शोभा द्विगुणित हो जाती थी और उस समय कवि के प्रतीक नायक को अपनी प्रेमिका की प्राकृतिक और कृत्रिम प्रकृति के सम्बन्ध के कारण अधिक रूपवती एवं शोभाशालिनी प्रतीत होती थी—

चाँदनी महल बैठी चाँदनी के कौतुक को
चाँदनी सी राधा बिछी चाँदनी विशालरै।
चन्द्र की कला सी देवता सी देवदासी सग
फूल से दुकूल पैन्है फूलन की मालरै।
छूटत फुहारे वै अमक जल झलकत
चमकै चँदोवा मणि माणिक महालरै।
बीच जरतारन की हीरन की जगमगी
ज्योतिन की मोतिन की झालरै। १३६

राज-प्रासाद मणि, माणिक, हीरे और मोतियों की झालर से सुशोभित हैं। जल यन्त्रों से जल कण गिर रहे हैं, प्रखर प्रकाश है, स्वच्छ चादरें बिछी हैं, निर्मल चन्द्र ज्योत्स्ना से प्रासाद का वैभव विलास और भी अधिक हो गया है। इस प्रकार के सुन्दर वातावरण में पुष्पाभरणों से युक्त नायिका नायक को अत्यधिक सुन्दर प्रतीत होती है, वह मन्त्र मुग्ध सा उस चन्द्रकला सी प्रेमिका को देखता रह जाता है उस रूपालोक के सम्मुख प्रकृति की सहज

शोभा भी द्युति विहीन प्रकट होती है। 'प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चन्द' नायक उस रूप राशि के सुख साहचर्य में मग्न हो जाता है।

प्रकृति का मानव क्रियाओं पर भी प्रभाव पड़ता है। प्रकृति के प्रत्यावर्तन के साथ मानव के मन में भी नवीन भावनाओं का संचार होता है और उसी के अनुसार वह अपने कार्य-कलापों में भी परिवर्तन करता रहता है। वसन्त में फाग खेलने की उत्तेजना होती है। 'खेलत फाग खिलार खरे अनुराग भरे बड़ भाग कन्हाई, नायककृष्ण, अनुराग पूर्वक अपनी प्रेमिका से फाग खेलते हैं और नायिका की यह दशा होती है "लालरी लै के गुलाल रगीले रंगीली की चूनरि गीली गई करि" अपने प्रिय द्वारा डाले हुए गुलाल से और उसके स्पर्श के कारण नायिका स्नेह-सिक्त हो जाती है उसको स्वेद सात्विक होता है और उसकी चुंदरी सिक्त हो जाती है। पावस में हरीतिमा नेत्रों को शीतलता प्रदान करती है। प्रकृति की नवीन वेष-भूषा प्रेमी-प्रेमिका के हृदय को तरंगित करती है, दोनों प्रेम विभोर होकर हिंडोले पर झूलते हैं :—

झूलनहारी अनोखी नई उनई इलही रहती रंग माती।
मेह में ल्यावै ये तैसिये सग की रंग भरी चुनरी चुचुवाती॥
झूला चढ़े हरि साथ हहाकरि देव झुलावति ही ते डराती।
भोर हिंडोले की डाँड़िन छाँड़ि अरे ससवाई गरे लपटाती॥१६४॥

सुख सागर तरंग।

प्रेम की महिमा अपूर्व है, मनुष्य इसके वश होकर विश्व की समस्त संपति को तृणवत् तुच्छ और संकटों को सुगम समझ बैठता है। प्रेम-मार्ग में बाधक समस्त भयंकर वस्तुओं की उपेक्षा करता हुआ मानव अपने इष्ट स्थान को चलता जाता है।

घटा घहराति बीजु छटा छहराति,
अधिराती हहराति कोटि कीट रति रुंज लौं।
हूकत उलूक बन कूकत फिरत फेरु,
भूँकत जु भैरो भूत गावै थलि गुंज लौं॥
झिल्ली मुख मूँदि तहाँ बीछीगण गूंदि विष,
व्याकुल को रूंदि कै मृणालन के पुंज लौं।
जाई वृषभानु की कन्हाई के सनेह बस,
आई उठि ऐसे में अकेली केलि कुंज लौं॥१५५॥

पावस की ऋतु है, भयकर मेघ गर्जन है, उल्लू, भैरव और पिशाच आदि का भयकर नाद है, बिच्छू तथा विषैले सर्प मार्ग में पड़े हैं, किन्तु प्रेमोन्मादिनी नायिका इन सबकी उपेक्षा करती हुई अकेली ही अपने प्रिय के समीप कुज में पहुंच जाती है। प्रेम का नशा उसके जीवन में नवीन स्फूर्ति और अनुपम उत्साह का सचार कर देता है। भयंकर से भयंकर वस्तु उसको प्रेम-मार्ग से विचलित नहीं कर पाती। अपने प्रिय के सामीप्य का सुख शूल को फूल और दुःख को सुख में परिवर्तित कर देता है।

अपने प्रिय का वियोग विधाता का सबसे बड़ा अत्याचार है। यही वह अवस्था है जो मनुष्य की कठोर वृत्तियों का दमन करती और उसकी कोमल भावनाओं का प्रसार करती है। मानव, वियोग-दशा में स्वयं को दीन, हीन और अपदार्थ समझने लगता है। अहर्निशि अपने प्रिय का ही ध्यान बना रहता है। दिन-रात युग के समान प्रतीत होते हैं, किसी प्रकार समय व्यतीत ही नहीं होता जो रात्रि प्रिय सहवास में एक क्षण के समान व्यतीत हो जाती थी वही अब अत्यन्त दीर्घ प्रतीत होती है :—

यों सुधि द्यौस गमावति देवजू यामिनि याम जनौं युग च्यारो।
नीरज नैनी निहारिये न्यान तो धीरज राखत ध्यान तिहारो ॥५५२॥

सुखसागर तरग।

प्रकृति का सौम्य, सुन्दर रूप जो उसमें उत्साह और आनन्द की तरंगें उद्वेलित कर देता था, जो उसके सहवास सुख को अधिक आनन्द-प्रद बना देता था जो उसके जीवन में स्फूर्ति, चैतन्य और प्रेम का संचार कर देता था। वही वियोग दशा में उसे संतप्त क्षुब्ध और उद्विग्न बना देता है :—

कन्त बिन बासर बसन्त लागे अन्तक से,
तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन।
सान धरे सान से चन्दन घन सार लागे,
खरे मृग मद लागे महकन ॥
फाँसी से फुलेल लागे गाँसी से गुलाब लागे
गाज अरगजा लागे चोवा लागे चहकन।
रंग अंग आँच ऐसो केसरि को नीर लागे,
चीर लागे जरन अबीर लागे दहकन ॥१३८॥

सुख सागर तरग।

बसन्त समीर वियोगिनी को बाण के समान प्रतीत होती है। चन्दन, कपूर आदि का उपभोग दाहक हो जाता है। गुलाब आदि पुष्पों का स्पर्श जो संयोग में अत्यन्त सुखद प्रतीत होता था, जिसके पुष्पों के आभरण शारीरिक-सौन्दर्य की अभिवृद्धि कर नायक को मुग्ध करते थे, वे अब संतप्त करते हैं, और जिस अबीर तथा गुलाब से नायक की सम्बन्ध-भावना के कारण सात्विक भावों का उदय होता था, शरीर रोमांचित हो जाता था तथा सुन्दरी स्वेद सिक्त हो जाती थी, वही अबीर अग्नि सी प्रज्वलित कर देता है, सब वस्तुओं का प्रभाव विपरीत हो जाता है, कोकिल की कूजन तो उसके प्राण ही लिए लेती है, उसके जीवन के दिवस प्रिय की स्मृति में व्यतीत होते हैं :—

कोकिला के टेरत निकरि जातो जीव जो
तिहारो गुण गनत उधेरत न बीततो ॥२५३॥

जब प्रकृति का शोभन और सौम्य रूप ही उसमें स्फूर्ति का संचार नहीं करता वरन् उसको संतप्त कर देता है तो भूधराकार श्याम-जलद का गम्भीर योग जो प्रिय सहवास में ही उसे भयभीत बनाकर उसका मान मोचन करता, और सम्मिलन सुख को द्विगुणित कर देता था, अब विरहावस्था में प्रिय की स्मृति को सजग करता और भय का उत्पादन कर देता है। मेघ-समूह उसे मदमत्त हाथियों के समान लड़ते हुए प्रतीत होते हैं, चपला की चमक भय का संचार कर देती है, उसकी दशा अत्यन्त करुण हो जाती है :—

इभ से भिरत चहुँधाई से घिरत घन
आवत झिरत झीने झरसों झपकि झपकि।
शोर न मचावैं नेचैं मोरन की पाँति
चहुं ओरन ते कौंधि जाति चपला लपकि लपकि।
बिन प्राण प्यारे प्राण न्यारे होत देव कहै
नैन अँसुआन रहै अँसुआ टपकि टपकि।
रतियाँ अँधेरी धीर न तिया धरति मुख
बतियाँ कढ़ति उठै छतियाँ तपकि तपकि ॥१५८॥

नायिका अत्यन्त उद्विग्न हो जाती है। उसको नायक के अभाव में समस्त स्थान श्मसान की भाँति प्रतीत होते हैं, विहार-स्थलों को देखकर उसका वियोग दुःख और भी बढ़ जाता है।

वृन्दावन आली बनमाली बिन सूनो देव
देखे दुख दूनो ऊनो मानै सबै सहचर ॥५६८॥

दुःखातिरेक और प्रेम की सबलता में उसे उन्माद हो जाता है। उसकी दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है, चेतन अचेतन का ज्ञान विलुप्त हो जाता है। वह अपने प्रिय से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु को प्रिय के ही समान सुखद समझती है। उसकी विचित्र दशा हो जाती है।

करन पसारि मधुकरन बुलावै सुन
बोलनि बिकल कोकिलन त्यों मिलत हैं।
नाते ब्रजचन्द के चकोरन की ओर चितै
मोही मोर चन्द्रिका की मारन मिलत है ॥५८५॥

अपने प्रिय कृष्ण से वर्ण साम्य रखने वाले मधुकरों को राधा अपने समीप बुलाती है, चकोर के नेत्रों में अपने प्रिय के नेत्रों का सादृश्य देखकर अनिमेष दृष्टि से देखती रह जाती है और मोर-चन्द्रिका के सम्बन्ध से मोरों को देखकर मुग्ध हो जाती है। प्रिय की सम्बन्ध-भावना से उसे प्रत्येक वस्तु प्रिय ही प्रतीत होती है। तमाल के वृक्षों का स्पर्श उसके लिए प्रिय के आलिंगन के सदृश ही सुखद हो जाता है।

सोचत नैन विशालन के जल बाल सुमेटति बाल तमालहि ॥५८३॥

देव ने केवल नायिका को ही विरह विदग्धा नहीं दिखाया है वरन् वियोग व्यग्र नायक का भी बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। वियोग में नायक को भी उन्माद सा हो जाता है। शरीर की सुधि बुधि जाती रहती है। वह मानव शरीरांगों के प्राकृतिक उपमानों में प्रेयसी की झलक देखता है।

रोके मृग मारग विलोके मृगराज मृग
भेद मृग खोजत है बेद मृगनैनी के ५९०।

प्रेम की महिमा अद्भुत है। प्रेमांकुर विहीन मनुष्य हृष्ट पुष्ट और प्रसन्न रहता है किन्तु ज्यों ज्यों प्रेमलता पल्लवित होती जाती है शरीर प्रति दिन कृश होता जाता है, कान्ति क्षीण होती जाती है और प्रिय वियोग में तो सुखद वस्तुओं के प्रति विरक्ति और क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। जीवन में एक प्रकार की शून्यता और नीरसता का अनुभव होता है, जीवन भार हो जाता है। वियोग व्यथिता नायिका के शरीर की कान्ति की क्षीणता का देव ने सुन्दर चित्रण किया है :—

साँझ को सो चन्द भोर को सो कर राख्यो मुख
भोर की सी कान्ति भाँति साँझ की सी भई आनि ॥५६५॥

भोर के निष्प्रभ चन्द्र से उपमा देकर कवि ने विरहिणी का चित्र ही अंकित कर दिया जिस नायिका के मुख की कान्ति रात्रि के पूर्ण विकसित चन्द्र के समान थी वही मुख अब भोर के चन्द्र की भाँति निस्तेज और शोभा-विहीन हो गया है। शरीर की कृशता की भी यह दशा है।—

हाथ उठायो उड़ाइबे को उड़ि काग गरे परी चारिक चूरी ॥५६४॥

वियोगिनीने काग को उड़ाने के लिये हाथ उठाया तो हाथों की चूड़ियाँ गले में आपड़ीं यद्यपि यह अतिशयोक्ति-पूर्ण है इस अतिशयोक्ति से वियोगिनी की दयनीय दशा प्रकट होती है। वियोग-व्यग्र राम की कृशता का वर्णन कवि केशव ने इससे अधिक भावुकता-पूर्ण किया है।—

तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कँह राम ॥ ४८ सुंदर-कॉड।

जब आशालता मुरझा जाती है, वियोग के प्रत्याघातों को सहते-सहते शरीर अत्यधिक निर्बल हो जाता है तो मनुष्य को बार-बार मूर्च्छा आती है। यह मरण से पूर्व की दशा है जब नायिका के शरीर में शक्ति थी तो उसे प्रिय की वस्तु देखकर प्रेमोन्माद होता था, वह अत्यन्त प्रेम से प्रिय की वस्तु का आलिंगन करती थी और उससे प्रिय के स्पर्श का सा ही सुख अनुभव करती थी किन्तु अब तो मन और शरीर दोनों ही पूर्व से अधिक अस्वस्थ हैं। शरीर यत्किंचित भी आघात सहन करने में असमर्थ है। ऐसी दशा में वह प्राचीन केलि-पुंजों को देखकर विकल हो जाती है और पुष्प-माल को देखकर तो उसकी पूर्व-स्मृति इतनी अधिक सजीव हो जाती है कि वह सहन करने में असमर्थ होकर मूर्च्छित हो जाती है—

केली के बगीचा लों अकेली अकुलाय आई
नागरि नबेली बेली हेरति हहरि परी।
कुंज पुंज तीर तहाँ गुंजत भ्रमर भीर
सुखद समीर सीरे नीर की लहरि परी।
देव तिहिं काल गुहि माल ल्याई मालिन
सुभाल को विरह निशि व्याल की लहर परी।
छोह भरी हारी सी छबीली छिति माह फूल
छरी से छुवत फूल छुरी सी छहरि परी ॥ १

---

१ सुखसागर तरंग ॥६१२॥

देव ने उद्दीपन रूप में प्रकृति का पूर्ण-रूपेण निर्वाह किया है। प्रकृति-वर्णन में ऋतु-वर्णन की परम्परा का भी प्रतिपालन किया है। रीति परम्परा-नुसार इनके काव्य में प्रत्येक ऋतु प्रेमी-प्रेमिका की मानसिक-दशा से अनुरंजित है। प्रकृति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वही दृश्य स्वस्थ अवस्था में सुन्दर और शोभन है और अव्यवस्थित-अवस्था में भयकर एव दाहक। प्रकृति नायिका को हँसाने और रुलाने का साधनमात्र है। किन्तु कहीं-कहीं इन्होंने प्रकृति का यथा-तथ्य चित्रण भी किया है।

मोखे सिंधु सिंधुर से बंधुर ज्यों विन्ध्य गंध
मादन के बंधु से गरज गुरुवानि के।
झमकोर झूमत गगन बने घूमत पुकारे
मुख चूमत पपीहा मुख मोरनि के॥
नदी नद सागर डगर मिल गये देव
डगर न सूझत नगर पुरवानि के।
भोर जलधरणि अँधियारे धरनी धराणि
धाराधर धावत धुमारे धुरवानि के।[1]

पावस में इस वर्णन में कवि ने अपने निजी निरीक्षण द्वारा 'नदी नद सागर डगर मिल गये' आदि का चित्रांकन किया है। इसमें नायक नायिका के भावों की पटभूमि के रूप में प्रकृति चित्रण नहीं है। कवि स्वय वर्षा के दृश्य से प्रभावित हुआ है और उसने उसका यथातथ्य वर्णन कर दिया है।

प्रकृति के सुन्दर रूप पर तो वह कहीं कहीं इतने अधिक मुग्ध हो गये हैं कि उन्होंने एक अद्भुत दृश्य खड़ा कर दिया है, उनकी कल्पना त्रैलोक्य व्यापिनी हो जाती है, शरद की निशा अखिल विश्व का सौन्दर्य संचित करके अत्यन्त भव्य एवं विराट रूप में दृष्टिगोचर होती है।

आस पास पूरण प्रकाश के पराग सूझे
बनन अगार डीठि गली है निबरते।
पारावार पारद्ध अपार दसौ दिशि बूड़ी
विधु ब्रह्माण्ड उतरात बिधि बर ते।
शारद जुन्हाई जन्हु पूरण स्वरूप धाई
धाई सुधासिन्धु नभ शुभ्र गिरिवर ते।

१ सुखसागर तरंग ॥१५०॥

उमड़ो परतु ज्योति मडल अखड सुधा-
मंडल मही में इन्दु मडल विवरते।१७१

ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने शरद निशा के चित्रण में अपनी समस्त काव्य-शक्ति व्यय करदी है। इसमे उद्दीपन विभाव के मुख्य अग षटऋतु वर्णन में शरद का चित्रण किया गया है, सयोग शृगार में प्रकृति का शुभ्र स्वरूप अत्यन्त महत्वपूर्ण है, प्रेमी प्रेमिका के सुख सम्मिलन के लिये दोनों की भावनाओ को उद्दीप्त करता हुआ यह वर्णन आगामी घटना की पृष्ठ भूमि के रूप में भी चित्रित हुआ है, किन्तु स्वाभाविकता की दृष्टि से इसमें प्रकृति के आलम्बन रूप का पूर्ण विकास-प्रकाश है।

पद्माकर

पद्माकर की काव्य-कला का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब देश के शासक विलास और आनन्दोपभोग में डूबे हुए थे। सुरा और सुन्दरी उनके जीवन के अनिवार्य उपकरण थे और उनके हृदय में कृष्ण के रसिक रूप का माधुर्य समाहित था, उस काल के प्रतिनिधि कवि विलासी राजाओं के आश्रित थे और उनकी काव्य-प्रतिमा उदर-भरण का साधन थी, कविगण या तो अपना समस्त काव्य-कौशल आश्रयदाता भूपतियों की प्रेयसियों के नख-शिख-वर्णन और हाव-भाव तथा कटाक्षों के दिग्दर्शन में प्रदर्शित करते थे अथवा रीति परम्परानुसार अलकारों के उदाहरण-स्वरूप काव्य-रचना करते थे। परम्परा-प्रेमी पद्माकर भी अपनी काव्य प्रतिभा को इन प्रतिबन्धनों से मुक्त न रख सके और समयानुगत प्रत्येक रीति का पालन किया। अपने आश्रयदाता भूपति की प्रशंसा में 'हिम्मत बहादुर विरुदावली', अलकार निरूपण के लिये 'पद्माभरण' और नायिका-भेद एव रस-विवेचन के लिये 'जगद विनोद' की रचना की। रीति काल की प्रवृत्यानुसार इन्होंने अलंकारों के प्रति अपनी प्रतिभा का सबसे अधिक प्रकाशन किया है अतः हम सर्व प्रथम इनके अलकारों का ही विवेचन करेंगे।

अलंकार

नायिका के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिये कवि ने अप्रस्तुत में कहीं रूप और आकार में साम्य प्रकट किया है और कहीं गुण तथा प्रभाव में। सादृश्य मूलक अलकारों में अधिकतः उपयोग उपमा और प्रतीप का ही है।

उपमालकार में जहाँ इन्होंने रूप अथवा वर्ण में साम्य प्रदर्शित किया है वहाँ सौन्दर्य-वर्णन परम्परामुक्त ही रहा है, ऐसे वर्णनों में केवल उपमेय और उपमान का ज्ञान ही लक्षित होता है, कवि की भावुकता अथवा प्रकृति-प्रेम का दिग्दर्शन नहीं होता। कवि नायिका के केश-जाल का वर्णन करते हैं:—

घन से तम से तार से, अजन की अनुहारि।
अलि से मावस रैन से, बाला तेरे बार॥ २३॥

पृष्ठ ४१ । पद्माभरण।

घन, अंधकार, अंजन, अलि और अमावस्या की रात्रि अप्रस्तुत से वर्ण का ही साम्य प्रकट होता है। उपमान सभी कवि समय सिद्ध हैं। प्रकृति

के प्रति स्वयं आकर्षित होकर और उसका नायिका में सादृश्य देखकर कवि ने वर्णन नहीं किया है। वरन् उसने इन सबका चयन इसलिये किया है क्योंकि यह सभी उपमान उसके पूर्ववर्ती कवियो ने प्रयुक्त किये हैं। 'तार से' उपमान में बालों के साथ गुण-साम्य व्यक्त किया है।

जहाँ कवि ने क्रिया में समानता प्रकट की है वहाँ पर प्रचलित उपमानों के पीछे नही पडे हैं, क्रिया-साम्य में उन्होंने अपने अनुभव को अपनाया है। विप्रलब्धा नायिका के कम्पन का वह केले के पत्ते से सादृश्य व्यक्त करते हैं—

काँपि कदली लौ या अली को अवलंब कहूँ,
चाहति लह्यौ पै लोक लाजनि लहै नहीं ॥ १८३ ॥

जगद्विनोद।

प्रेमातिरेक के लिये प्रायः सभी कवियों ने मीन को दृष्टान्त रूप में प्रयुक्त किया है। पद्माकर प्रवत्स्यत्प्रेयसी नायिका की व्याकुलता के परिणाम-स्वरूप शैया पर बार बार करवट बदलने की क्रिया का जल वियुक्त मीन से साम्य प्रकट करते हैं।

'सेज परी सफरी सी पलोटति ज्यों ज्यों घटा घन की गरजै री ॥२४६॥

जगद्विनोद।

पति विदेश जाने वाला है। मेघ गर्जन सुनकर नायिका अत्यन्त व्याकुल हो रही है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत में भाव तथा क्रिया दोनो में समानता है। कहीं कहीं पर कवि ने इस प्रेम को केवल शब्दों द्वारा ही प्रकृति से दृष्टान्त लेकर व्यक्त कर दिया है —

मन मोहन तन घन सघन, रमनि राधिका मोर।
श्री राधा मुख चन्द को, गोकुल चन्द चकोर ॥ २८८ ॥

जगद्विनोद।

मोर जलद का प्रेमी है और चकोर चन्द्र का, इस प्राकृतिक सत्य को कवि ने राधा कृष्ण पर घटित कर दिया है।

जब कवि प्रेयसी की रूप राशि से अत्यधिक प्रभावित हो जाता है। तो उसे समस्त प्राकृतिक उपमान अनुपयुक्त प्रतीत होने लगते हैं, वह प्रकृति को कभी तो संकोचवश अत्यन्त अपकर्षावस्था में देखता है :—

सहज सहेलिन सों जु तिय, विहँसि विहँसि बतराति।
सरद चन्द की चाँदनी, मंद परति सी जाति ॥ १५ ॥ जगद्विनोद

और कभी प्रकृति नायिका की रूप-प्रभा से प्रभावित होकर और अधिक सौन्दर्य धारण कर लेती है :—

जुवत जुन्हाई मों न कछु, और भेद अवरेखि।
तिय आगम पिय जानिगो, चटक चाँदनी पेखि ॥

नायिका शुक्लाभिसारिका है। प्रतीक्षा करता हुआ उसका प्रेमी चन्द्रिका में अधिक चटक देखकर ही अपनी प्रिया के आगमन से अवगत हो जाता है। सौन्दर्य के इस वर्णन में कवि का सौन्दर्य के प्रति आकर्षण नहीं प्रकट होता। उन्मीलित का प्रयोग उस काव्य की परम्परा-वश ही है जिसमें ऊहात्मक-कल्पना और चमत्कार-प्रदर्शन की भावना का प्राधान्य है। बिहारी ने भी शुक्लाभिसारिका का इसी प्रकार का वर्णन किया है :—

जुवति जोन्ह में मिलि गई, नेकु न परति लखाय।
सौंधे के डोरन लगी, अली चली सग जाय ॥ ३१५ ॥

सौन्दर्य-वर्णन में और अधिक तीव्रता लाने के लिये कवि ने अतिशयोक्ति और तद्गुण अलकारों का प्रयोग किया है :—

सजि ब्रजचन्द पै चली यों मुखचन्द जा को,
चद चाँदनी को मुख मद सों करत जात।
कहै 'पद्माकर' त्यौं सहज सुगध ही के,
पुज बन-कुंजन में कज से भरत जात ॥
धरत जहाँई जहाँ पग है पियारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही के माठ से ढरत जात ॥ ४४५ ॥

एक ही छन्द में प्रतीप, अतिशयोक्ति और तद्गुण अलंकारों की छटा अभिव्यक्त हो रही है। कवि मुग्ध होकर, रूप-राशि का वर्णन कर रहा है। देव ने भी इसी से मिलता-जुलता राधा का चित्रण किया है, वृषभानु-सुता के आते ही ब्रज की यह दशा हो जाती है :—

कजन कलिन मयी कुंजन अलिन मयी,
गोकुल की गलिन नलिन मयी कै गई ॥१०७॥ सुखसागर तरंग।

इसी प्रकार परम्परानुगत प्राकृतिक उपमानों का रूपकातिशयोक्ति द्वारा चित्रण देखिये :—

देखत क्यों न अपूरब इन्दु में द्वै अरविन्द रहै गहि लाली।
त्यौं 'पद्माकर' कीर वधू इक मोती चुगै मनो है मतवाली ॥

ऊपर ते तम छाइ रह्यौ रवि की दबते न दबै खुलि ख्याली ।
यौ सुन बैन सखी के विचित्र भये चित्त चकित से बन-माली ॥ ५६८ ॥

इसमें इन्दु अरविन्द, कीर और तम सभी प्राकृतिक-उपमान परम्पराभुक्त हैं । कवि कविता में अधिकाधिक चमत्कार की योजना में व्यस्त होगया है, सौम्य और सुन्दर के प्रति उसका आकर्षण नहीं प्रतीत होता । शारीरिक-सुकुमारता में तो कवि ने केवल ऊहा का ही आश्रय लिया है, कवि की नायिका इतनी अधिक कोमलांगी है कि कवि को भय होता है :—

कोमल कमल के गुलाबन के दल के,
सु जात गड़ि पायनि बिछौना मखमल के ॥ १२ ॥
जगद्विनोद ।

इतनी अधिक सुकुमारी नायिका को तो रेशम के तारों का पुंज कहें तो सम्भवतः अत्युक्ति न होगी । देव ने भी नायिका के सौकुमार्य का इसी प्रकार का अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन किया है उनको भी यही भय होता है :—

दबि कै छलकि छबि रंग न उमडि जाय
गड़ि जनि जाय पाँय पाँखुरी पुहुप की ।।५११।।
सुख-सागर-तरंग ।

प्रेम-मार्ग जीवन का विचित्र मार्ग है । इस पथ पर अग्रसर होने के अनन्तर प्रत्यावर्तन असंभव है । यह वह सागर है जिसमें से प्रयत्नशील होकर भी मनुष्य निकल नहीं सकता "प्रेम पयोनिधि में धँसि के हाँस के कढ़िबो हँसी खेल नहीं" ।।३५३।। ज० वि० इसमें एक और विचित्रता है । प्रेमाधिक्य के साथ-साथ एकाधिपत्य की भावना भी अधिकाधिक होती जाती है । प्रेमी एकाधिकार चाहता है, इसके विपरीत लक्षण देखकर स्नेह सिक्त हृदय शोकाब्धि में निमग्न हो जाता है । प्रिय को अन्य मनुष्य में रत जानकर मुख विवर्ण हो जाता है । इस वैवर्ण्य का पद्माकर ने उत्प्रेक्षा द्वारा वर्णन किया है :—

सजन बिहूनी सेज पर, परे पेखि मुकतान ।
तबहि तिया को तन भयो, मनहु अधपक्यो पान ॥ १८४ ॥

अधपके पान की अप्रस्तुत-योजना में नायिका के उल्लास और तत्पश्चात क्षोभ के प्रभाव-स्वरूप दोनों अवस्थाओं का साधर्म्य प्रकट होता है ।

उद्दीपन

तत्कालीन कवियों की परम्परा और भूपतियों की प्रवृत्यानुसार पद्माकर ने उद्दीपन-विभाव का पूर्ण-विवेचन किया है । नायिकाओं

के गुण और अवस्था भेद के अनुसार उद्दीपन के संयोग और वियोग दोनों रूपों का परम्परागत पूर्ण रूपेण वर्णन है।

प्रेम सदैव ही अपने प्रिय का सामीप्य चाहता है, जीवन के समस्त कष्ट प्रिय के सान्निध्य में नगण्य हो जाते हैं, संसार के सकल ऐश्वर्य के उपकरण और विलास-सामग्री तृणवत तुच्छ प्रतीत होती है, पद्माकर की नायिका में यद्यपि पावन-प्रेम की झलक नहीं है किन्तु परकीया नायिका होने के कारण तीव्रता और आवेश अधिक हैं, विलास की उत्तेजना में नायिका को संताप-कारिणी प्राकृतिक वस्तुएँ भी आह्लादकारिणी प्रतीत होती हैं, उसकी यह दशा है :—

दिन के किवार खोलि कीनो अभिसार, पै
न जानि परी काहू कहाँ जाति चली छल सी।
कहै 'पद्माकर' न नाक री झंकोर जाहि
काँकरी पगनि लगै पंकज के दल सी।
कामद सो कानन कपूर ऐसी धूर लगै
पट सो पहार नदी लागत है नल सी।
घाम चाँदनी सो लगै चँद सो लगत रवि,
मग मखतूल सो मही हू मखमल सी॥ २३६। ज० वि०।

जिस सुकुमारी के पाँवों में गुलाब की पँखड़िया भी गड़ती थी। उसके लिये प्रिय से मिलने की प्रसन्नता में ककड़ियाँ भी गुलाब के समान अति कोमल हो जाती हैं।

अपने प्रिय का सान्निध्य सदा ही सुखद होता है किन्तु प्रकृति का मनोहर रूप संयोग-सुख को द्विगुणित कर देता है। शरद् की स्वच्छ एवं सुशीतल चन्द्रिका नेत्रों को आनन्द प्रदान करती है, हृदय हर्षित होता है और प्रकृति के उस सुखद-शीतल-वातावरण में प्रेमी-प्रेमिका के पारस्परिक-प्रेम में भी अभिवृद्धि होती है। शरद और वसन्त का काव्यकारों ने संयोग-सुख के उद्दीपन में बहुत महत्व माना है। रस-रास सहायक चन्द्र के प्रकाश में राधा-कृष्ण के उल्लास-मय रास की छटा देखिये :—

देखते बनत पै न कहत बनै री कछू,
विविध विलास यो हुलास यह ख्याल को।
चन्द छविरास चाँदनी को परकास, राधिका
को मंदहास रास-मंडल गोपाल को॥ ३८७॥ ज० वि०

वसन्त का सौम्य-रूप तो इतना अधिक प्रभावित करता है कि प्रेमी प्रेमिका सदैव संयोग के लिये लालायित रहते हैं। कोकिल की कूक उन्हें उत्तेजित करती है। मानों नायक से दूती इसी की ओर सकेत करती हुई कहती है—

ता ते मिलो मन भावती सों बलि ह्वाँते हहा बच मानि हमारो।
कोकिल की कल बानी सुनै पुन मान रहैगो न कान्ह तिहारो ॥२०६॥ ज० वि०

'रीति-काल के राज-प्रासाद विलास और वैभव के मूर्त-रूप थे, वहाँ उन कठोर प्राचीरों में प्रकृति के स्थूल-रूप के ही दर्शन हो पाते थे, उसके सहज और विशद वर्णन के लिये वह स्थान अनुपयुक्त था। ऐश्वर्य-प्रेमी भूपति अपने प्रासादों को सर्व प्रकार के सुख साधनों से पूर्ण रखते थे। वाटिका में अनेक प्रकार के पुष्प खिलते थे, जल की फुहारें उड़ती थीं और पालित पशु-पक्षी उन्हें आह्लादित करते थे। सुरा और सुन्दरी की धूम रहती थी। ऐसे सुखद-वातावरण में कृत्रिम प्रकृति उन्हें उत्तेजित करती थी—

सोरहै सिंगार के नेवेली की सहेलिन हूँ
कीन्हीं, केलि मन्दिर मे कलपित केरे हैं।
कहै 'पद्माकर' सु पास ही गुलाब पास,
खासे खसखान खुसबोइन की घेरे हैं।
त्यौं गुलाब नीरन सों हीरन के हौज भरे,
दंपति मिलाप हित आरती उजेरे हैं।
चौखी चाँदनी में बिछी चौसर चमेलिन के
चंदन की चौकी चारु चाँदी के चँगेरे हैं। २०३।

संयोग-सुख में ऋतुओं का बड़ा महत्व है। ऋतु-परिवर्तन के अनुसार होली, हिंडोले आदि प्रेमी-प्रेमिका को उत्तेजित करते हैं—

जा अनुराग की फाग लखौ जहँ रागती राग किसोर किसोरी।
त्यों 'पद्माकर' घाली घली फिरि लाल ही लाल गुलाल की होरी॥
जैसी की तैसी रही पिचको कर काहू न केसरि रग में बोरी।
गोरिन के रंग भीजिगो साँवरो साँवरे के रग भीज गइ गोरी॥

दोनों फाग खेलने के लिये तत्पर होते हैं, किन्तु अतिशय अनुराग के कारण दोनों में स्वेद-सात्विक होता है और पिचकारी के रंग को भूल कर दोनों अनुराग-रंग से सिक्त हो जाते हैं।

ईश्वरीय विधान अद्भुत है, किसी समय प्रकृति नव-वधू के समान पुष्पाभरणों से सुसज्जित होकर अपने कोमल स्पर्श से मानव को सुख प्रदान करती है और कभी अपने भयंकर रूप द्वारा मानव को त्रस्त कर देती है। सहज-भीरुता के कारण प्रायः काव्यकारने नारी को मेघ-गर्जन द्वारा भयभीत चित्रित किया है उस समय उसके लिये अकेले रहना अति दुष्कर हो जाता है। उसमें प्रिय के सामीप्य की भावना जाग्रत हो जाती है, सखी नायक से कहती है :—

धीर धरो किन मेरे गुविन्द वरीक मे जो या घटा घहरै है।
आपुहि तें तज मान तिया हरुवै हरुवै गरुवै लगि जैहै ॥१३१॥

संस्कृत कवियों ने इस भावना को नर और नारी दोनों में समान रूप से दिखाया है। कालिदास का मेघदूत तो पावस में यक्ष की व्याकुलता को लक्ष्य करके ही लिखा गया है तुलसी ने भी—

घन घमड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥

आदि शब्दों में सीता-विरह में मेघ-गर्जन द्वारा ही राम को भयभीत वर्णन किया है किन्तु हमारे रीतिकालीन कवियों की दृष्टि अधिकतः नायिका के ही हाव-भावों और मनोवेगों पर स्थिररही।

वियोगावस्था मे मन और शरीर दोनों ही अस्वस्थ हो जाते है, वियोगियों के हृदय में स्मृति की फाँस सदा कसकती रहती है। संसार के समस्त भोग-विलास निरर्थक हो जाते हैं। प्रकृति का सौम्य रूप जो संयोग में उल्लास और उत्साह का संचार कर देता था अब व्यथा की ओर बढ़ा देता है। प्रकृति का सुन्दर रूप भी वियोगावस्था में विरक्ति और क्षोभ का कारण हो जाता है—

चन्द उदौ लखि चन्दमुखी मुख मंद ह्वै पैठति मंदिर माँहीं।
। १४५। जगद् विनोद।

चन्द्रोदय संयोगावस्था की भाँति विरहिणी में उत्साह का संचार नहीं करता वरन् उसे और भी अधिक उदासीन बना देता है। वह चन्द्र की शीतल चन्द्रिका और उसकी षोडस कलाओं के प्रति आकर्षित न होकर व्यथित चित्त हो अन्दर बैठ जाती है। जब यह उदासीनता बढ़ जाती है तो उद्वेग की अवस्था में उसे प्रकृति में विपरीत लक्षण प्रतीत होने लगते हैं, चन्द्र दग्ध

करता है, मलय-समीर व्यग्र बना देता है। विरहिणी नायिका की बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। उसकी समझ में ही नहीं आता कि दो दिन में ही इतना परिवर्तन कैसे हो गया—

सुभ सीतल मंद सुगंध समीर कछू छल छंद से छ्वै गये हैं।
'पद्माकर' चाँदनी चन्द हू के कछू औरहि डौरन च्वै गये हैं॥
मनमोहन के बिछुरे इतही बनि हैं न अबै दिन द्वै गये हैं।
सखि वे हम वे तुम वेई बने पै कछू के कछू मन ह्वै गये हैं॥६१८॥

जगद्विनोद।

वियोगिनी नायिका की विरक्ति, उदासीनता और खिन्नता बढ़ती ही जाती है, उसकी इच्छा होती है कि उसका विरह दुःख समस्त चराचर प्रकृति में व्याप्त हो जावे, कभी अपने नवीन साज में वसन्त का आगमन न हो, किन्तु प्रकृति के कार्य नियमित रूप से चलते रहते हैं समयानुसार वसन्तागमन होता है और वियोगिनी क्षुब्ध होकर झुँझला पड़ती है :—

अब न धीर धारत बनत, सुरति बिसारी कंत।
पिक पापी पीकन लगे, अगरयो बधिक बसंत॥५००॥ज०वि०।

वसन्त उसे बधिक के समान प्रतीत होता है।

वर्षा ऋतु में वह गंभीर मेघ-गर्जन से अत्यन्त भयभीत होती है। उसकी विरह-व्यथा असह्य हो जाती है और वह अपना क्रोध और क्षोभ पावस के प्रति न प्रकट करके उसके स्रष्टा दैव को अपराधी मानती है, वह विधाता की भूल का संशोधन करती हुई कहती है—

काहू विरही की कही मान लेतौ जो पै दई
जग में दई तौ दयासागर कहाउतौ।
पावस बनायौ तौन विरह बनाउतौ
जो विरह बनायौ तौ न पावसै बनाउतौ॥३१४॥

दैव ने कितनी भूल की कि पावस और विरह दोनों का निर्माण किया।

प्रकृति के प्रभाव-स्वरूप फाग और हिंडोले आदि के प्रति भी वियोगिनी नायिका-उदासीन है। संयोगावस्था में जो नायिका पिचकारी के रंग को भूल कर आनन्दातिरेक से श्याम के रंग में भीग जाती थी वही फाग उसे अब विरहावस्था में विष के समान प्रतीत होती है। शारीरिक सुख प्रदान करने वाले समस्त शीतोपचार उसके लिये प्रतिकूल हो जाते हैं उसकी यह दशा हो जाती है :—

कौन करै होरी कोउ गोरी समुझावै कहा,
नागरी को राग लग्यौ विष-सो विराग-सो।
कहर सी केसरि कपूर लग्यो काल-सम,
गाज-सो गुलाब लग्यो अरगजा आग-सो ॥१८५॥

उद्वेग के आधिक्य में वियोगावस्था में मानव को उन्माद हो जाता है, वह अनेक अनर्गल बातें बकता रहता है। ज्ञान-शक्ति विलुप्त हो जाती है, चेतन-अचेतन का भेद भूल कर मानव प्रलाप करता फिरता है। पद्माकर की विरहिणी उन्माद की अवस्था में कभी तो,

ए रे मति मन्द चंद आवति न तोहि लाज,
ह्वै कै द्विजराज काज करत कसाई के ॥५३६॥ ज० वि०।

आदि शब्दों में क्षुब्ध होकर चन्द्र को बुरा-भला कहती है और कभी निराश होकर अत्यन्त दीनता पूर्वक प्रकृति से अपने प्रवासी प्रियतम के न लौटने का कारण पूछती है—

तजत गेह अरु गेहपति, मोहि न लगी विलम्ब।
हरि बिलब लाई सु कत, क्यों नहिं कहत कदम्ब ॥१६६॥ ज० वि०।

रीति काल की परम्परानुसार प्रकृति के आलम्बन रूप में चित्रण का इनके काव्य में भी नितात अभाव है। प्रकृति की नैसर्गिक-छटा का अवलोकन करने का इनको अवसर ही कहाँ मिला। राजप्रासादों के कृत्रिम-वैभव के उदाहरण तो राशि-राशि मिलेंगे—

अगर की धूप मृग मद की सुगध बर
बसन विसाल जाल अंग ढाँकियतु है।
कहै पद्माकर सुपौन को गौन जहाँ
ऐसे भौन उमंगि उमंगि छाकियतु हैं॥
भाग औ संयोग हित सुरत हिमन्त ही में
एते और सुखद सुहाय बाकियतु है।
तान की तरंग तरुनापन तरनि तेज
तेल, तूल, तरुनि तमोल ताकियतु है ॥३८८॥ ज० वि०।

इस प्रकार हेमन्त-ऋतु में उनका जीवन तेल, तूल, तरुणी और ताम्बूल के उपभोग में व्यस्त था, शीत से काँपते हुए किसान की ओर उनका ध्यान कहाँ था। ग्रीष्म में भी उनकी दृष्टि राजप्रासाद के विलास-वैभव तक ही परिमित

रह गई सूर्य की प्रचंडता का उनको आभास-मात्र भी नहीं प्राप्त हुआ क्योंकि प्रासादों में तो तब भी शीतलता ही थी—

फहरै फुहार नीर, नहर नदी सी बहै
छहरैं छबीन छाम छीटिन की छाती है ॥३८२॥
ज० वि० ।

उन्हें आदि-कवि वाल्मीकि और कवि श्रेष्ठ कालिदास की भाँति जीभ निकालते हुए आतपाकुल जीव-जन्तुओं और सूखे हुए सरोवरों को देखने का अवसर नहीं मिला उनके विलास-भवन में तो ज्येष्ठ की गर्मी में भी निर्मल-नीर की नहर प्रवाहित होती रहती थी।

कहीं कहीं इन्होंने प्रचलित परिपाटी के अनुसार वस्तु-परिगणन कराकर अर्थ-ग्रहण करा दिया है, वसन्त का चित्रण देखिए— .

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत हैं।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौन हू में,
पानन में पिक में पलासन पलग हैं॥
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसन्त हैं ॥२७८॥
जगद्विनोद ।

वसन्त का यह वर्णन अनुप्रास की छटा के कारण अत्यन्त श्रुति मधुर है। इस ऋतु के प्रति कवि का उत्साह भी प्रकट होता है, किन्तु प्रत्यक्षानुभव के अभाव के कारण वर्णन में स्वाभाविकता नहीं है। कूल, केलि, कछार, कुंज आदि कवि ने परम्परा के द्वारा प्राप्त किये हैं स्वानुभव द्वारा नहीं, कवि ने प्रकृति के प्रति अपने उत्साह को सीमित क्षेत्र में विकीर्ण कर दिया है इस वर्णन में यद्यपि वर्णन बसन्त का है तथापि कवि का विलास-प्रेम और प्रकृति का उद्दीपक रूप स्पष्टतः प्रकट होरहा है।

अनुशयाना नायिका के संकेत-स्थल के वर्णन में भी कवि ने प्रकृति का यथातथ्य वर्णन किया है।

चालौ सुनि चन्दमुखी चित में सुचैन करि
तित वन बागनि घनेरे अलि घूम रहे।

कहै पदमाकर मयूर मंजु नाचत हैं,
चाह सों चकोरिन चकोर चूम-चूम रहे।
कदम, अनार, आम, अगर, असोक थोक,
लतन समेत लोने लोने लग झूम रहे ॥११६॥

सहेट का यह वर्णन भी परम्पराभुक्त ही है।

सुरा और सुन्दरी, ताम्बूल और तरुणी के वर्णन में दत्त-चित रहने वाले, अपने विलासी आश्रयदाताओं से साधुवाद पाने वाले काव्यकार के ग्रन्थ में परम तत्व के दर्शन असम्भव ही हैं फिर भी कहीं कहीं सृष्टि नियता का इन्हें ध्यान आगया है परमेश्वर को सब प्राणियों का पालक मानते हैं।

बनचर वन चर गगनचर, अजगर नगर निकाय।
पदमाकर तिन सबन की खबर लेति रघुराय ॥४४३॥

प्रकृति में उपदेश और मानवीकरण का भी इन्होंने अनुभव नहीं किया प्रकृति के प्रति एकात्म्य अथवा मानवीकरण की भावना उद्दीपन रूप के ही अन्तर्गत उन्माद की अवस्था में लक्षित होती है।

बेनी

बेनी प्रवीन रीति-काल के प्रमुख कवि हुए हैं; इन्होंने रीति काल की परम्परानुसार नायक-नायिकाओं के गुण और अवस्थानुसार अनेक भेदों का विवेचन करते हुए काव्य रचना की है। नायक-नायिका का संयोग कराने में सहायक, सखा और दूती के भेदों का भी दिग्दर्शन कराया है। रस और उनके संचारी तथा व्यभिचारी भावों का पूर्ण विवेचन है, रसों के अन्तर्गत शृंगार-रस की विस्तृत व्याख्या की है। शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का विशद वर्णन है। नायिका-भेद और रस-निरूपण के आलम्बन विभाव में मानव की प्रधानता रहने के कारण रीतिकालीन परम्परानुसार इनके काव्य में मानव से सम्बन्धित प्रकृति का ही प्रयोग है। प्रकृति का उपयोग या तो मानव के सौन्दर्य के अभिव्यक्तीकरण के लिये किया गया है अथवा उसकी भावनाओं को अतिरंजित करने के लिये, अर्थात अलंकार और उद्दीपन-रूप में ही इनके काव्य में प्रकृति दृष्टिगोचर होती है। प्रथम हम प्रकृति के अलंकार रूप में प्रयोग का अवलोकन करेंगे।

अलंकार

नायक अथवा नायिका के सुन्दर अंगों से समानता रखने वाले अलंकारों में बेनी प्रवीन ने मुख्यतः उपमा, उत्प्रेक्षा और प्रतीप अलंकारों का प्रयोग किया है, उपमालंकार में अधिकांशतः समस्त उपमान परम्परायुक्त ही हैं,

> पानिप अंग भो भौंर सी नाभि उमंग तरंग भई त्रिबली है।
> बेनी प्रवीन सेवार से बार मराल मनोरम चाल चली है;
> है उपमा न समान समान, सराहि रही नवलाहि अली है।
> आइ गये ब्रज चंद तहाँ, कुंभिलाइ गयौ मुख कौल कली है ॥२४॥
>
> बेनी नवरस तरंग।

नाभि, त्रिवली और चाल के समस्त उपमान रूढ़ि- मुक्त हैं। कवि ने नवीन उद्भावना नहीं की है। उन्हे नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करना था, अतः कवि क्रमागत उपमानों का नायिका के अंगों के साथ संयोजन कर दिया। अंतिम दोनों पंक्तियों में भी यद्यपि कमल और चन्द्र दोनों सुन्दर मुख के उपमान हैं तथापि उनकी समानता नायक-नायिका में पृथक-पृथक दिखा-

कर एक का दूसरे से प्रभावित होना दिखाया गया है। नायिका रति-भीता है। नायक के चन्द्र-मुख को देखकर उसका कमल-मुख कुम्हला जाता है। इस प्रकार के प्रयोग से प्रचलित उपमानों में नवीनता सी प्रतिभासित होती है। मतिराम ने भी इसको इसी भाँति अभिव्यक्त किया है—

लालन को इन्दु सों बदन अवलोकि
अरविंद सों बदन कुम्हिलाय गयो बाल को ॥३३१॥
ललिता-ललाम।

कमल और चन्द्र उपमानों में कवि ने रूप और गुण तथा प्रभाव का सादृश्य व्यक्त किया है।

अब रूप और क्रिया का सादृश्य देखिये,

देही की दिपति न छिपति छिपे जात गात बिचारे बनचारिनको भेटी है।
दव कैसी धधरि धधकि धाई कुंजन में मानो धूम पुंजन में लपट लपेटी है।
न० र० त०।

नायिका कृष्णाभिसारिका है; काले वस्त्रों में लिपटी हुई होने पर भी उसके शरीर की दीप्ति नहीं छिपती, वह धूम-समूह में लिपटी हुई अग्नि-शिखा के समान प्रतीत होती है। इसमें गुण और रूप का सादृश्य है; किन्तु कवि केवल इतना ही साम्य दिखाकर चुप नहीं रह जाता वह अग्नि शिखा और नायिका में क्रिया साम्य भी प्रकट करता है, अभिसारिका नायिका हर्षोन्मत्त होकर शीघ्र-गति से कुंजों में घुसती चली जा रही है। उस समय वह ऐसी प्रकट होती है मानो दावाग्नि बढ़ती चली जा रही है।

नायिका स्नान से निवृत्त होकर आई है उसने अपनी चोटी खोली केश बिखर गये, उसका चन्द्र सा मुख कृष्ण केश जाल में दीप्तिमान हो उठा, कवि मुग्ध हो गया और उसने परम्परायुक्त उपमानों की योजना कर डाली,

छोरि के प्रवीन बेनी फटकारे कच,
कोर सटकारे चटकारे ऐसी भाति है।
मंडि मुख मंडल घुमड़ि नभ-मंडल तें,
छाई विधु मंडल ज्यों तम की जमाति है ॥२४॥ न० र० त०।

नायिका का मुख ऐसा प्रतीत हुआ मानो चन्द्र-मंडल पर श्याम मेघ घिर आये हों। कृष्ण मेघों के मध्य में आलोकित चन्द्र की शोभा किसका मन नहीं मुग्ध करती है।

मुग्धा आगमिष्यतपतिका नायिका अपने प्रियतम के आगमन की सूचना पाकर गुड़िया आदि का खेल भूलकर उमग और स्फूर्ति से भर उठती है। उसके अग अंग में रोमाच और स्फूर्ति का सचार हो जाता है, उसकी सरलता विलुप्त हो जाती है और चंचलता आ जाती है। यह देखकर सखी को अत्यन्त आश्चर्य होता है वह नायिका की दशा का वर्णन करती है,

> अग अग रग रग असन प्रवीन बेनी,
> सग संग मानो रितुराजत बसन्त की।
> एक ही दिना में जल धर सी उमड़ि आई,
> जोबन की उमग अवाई सुन कन्त की ॥१८२॥

वर्षा ऋतु में धूप निकलते निकलते श्याम मेघ घिर जाते हैं इसका नायिका के यौवनागम से सादृश्य अत्यन्त ही स्वाभाविक है। अज्ञात-यौवना का बाल-चापल्य यकायक यौवन की उमंग में परिवर्तित हो जाता है।

नायिका के अत्यधिक सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिये इन्होंने अतिशयोक्ति अलकार का उपयोग किया है। इनकी नायिका इतनी अधिक सुन्दरी है कि प्रकृति स्वयं उसकी रूप-छटा से प्रभावित होती है।

> तन की सुबासु बासु बहति समीर तहाँ,
> अलिन की भीर न अवलि छबि छवै रही।
> नये नये नीके लगैं किसलै लगन आली,
> पगन की लाली द्रुमजालिन सम्वै रही।
> सुधा सुख सीची मुख चद की मरीचिन तें,
> बीथिन प्रवीन बेनी चादनी सी ह्वै रही।
> उमंगे अनग मन कत को मिलन जाति
> आगे आगे बन में बसन्त ऋतु ह्वै रही ॥१७४॥

अभिसारिका नायिका सकेत स्थल को जा रही है, उसके शरीर की सुंगधि, मधुपों की भीड़, पद-तल की लालिमा और चन्द्रमुख की प्रभा से प्रकृति के वृक्ष तथा पल्लव तदगत सुरभि एव रूप प्राप्त करते हैं। चन्द्रमुख की दीप्ति से मार्ग में चन्द्रिका सी खिल जाती है और उसके आगे आगे वसन्त ऋतु सी होती जाती है। देव ने भी नायिका के सौन्दर्य का तद्गुण अलंकार द्वारा इसी प्रकार का वर्णन किया है। उनकी नायिका जल में

जहाँ जहाँ तैरती है वहाँ वहाँ उसकी वेणी और पद-लालिमा से त्रिवेणी का सी छवि होती जाती है—

पैरे जहांई जहाँ वर बाल तहाँ तहाँ ताल में होति त्रिवेनी ॥१३॥

मध्या उत्कंठिता नायिका के तो शरीर में ही वह पावस के समस्त उपकरणों की योजना कर देते हैं—

भृकुटी धन बेसरि और मनो मनि मानिक इंद्र बधू जितु है।
दुति दामिनि कोर हरी बन बेलि घटानन घूंघट सो हितु है।
उमगी रस बेनी प्रवीन रसाल, भयो जब चातक सो चितु है।
हित रावरे नील किसोर लला अबला भई पावस की ऋतु है।

पति परदेश जा रहा है, मध्या-नायिका अपने शरीर में वर्षा ऋतु के लक्षणों की योजना कर वर्षा ऋतु का आगमन प्रकट करके उसको विदेश-गमनसे रोकना चाहती है। कवि ने नायिका के शरीर के विभिन्न अंगों और आभूषणों की संश्लिष्ट योजना द्वारा वर्षा का मनोरम दृश्य उपस्थित कर दिया है। देव का चित्रण भी इसी प्रकार का है —

नील पट तन पै घटान सी घुमाय राखो,
दंत की चमक सो छटा सी बिचरति हौं।
हीरन की किरनै लगाय राखों जुगनू सी
कोकिला पपीहा प्रिय बाणी सो भरति हौं॥
कीच असुवान की मचाऊँ कवि देव कहै,
पीतम विदेशी को सिधारिबो हरति हौं।
इन्द्र कैसो धनु साजि बेसरि कसति आजु,
रहुरे बसंत तोहि पावस करति हौं॥

देव की नायिका की बसन्त के प्रति ललकार में स्वाभाविकता और सहृदयता अधिक है।

कभी-कभी कवि नायिका की रूप छटा से इतना अधिक प्रभावित होता है कि उसको नायिका के शरीर के समस्त उपमान तुच्छ प्रतीत होते हैं, नायिका उसे अद्वितीय रूपवती प्रतीत होती है और उसे यही कहना पड़ता है—

शरद निशा की सरि, क्यों बसत बन जाल।
कहाँ चटक यह चाँदनी, कहाँ मालती माल ॥२८२॥

उद्दीपन

उद्दीपन में बेनी प्रवीन ने वियोग-शृंगार का अधिक वर्णन किया है, सयोग में अन्य कवियों की अपेक्षा इन्होंने प्रकृति का कम उपयोग किया है। श्रावण मास को रीति परम्परानुसार इन्होंने उद्दीप्त करने वाला माना है।

"ऊधो मन भावन को सहज सुभावन को,
सावन सोहावन को आवन सुनाइयो ॥२७८॥ न० र० त०।

उन्हें पूर्ण आशा है कि श्याम श्रावण-मास का आगमन सुनकर उसकी हरिच्छटा के स्मरण से इतने अधिक उत्तेजित हो उठेंगे कि वह व्रज अवश्य लौट जावेंगे। श्रावण में जल की फुहारें, श्याम-घटायें और पुष्प-सुरभि प्रेमी-प्रेमिका को उत्तेजित करते हैं, दोनों एक दूसरे की ओर कटाक्ष आदि हावों से प्रेम प्रदर्शित करते हैं और उल्लास का अनुभव करते हैं —

घहराती कछूक घटा घन की, थहराती पुहूपन वेलि पुही।
झहराती समीर झकोर महा, महराती समूह सुगध उही।
ठहराती गुविंद सो गोप सुता, सिर ओढनिया फहराती रही।
ठहराती मरू करि नैननि में, परि अंगन में छहराती फुही ॥२८॥

सयोग में सुख दशा दोनों के हृदय में स्फूर्ति और उत्साह का संचार कर देती है, नायिका प्रसन्न होकर हिंडोले पर चढ जाती है।

'चित चायसो चारु हिंडोरे चढी, सुख सावन को तबहीं सचरा'

और उस समय झूलती हुई नायिका का आंचल नायक को ऐसा प्रतीत होता है, "धुरा फहरात मनो अचरा"

इसी प्रकार बसन्त में प्रकृति के मनोरम वातावरण के प्रभाव स्वरूप मानव का हृदय तरंगति हो उठता है, ऐन्द्रिक सुख के लिये मनुष्य लालायित हो जाता है अबीर, केसर और गुलाल की धूम मच जाती है।

खेलन होरी गये बनि गोरी के,
फैलि रहै चहुं चाह चहूं दिसि।
तान तरंगन रगन में सखि,
रंगि रहे सब बासर औ निसि ॥२२५॥

नायक और नायिका होली खेलते हैं, उस सुखद समय में, उन्हें दिन और रात तथा समस्त प्रकृति अनुराग रंग में अनुरजित प्रतीत होती है।

किन्तु वियोग में विषम परिस्थित होने के कारण नायिका को प्रत्येक ऋतु दुःखदायिनी प्रतीत होती है।

> बैरु करि ग्रीषम उधारी धूरि भूरि फेरि,
> पावक सी पावस लगाई दीन्हो झरि है।
> सरद मयंक कर करद चलाई लाई,
> बेदरद हेमत हू मारिबे की अरि है॥
> आजु लौं बचाई सो प्रवीन बेनी औधिआस,
> आइ सोऊ सिसिर नवाई धूम धरि है।
> आइ है जु कंत दुख भूलि है अनंत अब,
> नतरु अली री या बसंत अन्त करि है॥१२३॥

और सब ऋतुओं में तो नायिका अवधि की आशा से किसी प्रकार जीवित रह जाती है किन्तु बसन्त में उसको जीवन की आशा नहीं रहती। प्रकृति के सौम्य और शुभ रूप को देखने का उसमें साहस अवशिष्ट नहीं रहता।

वर्षा-ऋतु को भी रीति-काव्यकारों ने वियोगियों के लिए अत्यन्त कष्टदायिनी वर्णन किया है। वर्षागम पर अत्यन्त खिन्न और क्षुब्ध होकर वह यही कहती है।

> जारी हौं बसन्त की तैयारी भारी ग्रीषम की,
> पावस कलंक शीश तेरे चढ़ि बैठेगो॥३८६॥

विरह की वेदना अधिक हो जाने पर नायिका को उन्माद हो जाता है शरीर की सुधि-बुधि खो जाती है। प्रिय-वियोग में प्रकृति के सकल मनोहारी दृश्य और शारीरिक सुख के साधन उसे विपरीत प्रभाव वाले प्रतीत होते हैं। पुष्पों का स्पर्श दग्ध करता है। सुरभित समीर और शीतोपचार उसे दाहक प्रतीत होती हैं—

> चन्दन के नीर चीर सुरभि समीर तीर,
> जारन चलति तनु चाँदनी चँबेली में॥४६२॥

बिहारी की नायिका भी उन्माद की उसी अवस्था में मृत्यु की इच्छा से कमल चन्द्र आदि के सम्मुख घूमती फिरी थी।

> मरिबे को साहस ककै बढ़े विरह की पीर
> दौरति है समुहै ससी सरसिज, सुरभि समीर॥ ४८१॥
> । बिहारी बोधिनी।

उन्माद की इस अवस्था में विरह विदग्ध-मानव ज्ञान-शून्य सा हो जाता है, उसे प्रकृति के पशु पक्षी उससे बैर करते से प्रतीत होते हैं, उनके उल्लास से वह क्षुब्ध होकर प्रलाप करने लगता है।

येती कहैं किन जाइ कोउ अब, मोसों कछूक न चूक परी है।
बैर तिहारेई मेरे हिये यहि, कोकिल कूक कै हूक करी है॥ ४६० ॥

इसी प्रकार की भावना से प्रेरित होकर कृष्ण वियोग से विकल सूर की गोपियों ने कहा था:—

"माई मोराऊ बैर परै।"

प्रिय के दूर होने पर प्राचीन-चित्र नेत्रों के सम्मुख चित्रित होते रहते हैं अतीत की साधारण बातों में भी अपनी भूल लक्षित होती है और प्रत्येक वस्तु जिसमें थोड़ा सा भी साम्य प्रतीत होता है अपने प्रिय के ही समान प्रतीत होती है, शशि में अपने प्रिय की रूप-सुधा का सादृश्य देख कर वह कभी तो वेनी की विरहिणी।नायिका अपनी दीनता प्रकट करती है और कभी अपने प्रिय की मधुर स्मृति से प्रफुल्लित हो उठती है।

करि मोसो विरोध न प्यारे बिना, दधि दान देहौं विधि कै बहुधा।
धन धन्य शसि सुख रासि जसी, लखी मोहन के मुख की सी सुधा॥
॥३३३॥ न० र० न०।

वह प्रिया के मुख की सी सरलता का चन्द्र में अनुभव करके उसकी सराहना करती है।

प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन अन्य शृंगारी कवियों की भाँति इनके काव्य में भी नहीं है। इनकी दृष्टि में प्रकृति का अपना अस्तित्व नहीं था। प्रकृति का रूप मानव की मनोदशा के अनुरूप ही इन्हें सुन्दर और असुन्दर प्रतीत होता था।

सुन्दरियों के विभ्रम-विलास और उनके नख-शिख का वर्णन तथा भुआनुगत भेदों की छान बीन में व्यस्त रहने वाले कवि का परमतत्व के दर्शन से निरपेक्ष रहना आश्चर्य की बात नहीं। इनकी दृष्टि नायक-नायिकाओं की क्रियाओं प्रकृति-ज्ञान आश्रय-पतियों के राज-प्रासादों के वैभव तक सीमित थी। न तो यह प्रकृति में उपदेश अथवा नीति का सन्देश पा सके और न संवेदनशीलता का प्रकाशन करते हुए एकात्म्य की स्थापना कर सके।

सेनापति, बिहारी, मतिराम, देव, पद्माकर आदि कवियो की रचना ॥ -परम्परा-बद्ध है सबने नायिका-निरूपण और अलङ्कार-विवेचन के

हेतु काव्य-रचना की किन्तु उस काल में कुछ ऐसे भी काव्यकार हुए जो रीति-परम्परा से सर्वथा विमुक्त रहे हैं और जिन्होंने स्वतन्त्रतापूर्वक काव्य-रचना की इनमें घनानन्द, बोधा, ठाकुर और आलम आदि की रचनाएं उल्लेखनीय हैं।

घनानन्द रीतिमुक्त-काव्यकारों मे सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं, इनकी कविता मे सरसता और मधुरता का सुन्दर समावेश है। इन्होंने यद्यपि उद्दीपन और अलङ्कार रूप मे ही अधिकतः प्रकृति का उपयोग किया तथापि उसमें कवि का सूक्ष्म निरीक्षण और प्रकृति-प्रेम प्रतिभासित होता है। इन्होंने प्रकृति के साथ एकात्म्य का अनुभव करते हुए प्रकृति और मानव के स्थूल सौन्दर्य के प्रति विशेषतया आकृष्ट न होकर आन्तरिक सौन्दर्य का निरीक्षण किया और प्रकृति में मानव-भावनाओं का भी आरोप किया। इन्होंने अपनी प्रेमिका 'सुजान' के सुन्दर रूप का सरस वर्णन किया है यह अपनी प्रेयसी सुजान की प्रत्येक क्रिया पर मुग्ध हुए हैं, उसका प्रत्येक कार्य इनके हृदय मे अभिनव-प्रेम का सचार कर देता है, उसके मनोहारी रूप का कभी यह सदेह द्वारा, कभी उपमा द्वारा और कभी उत्प्रेक्षा द्वारा वर्णन करते हैं। अपनी प्रेमिका के प्रति इनका अतिशय प्रेम और सहज आकर्षण है। इनकी प्रेमिका राज-प्रासाद की नायिका नहीं है, वह लज्जाशीला नारी है उसका रूप घूंघट में छिपाने से भी नहीं छिपता, प्रेमी मुग्ध हो जाता है,

घूंघट बीच मरीचिन की रुचि कोटिक चंदनि को मद चूरति।
लाजन सौं लिपटी घन आनंद साजन के हिय में हित पूरति॥
। घन आनन्द, पृष्ठ १०६।

इसमें यद्यपि प्रतीप अलङ्कार में प्रचलित उपमानो का ही वर्णन है किन्तु फिर भी सौन्दर्य वर्णन परम्परा वश किया हुआ नहीं है। कवि ने उसके सौंदर्य केप्रभाव का भी वर्णन कर दिया है। लाज से लिपटी हुई नारी का रूप कवि के हृदय मे अनुराग की सृष्टि कर देता है।

होली के दिन अपनी मुट्ठी में रोली भरकर प्रेमिका अपनी भुजा ऊपर उठाती है घनानन्द उसकी इस क्रिया पर मुग्ध हो जाते हैं और उस समय के शोभन रूप का प्राकृतिक उपमानों द्वारा वर्णन करते हैं:—

रोरी भरी मुठी भुज उठी सोहै मनो पराग
में रली भली कली कोकनद की।
। घन आनन्द, पृष्ठ १०७।

प्रेमिका की बन्द मुट्ठी में कवि ने कमल की कली की सम्भावना की है लाल गुलाल पराग है कवि ने परम्परागत उपमान कमल को अपनी प्रतिभा और सौन्दर्यानुभूति द्वारा कमल कली में परिणत कर दिया है। ठाकुर ने भी उत्प्रेक्षालङ्कार के प्रयोग से नारी के सुन्दर मुख की व्यञ्जना की है किन्तु उसमें घनानन्द की भाँति प्रत्यक्ष निरीक्षण नहीं है विद्यापति और देव के सौन्दर्य वर्णन का स्पष्ट प्रभाव है। दो विरोधी उपमानों का समावेश परम्परागत प्रकृति के अनुसार है प्रिय के हाथों पर रखे हुए नायिका के मुख का वर्णन देखिये—

पानन में तिय आनन यों दिये चन्द चढ़ो मनौ कञ्ज की नाल की।

। ठाकुर ठसक, पृष्ठ १२।

चन्द्र और कमल-नाल दोनों उपमान रूढ़िभुक्त हैं। कवि का सौन्दर्य के प्रति विशेष आकर्षण नहीं है घनानन्द ने भी दो विषम वस्तुओं का एक ही स्थान में समावेश किया है,

स्याम घटा लपटी थिर बीच किसोहै अमावस अंक उज्यारी।

धूम के पुञ्ज में ज्वाल की माल सी पै दृग सीतलता सुखकारी॥

। घनानंद, पृष्ठ १०६।

श्याम वर्ण सारी में गौरांगी नायिका कवि को मुग्ध कर देती है कवि सौन्दर्य प्रभाव से हक्का-बक्का सा हो जाता है। वह कोई भी एक उपमान उसकी छटा की अभिव्यक्ति के लिये निश्चित नहीं कर पाता। कवि संदेह में पड़ जाता है और अनेकों उपमानों का प्रयोग कर देता है। कभी वह श्याम घटाओं में बिजली के समान, कभी अमावस्या की अंक में चन्द्रिका की भाँति और कभी धूम पुंज में ज्वाल-जाल के समान प्रतीत होती है। संदेह के साथ असगति अलकार का भी इन्होंने प्रयोग किया है इनकी नायिका क्षणिक-आभा प्रकट करने वाली बिजली के समान नहीं है अपितु थिर (स्थिर) बिजली के समान है, अमावस्या में चंद्रिका का समावेश असम्भव है किन्तु नायिका के रूप में संभव होगया है और आश्चर्य प्रकट होगया है। ज्वाल जाल के समान दीप्ति वाली वह नायिका मनुष्य को जलाती नहीं है वरन शीतलता प्रदान करती है। घनानद का इस प्रकार का वर्णन रीति परम्परा बद्ध नहीं है, कवि का निजी है। श्याम चुंदरी में लिपटी हुई आभूषणों से सुसज्जित नायिका को देखकर 'मुबारक' का मन मयूर भी

इसी भाँति आल्हाद पूर्ण हो जाता है, वह उपमान मे मानवीकरण का आरोप करके अत्यन्त आकर्षक वर्णन करते हैं,

चूनरी विचित्र स्याम सजि के मुबारक जू,
डाँकि नख सिखतें निपट सकुचाति है।
चन्द्र में लपेटि समेटि के नखत मानो,
दिन को प्रणाम किये रात चलि जाति है ॥

। कविता कौमुदी पहला भाग पृष्ठ २२६ ।

मुबारक कवि का यह सौन्दर्य-चित्रण एक अनुपम उदाहरण है।

घनानन्द के काव्य में सौन्दर्य वर्णन मे अधिकतः उपमा, उत्प्रेक्षा और प्रतीप अलंकार का प्रयोग है। रूपक अलंकार मे इनके प्रयोग परम्परावद्ध हैं। उनमें कवि का उत्साह नहीं प्रदर्शित होता। नायिका में बसन्त का आरोप करते हुए वह वर्णन करते हैं—

बैसकी निकाई सोई रितु सुखदाई तामे,
तरुनाई उलहत मदन मे मंत है।
अग अंग रग भरे दल फूल फूल राजे,
सौरभ सरस मधुराई को न अन्त है ॥
मोहन मधुप क्यों न लूट है सुभाय भट्,
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवन्त है।
सोभित सुजान घन आनन्द सुहाग सींच्यो,
तेरे तन बन सदा बसत बसंत है।

। घन आनद पृष्ठ १०८ ।

रूपक के इस प्रयोग में कवि का सौन्दर्य के प्रति आकर्षण नहीं है। सेनापति और पद्माकर आदि रीतिकालीन काव्यकारो की भाँति रुढिवद्ध चित्रण है। जब वह रूप से अत्यधिक प्रभावित होते हैं, तब तो उन्हे किसी उपमान की अनिवार्यता ही प्रतीत नहीं होती वह रूप की अनुभूति को इस प्रकार व्यक्त करते हैं :—

अंग अग तरग उठे दुति की परि हैं मनौ रूप अबै धर च्वै।

ठाकुर की नायिका तो समस्त प्राकृतिक उपमानो का सार तत्व हो जाती है। विधाता प्रकृति की सुन्दरतम वस्तुओं का सार ग्रहण कर नायिका का निर्माण करता है।

कोमलता कंज तें गुलाब तें सुगन्ध लै के,
चन्द्र तें प्रकाश कियो उदित उजेरो है।
रूप रति आनन तें चातुरी सुजानन ते,
नीर लै निवानन तें कौतुक निबेरो है।
कचन को रंग लै सवाद लै सुधा कौ,
वसुधा कौ सुख लूट कै बनायौ मुख तेरो है।

। ठाकुर ठसक ।

बोधा प्रेमोपासक थे। उनकी काव्य रचना में प्रेम मर्मज्ञता प्रकट होती है किन्तु प्रकृति के प्रति उनका अनुराग नहीं प्रकाशित होता। उनके काव्य का मुख्य विषय प्रेम है, प्रकृति नहीं। वह प्रेम के लिये कहते हैं

'अति छीन मृणाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दे आवनो है'

प्रेम के पंथ को यद्यपि कवि ने मृणाल-सूत्र से भी अधिक सूक्ष्म वर्णन किया है तथापि प्रेम की अगमता और दृढ़ता का इन्होंने अनुभव किया है। प्रेम के क्षीण सूत्र से मदरूपी मदोन्मत हाथी भी बँध जाता है, इसका "रस-निधि" रूप द्वारा वर्णन करते हैं,

मन गयंद छबि मद छके तोर जजीरन जात।
हित के झीने तार सों, सहजे ही बँधि जात ॥ रतन हजारा ॥

रीति-परम्परा से निर्मुक्त घनानंद, ठाकुर आदि काव्यकारों ने उद्दीपन-रूप में प्रकृति का यथेष्ट चित्रण किया है। घनानंद का विरह-निवेदन अत्यन्त सरस है। उसमें यथार्थता है और भावुक हृदय के वेदनापूर्ण उद्गार हैं। इन्होंने परम्परानुसार षटऋतु अथवा बारहमासे की रचना नहीं की है। ठाकुर ने ऋतु-वर्णन में बसन्त और पावस का वर्णन करते हुए होली, दशहरा, रक्षाबन्धन, अखती आदि त्यौहारों का भी दिग्दर्शन कराया है।

बसंत और पावस उद्दीपक ऋतु हैं। बसंत में फाग और पावस में हिंडोले का वर्णन संयोग सुख और वियोग-दुःख की अभिवृद्धि का हेतु प्रदर्शित करते हुए प्रायः सभी कवियों ने किया है। बसंत में फाग प्रेमी-प्रेमिका के हृदय में अभिनव-प्रेम का संचार कर देता है, पावस में पृथ्वी का हरा-भरा यौवन दोनों को उद्दीप्त करता है, विरहीजनों के लिए ये दोनों ऋतुएँ अत्यधिक कष्ट-प्रदायनी हो जाती हैं। प्रकृति में विरही को कभी तो हृदय का साम्य दृष्टि-

गोचर होता है और कभी वैपरीत्य। होलिका दहन में वह अपने विरह-दग्ध-हृदय का सादृश्य देखता है और धरित्री का शृंगार तथा पक्षियों का कलरव, ईर्ष्या की उद्भावना करता है। घनानंद विरह व्यथित हृदय की वेदना का निम्न पंक्तियों में निर्देश करते हैं:—

> कारी कूर कोकिल कहाँ को बैर काढति री,
> कूकि कूकि जबही करेजो किन कोरि लै।
> पड़ पर पापी के कलापी निसि द्योस ज्योंही,
> चातक घातक त्यों ही तुहूँ कान फोरि लै॥
> जौ लों आवन विनोद वर गामन पै,
> तौ लौं दै डरारे जजमारे घन घोरि लै॥
> । घन आनन्द पृष्ठ १२१ ।

विरही की दशा अत्यन्त दीन-हीन हो जाती है। प्रिय के ध्यान में ही प्रतिपल व्यतीत होता है, जीवन का आनंद अर्थशून्य हो जाता है, रात्रि में भी निद्रा नहीं आती। प्रिय की चिंता में ही समस्त रात्रि व्यतीत हो जाती है 'बीति तभी तारनि कतारनि गनत ही' प्रिय की स्मृति के अत्यन्त तीव्र हो जाने पर शारीरिक उपभोग की समस्त वस्तुएं शत्रु-सम प्रतीत होती हैं। चन्दन दाहक और जी का ग्राहक हो जाता है और अबीर-गुलाल की धूल के प्रति तो इतनी अधिक ईर्ष्या तथा शोक होता है कि हृदय का धैर्य ही छूट जाता है। जब सब ऋतुओं में प्रिय की प्रतीक्षा करते करते नेत्र थकित हो जाते हैं तो हृदय निराश हो जाता है किन्तु उद्दीपक ऋतु वर्षा के आने पर एक बार पुनः आशा जाग्रत होती है। जीवन के तारल्य का प्रादुर्भाव होता है, परन्तु उस समय भी प्रियतम का संयोग न होने पर हृदय क्षुब्ध हो जाता है विरही के हृदय में यही विचार उठता है कि संभवतः प्रिया के प्रदेश में प्रकृति का उद्दीपक रूप प्रकट नहीं होता.

> कैधों मोर सोर तजि गयेरी अनत भाजि,
> कैधों उन दादुर न बोलत है ये दई।
> कैधों पिक चातक बधिक काहू मारि डारे
> कैधों बक पाँति उत अंत गति ह्वै गई॥
> ।आलम, कविता कौमुदी भाग १ पृ० ३६६।

बसंत के आगमन पर विरही को संदेश में भी प्रकृति के उद्दीपक तत्वों का ही उल्लेख करना पड़ता है।

मौरन लगे हैं आम द्रुमन पलाश पुनि,
दहत बयार आठो जाम निरदयी है।
। ठाकुर-ठसक पृ० ३२०।

विरह की अत्यधिक तीव्र वेदना में प्रिय के संयोग के समस्त विहार-स्थल हृदय में प्रिय की स्मृति को सचेत कर देते हैं। विरहिणी विकल हो जाती है पुराने चिन्ह पीड़ा की सृष्टि करते हैं। व्यथा, नैराश्य और परिस्थिति का वैषम्य उसको व्यग्र बना देते हैं, वियोगिनी कहती है:—

जा थल कीन्हे विहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यौ करे।
+ + + +
आलम जौन सो कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यौ करे॥
। आलम, कविता कौमुदी भाग १।

अतीत के सुख की स्मृति में अब वह क्रीड़ास्थल कुंजो मे शीश धुनती है।

रीति मुक्त काव्यकारों में आलम, बोधा, ठाकुर आदि के काव्य में प्रकृति और पुरुष का सबन्ध नहीं लक्षित होता 'ठाकुर-ठसक' में ठाकुर ने आरम्भ में गणेश, राम, कृष्ण की वदना की है इससे उनकी सगुणोपासना प्रदर्शित होती है। वन्दना में, केवल भगवान के विभिन्न अवतार और उनकी महिमा का वर्णन है घनानंद भी भगवान के सगुण रूप के उपासक थे। इन्होंने कृष्ण का गुणगान किया है कृष्ण प्रेमी घनानन्द उनके दर्शन के लिये आतुर हो जाते हैं। वह यह प्रश्न करके 'अन्तर हो किधों अन्त रहो' अत्यन्त उद्विग्न हो जाते हैं और पूछते हैं:—

"पाऊँ कहाँ हरिराय तुम्हें धरनी में धसौं कै अकासहिं चीरों"

उनको कहीं भगवान के सगुण रूप के दर्शन नहीं होते। उत्कंठा और विकलता बढ़ती ही जाती है। भगवान के अदृश्य रहने का कारण समझ में नहीं आता अत में उन्हें उपास्य के अनुपमेय ऐश्वर्य और अपने दैन्य का ध्यान आता है वह कहते हैं:—

मोहि तुम यक तुम्हैं मो सम अनेक आहि
कहा कछु चंदहि चकोरन की कमी है। घन आनद।

तुलसी की भाँति इन्होंने भी प्रेम का आदर्श चातक को माना है उनको केवल श्याम-घन-रूप कृष्ण की कृपा का ही एक बल है। वह यही प्रार्थना करते हैं:—

"घन आनद श्याम सुजान हरो जिय चातक के हिय की खटके"

। घनानद पृ० २ ।

भक्ति की भावना में इन्होंने ब्रजभूमि यमुना और गोकुल का भी वर्णन किया है उसमें राधिका कृष्ण के केलि कलाप और महिमा का ही वर्णन है प्राकृतिक दृश्यों का चित्रांकन नहीं है। प्रकृति के आलम्बन-रूप का इनके काव्य में अभाव है।

ठाकुर ने यद्यपि वसन्त और पावस का उद्दीपन रूप में वर्णन किया है तथापि पावस के चित्रण में इनकी सूक्ष्मदर्शिता और निजी-निरीक्षण का आभास प्राप्त होता है। पावस में उल्लसित प्राणि-समूह, प्रफुल्लित पुष्प, सद्य-स्नात वृक्ष और रंग-बिरंगे मेघ-समूह का यथार्थ चित्रण किया है। वर्षा से प्रभावित पृथ्वी की दशा का निरीक्षण कीजिये---

भूमि हरी भई गैलें गई मिटि नीर प्रवाह बहा बेबहा है।
कारी घटान अँधेरी कियो दिन रैन में भेद कछू न रहा है॥

। ठाकुर-ठसक पृष्ठ २६ ।

भूमि हरी-भरी है, मार्ग मिट गये हैं, श्याम मेघाच्छन्न आकाश के कारण अंधकार से दिन रात का भेद नहीं लक्षित होता। बादलों के अनेक रंगों का भी विवरण देखिए:---

कोई लाल, पीरे कोई, सेत, नीले धारीदार,
कोई रंग सेंदुर के कोई धुंआधारे हैं।

\+ \+ \+

कारे लाल पीरे धौरे धवल धुवा के रंग
कितने सुरंग किते रंग भट मारे हैं।

। ठाकुर-ठसक ।

कवि ने अपने सूक्ष्म-निरीक्षण द्वारा पावस के चित्र-विचित्र बादलों का वर्णन कर दिया है। जहाँ कवि ने कल्पना मिश्रित प्रतिभा के सहयोग से प्रकृति का चित्रण किया है वहाँ चमत्कार-प्रदर्शन की भावना और उत्प्रेक्षा की संभावना होने पर भी कवि का सूक्ष्म निरीक्षण श्लाघ्य है। वर्षा में मेघों के बीच में मन्द द्युति तारकों को देखकर कवि कल्पना करता है:---

पावस प्रपंच को तमासो अवलोकन से,
दामिनि के त्रास आय भूमि ना गिरत है।

मोरन मगन देखि चातकन चाव पेखि,
    लेखि पति आपको न थाके थिरत हैं ॥
ठाकुर कहत हैं छिपत प्रगटत कहूँ
    भूले अनभूले भट मरे ना गिरत हैं।
मद मंद देखिए नखत बदरान माँझ
    मानो चौंधियाने चद ढूढत फिरत हैं ॥
| ठाकुर ठसक |

तारे पावस में नहीं टूटते इसमें कवि ने दामिनी के त्रास और उनके मन्द-प्रकाश में चद्र को ढूढने के प्रयास की संभावना की है । कवि ने सभावना का आरोप केवल अपनी कल्पना से ही नहीं किया है वरन् वास्तविक तथ्य से प्रभावित होकर अपनी कल्पना के सामंजस्य से उसमें चमत्कार की समन्विति कर दी है।

आलम, ठाकुर, घनानंद आदि कवियों ने यद्यपि रीति-काल के नायिका-भेद, रस-विवेचन और अलंकार निरूपण की प्रवृत्ति से विमुक्त होकर काव्य-रचना की है तथापि इन्होंने रीति परम्परा बद्ध सीमा का अतिक्रमण नहीं किया है अधिकतः इन कवियों ने भी प्रकृति का उपभोग अलंकार और और उद्दीपन-रूप में ही किया है, प्रकृति के स्वच्छन्द क्षेत्र में इन्होंने पदार्पण नहीं किया।

आदि-काल

सन् १८५७ के विद्रोह के उपरान्त भारत में ब्रिटिश-राज्यकी जड़ जम गई और मुसलमान शासकों के विलास तथा ऐश्वर्य का अन्त हो गया। जिन राज-प्रासादों में सुरा और सुन्दरी की धूम थी, जहाँ नायिका की एक एक अदा पर शासक मुक्ता-मालाओं और हीरक-हारों की वर्षा करते थे, जहाँ स्त्रियों के कटाक्ष तथा हाव-भावों की पद्यबद्ध-रचना के लिये राजाश्रित कवियों को जागीरें तक दान करदी जाती थीं, वही राज प्रासाद अब विदेशी गोरों के निवास-स्थान बने हुए थे। नूपुरों की झनक और मृदंगों की ठनक का स्थान अब गोले-बारूद की गड़-गड़ाहट ने ले लिया था। स्वयं कृष्ण बन कर सुन्दरियों के साथ रास रचाने वाले नवाब पराधीनता के बंधन में जकड़े हुए उदासीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। जीवन के काठिन्य से उनका निकट संपर्क स्थापित हो चला था और विलासिता एवं शैथिल्य का अन्त हो गया था। परिणामतः, उस समय के काव्यकारों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ, कवियों की शृंगार-रस पूर्ण कविता पर 'वाह वाह' करने वाले न तो अब दरबारी ही थे और न नायिका-भेद की कविता पर मुग्ध होकर अतुल संपत्ति दान करने वाले सम्राट् ही। इस राजनैतिक परिवर्तन के कारण जनता के सरल, सुगम और विलास-पूर्ण जीवन में काठिन्य का समावेश हो गया था, अतः रीतिकाल की रूढ़ि मय शृंगारिकता के प्रति प्रतिक्रिया हुई और कविगण उस परम्परा-बद्ध काव्य-रचना की ओर से अपना ध्यान हटा कर अन्य विषयों के प्रति उन्मुख हुए।

प्रेम जीवन की सर्व-श्रेष्ठ निधि है, काव्याध्ययन करने पर विदित होता है कि हिन्दी-काव्य मे वीर-गाथा-काल से आधुनिक काल पर्यन्त केन्द्रीय-भावना प्रेम की ही रही। वीर-गाथा-काल में समस्त युद्धों का मुख्य कारण नारी प्रेम ही था। भक्ति-काल में रहस्यवादी कबीर और जायसी ने यद्यपि पारलौकिक-प्रेम की झलक दिखाई तथापि उस प्रेम में भी उन्हें नारी के लौकिक-प्रेम की शरण लेनी पड़ी, और उन्हें यही कहना पड़ा, "हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया" जायसी ने भी प्रीतम के प्रेम की पीड़ा को लौकिक रूप प्रदान किया। सगुण भक्तों में विद्यापति और सूर ने राधा कृष्ण के पारस्परिक-प्रेम और शृंगार की अभिव्यंजना करते हुए आध्यात्मिक-पक्ष का

प्रकाशन किया। रीतिकाल में नर और नारी का प्रेम ऐन्द्रिय सुख में ही सीमित रह गया। नारी-प्रेम की पूत-भावना जीवन की आवश्यकता और पशु-प्रेम में सीमित हो गई। आधुनिक-काल में मुसलिम-शासन के नष्ट-प्राय हो जाने पर इस प्रकार के प्रेम की प्रतिक्रिया स्वरूप कवियों का ध्यान नायक-नायिका के प्रेम की संकुचित सीमा से हट कर देश-प्रेम के रूप में प्रस्फुटित हुआ। देश-प्रेम की भावना का उदय, भारत में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हुआ। अंग्रेजी काव्यकारों से प्रभावित होकर इस काल के कवियों ने कभी तो अपने देश के अतीत गौरव का गुण-गान किया:—

याही भारत मध्य में, रहे कृष्ण मुनि व्यास,
जिनके भारत गान सों, भारत बदन प्रकास।
। भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ६३३।

कभी भारत की अधोगति पर दुःखित हुए :—

रोअहु सब मिलि के, आवहु भारत भाई
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
। भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ५६७।

और कभी अंग्रेजो के सुव्यवस्थित राज्य-शासन के हेतु संतोष प्रकट किया:—

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी,
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।

इस प्रकार राजभक्ति भी उनकी देश-भक्ति का एक अनिवार्य अंग होगई।

हिन्दी साहित्य में शताब्दियों से प्रकृति का महत्व मानव से सम्बन्धित होने पर ही था। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था। आधुनिक-काल से पूर्व प्रकृति का सबसे अधिक उपयोग हमारे साहित्य में उद्दीपन और अलंकार रूप में हुआ था। काव्यकारों की दृष्टि स्वतंत्र प्रकृति-चित्रण में कालिन्दी-तट और करील-कुंजों तक ही सीमित रही थी, किन्तु अंग्रेजी भाषा के सुसम्पन्न-साहित्य के प्रभाव से आधुनिक-काल के कवियों की प्रवृत्ति विशद प्रकृति-वर्णन अर्थात् प्रकृति के आलम्बन रूप की ओर भी आकर्षित हुई। इस काल के कवियों ने प्रकृति को रसों के अन्तर्गत विभावों के बन्धन से मुक्त किया और अंग्रेजी काव्यकारों की भाँति स्वतंत्र प्रकृति-चित्रण का प्रयास किया। देश-प्रेम के अन्तर्गत देश की दुर्व्यवस्था और अधोगति के मूल-कारण सामाजिक कुरीतियों अर्थात् बाल-विवाह, विधवा-विवाह, पर्दा-प्रथा, अशिक्षा आदि विषयों को भी अपने काव्य में स्थान दिया।

इस काल की काव्य-रचना में एक विशेषता और आई। उर्दू—साहित्य के सम्पर्क से मार्मिक पीड़ा की अनुभूति का इन कवियों ने अनुभव किया और रीति-काल की परम्परा-भुक्त एक ही प्रकार की वेदना का बहिष्कार कर प्रेम की वास्तविक व्यथा का दिग्दर्शन कराया।

इस भाँति विदेशी-साहित्य से निकट-सम्पर्क द्वारा हमारे-काव्य-विषयों में विविधता और अनेक-रूपता आई। विविध विषयों में देश-प्रेम को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ। देश-प्रेम के अन्तर्गत प्रकृति का महत्व भी अनिवार्यतः हो ही गया। स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण की प्रवृत्ति काव्यकारों में अधिकाधिक होती गई और बीसवीं शताब्दी में प्रसाद, पन्त निराला आदि कवियों ने तो प्रकृति को अत्यन्त गौरव-पूर्ण स्थान पर आसीन कर लगभग वही रूप प्रदान किया जैसा अंग्रेजी के प्रकृति-प्रेमी कवियों की रचनाओं में लक्षित होता है। प्रकृति के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों के अनुसार हम आधुनिक काल के हिन्दी काव्यकारों को तीन श्रेणियों में विभक्त करेंगे। प्रथम वे कवि गण जिनके प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी थे। यह काल भारतेन्दु-काल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस काल के प्रमुख कवि भारतेन्दु, पंडित श्रीधर पाठक और देवी प्रसाद पूर्ण थे। दूसरा काल द्विवेदी-काल के नाम से अभिहित हुआ। इस काल के प्रधान प्रवर्तक पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी हुए। अन्य प्रमुख काव्यकारों में हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, त्रिपाठी और गुरु भक्तसिंह आदि को उच्च स्थान प्राप्त हुआ। तीसरा काल प्रसाद-काल के नाम से विख्यात हुआ। पन्त, निराला और महादेवी ने इस युग में छाया-वाद और रहस्यवाद की भावना से प्रेरित होकर अनुपम काव्य की सृष्टि की। इन तीनों कालों को क्रमशः आदि-काल, मध्यकाल और आधुनिक काल के नाम से भी अभिहित किया गया है। अब हम सर्व प्रथम भारतेन्दु-काल की प्रकृति-विषयक काव्य-रचना पर विचार करेंगे।

भारतेन्दु-काल

रीतिकाल की प्रतिक्रिया-स्वरूप इस काल का कवि समुदाय-सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस काल के काव्यकारों के दृष्टिकोण में हमें रीतिकाल की सी एक-रूपता नहीं लक्षित होती। राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण कविगण अपनी काव्यधारा को एक ही प्रकार की समतल भूमि पर प्रवाहित न कर सके। इन कवियों ने भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों

कालों में अपनी दृष्टि का प्रसार किया और कभी तो भक्ति के नाते भक्त-कवियों की भाँति "ब्रज के लता पता मोहि कीजै" कह कर भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हो गये, कभी शृंगारिक कवियों की भाँति नायिका के शृंगार-वर्णन में अलंकारों की योजना करने में व्यस्त हुए, और कभी देश-प्रेम की मधुर भावना से सिक्त होकर देशोन्नति के स्वर्ण स्वप्नों में निमग्न हो कल्पना के सुख-सागर में अवगाहन करने लगे, इस काल के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हुए।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव-स्वरूप यद्यपि भारतेन्दु के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में नवीनता आ गई थी तथापि यह अपने पूर्ववर्ती कवियों की परिपाटी से अपने को मुक्त न रख सके और रीतिकाल के शृंगारी कवियों की परम्परानुसार प्रकृति का सबसे अधिक उपयोग उद्दीपन और अलंकार रूप में किया। इनके काव्य में उद्दीपन में प्रकृति मानव भावनाओं के अनुसार हर्ष और विषाद को अतिशयता प्रदान करती, वियोगियों को रुलाती तथा संयोगियों को प्रफुल्लित करती है। संयोग में समस्त प्रकृति उल्लास और उमंग से पूर्ण प्रतीत होती है। वैसे तो अपने प्रिय का संयोग सदा ही सुखद एवं आनन्दप्रद होता है, किन्तु प्रकृति का सौम्य रूप प्रेमी-प्रेमिका के सम्मिलन-सुख को और भी अधिक रुचिकर बना देता है, भारतेन्दु जी ने इसका उल्लेख किया है:—

बैठे लाल नवल निकुंजन माँहीं।

अतिरस भरे दोऊ अंग जोरि के हिलिमिलि दै गल बाँहीं।
तैसे श्री गिरिराज शिला में फूले कुसुम अनेकन भाँती।
तैसी वै जमुना अति सोभित लहकि रही कमलन की पाँती।
तैसेई भँवर गुंजार करत हैं तैसोई त्रिविध बयार।
तैसेई सौरभ झरत अनेकन वृन्दावन तरु डार॥५१॥

। भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रेम मालिका।

प्रेमी-प्रेमिका के समीप होने पर प्रकृति का उग्र रूप अर्थात् भीम-मेघ-गर्जन, चपला की चमक आदि भी सुख की अभिवृद्धि करते हैं, दोनों प्रकृति की उग्रता को देखकर भय का अनुभव करते और एक दूसरे के अधिकाधिक निकट होने का प्रयास करते हैं:—

विहरत रस भरि लाल विहारी ।

ज्यों ज्यों घन गरजत हैं त्यों त्यों लपटि रहत पिय प्यारी । ८ ।

। ग्रन्थावली प्रेमाश्रुवर्षण ।

अपने सुख में प्रेमी-प्रेमिका को पारस्परिक-सुख की वृद्धि करने वाले भय-कर मेघ-गर्जन में भी मधुर संगीत का आभास प्राप्त होता है । मन और शरीर का सुख प्रकृति की उग्रता में भी माधुर्य और सरसता का अनुभव कराता है, संयोगसुख का उपभोग करती हुई प्रेमिका कहती है:—

जगावन हौ मनु पावस आयो ।

भयो भोर पिय उठौ उठौ कहि मधुरे गरजि सुनायो ।। ९ ।।

। प्रेमाश्रुवर्षण ।

प्रिय के सहवास-सुख में वृद्धि करने वाली वस्तुओं के प्रति जिस प्रकार प्रेमी-प्रेमिका के हृदय में मधुर-भावों का सृजन होता है उसी प्रकार प्रेम-मार्ग में बाधक वस्तुओं के प्रति क्षोभ और झुंझलाहट का प्रादुर्भाव होता है । भार-तेन्दु ने इस प्रवृति का दिग्दर्शन कराया है :—

दामिनि बैरिनि वर परी,

जान न देत पिया प्यारे ढिग प्रगटत बात दुरी । ।। १० ।।

। प्रेमाश्रुवर्षण ।

प्रेमिका को अपने प्रिय से मिलने के लिये जाते समय दामिनी में शत्रु-भाव का आभास प्राप्त होता है,क्योंकि विद्युत् प्रकाश में वह उस मार्ग से जाने वालों के लिये प्रगट हो जाती है, अतः विद्युत उसको शत्रु-सम प्रतीत होती है ।

संयोग शृंगार में भारतेन्दु ने हिंडोला, फाग, जल-विहार और वन-विहार आदि का भी उद्दीपन रूप में प्रयोग किया है । वर्षा में श्याम घटाओं को देखकर प्रेमी प्रेमिका के हृदय में हिंडोले पर झूलने की उत्कंठा होती है, मंद-मंद पवन के झकोरों और वर्षा की फुहारों से दोनो उत्साहित होते हैं :—

स्याम घटा सखि स्याम ही हिंडोरो बन्यो,

स्यामा स्याम झूलैं जामे अति ही अनंद सा,

अलि पिक मोर नील कंठ स्याम रंग सोहै,

स्याम श्री यमुना बहैं गति अति मंद सी ।। ३६ ।। प्रेमाश्रुवर्षण ।

शरद में चन्द्र की शुभ्र-ज्योत्स्ना प्रेमी-प्रेमिका के हृदय में वन-विहार की इच्छा को तीव्र कर देती है, श्रीकृष्ण शरद-यामिनी में गोपियों के साथ नृत्य

और रास में निरत हो जाते हैं, वृन्दावन का यमुनातट, शरद-यामिनी की दुग्धधवला-चन्द्रिका और गोपी-कृष्ण की रास क्रीड़ाओं से सुसम्पन्न हो जाता है :—

वृन्दावन उजल बर जमुनातट नदलाल,
गोपिन सग रहसि रच्यों सरद जामिनी। ॥ ८१ ॥
। भारतेन्दु ग्रन्थावली, राग सग्रह।

वसन्त का नव किसलययुत नवीन-रूप पुष्पभार से नमित लतिकायें तथा त्रिविध समीर प्रेमी-प्रेमिका के हृदय में नवीन स्फूर्ति का सचार कर देता है। जीवन का शैथिल्य दूर हो जाता है और दोनों फाग खेलते हैं, फाग द्वारा पारस्परिक अनुराग की वृद्धि होती है :—

पिय मन मोहन के संग राधा खेलत फाग,
दोउ दिसि उड़त गुलाल अरगजा दोउन अनुराग। ३७।
। भारतेन्दु ग्रन्थावली, राग सग्रह।

ग्रीष्म में भगवान भास्कर की प्रचंडातप से व्यग्र होकर मनुष्य को शीतोपचारों तथा जल-विहार की आवश्यकता होती है। अपने एकाकीपन में मनुष्य को जल के शीतल स्पर्श और वाह्योपचारों द्वारा शारीरिक-तुष्टि भले ही हो जाये लेकिन मानसिक-स्वस्थता नहीं प्राप्त होती। दंपति के समीप होने पर दोनों की जल-केलियाँ और जल-विहार मानसिक और शारीरिक-सुख प्रदान करते हैं। दोनों के प्रेम और अनुराग में अभिवृद्धि होती है।

दोउ मिलि बिहरत यमुना तीर में,
करि कर के जलयंत्र चलावत भीजि रही लट नीर में। २३।
। भारतेन्दु ग्रन्थावली, राग संग्रह।

इसके अतिरिक्त पुष्पों आदि का उपयोग भी उद्दीपन में सहायक होता है। सुमन-सुरभि हृदय को आकर्षित करती है, पुष्पाभरण शारीरिक-सौन्दर्य की अभिवृद्धि कर पारस्परिक-आकर्षण को बढ़ाते हैं। पुष्पाभूषणों से सुसज्जित राधा की छवि को देख कर नदलाल कृष्ण मुग्ध हो जाते हैं, उनका हृदय कोमल भावनाओं से पूर्ण हो जाता है।

प्रेमी-प्रेमिका के वियुक्त होने पर सभी वस्तुओं का प्रभाव विषम हो जाता है। जो वर्षा-ऋतु सम्मिलन में सुखद प्रतीत होती थी वही विपरीत परिस्थिति में अत्यन्त दुख-प्रद हो जाती है, संयोगावस्था में जिन श्याम मेघों को देखकर

प्रफुल्लित होकर प्रेमी प्रेमिका को कहना पड़ता था "आज कछु मंगल घन उनये "वही मेघ वियोगियों को उत्तप्त कर देते हैं, जो जल की शीतल फुहारें हिंडोले पर भूलनेके लिये दोनों को उत्तेजित करती थीं और आनन्द प्रदान करती थीं वही अब विरहिणी की विरहाग्नि को प्रज्वलित करने वाली हो जाती हैं:—

'हरीचन्द नहिं बरसत पानी। विरह अगिनि को घृत सम जानी ॥ २२ ॥

वर्षा में प्रकृति के उग्र-रूप को देख कर वियोगिनी भय-विह्वल हो जाती है। मेघ-गर्जन और विद्युत का प्रखर प्रकाश उसे व्याकुल कर देता है। मयूर की'आओ आओ' की पुकार में वह प्रीतम की पुकार का अनुभव करती है और व्यथित होकर कहती है :—

> कहूँ मोर बोलै री घन की गर्राज सुनि दामिनी दमकै छतिया धरकै,
> पिय बिन बिकल अकेली तड़पूं विरह अगिनि उठि भरकै। ३३।
> । प्रेमाश्रुवर्षण।

वर्षा ऋतु में एकाकीपन अत्यन्त व्यथित बना देता है। प्रियतम की स्मृति एक क्षण के लिये भी हृदय-पटल से दूर नहीं होती। वह जब सब सखियों को हर्ष पूर्वक हिन्डोले भूलते देखती है तो उसके हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ता है, "यहै कौन भूलन हिंडोले बैठि संग मेरे।" विरहिणी प्रिय वियोग में अत्यन्त उद्विग्न हो जाती है। वर्षा का सौम्य-स्वरूप और कोकिल की कूक से वह कामोत्तेजित हो जाती है। पलाश, कचनार, गुललाला और गुलाब उसे अग्नि सी प्रज्वलित करते हुए प्रतीत होते हैं। अपने प्रियतम से मिलने के लिये वह व्यग्र होती है। बसंत के सुन्दर वातावरण के प्रति उसे क्षोभ होता है और कहती है :—

> बन बन आग सी लगाइकै पलास फूले,
> सरसों, गुलाब, गुललाला, काचनारो हाय,
> 'हरिचन्द' कोइलै कुहूकिं फिरे बन बन,
> बाजै लाग्यो जग फेरी क म को नगारो हाय,
> दूर प्रानप्यारो काको लीजिये सहारो अब
> आगो फेरि सिर पै बसत बजमारो हाय। ८५।
> । प्रेम माधुरी।

"बजमारो" शब्द द्वारा कवि ने बसत के सौम्य रूप के प्रति क्रोध, क्षोभ और ईर्ष्याजन्य झुंझलाहट को व्यक्त किया है। मन की अस्वस्थावस्था

में मनुष्य पर प्रकृति का प्रभाव भी विषम हो जाता है। मन के अव्यवस्थित होने पर प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु के प्रति उदासीनता और विरक्ति होने के कारण वसंत के प्रभाव-स्वरूप होली और फाग भी वियोग-व्यथा को बढ़ाते हैं। उस समय अत्यन्त कष्ट से विरहिणी को यही कहना पड़ता है, "एरी विरह बढ़ावन आयो फागुन मास री," वह विचार करती है कि देश और काल में कुछ परिवर्तन न होने पर भी वातावरण और फल फूलों के प्रभाव में इतना वैषम्य क्यों है। प्रकृति की यह दशा है कि :—

'ओरे ऋतु ह्वै गई बयारहु और री।
और फूले फूल और वन ठौर री। २४। प्रेम-माधुरी।

विषम परिस्थिति में प्रत्येक सुन्दर और सुखद प्राकृतिक दृश्य का प्रभाव विपरीत ही होता है। शुभ्रज्योत्स्ना हृदय को उत्तप्त करती है। विरह विदग्धा नायिका उन्मत्त सी होकर विवश भाव से कहती है :—

"पिया बिनु मोहि जारत हाय सखी देखौ कैसी खुली उजयरियाँ" ॥७४॥
। प्रेम तरंग।

भारतेन्दु ने वियोग में बारहमासे की रचना की है। जिसमें प्रत्येक मास को वियोग व्यथा को बढ़ाने वाला व्यक्त किया है। आषाढ़ भयभीत करता है श्रावण हिंडोले की याद दिलाता है और मन भावन की स्मृति को तीव्र कर देता है। छोटी रातें भी व्याकुलता में अत्यन्त बड़ी प्रतीत होती हैं। वियोगिनी को संदेह होता है "सावन की रात किधौं द्रोपदी की सारी है" सेनापति ने भी इसी प्रकार के भाव को व्यक्त किया है :—

बीती औधि आवन की लाल मन भावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ ॥२८॥
। कवित्त रत्नाकर, तीसरी तरंग।

वियोगिनी को भादों का अंधकार व्याकुल बना देता है, क्वार की स्वच्छ चन्द्रिका दग्ध करती है और कार्तिक में दीपावली का मंगल-आनन्द औदास्य को बढ़ा देता है, आदि।

वियोग की अत्यन्त संतप्त अवस्था में पक्षी के द्वारा अपने प्रिय के समीप संदेश भेजने की भावना में व्यथित हृदय की कोमलता की अभिव्यक्ति होती है। जायसी, सूर, तुलसी आदि भक्त कवियों ने भी नारी के हृदय में इस प्रकार की अनुभूति का दिग्दर्शन कराया है। रीतिकालीन कवियों ने भी अपने

काल में इसका वर्णन किया है। भारतेन्दु ने भी नारी की इस कोमल अनुभूति का परिचय दिया है, वियोगिनी कहती है:—

उड़ि जा पंछी खबर ला पी की,
जाय विदेश मिलो पीतम से कहो व्यथा विरहिन के जी की ॥६१॥
। प्रेम माधुरी ।

वियोग दुःख की इसी चरम सीमा में मनुष्य को प्रकृति से मानव संवेदना का आभास होता है। उसका प्रकृति के साथ एकात्म्य हो जाता है। वह प्रकृति के साहचर्य में सान्त्वना और शान्ति का अनुभव करता है। मेघ, पशु, पक्षी, पुष्प अर्थात् समस्त सचराचर प्रकृति से उसका तादात्म्य स्थापित हो जाता है। वियोगिनी चन्द्रावली अपने नित्य के प्रार्थी पवन आदि से कहती है :—

अरे पौन ! सुख भौन सबै थल गौन तुम्हारो।
क्यों न कहौ राधिकारौन सों मौन निवारौ ॥

वह पवन से कृष्ण के मौन निवारण में सहायता माँगती है, कोकिल का कृष्ण वर्ण से साम्य देखकर वह पुलकित हो जाती है और कहती है :—

हे कोकिल ! कुल श्याम रंग के तुम अनुरागी।
क्यों नहिं बोलहु नहीं जाय जँह हरि बड़भागी ॥
। भारतेन्दु नाटकावली, पृ० ५३१ ।

समस्त संसार को प्रकाशित करने वाले भगवान भास्कर से वह प्रार्थना करती है:—

अहे भानु ! तुम तो घर घर में किरिन प्रकासौ।
क्यों नहिं पियहि मिलाइ हमारो दुःख तम नासौ ॥

इस प्रकार चन्द्रावली का समस्त जड़ और चेतन प्रकृति से एकात्म्य हो जाता है। अपनी असहायावस्था में वह प्रकृति से संवेदना और सहानुभूति की आशा करती है:—

चेतन प्राणियों में तो हर्ष, भय, ममत्व, आदि के भाव स्वाभाविक रूप से विद्यमान होते ही हैं। भारतेन्दु जी ने संयोगावस्था में गौओं का कृष्ण की वंशी पर मुग्ध होना वर्णित करके स्वर माधुर्य के प्रति सहज आकर्षण का निर्देश किया है। मानव की भाँति गौएँ वंशी-वादन के प्रति आकर्षित होकर अपनी सुधि-बुधि खोकर तन्मय हो जाती हैं:—

लखो सखि ! इन गोवन को हाल ।
कृष्णचन्द्र के मुखसों निकसे वो वंसी की तान ।।
तो अमृत को पान करहिं ये ऊँचे करि करि कान ।
बछरा थन मुख लाइ रहे नहिं पीवत नहिं तृन खात ।
थन तें पय की धार बहत है नैनन तें जल जात ।।७।।

। भारतेन्दु ग्रन्थावली, वेणुगीति ।

बछड़े मुग्ध होकर दूध पीना छोड़ देते हैं। इसके अतिरिक्त निर्जीव प्रकृति को भी इन्होंने मानव-भावनाओं से युक्त वर्णित किया है, वंशी की मधुर तान सुनकर जमुना भी प्रेम विह्वल हो जाती है।

अहो सखि जमुना की गति ऐसी।
सुनत मुकुंद गीत मधु श्रवनन विह्वल ह्वै गई कैसी ।। ६ ।।

। भारतेन्दु ग्रन्थावली, वेणुगीति ।

भारतेन्दु जी ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों में प्रकृति का उद्दीपन रूप में प्रयोग किया है, यद्यपि अधिकतः उनका उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण रीतिकाल की परम्परा द्वारा प्रभावित है, किन्तु उसमें भक्ति-काल के काव्यकारों की सी भक्ति भावना भी स्पष्टतः लक्षित होती है। उनके कृष्ण केवल नायक नहीं हैं वरन् लीलापति हैं। अद्वितीय रूप और गुणों से पूर्ण हैं। जब वह गोपियों के साथ नृत्य करते हैं तो समस्त प्रकृति और देवगण विमुग्ध हो जाते हैं:—

थक्यो नभ चन्द देखि रैनि गति सिथिल भई।
लखि हरि गज पति संग गज गामिनी।
'हरीचंद' सोभा लखि देवमुनि नभ थिथकित।
मानी हरि साथ सबै ब्रज भामिनी ।।८१।।

। भारतेन्दु ग्रन्थावली, राग संग्रह ।

सूर्य और चन्द्र की गति रुक जाती है, देव, मुनि, तथा शंकर पार्वती उस शोभा का अवलोकन करते हैं। कृष्ण के मधुर रूप से मुनिगण इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि मानव शरीर त्याग कर पक्षी का रूप धारण करते हैं:—

दरसन हेतु विहंगम ह्वै रहै मूरति मधुर उपासी।
नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै मिलि बैठत हैं, आई ।।८।।

। भारतेन्दु ग्रन्थावली, वेणुगीति ।

इन पंक्तियों में हमें भक्त-कवि रसखान का प्रभाव लक्षित होता है, भक्ति और प्रेम की तन्मयता में उनकी भी यही इच्छा हुई थी :—

जो पशु हौं तो कहा बसु मेरो,
चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को,
जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौं मिलि,
कालिंदी कूल कदम्ब की डारन ॥१४॥

यद्यपि इन्होंने यशोदानन्दन कृष्ण के लोक-रंजक अर्थात् शृंगारी रूप का ही वर्णन किया है किन्तु उनके अलौकिक रूप पर समस्त प्रकृति और देवगण मुग्ध हैं, वह देवाधिदेव हैं। तभी तो आराध्य श्रीकृष्ण भ्राता बलराम सहित जहाँ तहाँ जाते हैं, वहाँ वहाँ धूप देखकर देवगण छाया कर देते हैं:—

जँह जँह राम कृष्ण चलि जाहीं।
तँह तँह आतप जानि देव सब दौरि करहि तन छाहीं ॥१०॥
। भारतेन्दु ग्रन्थावली, वेणुगीति ।

तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के देवत्व का इसी भाँति वर्णन किया है। जब वन में वह धूप में चलते हैं तो मेघ उनके ऊपर छाया करते चलते हैं।

अलंकार

भारतेन्दु जी की अधिकतः काव्य रचना कृष्ण-विषयक है, कृष्ण का मनमोहक-रूप और उनका **दाम्पत्य-प्रेम** ही मुख्यतः इनके काव्य का विषय रहा है। अतः शृंगार के अन्तर्गत इन्होंने राधा कृष्ण के सौन्दर्य वर्णन में ही अधिकतः प्रकृति को माध्यम बनाया है।

इनके अलंकार, रूप आदि का सादृश्य तो प्रकट करते ही है साथ ही भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में भी सहायक होते हैं, प्रेमिका के मान करने पर प्राकृतिक उपमानों से सादृश्य प्रकट करते हुए प्रेमी व्यंगोपमा द्वारा अपने क्षोभ को प्रगट करता है :—

क्यों इन कोमल गोल कपोलनि देखि गुलाब को फूल लजायौ।
ज्यौं हरिचन्द जू पंकज के दल सो सुकुमार सबै अंग भायौ।

अमृत से जुग ओंठ लसे नवपल्लव सो कर क्यों है सुहायो।
पाहन सो मन होते सबै अंग कोमल क्यो करतार बनायो ॥४०॥
। भारतेन्दु ग्रन्थावली, वेणुगीति।

प्रेमी प्रेमिका के अङ्गों का प्रकृति से सादृश्य प्रकट करते हुए उसके सौन्दर्य की प्रशंसा भी करता जाता है और 'पाहन सो मन' द्वारा उसकी निर्ममता को भी अभिव्यक्त करता है।

राधाकृष्ण का सौन्दर्य चित्रण अधिकतः परम्परायुक्त ही है। भक्ति भाव से प्रेरित होकर वह परम्परागत उपमानों द्वारा राधा कृष्ण के रूप की प्रशंसा करते चले हैं। राधा के सौन्दर्य की छटा देखिये:—

नागरी रूप लता सी सोहै।
कमल सो बदन पल्लव से कर पद देखत ही मन मोहै।
अतसी कुसुम सी बनी नासिका जलज पत्र से नयन।
बिम्ब से अधर कुंद दतावलि मदनबान सी सगन।
जानु बनी रंभा की खभा सोभा होत अपार।
गूलर फूल सरिस कटि राजत कविजन लेहु विचार।
नारंगी सी एडी राजत पदतल मनहुँ प्रवाल।
चंपक सी देह दमक सी चमक चमेली रंग ॥५५॥
। भारतेन्दु ग्रन्थावली, राग संग्रह।

इसमें कवि ने नासिका के लिये अतसी कुसुम, कटि के लिये गूलर-फूल और एडी के लिये नारंगी उपमानों का नवीन प्रयोग किया है, किन्तु इन उपमानों में वर्ण और आकार का सादृश्य होते हुए भी प्रकृति के प्रति कवि का उत्साह नहीं लक्षित होता, कवि की सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति नहीं प्रकट होती ये उपमान अत्यंत स्थूल हैं। कवि की सूक्ष्म-सौन्दर्य चेतना का नितान्त अभाव है।

कवि-समय-सिद्ध उपमानों का इन्होंने विभिन्न अलकारों में प्रयोग किया है, कभी तद्गुण अलकार द्वारा शरीर के प्रसिद्ध उपमान दीपशिखा को उपमेय साथ मिला देते हैं:—

दीपन उलटी करी सहाय,
चली गई पिय पास प्रगट मग काहु न परी लखाय ॥२१॥
। भारतेन्दु ग्रन्थावली, कार्तिक स्नान।

अभिसारिका नायिका दीपालोक में अपनी शरीर की दीप्ति के कारण किसी से लक्षित नहीं होती। दीपशिखा उसको छिपा लेने में उलटी सहायक हो गई। बिहारी ने भी अभिसारिका नायिका की शरीर कान्ति का चन्द्रिका में मिल जाना वर्णन किया है :—

जुवति जोन्ह में मिलि गई, नेकु न परत लखाय।३१५।
। बिहारी बोधिनी।

कभी-कभी भारतेन्दु जी को प्रेमिका का शरीर-शोभा उपमान दीप से अधिक प्रतीत होती है और वह अप्रस्तुत का प्रस्तुत द्वारा निरादर करके प्रतीप अलंकार में नायिका की गौर-कान्ति का वर्णन करते हैं।

अरी तू हठि चलि प्यारी दीप मंडल ते क्यों शोभा हरि लेत।
तेरे मुख प्रकाश दीपकगन मन्द दिखाई देत ॥१७॥
। ग्रन्थावली, कार्तिक स्नान।

प्रेमिका के सौन्दर्य प्रभाव से दीप-प्रकाश भी मन्द हो जाता है। इस प्रकार का ऊहात्मक सौन्दर्य वर्णन रूढ़िगत है। ऐसे स्थलों में न तो कवि की मौलिकता लक्षित होती है और न प्रकृति के प्रति उत्साह। रीति-काल के चमत्कारवादी काव्यकारों ने इस प्रकार की सौन्दर्याभिव्यक्ति में अपनी कुशलता प्रकट की थी। सौन्दर्यानुभूति के और भी अधिक तीव्र होने पर उन्हें दीप शिखा उपमान ही अनुपयुक्त प्रतीत होने लगता है, कवियों की बुद्धि पर उन्हें दया आती है, कहाँ तो प्रेमी के हृदय को शीतल करने वाली स्थिर-कान्ति और कहाँ प्रेमी पतिंगों को जलाने वाली चंचल दीप शिखा, इस प्रकार वह उपमेय में उत्कर्ष दिखाकर व्यतिरेक द्वारा उपमान का अपकर्ष व्यंजित करते हैं :—

कबिन सों साँचेहि चूक परी।
दीप शिखा की उपमा जिन तुलि प्यारी देत धरी।
वह दाहत वह अङ्ग जुड़ावति वह चंचल थिर येह।
वह निज प्रेमिन परम दुखद यह सदा सुखद पिय गेह ॥१८॥
। भारतेन्दु ग्रन्थावली, कार्तिक स्नान।

इसमें प्रस्तुत अप्रस्तुत के गुण और प्रभाव में वैपरीत्य दिखाकर दोनों की समानता में अनौचित्य प्रकट किया है। सूर ने भी गोपियों द्वारा नेत्रों के उपमानों की अनुपयुक्तता प्रगट की है और उपमेय उपमान की क्रिया में वैषम्य प्रदर्शित किया है :—

उपमा नैनन एक गहीं,
कविजन कहत कहत चलि आये सुधि करि नाहिं कही।
कहे चकोर मुख विधु बिनु जीवत, भ्रमर नाहिं उड़ि जात।
आए बंधन व्याध ह्वै ऊधौ, जो मृग, क्यों न पलात ॥१११॥

। सूर सुषमा ।

नेत्र और प्रसिद्ध प्राकृतिक उपमान चकोर, भ्रमर तथा मृग की क्रिया में अन्तर होने के कारण गोपियाँ किसी भी उपमान को नेत्रों के उपयुक्त नहीं मानतीं।

अलंकारों में उत्प्रेक्षा का प्रयोग भारतेन्दु जी ने अत्यन्त सुन्दर किया है। उत्प्रेक्षालंकार में इनका प्राकृतिक-प्रेम लक्षित होता है :—

देखि सखि चन्दा उदय भयो,
कबहूँ प्रकट लखात कबहुँ बदरा की ओट भयो।
करत प्रकाश कबहुँ कुंजन में छन-छन छिपि-छिपि जाय।
मनु प्यारी मुख चन्द देखि कै घूंघट करत लजाय ॥२७॥

। भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रेमाश्रुवर्षण ।

वर्षा के दिनों में नभ-मंडल में कभी चन्द्र छिप जाता है और कभी प्रकट हो जाता है, इस दृश्य में कवि हेतूत्प्रेक्षा द्वारा प्रेमिका के सुन्दर मुखमंडल को देखकर चन्द्र के लज्जित हो जाने की उद्‌भावना करता है, इसी भाँति वर्षा-गम से पूर्व मयूरों का शब्द सुनकर और उनको हर्षित देखकर कवि अनुमान करता है :—

सखी री मोरा बोलन लागे,
मनु पावस को टेरि बुलावत तासों अति अनुरागे ॥२६॥

। भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रेमाश्रुवर्षण ।

इन दोनों उदाहरणों में कवि का प्रकृति के प्रति अनुराग प्रदर्शित होता है। श्याम घटाओं में छिपते और प्रकाशित होते हुए चन्द्र को कवि ने स्वयं देखा है और अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य से लज्जित होने का अनुमान कर लिया है। मयूरों को 'आओ आओ' कहते और प्रफुल्लित होते हुए देखकर कवि का मन मयूर-नृत्य करने लगता है, प्रकृति के अनुराग से अनुरंजित हो कर वह कल्पना का आश्रय लेकर मयूर के शब्दों में पावसके निमंत्रण की संभावना कर लेते हैं।

परम्परा-युक्त उपमानों को लेकर उत्प्रेक्षा की योजना मे इनका सौंदर्य के प्रति उत्साह व्यक्त होता है, प्रकृति के प्रति नहीं। उत्प्रेक्षालङ्कार के समस्त उपमान रूढ़िगत हैं उनका प्रयोग भी पूर्ववर्ती कवियों की भाँति ही परम्परा-पालनार्थ ही है उनमें किसी प्रकार की नवीनता नहीं है।

रूपक अलंकार का भी इन्होंने सुन्दर प्रयोग किया है, सांगरूपक के उदाहरण सूर से प्रभावित हैं, प्रकृति के प्रति दृष्टि अधिक व्यापक न होने के कारण उन्होंने प्रकृति के दो ही दृश्यों को लेकर कभी मानव शरीर और कभी मानव भावनाओं के साथ आरोप कर दिया है। राधा की रूप छवि का नदी से सादृश्य प्रदर्शित करते हुए वह कहते हैं :—

प्यारी रूप नदी छवि देत।
सुखमा जल भरि नेह तरंगनि बाढ़ी पिय के हेत।
नेन मीन कर पद पंकज से सोभित केस सिवार।
चक्रवाक जुग उरज सुहायो लहर लेत गल हार।
रहत एक रस भरी सदा यह जदपि तऊ पिय भेंटि।
'हरीचंद' बरसै सांवल घन बढ़त कूल कुल मेंटि।१८।
। भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रेमाश्रुवर्षण।

राधा के शरीर के अंगो मे नदी में रहने वाले जीवों का आरोप किया गया है और यह रूप-नदी कृष्ण-रूप मेघों के बरसते ही कुल-मर्यादा रूप कूलों को गिरा देती है। जल से पूर्ण होकर जिस प्रकार नदी कूल की मर्यादा का उल्लंघन करती है इसी प्रकार राधा प्रियतम कृष्ण के संयोगार्थ प्रेमावेश मे लोक मर्यादा का अतिक्रमण करती है। इस वर्णन में उपमेय और उपमान की क्रिया और भाव में साधर्म्य स्थापित हो जाता है।

प्रेम की स्वार्थपरता को प्रदर्शित करने के लिये भ्रमर को अपना लक्ष्य बनाकर अन्योक्तिरूप मे भी भारतेन्दु जी ने प्रकृति का आश्रय लिया है :—

तुम भौंरा मधु के लोभी रस चाखत इत उत डोलो,
कलिन कलिन पर भाते भाते मधुरे मधुरे बोलो।

भारतेन्दु जी प्रकृति के उपासक नहीं थे वरन् एक नवीन युग के प्रवर्तक थे। इन्होंने कभी तो भक्ति के आवेश मे ब्रज के करील-कुंजो के प्रति अनुराग प्रदर्शित किया और भगवान से ब्रज के लतापत्र आदि बना देने की प्रार्थना की और तुलसी के "अब चित चेत चित्रकूटहि चलि" की भाँति राधाकृष्ण की क्रीड़ा भूमि के वृक्षों के प्रति अपने हृदय की भक्ति-भावना व्यक्त की :—

सखी चलोरी कदम्ब तरे छाँड़ि काम धाम,
भूलैं रमकि हिंडोरे जहा राधा घनश्याम ।४३।
। भारतेन्दु ग्रन्थावली, वर्षाविनोद ।

कभी जयदेव और विद्यापति की भाँति पृष्ठ भूमि के रूप में कालिन्दी-तट और प्राकृतिक दृश्य का वर्णन किया—

हरि हरि धीर समीरे विहरति राधा कालिन्दी तीरे,
कूजति कल कलरव केकावलि कारंडव कीरे,
वर्षति चपला चारु चमत्कृत सघन सुघन नीरे ।
गायति निज पद पद्मरेणुरत कविवर हरिश्चन्द्र धीरे ।१८।
।भारतेन्दु ग्रन्थावली, वर्षाविनोद ।

अपने आराध्य राधाकृष्ण के आगामी कार्यकलापों की पृष्ठ भूमि के रूप में कवि ने यमुना-तट, पक्षियों के कलरव और वर्षा तथा चपला की चमक का वर्णन किया है और अपनी भक्ति तथा अनुराग को प्रकट किया है :—

आगामी कार्यकलापों की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति के वर्णन में इनके स्वानुभव का भी परिचय मिलता है, राधा सखी से कहती है:—

सखी अब आनन्द की रितु ऐहै ।
ऐहैं री झुकि झुकि कै बादर चलि है सीतल पौन ।
कोइलि कुहुकि कुहुकि बोलैगी बैठि कुंज के भौन ।
बोलेंगे पपिहा पिउ पिउ बन अरु मोर ।
'हरीचंद' यह रितु छबि लखि कै मिलिहैं नन्द किसोर ।२८।
। भारतेन्दु ग्रन्थावली,प्रेमाश्रुवर्षण ।

वर्षा के इस चित्रण में कवि ने परम्परानुगत मोर और चातक का ही वर्णन नहीं किया है वरन् कोयल को मौन न करके उसके कूजन का भी उल्लेख किया है। इससे प्रकट है कि वर्षा में उन्होंने स्वयं मयूर और चातक की रटन के साथ कोकिल की कुहुक को भी सुना है। वह अपने कानों की उपेक्षा नहीं कर सके हैं।

रीतिकाल के प्रभाव स्वरूप उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा और रुपक अलकारों के सहयोग से मानव शरीर में ही प्रकृति का आरोप कर दिया है :—

पीरो तन पर्यो फूली सरसों सरस सोई ।
मन मुरझानो पतझार मनो लाई है,

मीरी साँस त्रिविध समीर सी बहति सदा,
अँखिया बरसि मधु झरि सी लगाई है,
हरीचंद फूले मन मैन के मसूसन सों,
ताही सों रसाल बाल बदि के बौराई है।
तेरे बिछुरे ते प्रान कन्त के हिमन्त अन्त,
तेरी प्रेम जोगिनी बसंत बनि आई है॥ ३५॥

। भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रेम माधुरी।

वियोगिनी के पीले शरीर, मुरझाये मन, शीतल श्वास, और अश्रु-बिन्दुओं में कवि ने बसन्त में फूली हुई पीली सरसों, पतझड़, त्रिविध समीर और मधु का आरोप कर लिया है, और नायिका के शरीर में बसन्त के प्राकृतिक दृश्य का चित्रण कर दिया है। सेनापति, देव, पद्माकर और बेनी आदि रीति कालीन काव्यकारों ने इस प्रकार के चमत्कार पूर्ण वर्णन अत्यधिक मात्रा मे किये हैं। भारतेन्दु जी को जहाँ कहीं प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को अवलोकन करने का अवसर मिला है वहाँ भी वह प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रों और उसकी नैसर्गिक छटा के प्रति आकर्षित न होकर बाह्य-व्यापारों के निरीक्षण में निमग्न हो गये हैं। 'सत्य-हरिश्चन्द्र' नाटक में 'गंगा-वर्णन' में वह राकेश की रजत-रश्मियों के रम्य विहार, कारण्डव के निमज्जन, नौका संतरण, शैवालिनी, मीन की मनोनीत क्रीडा आदि के कितने ही सुन्दर चित्र अङ्कित कर सकते थे, किन्तु वह तो भागीरथी की दुग्ध-धवल-धारा के अनन्त सौंदर्य का एक पंक्ति में—

'नव उज्वल जल धार हार हीरक सी सोहति'

वर्णन करके उपमा, उत्प्रेक्षा और अलङ्कारों की छटा दिखाने मे व्यस्त हो जाते हैं। प्रकृति-सुंदरी का स्वाभाविक सौंदर्य अलङ्कारों की चकाचौंध में गौण हो जाता है। गंगा की नव-उज्वल जल-धार और लोल-लहर का अवलोकन करने के अनन्तर घाट, मढ़ी, पताका और स्नान करती हुई सुंदरियों पर जाकर उनकी दृष्टि स्थिर हो जाती है। प्रकृति के सौंदर्य की अपेक्षा मानव-निर्मित वस्तुएँ और मानव-व्यापार को वह प्रधानता देते हैं। इसी प्रकार 'चंद्रावली' में उत्प्रेक्षा और संदेह अलङ्कारों द्वारा तरणि-तनूजा-तट का वर्णन व्यञ्जित किया है। इस वर्णन में कालिन्दी-तट पर सुशोभित वस्तुओं का परिगणन कराकर कवि का ध्यान अलङ्कारो

की सजावट के प्रति आकर्षित हो जाता है, प्रकृति चित्रण अप्रधान हो जाता है, और कवि कल्पना प्रखर हो उठती है।

"प्रात समीरन" में प्रातः काल के मंद मंद समीर का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। इसमें कहीं कहीं तो शुद्ध आलंबनत्व प्रकट होता है:—

मंद मंद आवै देखो प्रात समीरन,
करत सुगंध चारों ओर निकीरण।
गात सिहरात तन लगत सीतल,
नैन निद्रालस तन सुखद चंचल॥
नेत्र ससि सीरें होत सुख पावै गात,
आवत सुगंध लिए पवन प्रभात।
वियोगिनी विदारत मंद मंद गौन,
तन गुही वास करै सिह प्रात पौन॥
नाचत आवत, पात पात हिहिनात,
तुरग चलत चाल पवन प्रभात।
आवत गुंजरत रस फूलन को लेत,
प्रात को पवन भौंर सोभा अति देत।
सौरभ सुमद धारा ऊँचो किये मस्त
गज सो आवत चल्यौ पवन प्रसस्त॥

। भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ ६८६।

आरम्भ के चरणों में कवि ने प्रातः समीर का यथा-तथ्य चित्रण किया है "गात सिहरात" और "पात-पात-हिहिनात" आदि शब्दों में कवि ने बिम्ब-ग्रहण भी कराया है और प्रकृति निरीक्षण का परिचय दिया है किन्तु अलङ्कार सुषमा के प्रलोभन से वह पूर्णतः मुक्त नहीं हो सके हैं, और अंतिम दोनों चरणों में रूपक तथा उपमा अलङ्कार की छटा दिखलाने में व्यस्त हो जाते हैं। पवन का आरोप वह एक मत्त हाथी के साथ करते हैं। बिहारी का वसन्त वर्णन भी इसी से साम्य रखता है:—

रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधु नीर,
मंद मंद आवत चल्यो, कुंजर कुञ्ज समीर। ५६०बि०बो०।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव स्वरूप भारत में जो देश-भक्ति की लहर उठी उसका सर्व प्रथम अवलोकन हम भारतेन्दु जी के काव्य में करते हैं। उन्होंने

भारत के प्राचीन वैभव का गुणगान किया, और उन शक्तिशाली केन्द्रों के प्रति निराशा प्रकट की जो राज्य वीरों की प्रसव भूमि थे और जो बल-वैभव में अग्रगण्य थे :—

हाय ! पंचनद ! हा ! पानीपत,
अजहुं रहे तुम धरनि विराजत ।
हाय ! चित्तौर निलज तू भारी
अजहूँ खरौ भारतहि मँझारी ॥

। भारत दुर्दशा ।

भारत की दासता पर क्षुब्ध होकर और उसकी दयनीय दशा देखकर अत्यन्त ओज पूर्ण शब्दों में उन्होंने भारत की पुनीत सरिताओं से प्रश्न किया कि वे भारत को डुबो कर दासत्व और पराभव के कलङ्क को क्यों नहीं मिटा देतीं:—

तुम में जल नहि जमुना गंगा,
बढ़हु वेगि कर तरल तरंगा ।
धोवहु यह कलंक की रासी,
बोरहु किन झट मथुरा कासी ॥

। भारत दुर्दशा ।

तत्पश्चात वह भारत की वर्तमान स्थिति पर विचार करते हैं । वह देखते हैं कि प्रकृति नियमित रूप से भारत को अपनी वसुधा भेंट कर रही है । जीवन की प्रधान आवश्यकता, वस्त्रों की पूर्ति करने वाली कपास और सर्वश्रेष्ठ फल आम इसी भारत की देन हैं । विश्व का अमूल्य रत्न हीरा प्रकृति ने इसी भारत भूमि को अर्पित किया है किन्तु हम उन अमूल्य निधियों का उपयोग न करके मोह निद्रा में पडे हुए हैं :—

याही भुव में होत, हीरक आम कपास,
इतही हिम गिरि गंग जल काव्य गीत परकास ।

देश प्रेम की भावना के कारण स्वदेश की दयनीय दशा को देखकर वह इतने अधिक द्रवित हो जाते हैं कि बसंत के फाग और मंगलोत्सव के प्रति उनका हृदय तरंगित नहीं होता, और उस आनन्दोत्सव के समय भी इन्हें भारत की हीन दशा पर परिताप होता है :—

भारत में मची है होरी,
धूर उड़त सोई अबिर उड़ावत सबको नयन भरोरी ।

दीन दशा अँसुअन पिचकारिन सब खिलार भिजयो री,
भई पतझार तस्य कहुँ नाहीं सोई बसत प्रगटो री ॥
पीरे मुख भई प्रजा दीन ह्वै सोई फूली सरसों री । ४७ ।
। भारतेन्दु ग्रंथावली, मधु मुकुल ।

भारतेन्दु जी ने प्रकृति को उपदेश का भी माध्यम बनाया है । प्रातः सध्यां पक्षियों को उड़ते देख कर उनके हृदय में अनुराग नहीं प्रस्फुटित होता, वरन् वे पक्षी उनको जीवन की क्षणभंगुरता का दिग्दर्शन कराते प्रतीत होते हैं, आंधी कवि के हृदय में भय का संचार नहीं करती, अपितु जीवन की अस्थिरता का उपदेश देती है, कवि प्रकृति की प्रत्येक गति में उपदेश का अनुभव करता है ।

साँझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं, कुछ तेरा है,
हम सब एक दिन उठ जायेंगे यह दिन चार बसेरा है ।
आँधी चल कर इधर उधर से तुझको यह समझाती है,
चेत चेत जिन्दगी हवा सी उड़ी तुम्हारी जाती है ।

पुष्पों का प्रफुल्लित होना और मुरझा जाना कवि को व्यग्र बना देता है, वह मानव जीवन की अंतिम स्थिति अर्थात् मृत्यु का सन्देश सुनते हैं:—

खिल खिल कर सब फूल बाग में कुम्हला कुम्हला जाते हैं,
तेरी भी गति यही है गाफिल यह तुझको दिखलाते हैं । ६७ ।
। भारतेन्दु ग्रंथावली,प्रेम प्रलाप ।

बाग में पुष्पों का खिलना और मुरझा जाना सभी देखते हैं । किन्तु भारतेन्दु जी उनके इस प्राकृतिक नियम में मृत्यु के आवाहन का अनुभव करते हैं, मनुष्य जीवन का भी तो यही अन्त है, शिशु से युवा होना और तत्पश्चात् नष्ट हो जाना ।

मनुष्य को मिष्टभाषी होना चाहिए, मधुर भाषण सबको प्रसन्न करता है और कटूक्तियाँ जीवन में कटुता भर देती है । कटु-भाषी सबकी घृणा का पात्र होता है । इसको सिद्ध करने के लिए वह कोकिल और काग का उदाहरण सम्मुख रखते हैं । दोनों पक्षी काले हैं, दोनों ही मानव के किसी उपयोग के नही हैं, किन्तु वाणी के माधुर्य के कारण कोकिल सभी के स्नेह की पात्री होती है और काग कर्कश स्वर के कारण सभी के द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से

देखा जाता है, अतः मनुष्य को मिष्टभाषी होना चाहिये। इसका उन्होंने उल्लेख किया है।

इस भाँति प्रकृति के वृक्ष, पत्र और पक्षी सब उपदेशक बन जाते हैं, प्रकृति के नियमित व्यापारों में उन्हें गुरू का सन्देश प्राप्त होता है। भारतेन्दु ब्रह्म के सगुण और लोक रंजक रूप श्रीकृष्ण के उपासक थे। कृष्ण की परम-शक्ति राधा भी इनकी उपास्या रहीं। राधा के अनुपम रूप, मान, विहार और वियोग आदि का इन्होंने विशद विवेचन किया। कृष्ण के सगुण रूप के दर्शनों के लिए भी इन्होंने शारीरिक प्रयास को निरर्थक बताकर अंतःकरण की शुद्धता को ईश्वर मिलन के लिए सार्थक सिद्ध किया है। इनके मत में—

वाह्याडम्बरों में व्यस्त मनुष्य को उस प्रियतम की झलक नहीं मिल सकती है। ब्रह्म-दर्शन सुख की चरम सीमा है। मनुष्य भ्रम वश सासारिक सुखोपभोगों को प्राप्त कर सुख मानता है। किन्तु वह मिथ्या है:—

तुम बिन प्यारे कहूँ सुख नाहीं।
भटक्यो बहुत स्वाद रस लम्पट ठौर ठौर जग माहीं।

ब्रह्म-दर्शन ही जीवन का सार्वजनिक सत्य है। बिना उसके प्रेम के विश्व के सकल सुख इसी प्रकार निःसार और निरर्थक हैं जिस भाँति लवण बिना भोजन, "सब गुन होइ जु पै तुम बिन लोन रसोई"। अतः जीव जहाज के पक्षी के समान पुनरपि ब्रह्म में आकर मिलने का प्रयास करता है:—

ताहीं सो जहाज पंछी सब गयो अहो मन होई। ३६।
भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रेम प्रलाप।

सूर ने भी 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै', द्वारा आत्मा-परमात्मा का एकीकरण किया है।

ब्रह्म सर्व-व्यापी है। प्रकृति के अणु अणु में वह व्याप्त है:—

थल थल में छिपि रहत जु यह वह रेनु रेनु ह्वै धावै।
दीप दीप जो यह समान वह किरिन किरिन बन जावै।

वह सर्व शक्तिशाली है और घट-घट वासी है। ससार के पाप उससे छिपाए नहीं जा सकते। आत्मा परमात्मा का रूप है, इस अद्वैतवाद के सिद्धांत को प्रकट करने के लिये वह कबीर की भाँति उदाहरण देते हैं कि आत्मा में ब्रह्म इस भाँति बसा हुआ है जिस भाँति तरगों में सागर। 'सिन्धु लहर हू सिन्धुमयी मूढ़ करे जो लेखै' लहर सिंधु से पूर्ण है, क्योंकि लहरों का

समूह ही विस्तृत सागर की सृष्टि करता है। इसी प्रकार असख्य आत्माओं के समन्वय से ही परमात्मा की स्थिति है। अतः आत्मा परमात्मा का रूपान्तर है।

भारतेन्दु जी के काव्य में प्रकृति के उपयोग की सर्वाधिक प्रधानता उद्दीपन रूप में ही है क्योंकि रीति-परम्परा मे रीति-ग्रथो में प्रकृति का उपयोग नायक-नायिका को हसाने और रुलाने के लिये ही किया गया था। भक्ति-काल में कृष्ण भक्त कवियो ने भी राधा कृष्ण को आलम्बन मानकर प्रकृति का उपयोग अधिकतः उद्दीपन और अलकार रूप मे ही किया। सयोग में प्रकृति ने राधा कृष्ण की रास-क्रीड़ा को सुखद बनाया और वियोग में ब्रज-बालाओं को पीडित किया। अतएव देश प्रेम की नवीन तरगों के प्रवाह में भी यह परम्परागत परिपाटी की उपेक्षा न कर सके, और राधा-कृष्ण को अधिकाश काव्य कृतियों में आलम्बन मानकर प्रकृति को उनकी अन्तर्वृत्तियो को उद्दीप्त करने वाली वर्णित किया। देश प्रेम के अतर्गत उन्होंने भारत की अधोगति और कुप्रथाओं का ही अधिकतः उल्लेख किया है और भारत की मोह निद्रा को दूर करने का प्रयास किया है। भारत के प्राकृतिक दृश्यों की ओर इनका ध्यान नहीं आकर्षित हुआ। चन्द्रावली मे यमुना-वर्णन और हरिश्चन्द्र मे गगा-छवि द्वारा कवि ने प्रकृति का स्वतंत्र महत्व अंगीकृत किया है। किन्तु उसमें भी प्रधानता मानव व्यापारों की ही लक्षित होती है। कवि का ध्यान गगा-तटवर्ती-उपादानों में विशृंखल हो जाता है। सरिता का सहज सौंदर्य उन्हें आकर्षित नहीं करता। समयानुगत राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति ने उन्हे इतना अवकाश नहीं दिया कि वे देश के प्राकृतिक दृश्यों की ओर आँख उठा कर देख पाते। इन्होंने इस बात को तो अनुभव किया कि प्रकृति-चित्रण काव्य का स्वतत्र और आवश्यक अग है। किन्तु इस मनोगत भावना को वह पूर्णतः प्रस्फुटित न कर सके। हाँ इतना अवश्य हुआ कि इनके नवीन विचारो ने परवर्ती काव्यकारों के लिये पथ-प्रदर्शन का कार्य किया, और पंडित देवी प्रसाद पूर्ण तथा पंडित श्रीधर पाठक जैसे प्रति-भाशाली कवियों को जन्म दिया।

पं० श्रीधर पाठक

भारतेन्दु काल में प्रकृति के उपासक कवियो में पाठक जी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ। भारतेन्दु ने यद्यपि प्रकृति के अग गंगा और जमुना को स्वतंत्र महत्व प्रदान किया था किन्तु वह उसका स्वतत्र चित्रण करने में सफल न हो

सके। उनकी दृष्टि नर-प्रकृति तक ही सीमित रही। पाठक जी के काव्य में हमें दृष्टि-प्रसार विस्तृत और स्वाभाविक प्रतीत होता है। इन्होंने प्रकृति का स्वतः निरीक्षण किया और अपने काव्य में प्रकृति का संश्लिष्ट, विश्लेषणात्मक और अलंकारिक सभी प्रकार का वर्णन किया। मानव-प्रकृति की ओर अधिक ध्यान न देकर प्रकृति के सहज-सौन्दर्य का निरीक्षण किया और प्राकृतिक दृश्यों का बिम्ब ग्रहण कराया।

राष्ट्र भावना की प्रेरणा से प्रेरित होकर भी इन्होंने भारत के अंग-हिमालय, काश्मीर आदि का विशद वर्णन किया। इन्होंने प्रकृति के साथ सहज-सम्बन्ध स्थापित किया। प्रकृति के सौंदर्य को देखकर इनका मन-मयूर नृत्य करने लगता था। और सौंदर्यानुभूति की आकुलता इनके काव्य स्रोत को प्रवाहित कर देती थी। विन्ध्य-पर्वत पर वनाष्टक का यथातथ्य वर्णन देखिए:—

विन्ध्य के वन्य विभाग में एक सरोवर स्वच्छ सुहावना है।
कमलों से भरा भवरों से घिरा विटपों से सजा मन भावना है॥
कल-हंस स्वतंत्र कलोल करें खगवृन्द का बोल सुहावना है।
बहै मंद समीर पराग लिये, अनुराग लिए हुलसावना है॥
काव्य कौस्तुभ, पृष्ठ ६३।

विन्ध्याचल पर स्थित सरोवर, कमल, भ्रमर, वृक्ष, खग-वृन्द और मंद-समीर का परिगणन कराकर पाठक जी प्रकृति का यथातथ्य चित्रण कर देते हैं। इस वर्णन से पाठक को सब वस्तुओं का अर्थ-ग्रहण हो जाता है। सुहावना और मन भावना से कवि के हृदय का सुन्दर दृश्य के प्रति अनुराग व्यक्त होता है। किन्तु हृदय का असीम उत्साह नहीं प्रगट होता। जब प्रकृति-दर्शन में कवि का मन रम जाता है तो प्रकृति के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उनका हृदय उसी प्रकार तरंगित हो जाता है जिस प्रकार श्याम-घटाओं को देखकर प्रेम विह्वल होकर मयूर नृत्य करने लगता है:—

काली घटा का घमंड घटा नभ मंडल तारकावृन्द खिले।
उजियारी निशा छबिशाली दिशा, अति सोहे धरातल फूले फले।

निखरे सुथरे वन पंथ खुले, तरु पल्लव चन्द्र कला से भले।
वन शारदा चन्द्रिका चादर ओढ़े लसें समलंकृत कैसे भले।
काव्य कौस्तुभ, वनाष्टक।

उनको समस्त वन-खंड शरद-चन्द्रिका की चादर से लिपटा हुआ प्रतीत होता है, शरद की शुभ्र-ज्योत्स्ना में वन का समुज्वल रूप उन्हें मुग्ध कर लेता है। इसी भाँति वर्षा के वैभव और उसके कमनीय रूप को देखकर वह आनन्द विभोर हो जाते हैं। हरी घास, हरिणियों द्वारा कुतरी हुई दूब नवीन पल्लव उनको आकर्षित करते हैं। कवि प्रफुल्लित होकर कहता है:—

तृण घास घने कुलहा उनहे, रंग नीले मनोहर मंजुल हैं,
मृग तीयन के मुख सों खुतरे सुथरे दल दूबन के बिलसै।
द्रुम बल्लिन में नव पल्लव की कमनीयता देखि हिये हुलसै,
गिरि विन्ध्य के कानन सुन्दर सो सुठि सोभा समुन्दर से दरसै।
। ६ । काव्य कौस्तुभ, वर्षा विभव।

यद्यपि पाठक जी प्रकृति के सौंदर्य के उपासक हैं, 'काश्मीर-सुषमा' 'देहरादून' 'वर्षा-विभव' आदि कविताओं में उन्होंने प्रकृति के मनोरम रूप का ही वर्णन किया है तथापि वनाष्टक में इन्होंने अपनी दृष्टि को प्रकृति के मनोहारी रूप तक ही सीमित नहीं रखा है वरन् भयोत्पादक जीव जन्तुओं का भी वर्णन किया है:—

झिल्ली करै झन्कार कहूँ, फुसकारत साँपिन रोस भरी,
घटघुघ्घू डरावने बोलत बोल बिलापै बिलार घरी पै घरी।
कहूँ हूकत स्यार हैं, भूकत स्यारी, लराई लरैं लहि लास भरी,
निसि भीसम भावने या मन की बनवास की वासना नासकरी।

झिल्ली की झन्कार, सर्पिणी की रोष-पूर्ण फुसकार, घट-घुघ्घू का विकट शब्द और शृगालों की कर्कश-वाणी सभी का उन्होंने इसमें वर्णन कर दिया है। और वन के सौम्य-रूप के साथ-साथ उसके भयकर रूप का भी दिग्दर्शन करा दिया है।

अपने प्रकृति-चित्रण में इन्होंने स्वानुभव और सूक्ष्म निरीक्षण का विशेष परिचय दिया है। वर्षा ऋतु में मैले और चक्राकार नाले को सर्प समझ कर भय का अनुभव करने वाले मेंढकों की दशा का उन्होंने स्वाभाविक चित्रण किया है।

मैलो, मटीलो, महा गदलो, तृन कीट अनेकन संग लिये,
दौरत सर्प सो दर्प भरो, गति वक्र सो कुन्डली चक्र लिये।

मेक की भीर निहारि रही दृग फारि भरे भये भारी हिये,
ऐसो नयो जल मेघन कौ, थल नीचे को जात सेहात, प्रिये ॥८॥

इस प्रकार के वर्णनों मे कवि के हृदय का प्रकृति के प्रति रागात्मक-सम्बन्ध प्रकट होता है। काश्मीर-सुषमा में कवि ने काश्मीर के शोभन दृश्यों का अवलोकन किया है, किन्तु उस चित्रण में हरिश्चन्द्र की यमुना-छवि की भाँति पाठक जी चमत्कार प्रदर्शन के फेर में पड़ जाते हैं। वह प्रकृति के जड़-चेतन और प्राकृतिक व्यापारों को उपमा तथा उत्प्रेक्षा की शृंखलाओं में आबद्ध कर देते हैं :—

फल फूलन छवि छटा जौ बन उपबन की
उदित भई मनु अवनि उदर सों निधि रतनन की
तुहिन शिखर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सौ छबि,
छई मंडलाकार, रही चारिहुँ दिसि यों फबि,
मानहुं मनिमय मौलि माल आकृति अलबेली,
बाधी विधि अनमोल गोल भारत सिर सेली।

काश्मीर सुषमा।

यद्यपि इनके इस वर्णन में भारतेन्दु और रत्नाकर की भाँति अलंकारों का चमत्कार प्रदर्शित होता है तथापि कवि का ध्यान प्रकृति के कार्यकलापों मे ही बद्ध रहा है। प्रकृति के पुजारी पाठक जी ने प्रकृति का ही निरीक्षण किया है। नर-प्रकृति की ओर उन्होंने दृष्टिपात नहीं किया है। अतएव प्रकृति के चमत्कार-पूर्ण-वर्णन में भी कवि का प्रकृति के प्रति प्रेम और उत्साह व्यक्त होता है। काश्मीर का सौम्य रूप उन्हें इतना अधिक मोहित करता है कि उसकी समता में उन्हें सुरपुर भी उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। प्रेमावेश में वे यही कहते हैं:—'या कौ उपमा याही देत सुहावै'

राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर इन्होंने भारतवर्ष के विशाल-भाल पर भूषित हिमालय का सुन्दर वर्णन किया है। हिमालय के सहज-वातावरण ने रूप, रस, गंध और स्पर्श द्वारा कवि को प्रभावित किया है। झरनों के साथ उनका राष्ट्र-प्रेम-प्रवाह अविरल गति से बह निकलता है। अम्बर-चुंबी मेघ उनको आनन्दमग्न कर देते हैं :—

झरना जहँ तहँ झरत करत कल छर-छर जल-रव,
पियत जीभ सों अंबु,अमृत उपमा हिम संभव।

पवन सीत अति सुखद, बुझावत बहु बिधि तापा,
बादर दरसत, परसत, बरसत, आपहिं आपा।

भारत के जय घोष में इन्होंने यहाँ के पर्वत, निर्झर और सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के प्रति अनुराग प्रदर्शित किया है, देश प्रेम के भावावेश में वे हिमाचल, गंगा आदि प्राकृतिक वस्तुओं के गौरव का गान करते हैं :—

जय-जय शुभ्र हिमाचल शृंगा,
कलरव निरत कलोलिनि गंगा।
भानु प्रताप चमत्कृत अंगा,
तेज पुंज तप-वेश,

जय-जय भारत प्यारा देश। भारत गीत, पृष्ठ २६।

इसी देशभक्ति की भावना में वह भारत को मानव रूप प्रदान करते हैं। भारत के पर्वत और सागर उसके गौरव को और अधिक बढाते हैं। और निर्झर-समूह तथा नील नभमंडल, हीरक-हार और नील-परिधान बन जाते हैं। मानव-रूप में भारत का इस प्रकार से वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रूप कवि के मन को मुग्ध करता है और कवि अपनी आनन्दानुभूति को इस प्रकार व्यक्त करता है:—

भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है,
शुचि भाल पै हिमाचल, चरणों में सिन्धु अचल।
उर पै विशाल सरिता सित हीर-हार चंचल,
मणिबद्ध नील नभ का विस्तीर्ण पट अचंचल।

सारा सदृश्य वैभव मन को लुभा रहा है। भारत गीत, पृष्ठ ६५।

भारत का सौम्य-सुन्दर स्वरूप इतना अधिक गौरवान्वित हो जाता है कि उसके वैभव और अनुपमेय ऐश्वर्य पर स्वयं प्रकृति मुग्ध होकर, मानव रूप धारण कर तन-मन न्योछावर कर देती है :—

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सवारति,
पल पल पलटति भेश छनिक छबि छिन छिन धारति।
विमल अंबु सर मुकुरन महं मुख बिम्ब निहारति,
अपनी छबि पै मोहि आपही तन-मन-वारति।
काव्य कमल, काश्मीर सुषमा।

काश्मीर के प्राकृतिक दृश्यों में वह मानवी-करण का आरोप करते हैं और प्रकृति को नारी का रूप प्रदान करते हुऐ उसे मानव व्यापारों से पूर्ण दिखाते हैं। क्षण-क्षण में परिवर्तित होते हुए प्राकृतिक दृश्य प्रकृति सुन्दरी के अनेक वेष हैं। निर्झरों में दृश्यों के प्रतिविम्बित रूप द्वारा व्यक्त होता है मानो प्रकृति रानी दर्पण में अपनी छविको देख रही है।

शृंगार रस के अन्तर्गत मानवीकरण की उद्दीप्त भावना का एक अंग मानकर उद्दीपन रूप में उसका प्रयोग किया था। इस काल में प्रकृति के साथ एकात्म्य के अनुभव का चित्रण अधिकतः वियोग पक्ष की उद्वेगावस्था में ही किया गया था। वास्तव में मानव हृदय की दुःखानुभूति की अतिशयता ही उसे उद्विग्न बना देती है और उस समय वह जड़ और चेतन का भेद भुला-कर प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में संवेदनशीलता और सहानुभूति का अनुभव करता है। पाठक जी ने भी दुःख, सताप और क्षोभ की दशा में प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित किया और अत्यन्त दीन भाव से वर्षा ऋतु में मेघों के जल वृष्टि न करने पर और देश के कष्ट से पीड़ित होकर विनय करने लगे :—

हे घन ! किन देशन में छाये, वर्षा बीति गई,
फिरहु कहाँ भरमाये, क्या यह रीति नई,
सावन परम सुहावन, पावन सोभा जोय,
सो बन तुम्हरे आवन, रह्यो भयावन होय।

भारत कृषि-प्रधान देश है, ग्रीष्म की प्रचण्ड-आतप के पश्चात् वर्षा के आगमन पर समस्त भूखण्ड हरा भरा हो जाता है, किन्तु इस वर्ष जलवृष्टि न होने के कारण देश की अत्यन्त शोचनीय अवस्था है। पाठक जी अत्यन्त द्रवित हो जाते हैं और वृष्टि विहीन भारत की त्रस्त एवं दु.खग्रस्त दशा का दिग्दर्शन कराते हुए वह मेघों से प्रार्थना करते हैं :—

मुग्ध मयूर नचावहु, निज घन घोर सुनाय,
दादुर भेक बुलावहु, नव अभिषेक कराय।
पोखर नदी तड़ागन बगियन बीच,
गैल गली घर आगन, भरहुँ मचावहुँ कीच।
करि कृत-कृत्य किसानन, सवत्सर सरसाउ,
सींचि सस्य तृन धानन, तब निज धाम सिधाउ।

समस्त चराचर प्रकृति के प्रति उनके हृदय में दया भाव उमड़ता है और हृदय की कोमल अनुभूति करुण अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्फुटित होती है।

प्रकृति में मानव भावनाओं के आरोप में रीतिकालीन कवियों और पाठक जी मे मूल भावना और ससारी भाव एक ही है किन्तु दृष्टिकोण में अन्तर है। रीतिकाल में नायक-नायिका के पारस्परिक-प्रेम ने इस भावना को जन्म दिया था और पाठक जी ने देश-प्रेम के वशीभूत हो अपनी जन्मभूमि के कष्ट से द्रवित होकर इस प्रकार का आरोप किया। कल्याण-कामना के लिये सूर्य, सोम, मरुत आदि प्राकृतिक तत्वों की प्रार्थना की प्रथा तो वैदिक काल से ही चली आ रही थी, किन्तु उसमें श्रद्धा और भय का समन्वय था। पाठक जी के घन-विनय में हम करुणा, दया, कायरता, भर्त्सना, और विनय के भावों का अवलोकन करते हैं। इनकी इस कविता में मेघों में देवत्व का आरोप नहीं लक्षित होता वरन् मानव अनुभूतियों को समझ लेने की सामर्थ्य प्रकट होती है। मेघों को मानव-धरातल पर लाकर वह अपनी आन्तरिक-व्यथा को व्यक्त कर उसके प्रतीकार की प्रार्थना करते हैं।

भारत की अज्ञानावस्था और अधोगति से दुखित होकर अन्धकार को अज्ञान और प्रकाश को ज्ञान के प्रतीक मान कर भारत को मोह निशा से जगाने के लिये पृष्ठ-भूमि के रूप में इन्होंने सूर्योदय का यथातथ्य चित्रण किया है :—

भारत, चेतहु नींद निवारो,
बीती निशा उदित भये दिन मनि कब को भयो सकारो,
बिनस्यो तम परिताप पाप संग नभ नखत्र बिलगाने।

पृष्ठ ५१, भारत गीत।

अज्ञानांधकार के कारण किंकर्त्तव्य-विमूढ और मोह-निद्रा से अभिभूत भारतवासियों को वह भैरवी सुनाते है।

तम-परिताप विनष्ट हो गया है, पाप-रूप नक्षत्र विलुप्त हो गये हैं। निशि-चर खग सब छिप गये हैं।

भारतेन्दु जी के प्रभाव-स्वरूप उन्होंने राजभक्ति का भी परिचय दिया है। अंग्रेजों के सुव्यवस्थित राज्य-शासन में वे उनका गुण-गान करते हैं और उनसे सम्बन्धित उनका देश भी इनकी कविता का विषय हो जाता है। 'ब्रिटेन-दर्शन' में वह ब्रिटेन के प्राकृतिक-सौन्दर्य पर विमुग्ध हो जाते हैं।

राजभक्ति और प्रकृति प्रेम से प्रेरित होकर वह ब्रिटेन के प्राकृतिक दृश्यों को भारत के प्राकृतिक दृश्यों से अधिक गौरव प्रदान करते हैं। वहाँ की सरिता और झीलों में उन्हें भारत के झेलम-तट से अधिक निर्माल्य का अनुभव होता है।

पाठक जी के प्रकृति-चित्रण स्वतंत्र प्रकृति-चित्रण हैं। उनके काव्य का मुख्य विषय अपने देश के सुन्दर प्राकृतिक दृश्य हैं। रीति-कालीन काव्यकारों की भाँति आलम्बन नायक-नायिका नहीं हैं, अपितु स्वयं प्रकृति है। जो आश्रय कवि को दुख सुख प्रदान करती और संवेदना प्रकट करती है। किन्तु अपनी जन्म-भू, भारत वसुन्धरा का सौम्य स्वरूप उनके हृदय में अतुलित आनन्द और उत्साह का संचार कर देता है और उस समय स्वयं प्रकृति भारतश्री की प्रखर प्रतिभा से लज्जित सी होती हुई प्रतीत होती है। कवि मुग्ध होकर जय-घोष आरम्भ कर देता है :—

जय जय जगमगति जोति, भारत भुवि श्री उदोति।
कोटि चंद मंद होत, जग उजासिनी,
निखरत उपजत विनोद, उमगत आनन्द पयोद,
सज्जन गन मन कुमोद वन विकासिनी।

। पृष्ठ ५०, भारत गीत।

भारत की ज्योति को प्रतीपालकार में वह करोड़ों चन्द्रों से भी अधिक प्रखर वर्णन करते हैं, उस अनुपम सौन्दर्य सुषमा के अवलोकन से उन्हें अतिशय आनन्द प्राप्त होता है। उस आनन्द-सरोवर, में सज्जनों के मन-रूपी कमल विकसित होते हैं, हृदय की प्रसन्नता में प्रफुल्लित कमल का आरोप कवि ने रूपक अलंकार द्वारा किया है।

नक्षत्र-समूह से प्रकाशित, भारत के नील-नभ-मंडल को देखकर कवि का मन आनन्द-सरोवर में अवगाहन करने लगता है और उत्प्रेक्षा द्वारा वह उस सौन्दर्य को इस प्रकार वर्णन करते हैं :—

मिलन प्रिय अभिसारि सुर तिय चलत चञ्चल पवन,
छिटक छूटत तार किंकिनि, टूटि नूपुर नगन,
निरखहु रैनि भारत गगन। पृष्ठ ६६ भारत गीत।

वह तारागण में अभिसार के लिये जाती हुई देवांगना की किंकिणी के तार और नूपुरों के नग की उत्प्रेक्षा करते हैं। प्रकृति को प्रस्तुत मान कर मानव को अप्रस्तुत रूप में रखते हैं।

"वर्षा-विभव" में वह वन भूमि को नाना प्रकार के पुष्प, शीतल सलिल और मन्द समीर से युक्त देख कर मानव हाव भावों का आरोप करते हैं और उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलकार द्वारा इस प्रकार व्यक्त करते हैं :—

फूलि कदंब उठे चहुँ ओर,सोई मन को मनुमोद प्रकास है।
ब्यारि चले ते हिले तरु डारि, सोई मनु आनंद नृत्य विलास है।
कांटेन सों युत केतकी सोहै,सोई रस की मुसिक्यानि सहास है।
ताप सों मुक्त सिंची नव नीरसों,यों वन भूमि दिखावे हुलास है।
काव्य कौस्तुभ।

कदम्ब की प्रफुल्लता में वह मन के मोद, पवन प्रेरित तरु शाखा में नृत्य-विलास और केतकी में मन्द मुस्कान की सभावना करते हैं। समस्त प्रकृति उन्हे वर्षागमन पर आनंद, उल्लास से पूर्ण प्रतीत होती है। पावसागम के कारण समस्त बन खण्ड मुखरा रहा है और अपने हार्दिक उल्लास को व्यक्त कर रहा है।

पाठक जी का देश-प्रेम प्रकृति-प्रेम पर विजय प्राप्त करता है। प्रकृति उनके देश की अनुगामिनी है। भारत की श्री पर मुग्ध होकर प्रकृति भी अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती है, यही नहीं भारत की विभूति, प्रकृति की सौन्दर्य वृद्धि का साधन हो जाती है। प्रकृति नटी भारत को अपना विभूषण बना लेती है। भारत की महिमा का वर्णन करते हुए वह कहते हैं :—

स्वर्गिक शीशफूल पृथ्वी का,
प्रेम मूल प्रिय लोकत्रयी का
सुललित प्रकृति नटी का टीका,
ज्यों निशि का राकेश।
पृष्ठ २६ भारत भारती।

प्रकृति के रूप को भारत की विभूति इसी भाँति द्विगुणित कर देती है जिस प्रकार रात्रि की शोभा को मयंक बढ़ा देता है।

इस प्रकार अलकार रूप में इन्होंने प्रकृति को प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों रूप में उपयोग किया है।

इनके काव्य के आलम्बन नायक-नायिका न होने के कारण मानव व्यापारों की पृष्ठभूमि अर्थात् उद्दीपन रूप में प्रकृति का उपयोग नहीं है। कहीं कहीं एक दो उद्धरण हमें उद्दीपन रूप में प्राप्त होते हैं। वर्षा को

अन्य पूर्ववर्ती काव्यकारों की भाँति इन्होंने उद्दीप्त करने वाली ऋतु उल्लेख किया है :—

वारि फुहार भरे बदरा, सोई सोहत कुंजर हैं मतवारे,
बीजुरी ज्योति ध्वजा फहरै,घन गर्जन शब्द सोई हैं नगारे,
गेर को घोर को ओर न छोर, नरेसन की सी छटा छवि धारे
कामिनि के मन को प्रिय पावस, आयो प्रिये, नव मोहिनी डारे ।

श्याम-जलद, विद्युत की ज्योति, घन गर्जन से युक्त वर्षा ऋतु को पाठक जी ने कामियों की प्रिय ऋतु उल्लेख किया है। वह ऋतु प्रेमी प्रेमिका को मंत्र मुग्ध सी कर लेती है और दोनों के संयोग सुख को बढ़ाती है ।

पाठक जी देश प्रेमी थे। इन्होंने प्रकृति में अपनी जन्मभूमि, और जन्म भूमि में प्रकृति के दर्शन किये। परमतत्व के दर्शन का सौभाग्य इन्हें नहीं प्राप्त हुआ। समस्त प्रकृति के मूल में इन्होंने सर्वोपम शक्ति का अनुभव किया जो प्रकृति का सृजन, पालन और संहार करती है। प्रकृति के वन, लता, झील सरोवर, सूर्य, चन्द्र, पक्षी आदि सब में उस सर्व शक्तिशाली की लीला का अनुभव किया है :—

ध्यान लगाकर जो तुम देखो सृष्टी की सुघराई को,
बात बात में पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को ।
ये नदियाँ ये झील सरोवर कमलों पर मोरों की गुंज,
बड़े सुरीले बोलों से अनमोल धनी वृक्षों की कुंज ।
बरजन गरजन घन मंडल की बिजली बरषा का सञ्चार,
जिसमें देखो परमेश्वर की लीला अद्भुत अपरंपार ।
काव्यांग कौमुदी पृष्ठ १२६ ।

सकल विश्व में कवि ने पर-ब्रह्म की अपार लीला का प्रसार पाया श्रीमद्भगवद् गीता के प्रभाव स्वरूप अवतार वाद की भावना भी इनके काव्य में लक्षित होती है। भगवान की प्रार्थना करते हुए वह कहते हैं :—

जब जब धर्म का धरणि पे प्रभु ह्रास हुआ,
थल थल पाप का प्रबल वनित त्रास हुआ ।

जग, सुख वर्त्म से विमुख हो, दुख ग्रास हुआ,
तब तब तू हुआ उदय दुर्नय नाश हुआ।
। भारत गीत, पृष्ठ २ ।

गीता के :—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानं धर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।

श्लोक के अनुसार इन्होंने भगवान् के पृथ्वी पर अवतरित होने के विचारों को अपनाया और भारत की हीनावस्था का दिग्दर्शन कराते हुए एक बार भारत भू में पुनः जन्म लेने की प्रार्थना की।

पाठक जी ने प्रकृति चित्रण में एक नवीन भावना का प्रादुर्भाव किया—प्रकृति मधुर भावों के आलम्बन रूप में प्रकट हुई। इन्होंने प्रकृति को मानव भावों और व्यापारों से पूर्ण देखा और उसमें प्रति स्पन्दन प्राप्त किया। इसमें यह अपने समकालीन कवियों से बहुत आगे बढ़ गये। रीति कालीन कवियों की भाँति मानव क्रियाओं की पृष्ठभूमि के रूप में अथवा चमत्कार प्रदर्शन के रूप में इन्होंने प्रकृति का वर्णन नहीं किया। अलंकार रूप में भी प्रकृति का उपयोग अन्य कवियों से अपेक्षाकृत कम किया। देश के अंग रूप में भारतेन्दु जी पथ प्रदर्शक का कार्य कर ही चुके थे, पाठक जी ने देश प्रेम के भावों से ओतप्रोत होकर भारत के प्राकृतिक दृश्यों को अत्यन्त गौरव पूर्ण स्थान प्रदान किया। शताब्दियों से मानव की भाव शृंखलाओं से आबद्ध प्रकृति को इन्होंने मुक्त किया। मानव की अनुगामिनी प्रकृति इनके काव्य में मानव की स्वामिनी बन गई। इन्होंने प्रकृति की पृथक् सत्ता स्थापित की और प्रकृति के स्वतंत्र चित्रों को महत्व दिया।

देवी प्रसाद पूर्ण

पूर्ण जी को भी भारतेन्दु काल के प्रकृति सेवी कवियों में अत्यन्त गौरव-पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। इनके प्रकृति-चित्रण में हमें पाठक जी के समान एकात्म्य और अनुराग नहीं लक्षित होता। प्रकृति इनकी सहचरी नहीं है। इनके दुख-सुख की सह-भागिनी नहीं है। यह उसमें मानव हृदय का सा प्रति-स्पन्दन प्राप्त नहीं करते, किंतु उसके वैभव, उसके विकृत रूप अथवा सौम्यता की उपेक्षा भी नहीं करते, नेत्रोन्मीलन कर प्रतिपल पर परिवर्तित प्रकृति के रूप को हृदयङ्गम करते हैं, उग्ररूप को देख कर शंकित होते और सुन्दर रूप देखकर इसी भाँति प्रफुल्लित हो जाते हैं। जिस प्रकार मेघाच्छन्न नभो-मण्डल को

देख व ह मयूर नृत्य करने लगता है। इनका प्रकृति प्रेम शुद्ध और सरल है। यह प्राकृतिक वैभव को सहज रूप में ग्रहण करते हैं यही कारण है कि इन्होंने प्रकृति का यथा-तथ्य चित्रण किया है। उसमें कवि के हृद्गत भावों का सामंजस्य नहीं है। ग्रीष्म की प्रचण्डता का स्वाभाविक चित्रण देखिये :—

आवत धुंधात, घनी छावत गगन धूरि
प्रबल बवंडर ठौर ठौर भूमि भासे हैं।
तावत प्रचण्ड मार्तण्ड महि मण्डल को,
जरत जमीन जल जीव जाल तासे हैं।
डारन पखानहू पै पानी तो छनक जात,
'पूरन' विलोकि गति भाव यों प्रकासे हैं।
ग्रीषम समय में को चलावे जीवधारिन की,
जामें जड़ पाहन हू व्याकुल पियासे हैं ॥१॥

पूर्ण संग्रह ग्रीष्म।

ग्रीष्म की प्रचण्डता का कवि ने सहज वर्णन कर दिया है। जैसा कुछ कवि ने देखा अथवा अनुभव किया उसका ज्यों का त्यों दिग्दर्शन करा दिया। चित्रण को उन्होंने कवि कल्पना अथवा व्यक्तिगत भावना से अतिरंजित नहीं किया है। इसी प्रकार बसंत के नाना भाँति के पुष्पों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं:—

चंपक, निवौरी, दौना, मोगरा, चमेली, बेला,
गेंदा गुलदावदी, गुलाब सोभा साली है।
केतकी, कनेर, गुलसब्बो, गुलनार, लाला,
हिना, जसवन्त, कुंज, केवड़ा की आली है।
पूरन विविध चारु सुन्दर प्रसूनन की,
छटा छिति मण्डल पै छै रही निराली है।
पूरन को मानो बनमाली के चरन कंज,
साजत बसंत माली फूलन की डाली है ॥ १० ॥

पूर्ण संग्रह बसंत ॥

इसमें कवि ने बसंत में विकसित समस्त पुष्पों का परिगणन करा दिया है। किन्तु यह वर्णन कवि का निजी है। परम्परागत अथवा देश काल की त्रुटि से पूर्ण नहीं है। केवल किंशुक, गुलाब, कचनार और अनार का ही

वर्णन नहीं है। अपितु चंपक, हिना, केवड़ा आदि का विवरण है। चित्रण से प्रतीत होता है कि स्वयं कवि ने बसन्त में समस्त पुष्पों का अवलोकन किया है। प्रकृति के प्रति उनका प्रेम अत्यन्त सरल और स्वाभाविक है। प्रकृति के सुन्दर रूप को देखकर वह उसी प्रकार प्रसन्न हो जाते हैं जिस प्रकार इच्छित वस्तु को देख कर एक बालक प्रफुल्लित हो जाता है। रजत-गिरि कैलाश को देख कर वह अपनी आनन्दानुभूति को इस प्रकार प्रकट करते हैं।

'आहा सुखद प्रभात प्रभंजन,
ताप शमन तापस मन रञ्जन।
आहा! मानस ताल सुभग का तीर अधीर हृदय धृतिकारी।
आहा! नीर तरङ्ग चपल ये चित्त चपलता हरने हारी।
पूर्ण संग्रह पृष्ठ १४५।

हिमाच्छादित कैलाश पर्वत पर प्रवाहित पवन, मानसरोवर तट, और चपल तरंगों के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उनका मन तरंगित हो जाता है। वर्षा में वह समस्त प्रकृति को उल्लासपूर्ण देखते हैं:—

गाजे मेघ कारे मोर कूकें मतवारे, रटें
पपी वृन्द न्यारे, जोर मारुत जनावती।
इन्द्र चाप भ्राजे वक अवली विराजे छटा,
दामिनी की छाजे भूमि हरित सुहावती।
पूरन सिगार साजि सुन्दरी समाज आज,
झूलती मनोहर मराल मंजु गावती।
चन्द बिनु पावस में जानि के सुधा की हानि,
मानो चंद्र मण्डली पियूष बरसावती।
। पूर्ण संग्रह पृष्ठ १०५।

वर्षा की मनोहर छटा का अवलोकन कर कवि का मन प्रफुल्लित हो जाता है। श्याम घटा, मतवाले मयूर, पपीहा, झंझा, इन्द्र-चाप, बक पंक्ति और हरिताम्बरा पृथ्वी को देख कर वह उल्लास और माधुर्य का अनुभव करते हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो चारों ओर अमृत वर्षा हो रही है। उन्होंने प्रत्येक ऋतु में नेत्रोन्मीलन कर प्रकृति के दर्शन किये हैं। प्रकृति के सौम्य रूप के अवलोकन में तो उनकी दृष्टि का प्रसार प्रत्येक प्राकृतिक तत्व के

प्रति रहा है। उन्होंने प्रेम विभोर होकर प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। शारदागमन पर जड़ और चेतन प्रकृति की प्रसन्नता का वह इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

विचरन खज लागे, जलधर बृन्द भागे,
बढ़न अनन्द लागे, शोभा अधिकाई है।
विकसन कंज लागे, हुलसन भृङ्ग लागे,
विलसन हंस लागे मञ्जुता सुहाई है।
मारग चलन लागी, सरिता थिरन लागी,
तीतुली नचन लागी, सरद अवाई है।
चन्द को चकोरन की मण्डली तकन लागी,
लागी भूमि मण्डल पै लसन जुन्हाई है।

शरद के आगमन पर खंजन, कमल भृङ्ग और हंस का वर्णन तो प्रायः सभी रीतिकालीन काव्यकारों ने किया था। पूर्ण जी के इस वर्णन में हमें सूक्ष्म दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। वर्षा में रिक्त हुऐ जलविहीन मेघ शरद में इधर उधर दौड़ते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इसका वर्णन तो सेनापति ने भी "पूरब कौं भाजत हैं गगन घन क्वार के" द्वारा किया है। किन्तु सरिताओं के स्थैर्य और तितलियों के नृत्य में कवि का निजीपन है। जल वृष्टि के कारण वर्षा ऋतु में सरिताओं की गति अत्यन्त उद्धत हो जाती है, और शरद में वर्षा के समाप्त हो जाने पर गति में स्थिरता आ जाती है। शरद ऋतु में चित्र-विचित्र वर्णों की सुंदर तितलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। कवि ने इसका स्वतः निरीक्षण किया है और आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण कर दिया है।

पूर्ण जी के प्रकृति-चित्रण में हमें प्राचीन और नवीन दोनों रीतियों के दर्शन होते हैं। प्राचीन परिपाटी के अनुसार रीतिकाल के प्रभाव-स्वरूप प्रकृति में उद्दीपन और अलङ्कार की प्रधानता और भक्तिकाल की प्रवृत्ति के अनुसार ब्रह्मवाद एवं सर्ववाद की झलक मिलती है। नवीन भावना के अनुसार देश के अंग रूप में प्रकृति का विशिष्ट स्थान है। पुरानी परिपाटी के अनुसार प्राकृतिक ऋतुओं का उन्होंने रूपक और उत्प्रेक्षा अलङ्कार द्वारा चित्रण किया है। इस प्रकार के यथा तथ्य चित्रण में कहीं पर यह सेनापति द्वारा प्रभावित हुए हैं कहीं देव और बेनी प्रवीन की भाँति नायिका के

शरीर में प्रकृति का प्रादुर्भाव किया है और कहीं बिहारी का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। फूली सरसों, भ्रमर-गुंजन, रसाल, शीतल समीर और कोकिल कलाप से पूर्ण बसन्त ऋतु में धरित्री को बसंत की वनिता का रूप प्रदान करते हुए कवि वर्णन करते हैं:—

पीत रंग सारी गौन फूली सरसों की थली,
अलक छुटा है पाँति अलिन अनंत की।
झूमर रसाल बौर अंगराग है पराग,
पौन रस बात है सहेली हासवंत की।
कोकिल कलाप की अलाप गान मण्डल है,
कंजन विकास तेज आभा रति कंत की।
लाय मन चेति किन मानिन बिलोके छबि,
अवनि बनी है बनी बनिता बसंत की।
पूर्ण संग्रह पृष्ठ १००।

कवि ने इसमें फूली सरसों, भ्रमर समूह, रसाल पराग आदि में बसंत की पत्नी की पीत सारी, अलक छुटा, झूमर और अंग राग का आरोप किया है:—

धरयो है रसाल मौर सरस सिरस रुचि,
ऊँचे सब कुल मिले गनत न अन्त हैं।
सुचि है अवनि बारी भयो लाज होम तहाँ,
भर देखि होत अलि आनन्द अनन्त है।
नीकी अगवानी होत सुख जनवासो सब,
सजी तेल ताई चैन मैन मयमन्त है।
सेनापति धुनि द्विज साखा उच्चरत देखो,
बनी दुलहिन बनी दूलह बसंत है ॥ ७ ॥
सेनापति कवित्त रत्नाकर।

सेनापति के इस चित्रण से पूर्ण जी के चित्रण की समता करने पर प्रतीत होता है कि पूर्ण जी का चित्रण अधिक सजीव है यद्यपि दोनों कवियों ने रूपकालंकार का आश्रय लेकर बसन्त का यथा तथ्य वर्णन किया है। किन्तु दोनों के दृष्टिकोण में महान् अन्तर है। पूर्ण जी के वर्णन में सूक्ष्म निरीक्षण प्रकट होता है। इन्होंने प्रथम प्रकृति का निरीक्षण किया है।

तत्पश्चात मानव रूप और व्यापार की योजना की है। सेनापति के वर्णन में मानव व्यापारों को सम्मुख रख कर प्राकृतिक पुष्प, पक्षी आदि की खोज की गई है। पूर्ण जी ने प्रकृति को प्रधानता दी है। और सेनापति ने नर प्रकृति को।

· शरद ऋतु में निर्मल आकाश में तारक समूह को देख कर कवि हेतूत्प्रेक्षा द्वारा मयंक-विहीना रजनी का चित्रण करता है :—

सरद निशा में व्योम लख के मयंक बिन,
पूरन हिये में इमि कारन विचारे हैं।
विरह जलाई अबलान को दहत चन्द्र,
ताते आज ताप विधि कोपे दयावारे हैं॥
निसिपति पातकी को तम की चटान बीच,
पटकि पछार अग निपट बिदारे हैं।
ताते भयो चूर चूर उचटे अनत कन,
छिटि के सघन सो गगन मध्य तारे हैं ॥पृष्ठ ११७॥

कवि ने तारागण में, वियोगिनी को दग्ध करने के कारण दंडित, चन्द्र के टुकड़ों की सम्भावना करली है। यह वर्णन कवि की कल्पना द्वारा अति-रंजित है। वास्तविक तथ्य से दूर है, और रीतिकाल परम्परा द्वारा प्रभावित है। चमत्कार प्रदर्शन की भावना प्रधान है।

इन्होंने भक्ति-भाव में भी प्रकृति का वर्णन किया है। गङ्गा हिन्दुओं के लिये पूज्या है। उनका विश्वास है कि इसके पुनीत जल का पान और स्नान करने से मनुष्य के समस्त कल्मष दूर हो जाते हैं। पूर्ण जी ने भी इसको पावन मान कर इसका वर्णन करते हुए अपनी भक्ति प्रकट की है। प्रथम वह इसके जल की शुभ्रता का वर्णन करते हैं :—

चामर सी, चंदा सी, चद्रिका सी चंद ऐसी,
चांदनी चमेली चारु चांदी सी सुघर है
कुंद सी, कुमुद सी, कपूर सी कपास ऐसी,
कल्प तरु कुसुम सी कीरति सी बर है ॥पृष्ठ १२२॥

गगा के स्वच्छ जल के साथ वर्णसाम्य दिखाने के लिये वह उपमानों की झड़ी लगा देते हैं। तत्पश्चात भक्ति-भाव से गंगा की महिमा का वर्णन करते हैं :—

'देवसरि क्षेमकरी, तारि देती कलुष परिवारा'

इसी प्रकार की भक्ति-भावना से प्रेरित होकर कवि ने पञ्चवटी के परम पावन रम्य-कानन का वर्णन किया है। पंचवटी का अनूप कानन इतना सुन्दर और पावन है कि 'आनन्दन वश है सुर वृंदन सत नदन वन वारे' पञ्चवटी वर्णन यद्यपि भक्ति और प्रेम का परिचायक है तथापि चित्रण अत्यन्त मनोहर है। कवि ने ऐसा सुन्दर चित्रांकन किया है कि पाठक स्वयं उसके रूप का बिम्ब ग्रहण कर लेता है। लताओं का लावण्य हृदय में बस जाता है और पक्षियों की विविध क्रीड़ायें प्रत्यक्ष सी हो जाती हैं।

हरे हरे लहलहे विपुल द्रुम वृन्द वृन्द बन सोहै,
लोनी लतिका अति ललित फल वलित लेत मन मोहै।
केकी कीर कपोत कोकिला चातक कोक चकोरा,
मैना लवा लाल मुनिवर बहु विहग चहु ओरा।
विविध रंगीले भेस छबीले अमित मधुर छबि छावै,
नाचैं, उड़ै चुगै छकि विहरै सहज हियो हुलसावै।

ग्रामों के प्रति भी इन्होंने अपनी भक्ति प्रकट की है। उनकी रक्षा के लिये कभी कृष्ण से प्रार्थना की है और कभी देशवासियों से उच्च स्वर से पुकार की है।

देश-भक्ति के अन्तर्गत इन्होंने पाठक जी की भांति काश्मीर, हिमालय आदि का वर्णन नहीं किया है। इनकी देश-भक्ति-विषयक-कविता में राज-भक्ति की प्रधानता है। इनके मत्यानुसार जिस प्रकार जीवन में ईश्वर भक्ति नितान्त आवश्यक है उसी भांति राज-भक्ति भी एक आवश्यक अंग है।

परमेश्वर की भक्ति है मुख्य मनुज का धर्म,
राज-भक्ति भी चाहिये सच्ची सहित सुकर्म।

इन्होंने अधिकतः भारत की आर्थिक अवस्था के प्रति असन्तोष प्रकट किया है। और भारत के आर्थिक और समाजिक व्यवस्था के सुधार की ओर भारतवासियों का ध्यान आकर्षित किया है। अतः इनके काव्य में भारत के प्राकृतिक दृश्यों और भारत के अग गिरि, निर्झर, उपवन आदि का वर्णन नहीं है। प्राकृतिक वैभव से सम्पन्न अतुल धन राशि से पूर्ण भारत का धन विदेश चला जा रहा है, यह विचार उन्हें इतना अधिक व्यग्र कर देता है कि देश-भक्ति विषयक-कविता की रचना करते समय उनका ध्यान

प्राकृतिक दृश्यों की ओर नहीं जाता, 'वसन्त वियोग' कविता में इन्होंने भारत को उद्यान का रूप प्रदान किया है। प्राचीन भारत सुख-सम्पत्ति-रूप प्राकृतिक वैभव से पूर्ण था किन्तु अब वसन्त वाटिका उजड़ गई है। उसके अतीत गौरव का दिग्दर्शन कराते हुए कवि अब की अशोभनीय अवस्था से दुखित होता है :—

थे जहाँ निर्मल कुंड
हाँ पड़े रासभ झुंड।
था जहाँ पुष्प प्रबंध
छाई वहाँ दुर्गन्ध।
थे जहा तरुवर पुंज
शुभ ललित लतिका कुंज।
वहाँ जमे रूखे रूख
पौधे गये मृदु सूख ॥पूर्ण संग्रह, पृष्ठ १५६॥

हरा भरा भारतोद्यान अब सूख गया है। दशा अत्यन्त दयनीय हो गई है। कवि का हृदय भारत के अतीत और वर्तमान में इतना अधिक वैपरीत्य देख कर क्षोभ और नैराश्य से पूर्ण हो जाता है।

उद्दीपन

'प्रकृति के उद्दीपन रूप के चित्रण में पाठक जी रीतिकालीन कवियों से प्रभावित हैं। प्रकृति संयोग में मनुष्य को सुखद प्रतीत होती है। और वियोग में कष्टकारिणी हो जाती है। ऋतु-वर्णन में इन्होंने वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद और शिशिर ऋतु का वर्णन किया है। प्रत्येक ऋतु को मानव की प्रफुल्लित अवस्था में संयोग सुख के आनन्द की वृद्धि करने वाली और अव्यवस्थित अवस्था में दुःखवर्द्धिनी प्रकट किया है। वसन्त और पावस का दोनों दशाओं में अपेक्षाकृत अधिक उल्लेख है। वसन्त का सौम्य रूप अत्यन्त उत्तेजक होता है। यह नव-विकसित रूप सतोष के मन में भी वासना की जागृति कर देता है :—

'लागत वसन्त नव संत मन जागो मैन
देन दुख लागो विरहीन बरियारो है'।

तभी तो विरहिणी प्रकृति के उल्लास पर क्षुब्ध होकर ईर्ष्याजन्य झुंझलाहट प्रकट करती है। वह कहती है :—

कूकि कूकि कोकिला करेजो करे टूकि टूकि,
पाछे परी कारी दई मारी काक पाली है।
काम के कृसानु को बढ़ावत समीर तापे,
जारत पलास कचनारन की लाली है।
आय निर्दयी ये लगावत जरे पै लोन,
'पूरन' जू यामें काहू सौत की कुचाली है।
लायो वन माली बिन साज के बसन्त डाली,
आली यो किते को बजमारो बरै माली है ॥पृष्ठ ६८॥

अपने प्रियतम के वियोग में नायिका को प्रकृति के नवीन रूप से द्वेष होता है। वह 'दई मारी' 'निर्दयी' और 'बजमारो' शब्दों द्वारा अपने हृदय के क्षोभ को प्रकट करती है। पद्माकर के जगद्विनोद में वियोगिनी नायिका ने इसी भाँति बसन्त में कोकिल और पावस में पपीहा के प्रति अपने हृदय का क्षोभ प्रकट किया है। कोकिल के तो रूप और गुण दोनों को लिये अत्यन्त क्षोभ प्रकट किया है :—

कारी कुरूप कसाइने ये सु कुहु क्वेलिया कूकन लागी। ३८१।
। जगद्विनोद ।

पपीहा की 'पिउ-पिउ' की रटन विरहिणी के हृदय में प्रिय की स्मृति को तीव्र कर देती है। वह उसे पापी कहकर उसके प्रति अपने क्षोभ को व्यक्त करती है—

पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो,
काहू बिथित वियोगिणी के प्रानन को प्यासो है॥ ३८५॥
। जगद्विनोद ।

अपने हार्दिक सुख और मानसिक आनन्द में मनुष्य को प्रकृति में भी एक प्रकार की नवीनता का अनुभव होता है। जिस भाँति वियोग की अतिशयता में मनुष्य का प्रकृति से एकात्म्य हो जाता है। उसी भाँति आनदातिरेक में भी मानव का प्रकृति से तादात्म्य हो जाता है। अपने हृदय की उद्दीप्त भावना में प्रकृति उसे उसी भावना से अनुरंजित प्रतीत होती है जिसका वह स्वयं अनुभव कर रहा है। कृष्ण जन्म के अवसर पर ब्रजवासियों को प्रकृति में अतिशय उत्साह लक्षित होता है। प्रकृति और ही प्रकार की प्रतीत होती

है। यमुना, पवन, कदंब, मयूर आदि समस्त चराचर प्रकृति आनंद और हर्ष से पूर्ण हैं। समस्त नर-नारी इसका अनुभव करते हैं—

औरे भाँति आज नीर यमुना किलोलति हैं;
औरे भाँति डोलत समीर सुखदाई है।
औरे भाँति भयो है कदम्बन भ्रमर भार,
धुरवान मुरवान औरे धुनि छाई हैं॥
स्याम के जनम दिन भीर गोप गोपिन की,
औरे भाँति नन्द भौन जाल भूरि धाई है।
औरे भाँति 'पूरन' रसाल नाग छाजत है,
औरे साज सग आज, बाजत बधाई है॥
। पूर्णसंग्रह, । पृ० १२४ ।

राम के अवध-पुरी लौटने पर तुलसी दास ने भी प्रकृति में इसी प्रकारके उल्लास का अनुभव किया था—

भइ सरयू अति निर्मल नीरा, बनी सुहावन त्रिविध समीरा।

पूर्ण जी को तो समस्त प्रकृति कृष्ण जन्म पर 'बधाई बधाई', शब्द कहती हुई प्रतीत होती है। वह चातको की धुनि में सोहिले सुनते हैं। जो जुगनू बिहारी की वियोगिणी नायिका को अंगार के समान प्रतीत होते थे वही कृष्ण जन्मोत्सव पर पूर्ण जी को दीप माला के समान प्रतिभासित होते हैं—

चातक न बोलें ध्वनि सोहिले की सोहि रही,
जोगन न होंहि दीप माला सरसाई है।
। पूर्ण संग्रह । पृ० १२३ ।

सचराचर प्रकृति मानव की प्रसन्नता से प्रसन्न है।

पावस का उद्दीपन रूप में कवियों ने विशद वर्णन किया है। यह ऋतु समस्त धरित्री को हरिताम्बरा बना देती है। चातक को स्वाति जल प्रदान करती है। मोर मत्त होकर नृत्य करते हैं। ग्रीष्मातप से तापित पृथ्वी शीतलता प्राप्त करती है। अपनी प्रफुल्लावस्था में मानव प्रकृति के शीतल वातावरण से सुख प्राप्त करता है प्रसन्न होता है और प्रकृति के सुख में तादात्म्य स्थापित करता है। बाल सुलभ सरलतावश उस समय उसे यही कहना पड़ता है—

ढीतल महीतल को सीतल करन हारे
देखु कैसे प्यारे घन कारे घेरि आये हैं।
। पूर्ण सग्रह । पृ० १०५ ।

कारे मेघ प्रिय लगते हैं। पूर्ण जी ने पावस में समस्त प्रकृति को पारस्परिक प्रेम में लिप्त होते हुए देखा है। लता और वृक्ष, मेघ और चंचला, और सरिता तथा सागर के मिलन द्वारा उन्होंने नर एवं नारी के ऐन्द्रिय सुख की उद्दीप्ति का पावस मे अनुभव किया है। प्रकृति रूपिणी नारी भी कामोत्तप्त होकर परब्रह्म पुरुष से मिलने जा रही है। अतः वह मानिनी नायिका को मान निवारण कर प्रियतम से मिलने के लिये उत्तेजित करते हैं—

झूमि झूमि लोनी लतिका लवगन की,
भेंटती तरुन सो पवन मिस पाय पाय।
कामिनी सी दामिनी लगाये निज अक तैसे,
साँवरे बलाहक रहे है नभ छाय छाय ॥
घनश्याम प्यारी वृथा कीन्हों मान पावस मे,
सुन तो पहीहा की रटन उर लाय लाय।
पीतम मिलन अभिलासी वनिता सी लखौ,
सरिता सिधारो ओर सागर के धाय धाय ॥
। पूर्ण सग्रह । पृष्ठ १०६ ।

नायिका को सखी समस्त प्रकृति मे प्रेम और ऐन्द्रिय सुख के दर्शन कराती है और उसे उत्तेजित करती है।

वर्षा ऋतु में मेघ परिवृत्त आकाश में पुनः पुनः क्षणदा की क्षणिक कौंध वियोगिनी को व्यथित करती है। संयोग में मेघ और चचला का मिलन उसके दाम्पत्य सुख की वृद्धि और प्रिय सहवास को सुखद बनाता था। अब वियोग में उसे मेघ चिढ़ाते हुए से प्रतीत होते हैं। वह व्यग्र होकर कहती है—

अंक में लगाय चचला को घन भागसाली,
पूरन छिने ही घन आनद मनावत है।
बार बार छनदा दिखाय गोहराय मोंहि,
धुरवा घमंडी हाय जियरा जरावत है ॥ पृ० ११४।

मानसिक परिस्थिति के अनुसार प्रकृति का एक ही प्रकार का रूप कभी सुखद और कभी दुखद हो जाता है। हृदय का उद्वेग और उन्माद की अवस्था में वियोगिनी को प्रत्येक सुन्दर और सुखद वस्तु मे वैषम्य प्रतीत होता है। सुन्दर वस्तुये असुन्दर लगती हैं। शीतल वस्तुएँ दग्ध करती हैं। सुखद वस्तुएँ दुखद हो जाती हैं। पूर्णजी नायिका के भी वियोग-जनित मानसिक संताप के कारण शरद में विकसित कुमुद और कज, अर्क तथा जवास के समान श्री हीन प्रतीत होते हैं; श्वेत घन धूलि-पुञ्ज से लगते हैं, शीतल पवन उत्तप्त करती है। चन्द्रिका सूर्यातप के समान प्रचंड प्रतिभासित होती है। उसके लिए शरद ऋतु ग्रीष्म के समान भीषण हो जाती है।

वियोग की उद्विग्नावस्था में बारहमासे की प्रथा भक्तिकाल से ही चली आ रही थी। पूर्ण जी ने भी बारहमासे की रचना की है किन्तु नर नारी के ऐन्द्रिय सुख के उद्दीपन के हेतु नहीं अपितु भारत के आर्थिक शोषण से व्यथित होकर भारत वासियों को देशोन्नति के लिए उद्दीप्त करने के लिए प्रत्येक मास मे वह प्रकृति के साथ भारत की हीनावस्था का प्रकृति मे साम्य दिखाते हुए भारतवासियों को जागृति के पथ पर अग्रसर करते हैं। वैशाख के सुन्दर मास में वह अपने भाइयों से प्रार्थना करते हैं—

है बैशाख महीना पुनीत, देश हितैषी बनो सब मीत।

ज्येष्ठ के सूखे वृक्षों में वह अपने देश के आर्थिक-शोषण का प्रतिबिम्ब देखते हैं—

जेठ गये सुख सरवर सूख, रूख तिजारत के हुए रूख।
गरीबी की लूकों से हिम्मत हार, हिंद ने दुःख से किया हाहाकार।

इसी प्रकार प्रत्येक मास में वह भारत की हीनावस्था का दिग्दर्शन कराते हैं और देशभक्ति का परिचय देते हुए निराशा और दुःख प्रकट करते हैं। वह बारहमासे द्वारा देशवासियों की मृत-भावनाओं को उद्दीप्त करने की चेष्टा करते हैं।

प्रकृति के अलंकारिक चित्रण का उल्लेख प्रकृति के आलम्बन रूप के अंतर्गत किया जा चुका है। इन्होंने प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपों का वर्णन उपमा उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार द्वारा किया है। आलंबन रूप में प्रकृति प्रस्तुत और मानव अप्रस्तुत विधान के अंतर्गत आ जाता है। किन्तु प्रकृति के अप्रस्तुत रूप की भी इन्होंने उपेक्षा नहीं

की है। और मानव सौन्दर्य के उपमान रूप मे प्रकृति का उपयोग किया है। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित नायिका का मुखमंडल कवि को भानु के समान प्रतीत होता है। इसका कवि उत्प्रेक्षालंकार द्वारा अत्यन्त मनोहर वर्णन करते हैं—

> बैठी है सिगार साजि प्यारी सुखमा अपार,
> अंग अंग भूखन बसन की निकाई है।
> लाल जड़ी चौकी बाल उर में बिसाल राजै,
> 'पूरन' अमद तासु झलक सुहाई है।
> ताही पै सुमन चारु भामिनि के केसन तें,
> झरत बिलोकि वेस उपमा सुनाई है।
> तम की सरन बैठि मारि मारि बानन सों,
> कीन्ही कुसुमायुध ने भानु पै चढ़ाई है ॥ पृ० १६६ ॥

केश जाल में गुथे हुए पुष्पों से एक पुष्प प्रेमिका के मुख मडल पर गिर पड़ता है कवि उत्प्रेक्षा द्वारा पुष्प-पतन में कुसुमायुध के बाणों की संभावना करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों तम की शरण में बैठ कर कामदेव बाण चलाकर रवि पर आक्रमण कर रहा हो। उपमान कवि क्रमागत होते हुए भी कवि ने चित्रण अतीव चित्ताकर्षक किया है। प्रस्तुत अप्रस्तुत का चित्रांकन हो जाता है। उत्प्रेक्षा की संभावना अत्यत सजीव है।

शरीर की गौर कांति के लिए चन्द्रिका और चचला कवि परम्परागत उपमान हैं। प्रायः समस्त कवियों ने इनका उपयोग किया है। पूर्ण जी ने दोनों उपमानों से रूप साम्य प्रदर्शित करके उसके प्रभाव द्वारा नायिका की शरीर कान्ति का अत्यन्त कौशल से वर्णन किया है—

> 'पूरन' जू जामिनी में कौतुक अनोखो भयो
> जावे कुन्ज बन है सिधारी सुकुमारी है।
> भोर जानी चोरन ने, मोरन ने तड़ित जानी,
> समझी चकोरन ने चन्द उजियारी है ॥
> । पृ० १६० ।

तुलसीदास के 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन देखी तैसी' के अनुसार नायिका की शरीर कांति को चोर मयूर और चकोर ने भिन्न-रूप

में देखा। नायिका की गौर कांति से चन्द्र की द्युति को मन्द होते देख चोर ने उषःकाल समझा। मयूर उसे विद्युत की द्युति समझकर वर्षागमन का अनुमान कर हर्षित हुआ और चकोर चन्द्रिका जानकर सतृष्ण नेत्रों से देखने लगा। सबको अपनी भावना के अनुसार भ्रम हुआ।

मानव सौंदर्य से कभी कभी इतना अधिक प्रभावित होता है कि उसे प्राकृतिक उपमान अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं। वह मानव के अंग प्रत्यंगों की सजीव शोभा के प्रति प्रकृति के उपमानों की अपेक्षा अधिक आकर्षित होता है। उसको ऐसा प्रतीत होता है मानो प्राकृतिक उपमान मानव के सौंदर्य से लज्जित हो गये हैं। पूर्णजी ने इसको प्रतीपालङ्कार द्वारा व्यक्त किया है। जब वह मानव के स्वाभाविक सौंदर्य से प्रकृति की अपेक्षा अधिक चमत्कृत होते हैं तो प्रतीप अलङ्कार में अपनी सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति करते हैं।

लाली जेहि बाला के अधर की अमंद चारु
बिंबाफल विद्रुम बन्धूक को लजावती।
जाके मृदु मधुर रसीले प्रिय बैनन की,
बीना, पिकी कोऊ समता को नहीं पावती॥
प्रेम सो पियासों बतरात कोई चन्द्रमुखी,
सुखमा बिलोकि मन उपमा सुहावती।
छाय चन्द्र मंडल के बीच अरुनारि घटा,
मन्द मन्द 'पूरन' पियूष बरसावती॥ पृ० १७०।

प्रथम चार चरणों में कवि ने उपमेय का उपमान की अपेक्षा अधिक महत्व प्रकट किया है। अन्त में उसके लाल अधरों में अरुण-घटा की संभावना पर उत्प्रेक्षा द्वारा अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रकट कर दिया है। हँसकर बातें करती हुई वह बाला ऐसी प्रकट होती है मानो चन्द्र-मंडल के बीच में अरुण-घटा पीयूष-वर्षण कर रही हो। मुख के लिये चन्द्र-मंडल और मधुर-भाषण के लिए अमृत-वर्षा, कवि-समय-सिद्ध उपमान है। इन सब का संश्लिष्ट चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक और सौम्य हो गया है।

मानव सौंदर्य से अत्यधिक प्रभावित होकर वह समस्त प्राकृतिक उपमानों को सदोष देखते हैं। उपमेय की उत्कृष्टता की तुलना में समस्त उपमान निकृष्ट प्रतीत होते हैं। इस प्रकार की सौंदर्यानुभूति का दिग्दर्शन पूर्ण जी ने व्यतिरेक अलंकार द्वारा कराया है। प्रेमी-प्रेमिका के शरीराङ्गों की उपमा बसन्त के

प्राकृतिक पदार्थों से देता है। मानिनी प्रेमिका सब उपमानों को सदोष प्रकट करके और भी अधिक मान करती है:—

कीट जे मधुप तैसे मेरे कचजाल भाखे,
छवि कहो मुख की कलंकी निसि कंत की।
बानी काकपाली सी, पलास बिनवास नासा,
पंकज बखानी सौभ नैन छविवन्त की।
करि अपमान मेरी सुखमा अनूपम को,
पिय ने दई क्यों भूल उपमा बसन्त की।

पृ० ६६।

मधुप एक कीड़ा है। चन्द्र कलङ्की है, कोकिल काली है और पलास निर्गंध है। अतः सब उपमान उसके अंगों के उपमान होने के लिये अनुपयुक्त है। इसमें वक्रोक्ति का भी सुन्दर उपयोग है।

मानव के स्थूल सौंदर्य के अतिरिक्त कवि ने अवस्था भेद से प्रस्फुटित सौंदर्य का भी अवलोकन किया है। शैशव के समाप्त होने पर प्रातःकाल के प्रसग को लेकर सांगरूपक द्वारा उन्होंने सश्लिष्ट योजना की है। उषःकाल के प्राकृतिक व्यापारों का मानव शरीर में आरोप देखिये:—

छाई अरुणाई तरुनाई की सुहाई अग,
भानु को प्रभात सोह्यो अरुन उजेरो है।
मन ले पराने बालपन के सरल खेल,
हाल सो विहायो लखौ पछिन को बसेरो है॥
'पूरन' अतन तेज आतप सरस ह्वै है,
चन्द सिसुता को तिमि मन्द होत हेरो है।
सखियो दुपहरी में जानियो उबेरो जानि,
जोबन के ग्रीषम को जोइये सबेरो है॥

पृष्ठ १६८।

वयः-संधि के उपरात यौवना के लक्षण स्वभावतः प्रस्फुटित होने लगते हैं। मुख पर अरुणिमा छा जाती है बाल सारल्य चापल्य में परिवर्तित हो जाता है कवि ने इसी को आधार मानकर बालिका के यौवनागम की अवस्था का रूपकमय वर्णन किया है। वह तारुण्य की लालिमा में प्रातःकाल की अरुणिमा, शारीरिक दीप्ति में भानु प्रकाश, बाल-क्रीड़ाओं के त्यागन में

पक्षियों का बसेरा छोड़ना और शैशव के अंत में चन्द्र के अस्त होने का आरोप करते हैं। यौवनागम और उषा-आगमन के समस्त व्यापारों में साम्य स्थापित हो जाता है। साङ्गरूपक का पूर्णरूपेण निर्वाह हो जाता है।

मानव सौंदर्य के उपमान रूप में प्रकृति का वर्णन इनका अधिकतः परम्परागत ही है। उसमें कवि का निजीपन नहीं व्यक्त होता। परम्परा-पालन के कारण नारी सौंदर्य को प्रकट करने के लिये प्राचीन उपमानों का आधार लेकर अपनी भावना की पॉलिश करके व्यक्त कर दिया है।

इनके काव्य में हमें भक्ति और वेदान्त से पूर्ण प्रकृति के चित्रण प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। भारतीय अद्वैतवाद और सर्ववाद के इनकी रचना में राशि-भूत उदाहरण मिलते हैं।

पूर्ण जी परमात्मा को अखिल विश्व में देखते हैं। पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, और अग्नि मानव शरीर के पंच तत्वों में वह विद्यमान है। सूर्य, चन्द्र, और नक्षत्र उसी की ज्योति से प्रकाशित हैं:—

पावक, समीर, नीर, भूतल, अकास माहिं,
भानु में, छपाकर में, वृंद वृंद तारन में,
जगत चराचर में गावरी जगत ज्योति,
'पूरन' मुनीस वृन्द मानस अगारन में। पृष्ठ ८६।

मानव शरीर और प्रकृति में वह उसी परमतत्व की सत्ता का अनुभव करते हैं। पूर्ण जी ब्रह्म और विश्व को पृथक्-पृथक् न मान कर एक रूप मानते हैं। इस विश्व वाटिका का वही एक स्वामी है और वही माली है। वही इसका सृजन करता है और वही इसका पालन करता है।

तू ही है सुमन तू ही रंग है प्रसूनन में,
सुषमा असीम तू ही, तू ही हरियाली है।
तू ही नीर नाली घट कुंड तरु मूल तू ही है,
तू ही फलवाली तू ही पात तू ही डाली है।
जगत की वाटिका को सार सब भाँति तू ही।
तू ही ब्रह्म 'पूरन' करत रखवाली है।
भृंगन पतीर तू ही, भीर है विहगन की,
सौरभ समीर तू ही स्वामी तू ही माली है।
पृष्ठ ६७।

उसकी खोज करना व्यर्थ है। वह आत्मा रूप में शरीर में ही व्याप्त है। वह सत् चित् और आनन्द स्वरूप है। जगत उसी का एक अंश है। अतः ब्रह्म-मय है। ब्रह्म में जगत और जगत में ब्रह्म समाया हुआ है :—

खोजत हो जाको घर बाहर, अखण्ड सो तो,
आतमा तुम्हारे घर ही में राजमान है।
सच्चित स्वरूप बारो 'पूरन' परम प्यारो,
सोई है जहान माहिं ताही में जहान है॥ पृष्ठ १८७॥

सकल विश्व उसी की माया से व्याप्त है। प्रकृति उसी की माया से अनुप्राणित है।

'पूरन' विचित्र है चरित्र भूमि मंडल के,
राम जी की माया कहीं धूप कहीं छाया है।

वह परम शक्ति अखंड है, अजर है, अमर है, रूप रेख और गुण से विहीन संसार की कोई शक्ति उसे विनष्ट नहीं कर सकती। वह आनन्दमय है।

पावन, जरावे नहिं पवन सुखावे नहिं,
सीत हू गलावे नहिं ऐसो अविकारी है।
फंदा ताहि फांसे नहिं गासी ताहि गासे नहिं,
नासे नहि काल ऐसो अचल विहारी है।
'पूरन' है चित है आनंद है अच्युत है,
देह में वृथा क्यों ताहि लेखत अनारी है।
गौर है न श्याम है न सूधो है न वाम जीव,
लघु है न भारी है पुरुष है न नारी है।

वह परम तत्व रूप, वर्ण और आकार से रहित है। वह अविकारी और अविनाशी है।

उसकी प्राप्ति के लिये प्रेम और भक्ति अत्यावश्यक है। माला, टीका, आसन आदि बाह्याडम्बर व्यर्थ है। भक्ति भाव से विश्व के बीच में पारिवारिक जीवन व्यतीत करके भी ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। मन की पावनता भगवद्भक्ति का मुख्य अंग है। हृदय में कालुष्य रख कर बन में रहना व्यर्थ है :—

चाहिये सुप्रीति धर्म कर्म के विधानन में,
रहिये मकानन में चाहे घोर कानन में ।॥ पृष्ठ १८३ ।

ब्रह्म से सच्ची भक्ति होने पर मनुष्य सकल विश्व में उसी का प्रतिबिम्ब देखता है । 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' के अनुसार विश्व में सर्वत्र उसी ब्रह्म की झलक से अनुरंजित होता है । भक्त के लिये गृह और बन सब एक से हैं । ब्रह्म में लीन होने पर योगी भी अविकार हो जाता है । उसके लिये दुख सुख सब समान हो जाते हैं । ब्रह्मानन्द में उसे सांसारिक कष्ट उत्तप्त नहीं करते ।

'पूरन' अनद माँहि लीन ज्ञान योगिन को,
गरमी की धूप तैसी सरदी की छाया है ।
पृष्ठ १८६ ।

पूर्ण जी ने प्रकृति और पुरुष दोनों में एकात्म्य स्थापित कर एक ही तत्व को देखा है । प्रकृति परम तत्व में व्याप्त है और परम तत्व प्रकृति में । प्रकृति और पुरुष अन्योन्याश्रित हैं ।

इन्होंने प्रकृति को उपदेश का भी माध्यम बनाया है । प्रकृति में इन्होंने दो प्रकार के उपदेशों का दिग्दर्शन कराया है, एक तो भक्ति और वेदान्त-विषयक और दूसरे देश-भक्ति-विषयक । भक्ति और वेदान्त में यह तुलसीदास जी से प्रभावित हुए हैं और देश-भक्ति विषयक कविता में इन्होंने भारत की अधोगति पर खेद प्रकट किया है और प्रकृति का आश्रय लेकर भारतवासियों को चेतावनी दी है ।

प्रातःकाल रवि उदित होता है । समस्त नर नारी आनंदित होते हैं । पक्षी कलरव करते हैं, पवन सुरभि बिखेरता है । पूर्ण जी का ध्यान मानव प्रकृति और प्राणियों के उल्लास के प्रति आकर्षित नहीं होता । वह वेदान्ती बन कर बैठ जाते हैं और प्रकृति के व्यापार में ज्ञान और वेदान्त का उपदेश प्राप्त करते हैं । इस प्रकार के वर्णनों में वह तुलसीदास जी से प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं ।

उवत भानु के भयो सकल निसि तिमिर विनासा,
ज्यों नसात मोहांध होत जब ज्ञान प्रकासा । पृष्ठ १०४ ।

सूर्योदय होने पर तारे निष्प्रभ हो जाते हैं । इस प्राकृतिक सत्य को क्षुद्र मनुष्य के साथ तुलना करते हुए वह उपदेश के रूप प्रकट करते हैं । और

प्रकृति से दृष्टांत देते हैं कि तारे इसी भाँति नष्ट हो जाते हैं। जिस भाँति तेजस्वी मनुष्य को देखकर चुद्र मनुष्य श्रीहीन हो जाते हैं। भ्रमरों की गुंजार में भी वह ईश्वर के गुण-गान की ध्वनि का अनुभव करते हैं :—

गुंजत मधुकर वृन्द मधुर मकरंद दिये चित,
ज्यों आराधत सत चरन भगवन्त धनी के।

प्रकृति के उन उपदेशात्मक चित्रों में तुलसी के किष्किन्धाकाण्ड के वर्षा और शरद ऋतु के वर्णनों की स्पष्ट छाया है। जिस प्रकार तुलसी प्रकृति के प्रत्येक व्यापार के लिये वेदान्त और नीति के उदाहरण ढूँढ कर लाते हैं उसी प्रकार पूर्ण जी भी भगवद्भक्ति और नीति विषयक दृष्टान्तों द्वारा अपने भाव व्यक्त करते हैं।

देश प्रेमी होने के कारण इन्होंने प्रत्येक ऋतु और मास में देश की जाग्रति का आदेश पाया है। आषाढ़ की घटाओं को देखकर इन्हें अपने देश की विषम अवस्था का ध्यान आता है। प्रकृति उद्बोधन करती सी प्रतीत होती है :—

मास असाढ़ घटा घनघोर, आसा की उमड़ी चहुँ ओर।
झमाझम बरसे चेत का नीर, चलने लगी उपदेश समीर।

वर्षा की झड़ी चेतावनी देती है और समीर उपदेश देता है। भादों मे चंचला की चमक में वह साहस और अंधकार में विरोध की उद्भावना करते हैं।

कवि को प्रकृति के प्रत्येक व्यापार और प्रत्येक पदार्थ मे हित और उपदेश का प्रतिविम्ब दृष्टिगोचर होता है।

पूर्ण जी भारतेन्दु काल के प्रतिभाशाली कवि थे। इन्होंने उद्दीपन और अलंकार आदि के रूप में भी प्रकृति का वर्णन किया है। किंतु उस रूप में विशेष उत्साह नहीं लक्षित होता। प्रकृति का स्वतंत्र अस्तित्व मानते हुए इन्होंने स्वाभाविक चित्रण किया। साथ ही उपदेश, भक्ति आदि में पूर्ववर्ती काव्यकारों का भी अनुसरण किया। देशभक्ति की भावना से पूर्ण कविता में प्रकृति की ओर विशेष ध्यान न देकर सामाजिक और राजनैतिक दशा का अधिक उल्लेख किया।

भारतेन्दुकाल के स्वयं भारतेन्दु तो प्रवर्तक थे ही अन्य काव्यकारों में पंडित श्रीधर पाठक, देवी प्रसाद पूर्ण प्रतिभाशाली कवि हुए। पाठक जी

तो प्रकृति के उपासक कवियों में अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। इन्होंने प्रकृति और मानव के पारस्परिक प्रेम में तादात्म्य स्थापित किया। मानव को अपनी सहचरी में प्रति स्पन्दन प्राप्त हुआ। देश भक्ति के रूप में भी प्रकृति के चरणों में अपने हृदय का संचित अनुराग अर्पित कर दिया। पूर्ण जी ने यद्यपि प्रकृति के प्रति इतना अधिक अनुराग नहीं प्रदर्शित किया और प्रकृति का आलंकारिक एवं उद्दीपन से पूर्ण भावना सहित वर्णन किया, किंतु उसमें भी उनके हृदय का उत्साह प्रकट होता है। प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों का निरीक्षण और परम्पराबद्ध चित्रण में विमुखता इनके प्रकृति प्रेम का परिचय देता है।

मध्य-काल

हरिश्चन्द्र काल में रीतिकाल की श्रृंगारिक भावना के प्रति हम काव्य-कारों को विमुख एवं विरक्त पाते हैं। इस काल के काव्य प्रणेताओं ने नायक नायिका के प्रति आकर्षित न होकर देश प्रेम के गीत गाये, किन्तु दो सौ वर्षों से अधिक काल से चली आती हुई काव्य परम्परा से इस काल के कवि सर्वथा विमुक्त न हो सके और उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्रकृति का परम्परा-बद्ध चित्रण किया। हाँ, लक्षण ग्रंथों की गति पूर्णतः अवरुद्ध हो गई। इस युग में केवल पं० श्रीधर पाठक ही एक ऐसे कवि हुए जो रीति काल के प्रभाव से सर्वथा विमुक्त रहे।

रीतिकाल की प्रचलित विलास-भावना के प्रति भारतेन्दु काल के कवियों ने उपेक्षा प्रकट की और इस काल के समाप्त होते होते एक ऐसा कवि समूह काव्य-क्षेत्र में अवतरित हुआ जिन्होंने श्रृंगारी कविता के प्रति घृणा प्रकट की और रीतिकाल की रूढ़ि-प्रियता, एवं शिथिल विलासिता का पूर्णतः अंत कर दिया। इस कवि समूह के प्रवर्तक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी हुए। अतः यह युग द्विवेदी काल के नाम से अभिहित हुआ।

द्विवेदी जी ने रीति परम्पराभुक्त साहित्य के प्रति अतीव घृणा प्रकट की और अपने निबंधों द्वारा समकालीन काव्यकारों को श्रृंगार प्रियता से विमुख किया। "नायिका-भेद" नामक निबंध में वह लिखते हैं। "इस प्रकार की पुस्तकों का होना हानिकारक है, समाज के सच्चरित्र की दुर्बलता का दिव्य चिह्न है। हमारी स्वल्प बुद्धि के अनुसार इस प्रकार की पुस्तकों का बनना शीघ्र ही बन्द हो जाना चाहिए, और यही नहीं, किंतु, आज तक ऐसी जितनी इस विषय की दूषित पुस्तकें बनी हैं उनका वितरण होना भी बंद हो जाना चाहिए। इन पुस्तकों के बिना साहित्य को कोई हानि न पहुंचेगी, उलटा लाभ होगा। इनके न होने ही से समाज का कल्याण है।"

रसरञ्जन पृष्ठ ६२।

"जहाँ तक हम देखते हैं स्त्रियों के भेद वर्णन से कोई लाभ नहीं, हानि अवश्य है, और बहुत भारी हानि है"। पृष्ठ ६०।

इस प्रकार रीति परम्परा की विगर्हणा करते हुए इन्होंने काव्यकारों को शृंगारी कवितावली से विरक्त किया और प्रकृति के मनोरम दृश्य अथवा विश्व के अन्य विषयों पर लेखनी उठाने के लिए काव्यकारों को प्रोत्साहित किया, इन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा "इस विस्तृत विश्व में ईश्वर ने इतने प्रकार के मनुष्य, पशु, पक्षी, वन, निर्भर नदी, तड़ाग आदि निर्माण किये हैं कि यदि सैकड़ों कालिदास उत्पन्न होकर अनतकाल तक सब का वर्णन करते रहें तो भी उनका अंत न हो। फिर हम नहीं जानते और विषयों को छोड़कर नायिका भेद सदृश्य अनुचित वर्णन क्यों करना चाहिये।"

द्विवेदी जी ने विलास-पूर्ण जीवन की रूढ़ि-प्रियता की शिथिल जंजीरें को नष्ट भ्रष्ट कर दिया और नैतिक विचारों का वपन किया। चारित्रिक दृढ़ता और नैतिक बल के उत्थान की ओर विशेष ध्यान दिया। अतः इनके अनुयायी काव्यकारों ने मानव और मानवेतर प्रकृति में नीति और उपदेश के दर्शन किये। प्रकृति ऐन्द्रिय सुख की वस्तु न होकर मानसिक सुख की उपकरण होगई और उनका प्रकृति से तादात्म्य स्थापित होगया। काव्यकार भौतिक-जीवन के प्रति सतर्क हो गये। और ऐन्द्रिय सुख की उपेक्षा कर मानसिक शांति के हेतु जीवन में कर्म की प्रधानता का अनुभव करने लगे। बढ़ती हुई राष्ट्रीयता ने इन भावनाओं को और भी अधिक दृढ़ कर दिया, क्योंकि सच्चरित्रता और कर्तव्यपरायणता, राष्ट्रीय-जीवन की विशेष अङ्ग मानी जाती थी। राधाकृष्ण का शृङ्गारी रूप भी विलीन होगया और वे आदर्श रूप में कर्तव्य-परायणता का आदर्श प्रकट करते हुए कर्मवीर होकर मानव क्षेत्र में अवतरित हुए।

इस प्रवृत्ति का दर्शन हमें विशेष रूप से हरिऔध के प्रिय-प्रवास में मिलता है।

द्विवेदी काल के काव्यकारों ने मानव को संकुचित क्षेत्र से बाहर निकाला अब वह नायकमात्र न था, अब उसको योद्धा, कर्मवीर, कृषक और सत्यवादी तथा लोक सेवी के रूप में आना पड़ा, उसका प्रेम शृंगारिक भावना और ऐन्द्रिय सुख की सीमा से बाहर अधिक व्यापक, विशुद्ध और पूत भावनाओं से पूर्ण हो गया।

इस काल में पांडित्य प्रदर्शन का भी विरोध हुआ। कवित्त और सवैयों के रूढ़िमुक्त बंधन से कविता मुक्त हुई और नवीन छन्दों का प्रयोग हुआ।

बाह्य सौन्दर्य के प्रति भी इस काल के कवियों में विकर्षण का आरंभ हुआ और भावों के सहजोद्रेक को स्थान मिला।

द्विवेदी जी ने राधाकृष्ण के शृंगारी रूप को नैतिक धरातल पर लाकर वर्णन किया। अतः अलकार अथवा उद्दीपन रूप में भी प्रकृति के उपयोग का इनके काव्य में लोप हो गया इनकी काव्य रचना में हमें आलम्बन में और देश के अंग रूप में प्रकृति के दर्शन होते हैं। आलम्बन रूप में इन्होंने प्रकृति का यथातथ्य चित्रण किया है, इनके प्रकृति चित्रण केवल परम्परा-पालन के हेतु नहीं हैं, कवि ने स्वयं उनका निरीक्षण किया है और वरार्यमान नदी, वन अथवा पर्वत का यथातथ्य वर्णन कर दिया है। अतएव इनका काव्य देश काल के दूषण की त्रुटि से रहित है, बसन्त का वर्णन देखिये:—

बसन्त बहार भई जबै,
सब कली बन की विकसी तबै,
सुखद शीतल मंद सुहावनी,
विमल वायु मन भावनी।
चिर मोरन के रस तैं पगी।
पिक कुहू कुहू बोलन है लगी
भंवर फूलन फूलन जावहीं
निज मनोहर शब्द सुनावहीं।
जहँ लखी तँह पेड़न पै चहूँ
सुमन लाल कहूँ पियरे कहूँ
खिलि रहे सुषमा सरसा रही
महक मोहक मंजु उड़ावहीं।
द्विवेदी काव्यमाला पृष्ठ ३५८ ॥ ३५६ ॥

मराठी भाषा के प्रभाव स्वरूप इनके काव्य में इतिवृत्तात्मकता की प्रकृति लक्षित होती है अपनी अन्तर्भावना से अतिरंजित किये बिना वह प्रकृति का चित्रांकन करते चले जाते हैं। उनकी शरत्सायंकाल, कोकिल और बसन्त आदि कवितायें इसी प्रकार शुद्ध वर्णनात्मक शैली में लिखी हुई हैं।

देश प्रेम के अन्तर्गत द्विवेदी जी ने पाठक जी की भाँति देश के अंग हिमालय, काश्मीर आदि का वर्णन न करके अपनी मातृभूमि का सम्यक् रूप से विवेचन किया है। उन्हें अपनी जन्मभूमि जिसकी रज में वह लोटे हैं जहाँ

के अन्न जल से उनका पालन पोषण हुआ है, अत्यन्त प्रिय है, संसार की सुन्दरतम वस्तु उन्हें अपनी जन्मभूमि की अपेक्षा तुच्छ प्रकट होती है। वह देश प्रेम की भावना से तरंगित होकर यही कहते हैं,

"देखी वस्तु विश्व की सारी जन्मभूमि सम एक न न्यारी" पृष्ठ ३६५।

यह समवेत कंठ से सबको यही गाने को कहते हैं,

प्यारा है सबसे हमको हिंदुस्तान हमारा।
सुख दुःख में हमेशा मेहरबान हमारा।

पृष्ठ ३८३। द्वि० का० मा०

'जन्मभूमि' 'आर्यभूमि' 'हमारा वतन' 'मेरा प्यारा हिन्दुस्तान' आदि कविताओं में उन्होंने अपने देश के प्रति प्रेम व्यक्त किया है।

द्विवेदी जी का काल राजनीतिक और सामाजिक क्रान्ति का काल था। राजनीतिक क्षेत्र में चाटुकारों और अयोग्य व्यक्तियों का बोलबाला था। सत्य और स्पष्ट बात का परिणाम भयंकर होता था। इसका दिग्दर्शन इन्होंने अन्योक्ति द्वारा कराया, 'जम्बुकी न्याय' शीर्षक कविता में इन्होंने हाँ में हाँ मिलाने वाले चाटुकारों का यथा-वर्णन द्वारा चित्रण किया है।

यह सुन बुड्ढा जंबुक बोला, सब बातों को उसने तौला
'वाह न अब कुछ बाकी रहा खूब कहा जी खूब कहा'
'तब कुनबे के जंबुक सारे, खड़े हो गये न्यारे न्यारे
'हुआ हुआ जी खूब हुआ' कह बुड्ढे का कदम छुआ॥पृष्ठ ४००।

भारत की शोचनीय दशा के प्रति उन्होंने करुणा प्रकट की है श्रीराम की जन्मभूमि आर्य सभ्यता की केन्द्र अयोध्या नगरी के प्राचीन वैभव का ध्यान करते हुए वह उसकी आधुनिक दुरवस्था का वर्णन करते हैं,

उत्तुंग कुंजर घटा सुख सों अन्हाईं,
कीन्हे जहाँ जल बिहार सदैव आई।
हा हन्त! वाहि सरयूतट पै घनेरे,
बूढ़े बराह खर आदि फिरे सबेरे॥ पृष्ठ २६८।

प्रकृति के रम्य स्थलों में अब दैव दुर्विपाक से वैपरीत्य देखकर कवि हृदय द्रवित हो जाता है, उनकी आकुल अनुभूति वाणी में प्रस्फुटित हो जाती है।

इसी भाँति समयानुसार जल वृष्टि न होने के कारण अनुतप्त प्राणि समूह और प्रकृति का उन्होंने उतवृत्तात्मक वर्णन किया है। वह मेघ को उपालभ देते हुए कहते हैं,

> चारा नहीं, चरहिं काह पशू बिचारे,
> सब्बीहु घास मिलती नहीं सोचि हारे।
> जा लोग कष्ट लखि तोहि दया न आवे,
> तो काह मूक पशु दुखहूँ ना दुखावे।। पृष्ठ २५८।

इनके समस्त काव्य की मूक प्रेरणा राष्ट्रीयता और चारित्रिक दृढ़ता में है अतः प्रकृति के भी जो चित्रण हैं उनके पीछे स्वदेश प्रेम की धारणा अन्तर्निहित है। इसके अतिरिक्त इन्होंने सौन्दर्य प्रियता की भावना को नारी के रूप से हटाकर प्रकृति की ओर लगाने का प्रयत्न किया। किन्तु उसमें यह वैसी सरलता न ला सके जो कि पीछे के छायावादी कवि लाने में समर्थ हुए। शृंगारिक वर्णन को यह अलंकार रूप से भी स्थान नहीं देना चाहते थे।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय

उपाध्याय जी के काव्य-मयंक का उदय भारतेन्दुकाल के उत्तरार्द्ध में ही हो गया था। द्विवेदी काल में उनकी कीर्ति-कौमुदी पूर्ण रूपेण प्रस्फुटित हुई। इन्होंने शिष्ट और संस्कृत रूप में लोक-कल्याण की भावना को अपनाते हुए प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन, अलंकार आदि विविध रूपों में चित्रण किया और प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध स्थापित किया। देश के अंग रूप में भी प्रकृति इनकी सहचरी बनी, एक विचारशील आलोचक और उपदेशक के भी इन्होंने प्रकृति में दर्शन किये और प्रकृति में इन्होंने संवेदना, सहानुभूति तथा अनुराग का अनुभव किया।

प्रकृति के आलम्बन रूप में इन्होंने सौम्य और उग्र दोनों रूपों के दर्शन किये, कभी वह प्रकृति के सरस और मोहक रूप पर मुग्ध हुए और कभी उसकी भयकरता का वर्णन करते हुए रौद्र रूप का दिग्दर्शन कराया। वैदेही बनवास में तपस्विनी सीता के आश्रम का वर्णन करते हुए प्रकृति के स्वच्छ सुनिर्मल रूप की छटा देखिये:—

> प्रकृति का नीलाम्बर उतरे, श्वेत साड़ी उसने पाई।
> हटा घन घूंघट शरदाभा, विहंसती महि में थी आई।।

पादपों के श्यामल दल ने। प्रभा पारद सी पाई थी।
दिव्य हो हो नवला लतिका। विभा सुरपुर से लाई थी।।८।।
दशम सर्ग ।।

श्वेताम्बरा प्रकृति को देखकर कवि मुग्ध और पुलकित हो जाता है। वह प्रत्येक वस्तु के सौंदर्य पर मुग्ध होते हुये अपनी आनन्दानुभूति को शब्दों में प्रकट करते हैं। उपाध्याय जी ने एक दर्शक अथवा लोभशील व्यक्ति की भाँति केवल सुदर रूप का ही अवलोकन नहीं किया वरन् उसके रुद्र वेश का भी निरीक्षण किया है। ग्रीष्म में दावानल से प्रज्वलित वन खड के भयोत्पादक रूप का चित्रण देखिये :—

निदाघ का काल महा दुरन्त था, भयावनी थी रविरश्मि होगयी।
तवा समा थी तपती वसुंधरा, स्फुलिंग वर्षारत तप्त व्योम था।।
प्रदीप्त थी अग्नि हुई दिगन्त में, ज्वलन्त था आतप ज्वाल में लसा।
पतंग की देख महा प्रचंडता, प्रकंपिता पादप पुंज पंक्ति थी।।
रजाक्त आकाश दिगंत को बना, विभावर्ती वन्य असंख्य वृक्ष के।
मुहुर्मुहः उद्धत हो निनादती, प्रवाहिता थी पवनाति भीषणा।।
विदग्ध हो के कण धूलि राशि का, हुआ तपे लोह कणो समान था।
तप्त बालू रुच दग्ध भाड़ का, भयंकरी थी महि रेणु हो गई।।
५६, ५७, ५८, ५९।

ग्रीष्म का समय और दावाग्नि, कवि ने एक अत्यन्त उग्र वातावरण उपस्थित कर दिया है। आकाश का रक्त वर्ण हो जाना, धूलिकण को लोह कणों के समान और रज को तप्त बालू के समान वर्णन करके कवि ने भयङ्कर अग्नि का अत्यन्त भीषण रूप चित्रित कर दिया है। कवि ने समस्त वातावरण की प्रचडता का चित्रांकन कर दिया है पाठक को बिम्ब ग्रहण हो जाता है। कवि ने स्वय उस भीषणता का अनुभव करते हुए सश्लिष्ट वर्णन कर दिया है। जहाँ पर उपाध्याय जी प्रकृति का सरल सुबोध वर्णन केवल परम्परा पालन के लिए करते चले गए हैं वहाँ वह निरपेक्ष हैं उनके हृदय में प्रकृति के प्रति सवेदना नहीं है भव्य अथवा भयङ्कर सौम्य अथवा उग्र प्रकृति के प्रत्येक रूप अथवा वस्तु का वह यथातथ्य चित्रण करते चले हैं प्रकृति के साथ उनका रागात्मक सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता।

तारे डूबे तम टल गया छा गई व्योम लाली।
पक्षी बोले तमचुर जगे ज्योति फैली दिशा में।।

शाखा डोली सकल तरु की कंज फूले सरों में।
धीरे धीरे दिनकर कढ़े तापसी रात बीती॥

प्रिय प्रवास पाँचवा सर्ग।

कवि ने प्रातःकाल का इतिवृत्तात्मक और यथातथ्य वर्णन कर दिया है। काव्यकार की भावना का पुट लक्षित नहीं होता। सूर्योदय का सीधा साधा वर्णन है, पक्षियों के गान में उन्होंने अपना स्वर नहीं मिलाया है। कमलों के साथ उनका हृदय-सुमन नहीं खिला है वह प्रकृति के प्रत्येक व्यापार का स्वाभाविक वर्णन करते हुए चले जाते हैं इस प्रकार इतिवृत्तात्मक वर्णनों में कहीं कहीं तो वह प्रकृति के पदार्थों का केवल परिगणन ही कराते चले गये हैं। परम्परा-पालन के लिए स्वाभाविकता का भी उल्लंघन कर गये हैं और काव्य देश एवं काल की त्रुटि से पूर्ण हो गया है। वृन्दाबन की मही के वर्णन में परिगणन की शैली द्वारा किये गये प्रकृति चित्रण में इस प्रकार के दोष मिलते हैं:—

जंबू अंब कदंब निंब फालसा जम्बीर औ आंवला।
लीची दाड़िम नारिकेल इमली और शिंशुपा इंगुदी।
नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी।
श्रेणी बद्ध तमाल ताल कदली और शाल्मली थे खड़े।

प्रिय प्रवास नवम सर्ग।

नाम गिनाने की धुन मे हरिऔध जी भूल जाते हैं कि सागौन पहाड़ी वृक्ष है और नारियल पूर्व प्रदेश में उत्पन्न होता है, वृन्दाबन के विशिष्ट वृक्ष करील का कहीं नाम भी नहीं है।

हरिऔध जी ने प्रकृति वर्णन में कल्पना का आश्रय लेकर अलंकार की योजना का भी चमत्कार दिखाया है। वर्षाकालिक सांध्यगगन में सुरंजित, आलोकित-बहु-वर्णयात-वारिवाह-व्यूह को देखकर उनके हृदयाकाश में कवि कल्पना रूपी पक्षि शावक के पंख फड़फड़ाने लगते हैं और संदेह, रूपक एवं उत्प्रेक्षा की योजना द्वारा वह प्रकृति वर्णन करते हैं। नाना रंग के मेघों को देखकर उनके हृदय में विचार उठते हैं:—

कभी होता अवगत अमर कुमार,
उमँग उड़ा रहे हैं विविध पतंग,

अथवा विशाल व्योम वारनिधि मध्य,
विलस रही है बहु उत्ताल तरंग।
सोचता कभी था चित्त सुखाने के लिये,
फैलाये गये हैं लोक सुंदरी के पट,
किवा हुए प्रदर्शित प्रमोद सदन,
किसी चित्रकार के प्रचुर चित्रपट।
ऐसे हैं प्रतीत होते, मोहते हैं मन,
घन के किनारे हो हो किरण कलित,
मानो सारी प्रकृति बधूटी की असित।
लेस के लगाए बनी बड़ी ही ललित।

कल्पलता पृ० ४६।

कवि मेघों में कभी उत्प्रेक्षा द्वारा अमरकुमारों की सभावना करता, कभी वारिनिधि और उत्ताल तरंगों का आरोप करता, कभी लोक सुंदरी के वस्त्र और चित्रकार के चित्रपट का संदेह करता और कभी प्रकृति वधू की साड़ी का विचार करता है, चित्रण आलकारिक है कवि का अलकार-प्रेम प्रत्येक चरण में लक्षित होता है भारतेन्दु जी के गगा छवि और यमुना वर्णन के चित्रण में भी यद्यपि उपमा और उत्प्रेक्षा की तरंगे प्रत्येक चरण में प्रस्फुटित होती है। किंतु दोनों काव्यकारों के दृष्टिकोण में महान् अतर है भारतेन्दु जी ने प्रस्तुत मानव व्यापार में अप्रस्तुत प्राकृतिक व्यापार को रखकर नर प्रकृति को प्रधानता प्रदान की है। मानवेतर प्रकृति की ओर वह आकर्षित नहीं हुए हैं। किंतु "हरिऔध" जी ने प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों रूपों में प्रकृति को ही अपनाया है, वह मानव स्थल पर नहीं उतरे हैं प्रकृति के साथ कल्पित लोक में विचरण करते रहे हैं आलंकारिक वर्णन में भी उनका प्रकृति प्रेम प्रकट होता है।

हरिऔध जी ने कहीं कहीं केवल शब्दों के चमत्कार के लिये भी प्रकृति का चित्रण किया है। कवि निरुद्देश्य भाव से काव्य कला प्रदर्शन के लिये शब्दों के वाग्जाल से समन्वित प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन करता चला जाता है ऊधो के ब्रज को जाते समय मार्ग में वृन्दावन का उन्होंने विस्तृत वर्णन किया है :—

सुपक्वता पेशलता अपूर्वता,
फलादि की मुग्धकरी विभूति थी।

रसाप्लुता सी ब्रज की वसुंधरा,
रसालता थी करती रसाल की ॥ २८ ॥
प्रिय प्रवास सर्ग नवम ॥

ब्रज की प्राकृतिक छटा का यह वर्णन केवल काव्य कला प्रदर्शन के हेतु है कवि की तटस्थता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है।

मानव व्यापारो की पृष्ठभूमि के रूप में भी इन्होंने प्रकृति का उपयोग किया है। प्रकृति आगामी घटना के पृष्ठाधार के रूप में दृष्टिगोचर होती है। श्री कृष्ण के चरित्र की अलौकिकता, द्रवणशीलता और सेवा भाव को प्रकट करने के लिये प्रिय-प्रवास में कवि ने पृष्ठभूमि के रूप मे प्रकृति का वर्णन किया है। इस रूप में प्रकृति अपने मनोरम और विकराल दोनो रूपो मे चित्रित हुई है। गोवर्धनधारी कृष्ण की पौराणिक कथा को समाज सेवी कृष्ण से संयोजित करते हुए वह अनवरत जल वृष्टि का इसी रूप मे वर्णन करते हैं :—

प्रथम बूंद पड़ी ध्वनि बाँध के,
फिर लगा पड़ने जल वेग से।
प्रलय कालिक सर्व समा दिखा,
बरसता जल मूसल धार था ॥
जलद नाद प्रभंजन गर्जना,
रव महा जल पात अजस्र का।
कर प्रकम्पित पीवर प्राण को,
भर गया ब्रज भूतल मध्य था ॥ २७ ॥
प्रिय प्रवास सर्ग २।

प्रकृति का "यह वर्णन श्रीकृष्ण के लोक सेवी-चरित्र के दिग्दर्शन के निमित्त किया गया है। प्रकृति के भीषण रूप द्वारा कवि का उद्देश्य कृष्ण की कर्मवीरता को प्रकट करना है, क्योंकि

प्रकृति को कुपिता अवलोक के,
प्रथम से ब्रज भूपति व्यग्र थे।
विपुल लोक समागत देख के,
बढ़ गई उनकी वह व्यग्रता ॥ ३३ ॥

अतः कृष्ण कर्मक्षेत्र में उतर कर विपत्ति निवारण में व्यस्त हो जाते हैं।

पहुँचते वह थे शर वेग से,
विपत सकुल ठौर समस्त में ।
तुरत थे करते वह नाश भी,
विपद प्रस्तुत की वर वीर सो ॥६१॥
प्रिय प्रवास सर्ग द्वादश ।

वैदेही बनवास में निशा काल का शोभन रूप यकायक अशोभन हो जाता है वैदेही का मंत्रमुग्ध हृदय आशकाओं से पूर्ण हो जाता है और उन्हें उसी दिन अपने बनवास की हृदय-विदारक सूचना मिलती है। प्रकृति का रूप वैषम्य आगामी अशुभ व्यापार की सूचना देता है एक दिन रात को वैदेही प्रकृति के वैभव को चकित चकोरी की भाँति देख रही थी, उस समय,

राका रजनी इसी समय अनुरंजित हो जन मन रंजन में रत थी ।
बढ़ गया वायु का वेग क्षितिज पर दिखलाया ।

और सिता असिता बन गई, नभ-तल तिमिराच्छन्न हो गया । निशा सुंदरी का समस्त सौन्दर्य नष्ट होगया, क्षपाकर घन मण्डल में आवृत हो अदृश्य हो गया और,

वैदेही बनवास पृ० ६८, ६९ ।

'दिवि दिव्यता अदिव्य बनी, अब नहीं दिग्वधू हँसती थी।'

प्रकृति का यकायक यह परिवर्तन देखकर जनकनन्दिनी व्याकुल होगई अन्ततोगत्वा जनक दुलारी के बनवास की ऐसी दुःखद घटना विघटित हुई है कि,

अजहुँ अवनि विदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हे ।

देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर और भारत की अज्ञानावस्था के प्रति द्रवित होकर भारतवासियों के उद्‌बोधन की पृष्ठ-भूमि के रूप में भी हरिऔध जी ने प्रातःकाल का यथातथ्य चित्रण किया है:—

खुले न खोले नयन, कमल फूले खग बोले,
आकुल अलिकुल उड़े लता तरु पल्लव डोले,
दूब लहलही हुई पहन मोती की माला,
तिमिर तिरोहित हुआ फैलने लगा उजाला ॥ काव्यलता पृ० ८५ ।

इस प्रकार प्रातःकाल का वर्णन करते हुए वह अन्त मे भारत सुतों को मोह निद्रा से जगाते हैं,

जागो जागो भारत सुवन है जग जननि जगा रही।

इनके विभिन्न ऋतुओं के चित्रण भी पृष्ठभूमि के ही रूप मे हैं ग्रीष्म, वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन कृष्ण के कार्य कलापों की क्रीड़ास्थली के रूप में ही है। ग्रीष्म में दावाग्नि से श्रीकृष्ण ब्रजवासियो की रक्षा करते है, वर्षा में गोकुल वासियों को गिरि कदरा में शरण देते हैं, शरद में वशी-वादन द्वारा ग्रामवासियों को प्रफुल्लित करते है। प्रत्येक ऋतु-वर्णन कृष्ण की गौरव-गरिमा के उत्कर्ष के निमित्त उनके मथुरा चले जाने पर स्मृति रूप में किया गया है ग्रीष्म की प्रचडता का उन्होंने अत्यन्त भीषण वर्णन किया है,

असह्य उत्ताप अतीव था हुआ
महा समुद्विग्न मनुष्य मात्र था।
शरीरिया की प्रिय शान्ति नाशिनी,
निदाघ की थी अति उग्र ऊष्णता। ६०।

स्व शावकों के साथ स्वकीय नीड़ मे,
अबोल हो के खग वृंद था पड़ा॥ ६२॥
प्रिय प्रवास सर्ग ११।

ग्रीष्म की प्रचड उष्णता से समस्त मानव और मानवेतर प्रकृति त्रस्त हैं, भूमि मंडल पर निदाघ का अखड राज्य है, पक्षिगण अपने नीडों मे भयभीत से बैठे हैं और वृक्षों के नीचे पशु समूह शान्त भाव से पड़े हैं, इसी प्रकार पावस के सौम्य और उग्र दोनों रूपो का पृष्ठाधार के रूप में दिग्दर्शन कराया है। हरा-भरा श्रावण मास है,

सरस सुन्दर सावन मास था,
घन रहे नभ मे घिर घूमते।
विलसती बहुधा जिनमें रही,
छविवती उड़ती बक मालिका॥२॥
घहराता गिरिसानु समीप था,
बरसता छिति छू नव वारि था।
घन कभी रवि अतिम अंशु ले
गगन में रचता बहु चित्र था॥ ३॥ प्रिय प्रवास सर्ग ११।

वसुमती कोमल श्याम तृणावली से सुशोभित है जल से धुले पादप पुंज हैं, पपीहा और मयूर मत्त हैं वीर वहूटियाँ प्रसन्न हैं कि यकायक व्रजधरा दुःख-वारिधि में निमग्न हो जाती है, प्रबल-प्रभंजन का प्रकोप होता है,

> तरंग तोयधि तुंग तरंग लो,
> निविड़ नीरद थे घिर घूमते।
> प्रबल हो जिनकी बढ़ती रही,
> अमितता, घनता रवकारिता ॥२१॥

व्रज को इस भाँति आपद्-ग्रस्त देखकर श्रीकृष्ण अपने उत्कट-उत्साह और शौर्य का परिचय देते हुए व्रजवासियों की सहायता करते हैं और उन्हें सुरक्षित गिरि कंदरा में पहुँचा देते हैं। श्रावण के मधुर सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कवि ने शस्य-श्यामला वसुंधरा का सरस चित्रण किया है और प्रतिकूल वातावरण को उपस्थित कर काव्य के नायक के गौरवान्वित चरित्र का दिग्दर्शन कराया है।

शरद का चित्रण उद्दीपन के निमित्त है, शरद के सुन्दर-शोभन वातावरण में कृष्ण की मुरली का मधुर स्वर व्रजवासियों को विमुग्ध कर देता है। एक दिन जब नभ मेघ-शून्य था वापी, तड़ाग, सरोवर सब शुभ्र वर्णा चन्द्रिका के निर्माल्य से पूर्ण थे, राका रजनी खिलखिला रही थी, शीतल पवन प्रवाहित हो रही थी, चन्द्रोज्वला सत्पुष्प सौरभवती वन मेदिनी भी अतीव प्रसन्न थी, उसी समय व्रज गोप-गणाग्रणी की वंशी बजी और सब गोप-गोपियों के एकत्रित हो जाने पर श्रीकृष्ण ने प्रकृति के मधुर और उपदेशात्मक रूप तथा विधि की कला का दिग्दर्शन कराया। शरद-शुभ्रा प्रकृति श्रीकृष्ण और गोपिकाओं के मिलन में आधार-स्तम्भ रही और मिलन के अनन्तर भी उनके मनोभावों में तीव्रता और उल्लास का सचार करते हुए उन्हें रास-क्रीडा के लिये उत्तेजित किया।

'हरिऔध जी' ने प्रकृति में मानवीकरण की भावना को सबसे अधिक प्रधानता दी है। प्रकृति उन्हें मानव की सी चेष्टा करती प्रतीत होती है, जड़ प्रकृति उनके लिये चेतन होगई है, और वह उनके साथ रोती और हँसती है, कभी वह ममतामयी माँ के समान ममत्व प्रकट करती और कभी सहृदय मित्र की भाँति संवेदना, सहानुभूति और एकात्म्य प्रकट करती है, प्रकृति के चेतन प्राणी मानव की भाँति हर्ष के साथ प्रमुदित होते और मानव के

नियोग से दुःख का अनुभव करते हैं, कृष्ण के मथुरा जाते समय धेनु समूह और पालित काकातुआ की दुःखग्रस्त अवस्था का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है,

काकातुआ मुहर ग्रह के द्वार का भी दुःख था
चिल्लाता था अति विकल था ॥४०॥ प्रिय प्रवास।

. मानव की ही भांति चेतन प्रकृति में हम खिन्नता, दीनता और दुख का अवलोकन करते हैं। कृष्ण के चले जाने पर भी सारिका, धेनु आदि की अत्यन्त करुणोत्पादक अवस्था हो जाती है, गायें कृष्ण की वंशी का सरस स्वर सुनकर मानव की ही भाँति आत्म विभोर हो कर अपने बच्चों तक के प्रति विमुख हो जाती हैं। वैदेही-बनवास के पश्चात् रिक्त-रथ को देखकर घोड़ों की आकुलता का स्वाभाविक चित्र देखिये :—

घुमा-घुमा शिर रहे रिक्त रथ देखते।
थे निराश नयनों से आँसू डालते।
बार बार हिन हिना प्रकट करते व्यथा।
चौंक चौंक कर पाँव कभी थे डालते ।.वैदेही बनवास सर्ग ४।

चेतन प्रकृति में तो तुलसी सूर नन्ददास आदि कवियों ने भी मानव की सी चेष्टाओं का वर्णन किया है, किन्तु हरिऔध ने जड़ प्रकृति को भी इसी भाँति मानव के दुःख से त्रस्त और संतप्त प्रकट किया है। कृष्ण के मथुरा-गमन की सूचना के पश्चात् मानव जगत और मानवेतर जगत में तादात्म्य स्थापित होजाता है। ब्रजवासियों की व्याकुलता में तादात्म्य स्थापित करते हुए प्रकृति भी निश्चल, नीरव और शान्त होजाती है वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिलता है, यदि कोई पत्ता गिरता भी था तो,

च्युत हुए पर भी वह मौन ही
पतित था अवनी पर होरहा ॥ प्रिय प्रवास सर्ग ३।

एक-पत्ते तक को मानव के कष्ट का आभास था।

माँ यशोदा का ममत्व पूर्ण हृदय पुत्र वियोग की आशंका से अत्यन्त उत्तप्त हो रहा था, वह बार बार पुत्र का मुख देख रही थी और उसके लिये अनेक शुभ कामनायें करती हुई अश्रु बहा रही थी। हरिऔध जी ने यशोदा

के दुःख की, प्रकृति में स्पष्ट छाप देखी वह प्रकृति को माँ के इस घोर कष्ट में उल्लसित न देख सके, उन्होंने अनुभव किया कि रजनी भी हिम-विन्दुओं के बहाने कृष्ण जननी यशोदा के साथ आँसू बहा रही थी।

'हरिऔध' की प्रकृति मानव के सुख में प्रफुल्लित हो उठती और उसके दुःख में विषादपूर्ण हो जाती है। श्रीराम के सुशासित राज्य में प्रातःकाल आनन्द रश्मिया विकीर्ण कर देता हैं प्रकृति उल्लसित हो जाती है, किरणों का आगमन देख ऊषा मुस्कराई। किन्तु षष्ठ सर्ग में सीता वन-गमन से पूर्व खिन्न-मना ऊषा हमें और ही प्रकार की दृष्टिगोचर होती है :—

'खरी ओट में उनकी ऊषा अलस भाव से भरी दिखाई' ॥ ३ ॥

वैदेही वनवास।

ऊषा अत्यन्त उदासीन भाव से बादलों की ओट में छिप जाती है।

नन्द जब मथुरा से अकेले लौटते हैं तो प्रकृति का हृदय दग्ध होजाता है ब्रजवासियों की करुण अवस्था से सूर्य भी काँप जाता है, उस समय

धीरे धीरे तरणि काँपता दग्ध होता,
काला काला ब्रज अवनि में शोक का मेघ छाया॥ १ ॥ प्रिय प्रवास।

श्रीकृष्ण के प्रयाण के समय तो अचेतन प्रकृति, मानव की विकल अवस्था को देखने में असमर्थ होजाती है, सर्वत्र खिन्नता और उदासीनता छाजाती है। प्रिय गमन की सूचना से विदग्ध होकर प्रातःकाल जो सूर्य काँपता हुआ उदय हुआ था वह उस प्रयाण वेला के समय अत्यन्त सतत हो जाता है और वृक्षों की ओट में छिप जाता है।

श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर उनका अभाव समस्त प्रकृति को विकल बनाता है। सचराचर प्रकृति उत्सुकता पूर्वक हरि के प्रत्यागमन की प्रतीक्षा करती है और बड़े कष्ट से वियोग के दिनों को व्यतीत करती है।

पत्ते पत्ते सकल तरु से औ लता बेलियों से
कोने कोने ब्रज सदन से पंथ की रेणुओं से।
होती सी थी ध्वनि सदा कुंज से काननों से।
लोने लोने कुंवर अबलौं क्यों नही सद्म आये ॥ १० ॥

प्रियप्रवास सर्ग ६ ॥

समस्त प्रकृति यही प्रश्न करती हुई ।तीत होती है कि कृष्ण बलराम लौटकर क्यों नहीं आए।

मानव भावनाओं के साथ तादात्म्य प्रकट करने वाली प्रकृति को हरिऔध जी ने मानव आकार और रूप भी प्रदान किया है, उनके लिये प्रकृति सर्व गुणों से पूर्ण एक भोली भाली नारी है, वह अनुपम सौन्दर्य और राशि भूत गुणों से सम्पन्न है। अखिल विश्व उसकी माधुरी पर मुग्ध होजाता है। प्रकृति में वह मानव कीसी स्वार्थमयी प्रवृत्ति, निर्दयता और निर्ममता के विपर्यास का अनुभव करते हैं उसकी मृद-मंजुल छवि, मृदुल प्रकृति और करुणाभिभूत हृदय और सदाशयता पर वह मुग्ध हो जाते हैं। संसार के कटु अनुभवों के उपरान्त उन्हे प्रकृति को पदसेवा में सुख और शाति का आभास प्राप्त होता है वह प्रेमातिरेक के वश अपनी उपास्या का गुण गान करने लगते हैं :—

है अतीव कोमला विश्व मोहक छवि वाली।
बड़ी सुंदरी सहज स्वभावा भोली भाली ॥ २६ ॥
करुण भाव से सिक्त सदयता की है देवी।
है संसृति की भूति राशि पद पकज सेवी ॥ २७ ॥

वैदेही बनवास प्रथम सर्ग ॥

इस प्रकार प्रकृति में मानव-रूप और मानव से भी अधिक गुणों का अवलोकन कर वह उसमें मानव-व्यापारों का भी आरोप करते हैं। मानव की ही भाँति उनकी प्रकृति सुन्दरी वस्त्राभूषण का प्रयोग करती है वह भी समयानुसार वस्त्र परिवर्तन करती है। 'प्रभात' के वर्णन मे प्रकृति वधू के व्यापार का अवलोकन कीजियेः—

प्रकृति वधू ने असित बसन बदला सित पहना,
तन से दिया उतार तारकावलि का गहना।
उसका नव अनुराग नील नभतल पर छाया,
हुई राग मय दिशा, निशा ने बदन छिपाया ॥

पारिजात पृष्ठ ५४ ॥

प्रकृति बधू के श्वेताम्बर धारण करने पर उसके सौन्दर्य से लज्जित हो रात्रि अपना मुख छिपा लेती है और शुभ्र वसना प्रकृति वधू के सहज-रूप पर मुग्ध होकर दिशाएं अनुराग रंजित हो जाती हैं। प्रकृति मानव की भाँति होली, दिवाली, विजया आदि के अवसरों पर फाग खेलती दीपमाला

के आलोक का आनन्द लेती और विजयोत्सव पर प्रसन्न होती है, प्रत्येक उत्सव उसे हर्षित कर देता है प्रकृति को। 'होली की ठठोली' कैसे आकर्षक रूप में दृष्टिगोचर होती है।

जब दिवाकर ने, निज कर से
ऊषा के घूंघट को टाला,
रात परदे में जा बैठी
भगी छिपकर तारक माला।
ढाक कुसुमों का मुँह काला। कल्पलता पृष्ठ १६१, १६२।

होली के अवसर पर ऊषा का मुख रगने को जब दिवाकर ने घूंघटा हटा दिया तो रात्रि ने आवरण डाल लिया और नक्षत्र गण भाग खड़े हुए, बसन्त ने ढाक के पुष्पों को काला कर दिया यह देखकर कुन्द की कलियाँ हँस पड़ीं। कवि ने बसन्त के प्रातःकालीन दृश्य का अत्यन्त भव्य चित्र अंकित किया है। होली खेलते समय के मानव व्यापार के साथ उन्होंने प्राकृतिक सत्य का पूर्ण रूपेण निर्वाह किया है, कवि का प्रकृति के प्रति अनुराग की उत्कटता प्रत्येक व्यापार से प्रदर्शित होती है कवि ने बसन्त के ऊषा-काल की मोहक-छवि का पूर्णतः पालन किया है और अपनी सौन्दर्यानुभूति को व्यक्त कर दिया है।

दीपावली मे भी वह जरतारी की साड़ी और पुष्पाभरणों से सज्जित स्त्री का आरोप करते हैं। वह दीपमालाओं से आलोकित उस अंधकारमयी रात्रि को नारी रूप प्रदान करते हैं। किंतु दीपावली के प्रति कविका उतना अधिक उत्साह नहीं प्रतीत होता। वह दीपावली के अवसर पर अपने हृदय में एक अव्यक्त वेदना का अनुभव करते हैं। दीप-मालाओं का तीव्रालोक उन्हें अपने देश की अधोगति का ध्यान दिलाता है हृदय का उत्साह नैराश्य मे परिवर्तित हो जाता है और उनका करुणाप्लावित हृदय दीपावली से निवेदन करता है,

टले जिससे भारत का तिमिर, क्यों न वह ज्योति जगाती हो?

कवि को कुछ समय के लिये अंधकार का विनाश करने वाला दीपालोक अपेक्षित नहीं, वह तो ऐसी ज्योति चाहता है—जिससे भारत के अज्ञानान्धकार का निवारण हो। आर्थिक-शोषण, अशिक्षा और अज्ञान के कारण देश

की अधोगति को देख कर वह पीड़ा से कराह उठते हैं और प्रकृति से एकात्म्य होने के कारण अपने व्यग्र हृदयका प्रतिबिम्ब प्रकृति में भी देखते हैं। उन्हें होली भी व्यथिता-नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है वह संवेदना प्रकट करते हुए प्रश्न करते हैं,

कहाँ गई मुखड़े की लाली,
किसने छीनी छटा निराली,
पीला क्या पड़ गया होलिके ! तेरा गोरा गाल ?
कल्पलता पृष्ठ ६३।

प्राचीन-वैभव के विनष्ट होजाने से सतप्त भारत के कष्ट का प्रतिबिम्ब वह होलिका में देखते है। विजयोत्सव पर भी वह यही प्रार्थना करते हैं, 'भूतिवान भारत बन जाय।'

अपने राष्ट्र-प्रेम की भावना में वह भारत की अधोगति से समस्त प्रकृति को व्यग्र देखते हैं, राजपूत-वीर-प्रसविनी राजस्थान-धरित्री में अब विलासिता मदांधता और कायरता का साम्राज्य देखकर पीड़ित होकर अर्वली पर्वत अपनी दुःखानुभूति को अश्रु बहाकर प्रकट करता है,

'हरिऔध' जी की प्रकृति में हमे मानव सौन्दर्य, मानव व्यापार और मानव अनुभूति सभी के दर्शन होते हैं। वह प्रकृति में एक सुयोग्या, सहानुभूति-शीला और सुशोभना सहचरी का अनुभव करते हैं। अब हम प्रकृति के उद्दीपन रूप का विवेचन करेंगे।

उद्दीपन

प्रकृति का उद्दीपन रूप में हरिऔध जी का वर्णन अनूठा ही है, मानव प्रकृति में अपनी मनोदशा का प्रतिबिम्ब देखता है इस रूप में प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता, मानव न प्रकृति के सुखकारी रूप पर न्यौछावर होता है और न उसके विनाश पर दुःखी होता है, प्रकृति को वह अपने हर्ष विषाद की अवस्थानुसार हर्षित और अनुतप्त अनुमान कर लेता है मानव की उद्विग्नावस्था में उसे प्रकृति का शोभनतम रूप भयकर लगता है और सुख दशामे प्रकृति की उग्रता भी प्रिय प्रतीत होती है। उद्दीपन में प्रकृति का केवल इतना ही महत्व है कि वह मानव के सुख और दुःख दोनों की मात्रा की अभिवृद्धि करती है। हरिऔध जी ने सयोग शृंगार में प्रकृति का बहुत

कम उपयोग किया है। इनका अधिकतः उपयोग विप्रलंभ शृंगार में ही हुआ है। उनके शृंगार वर्णन संयत हैं उनमें रीतिकालीन कवियों की भाँति कामुकता और विलासिता का प्रदर्शन नहीं है। शरद ऋतु का कृष्ण के संयोग में इन्होंने अत्यन्त अनुरंजनकारी वर्णन किया है एक दिन जब राका रजनी रजनीश की अलौकिक कौमुदी से दिव्याम्बरा बनी हुई थी, वनमेदनी सत्पुष्प सौरभवती थी और,

ले पुष्प सौरभ तथा पय सीकरों को
थी मन्द मन्द बहती पवनातिप्यारी।
जो थी मनोरम अतीव प्रफुल्लितकारी,
हो सिक्त सुन्दर सुधा रजनीश द्वारा॥

प्रिय प्रवास सर्ग १४।

समस्त वसुधा राकापति की चन्द्रिका से आवृत्त थी, उसी समय कृष्णकी मधुर मुरली बजी, शरद का मनोमुग्धकारी वातावरण, शीतल समीर और प्रियतम कृष्ण की वशी का सरस स्वर माधुर्य समस्त, व्रजवासियों को उद्दीप्त कर देता है वे सब उत्साह में भर कर अपने नित्यकर्मों का परित्याग कर कृष्ण के पास चल देते हैं।

उस निस्तब्ध निशीथ में वन मेदिनी असंख्य गोपियों के मनोहर गान और कृष्ण की मुरली माधुर्य से पूर्ण हो जाती है। जीवनेश कृष्ण के संयोग में ब्रजवासी शरद की सुन्दर रात्रि को नृत्यगान मे बिता देते हैं, वे आत्मविभोर हो जाते हैं उस समय उन्हें अखिल सृष्टि अपने साथ हँसती और विमोहित हुई सी प्रतीत होती है। वह कृति में अपने आनन्द का प्रतिबिम्ब देखते हैं:—

पाई अपूर्व थिरता मृदु वायु ने थी
मानो अचंचल विमोहित ही बना थी
प्यारे स्वरों मुरलि मग प्रमोदिता हो,
माधुर्य साथ हँसती सित चन्द्रिका थी॥११०॥

गोप-गोपांगना अपने साथ वायु को भी सुधि बुधि खोने और चन्द्रिका को प्रमुदित होते हुए अनुभव करते हैं सूर ने भी प्रकृति को मानव के सुख के साथ तादात्म्य करते हुए इसी प्रकार आत्मविभोर वर्णन किया है,

डोल नहिं द्रुम लता, थिथकी मंद गंध समीर।
धेनु तृन तजि रहे ठाढ़े बच्छ तजि मुख छीर
'सूर' मुरली नाद सुनि थकि रहत जमुना नीर ॥१४॥ मुरली माधुरी

सचराचर-प्रकृति में प्रेमातिरेक के कारण कवि तल्लीनता का अनुभव करता है।

प्रकृति में ऐन्द्रिय सुख का भी 'हरिऔध' जी ने अनुभव किया है। अखिल सृष्टि में वह नर नारी की प्रेम-क्रीड़ा का अनुभव करते हैं, कवि को दाम्पत्य जीवन की कोमलता सरसता, और माधुर्य का आभास प्राप्त होता है, समस्त जड़-प्रकृति पति पत्नी के ऐन्द्रिय-सुख में और मादक-विलास में निमग्न दिखाई देती है।

गोद में गिरिगण के बैठी घाटियाँ शोभा पाती हैं।
दौड़ती जाकर के नदियाँ समुद्रों में मिल जाती हैं।
अंक में उपवन के विरची क्यारियाँ कान्त दिखाती हैं।
पादपों के सुन्दर तन में बेलियाँ लिपटी जाती हैं।

कल्पलता पृ० १६।

इठलाती, मदमाती प्रकृति इस प्रकार नर नार के पारस्परिक-आकर्षण का अनुभव कराती हुई मानव को उत्तेजित करती है और वह जड प्रकृति में भी प्रिय मिलन के प्रति उमग उत्साह तथा प्रेम को देखकर उमंग में भर जाता है।

वियोग-शृंगार में हम सब ब्रज निवासियों को दुखित पाते हैं। आबाल वृद्ध, गोप गोपियाँ सभी कृष्ण गमन की सूचना पाकर खिन्न होते और आजीवन वियोग में उनकी गुणावलियों के कीर्तन द्वारा अश्रु बहाते हैं। माँ यशोदा और प्रेमानुरागिनी राधा की वियोग व्यथा तो प्रिय प्रवास की सर्व श्रेष्ठ निधि है कृष्ण गमन से पूर्व की रात्रि में राधा की उद्विग्नता और खिन्नता में नारी हृदय की कोमलतम भावना और अतिशय प्रेम का परिचय मिलता है। वह तारक समूह से प्रार्थना करती है कि स्थिर रहे, जिससे रात्रि का अवसान न हो और कृष्ण न जा सकें।

पर हित रत हो ए ठौर को जो न छोड़ें
निशि गत नहिं होवे बात मेरी बनेगी।।४४।

प्रिय प्रवास सर्ग ४।

'हरिऔध जी' की इन पंक्तियों में विरहिणी राधा की कोमल अनुभूति व्यक्त होती है, और एक अज्ञात कवि के ये शब्द ध्वनित हो उठते हैं:—

सजन सकारे जायेंगे नैन मरेंगे रोय,
विधिना ऐसी रैन कर जो भोर कबू ना होय।

अपनी अधिक उद्विग्नावस्था में राधा को प्रकृति भी विकल प्रतीत होती है, वह तारक समूह में कभी तो स्थिरता का अनुभव करती है और यह जान कर प्रसन्न होती है कि तारों ने उसकी विनय सुनली और कभी अपने ही समान प्रकृति में व्याकुलता का निरीक्षण करती है,

उडुगण थिर से क्यों हो गये दीखते हैं,
यह विनय हमारी कान में क्या पड़ी है।
रहरह कर इनमें क्यों रङ्ग आ जा रहा है,
कुछ सखि इनको भी हो रही बेकली है ॥ ५॥

प्रिय प्रवास।

किन्तु प्रकृति नियमित रूप से अपने व्यापार में संलग्न रहती है, क्षितिज के निकट ऊषा की लालिमा फैल जाती है और राधा उन्मादिनी सी बनकर अपने कम्पित हृदय को थामकर अत्यन्त व्यथित शब्दों में कहती है :—

'अब नभ उगलेगा आग का एक गोला'

सूर्योदय के साथ ही ब्रज पर पविपात होगा और ब्रजवासियों की आशा और आनन्द भस्मसात् हो जायेंगे मनुष्य को अपनी शोक-विह्वल अवस्था में प्रकृति में भी वैषम्य दिखाई देता है, प्रकृति का सौम्य-रूप भी हृदय को दग्ध करता है देश की शोचनीय अवस्था से व्यथित कवि के हृदय को शरद के सुशीतल वातावरण से पूर्ण विजया दशमी का आगमन अरुचिकर प्रतीत होता है। वह अपने जातीय गौरव और शौर्य की स्मृति में मनाये जाने वाले इस वार्षिकोत्सव के प्रति अपनी विरक्ति प्रकट करते हैं इसे देखकर इन्हे अपने अतीत वैभव की याद आती है और हृदय में वेदना का प्रादुर्भाव होता है। उनका हृदय क्षुब्ध और व्यथित हो उठता है। प्रकृति के आनन्द में स्वय आनन्द नहीं मना पाते और अपनी असमर्थता प्रकट कर देते हैं:—

उमगें कैसे उनमें भरे,
दूर उसका हो कैसे खेद,
कलेजा जिसका चलनी बना,

हुआ जिसकी छाती में छेद।

सिसकी भरना और हँसना दोनों एक साथ कैसे हों।

कृष्ण के मथुरा प्रयाण के पश्चात् माता शोक विह्वल हो जाती है। वह अपने भाग्य को कोसती है और अपनी विवशता पर झुँझला पड़ती है, प्राण-प्रिय-पुत्र के वियोग से अधिक संतापकारी और क्या दुःख हो सकता है? उस समय उनका धूलि-तक से तादात्म्य सा हो जाता है। वह स्वयं को पदतल में दलित धूलि से भी अधिक दयनीय समझती है, कृष्ण के रथ के घोड़ों की टापों द्वारा उड़ी हुई पद-रज को कभी विचलित अनुमान करती, कभी प्रिय नैकट्य का सम्बन्ध भावना से उसको हृदय से लगाती और कभी अपने ही समान भाग्यहीना समझती है।

वह दिन किसी प्रकार समाप्त हुआ, यशोदा ने दुलारे पुत्र की प्रतीक्षा में पलक पांवड़े बिछा दिये, वह आशा उत्कंठा और उत्सुकता पूर्ण नेत्रों से अपने नेत्रों के तारे का पथ देखती रही, कभी वह काग उड़ाती।

जो आते हों कुंवर उड़के काग तो बैठ जा तू।
मैं खाने को प्रति दिन तुझे दूध औ भात दूंगी ॥८॥

प्रिय प्रवास सर्ग ६।

और कभी पथिकों से कृष्ण का संदेश पाने की आशा करती। दिन उन को कल्प के समान प्रतीत होता था और दोषा सदोषा हो जाती थी, प्रतिक्षण नंदरानी को श्यामल मूर्ति का ही ध्यान रहता था।

लाड़िले पुत्र के वियोग में यशोदा कृष्ण के रूप, आकार आदि से सम्बन्धित प्रकृति और उनकी क्रीड़ास्थली को देखकर दुखित होती है, कालिन्दी का पुलिन, वृन्दाटवी और सपुष्प तरु उन्हें व्यथित बना देते हैं।

हरि-अनुरागिनी राधा का हृदयाकाश भी दुःखान्धकार से पूर्ण हो जाता है, वह विक्षिप्त सी होकर कभी पवन को दूतत्व का कार्य सौंपती, कभी कालिन्दी से अपनी व्यथा निवेदन करती, कभी कोकिल, भ्रमर आदि के सम्मुख वेदना प्रकट करती और कभी जूही, मालती, सूर्यमुखी आदि पुष्पों से तादात्म्य स्थापित करती है। वियोग की दुःखदशा में राधा का हृदय अतीव कोमल हो जाता है, उसकी सुकुमार प्रकृति किसी को भी अनुतप्त नहीं देखना चाहती। उसकी इच्छा होती है कि समस्त प्रकृति प्रफुल्लित रहे, वह जड़ और चेतन

प्रकृति पर अपनी करुणा-कलित सुकुमार कल्पना को विकीर्ण कर देती है, पवन से साहचर्य स्थापित कर वह कहती है :—

> जो पुष्पों के मधुर रस को साथ सानंद बैठे।
> पीते होवे भ्रमर भ्रमरी सौम्यता तो दिखाना।
> थोड़ा सा भी न कुसुम हिले औ न उद्विग्न वे हों।
> क्रीड़ा होवे नहिं कलुषिता केलि मे हो न बाधा ॥४२॥

प्रिय प्रवास सर्ग ६।

भ्रमर भ्रमरी के आनन्द को वह भग्न करना नहीं चाहती पुष्प शाखा आदि जड़ प्रकृति के प्रति भी मृदुलता प्रकट करने की पवन को चेतावनी दे दी जाती है उसे पवन की वाणी विहीनता का ध्यान है, अतः सकेतों द्वारा अपनी दशा का दिग्दर्शन कराने की पवन से प्रार्थना करती है। म्लान-कुसुम मे वह अपनी मलिन-अवस्था, शुष्क-शाखा में अपनी कृशता, और पीत-पत्र में निर्बलता के कारण अपने पीत-वर्ण का कृष्ण को ध्यान दिला देने का आदेश देती है, यही नहीं वह अपने सूखे हृदय-तल को उत्फुल्ल करने के लिये प्रियतम की पदरज ला देने की भी प्रार्थना करती है।

अत्यधिक उद्वेग के परिणामस्वरूप वह उन्मादिनी सी कुंजों में भ्रमण करती है और वहाँ चम्पा, चमेली, जुही, कुन्द आदि के पुष्पों से अपना सम्बन्ध स्थापित करती है। चम्पा में उसे अपनी वेदना का आभास प्राप्त होता है और वह उसे गले से लगाकर रोने की इच्छा करती है, कुन्द को अपने हृदय प्रान्तर के रङ्ग में रँग देना चाहती है, जुही से नारीत्व के नाते संवेदना पाने की आशा करती है और पाटल पुष्प को मौन देखकर झुँझला पड़ती है। जड़ पुष्प जब उसकी भावुकता के प्रत्युत्तर मे असमर्थ रहते हैं तो वह उनमें ऐंठ का अनुभव करती है।

वृषभानु कुमारी राधा भ्रमर, कोकिल, और कालिन्दी सबके प्रति अपने आराध्य के वर्ण से सादृश्य रखने के कारण एकात्म्य स्थापित करती है कोकिल मे वह वर्ण साम्य के अतिरिक्त व्यापार मे भी सादृश्य देखती है। कृष्ण व्रज में पालित होकर मथुरा चले गये हैं, यशोदानन्दन अब देवकी नन्दन बन गये हैं, नन्द दुलारे अब वासुदेव हैं, यह वेदना उसके हृदय में सदा कसकती रहती है वह इस स्वार्थ का साम्य कोकिल मे देखकर कहती है—

यथैव हो पालित काक अंक में,
त्वदीय बच्चे बनते त्वदीय हैं,
तथैव माधो यदुवंश में मिले,
दुखी बना, मंजु मना ब्रजांगना ॥६०॥
प्रिय प्रवास सर्ग १५।

सूर ने भी इसी भाव को प्रदर्शित किया है जिस प्रकार काग द्वारा पोषित कोकिल।

'कुह कुहाय आए बसत रितु अन्त मिलै कुल अपने जाय'

इसी भाँति यदुवंशी कृष्ण अब सूर्यवंशी द्वारकाधिपति बन बैठे हैं।

राधा सबसे अपना वियोग-दुःख कथन करती है; किन्तु सभी को उपेक्षा करते हुये पाती है। प्राचीन चित्र उसके नेत्रों के सम्मुख प्रतिबिम्बित होते हैं, एक कसक उत्पन्न होती है और वह भ्रमर से यही कहती है:—

नहीं टल सकता था श्याम के टालने से,
मम मुखदिशि आता था स्वयं मत्त हो के।
एक दिन वह था औ एक है आज का भी,
जो मुख दिशि मेरे ताकता भी नहीं तू। ७६।
प्रिय प्रवास सर्ग १५।

भ्रमर के व्यवहार में इतना वैपरीत्य देखकर भी विरहिणी ब्रज-बाला उसके सम्मुख अपना विषाद प्रकट करती है और उसको अपना प्रियबन्धु समझती है क्योंकि,

कुछ कह उनसे है चित में मोद होता
छिति तल पर जिसकी हूँ श्यामली मूर्ति पाती ॥६४॥
प्रिय प्रवास सर्ग १५।

श्याम-वपु-शोभी मेघ, कृष्ण-वर्ण-कोकिल और श्यामजल-संयुता-कालिंदी को देखकर उसे जलद तन श्रीकृष्ण की याद आजाती है, अपने प्रिय के नाते अखिल विश्व के समस्त श्यामवर्ण पदार्थ उनके प्रेम और अनुराग के उपयुक्त पात्र हो जाते हैं, अपनी मृत्यु के अनन्तर भी कृष्णानुराग रंजिता वियोगिनी राधा अपनी समाधि पर श्याम-वर्ण के ही पुष्पों के उगने की वांछा करती है। वह कालिन्दी से कहती है:—

विधिवश यदि तेरी धार में आ गिरूँ मैं,
मम-तन ब्रज की ही मेदिनी में मिलाना,
उस पर अनुकूला हो, बड़ी मञ्जुता से,
फल-कुसुम अनूठो-श्यामता के उगाना ॥ १२५॥
प्रिय प्रवास सर्ग १५।

सूर की भाँति हरिऔध जी ने भी प्राकृतिक उद्दीपनों का महत्त्व स्वीकार किया है। जब तक कृष्ण के क्रीड़ास्थल हैं, कुंज हैं, कालिन्दी तट हैं, श्याम-वर्ण वस्तुएँ हैं तब तक उनकी स्मृति से गोपालकृष्ण कैसे विलग हो सकते हैं, यह तो तभी संभव हो सकता है जब समस्त वृन्दाविपिन उजड़ जाये, अथवा उनकी आँखें फूट जायें जिससे वह क्रीड़ास्थलों को न देख सकें, अथवा उनका हृदय विदीर्ण हो जाये जिससे उनके हृदय में भावोदय ही न हो:—

सूखे न्यारा सलिल सरि का दग्ध हो कुंज पुंजें,
फूटें आँखें हृदय-तल भी भ्रंश हो गोपियों का।
सारा वृन्दा-विपिन उजड़े नीप निर्मूल होवे,
तो भूलेंगे प्रथित गुण के पुण्य-पाथोधि माधो ॥ ५१ ॥
प्रिय प्रवास सर्ग १४।

प्राकृतिक स्थल गोपांगनाओं के हृदय में कृष्ण की स्मृति को तीव्र कर देते हैं और वह अत्यन्त व्यग्र होजाती है।

मानव सौन्दर्य के उपमानों को देखकर भी राधा के हृदय में हलचल मच जाती है। वह प्रफुल्लित पुष्प में श्याम के मुख, कमल में चरण और हस्त, केलों में जंघा और पक्षियों के कूजन में सरस वाणी का अनुमान करके दुखित होती है। स्मृति की तीव्रता में वह कृष्ण दर्शन के लिये व्यग्र हो जाती है और सरला राधा असंभाव्य विषय का प्रतिपादन कर लेती है। वह कहती है:—

होते मेरे विफल तन में पक्ष जो पक्षियों से
तो यों ही मैं समद उड़ती श्याम के पास जाती ॥ ५४ ॥ सर्ग १६

जब उसकी कोई भी कल्पना सत्य नहीं होती, उसके प्रियतम के मिलने की समस्त आशायें निराशा में परिणत हो जाती हैं तो उसे आत्म-संतोष हो जाता है उसके हृदय में विश्व का प्रेम जाग जाता है वह अखिल विश्व में

प्रिय की मधुर मूर्ति के दर्शन करती है। समस्त प्रकृति उसके प्रिय के मधुर रूप से पूर्ण होजाती है।

अलंकार

मानव सौन्दर्य के उपमान रूप में प्रकृति के उपभोग में हरिऔध जी ने अधिक उत्साह नहीं दिखाया है। बहुत कम स्थलों में उन्होंने सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसके अभिव्यक्तीकरण के लिये वासना रूप से दबे हुये अपने प्रकृति प्रेम को व्यक्त किया है। परम्परायुक्त उपमानों द्वारा कृष्ण के अंग प्रत्यंगों का सीधा और सरल वर्णन देखिये:—

> मैं पाती हूँ अलक सुषमा भृंग की मालिका में
> है आँखों में सुछवि मिलती खंजनों और मृगों में।
> दोनों बाहें कलभ कर को देख हैं याद आती,
> पाई शोभा विविध शुक के ठौर में नासिका की ॥ ८५ ॥
> प्रिय प्रवास सर्ग १६।

श्रीकृष्ण के शरीर में भृंग, खंजन, मृग, शुक, दाडिम आदि सभी उपमान परम्परागत हैं। कवि मानव सौन्दर्य और मानवेतर सौन्दर्य दोनों के प्रति उपेक्षित हैं। इसमें कवि का सौन्दर्य अथवा प्रकृति किसी के भी प्रति उत्साह नहीं लक्षित होता। कहीं कहीं कवि ने परम्परागत उपमानों द्वारा, सौन्दर्य, गुण अथवा व्यापार का सादृश्य व्यक्त न करके मानव के मानसिक उत्कर्ष एवं बौद्धिक-विकास का दिग्दर्शन किया है। भारत के प्रतिकूल वातावरण में भी योग्यता और प्रतिभा का परिचय देने वाले कतिपय व्यक्तियों के प्रति वह श्रद्धाभाव से नमित हो जाते हैं,

> वे माई के लाल नहीं मुझ को भूले हैं।
> सूखे सर में जो सरोज जैसे फूले हैं ॥ कल्पलता पृष्ठ ४१।

प्रतिभाशाली मनुष्यों का विकास इसी भाँति श्रेयस्कर है जिस भाँति सूखे सरोवर में प्रफुल्लित पुष्प का विकसित होना।

कृष्ण के माधुर्य वर्णन में कहीं कहीं कवि ने स्वानुभव और कवि कल्पना का भी आश्रय लिया है,

गगन संध्य समान सुओष्ठ थे।
दसन थे युग तारक से लसे।
मृदु हँसी वर ज्योति समान थी,
जननि मानस की अभिनंदिनी ॥२१॥ प्रिय प्रवास सर्ग ८।

यद्यपि इसमें उपमान नवीन हैं। किन्तु पाठक के हृदय को पुलकित कर देने और रूप माधुरी की अनुपम छटा को विकीर्ण कर देने की सामर्थ्य नहीं है, इस अलंकार द्वारा केवल रूप का आभास होता है, अर्थबोध होता है उसका विम्ब ग्रहण नहीं होता, मानव और प्रकृति विम्ब प्रतिविम्ब भाव से प्रभावित नहीं करते। जहाँ रूप और व्यापार दोनों का सादृश्य व्यक्त किया है वहाँ अवश्य कवि का मानव-सौन्दर्य और प्राकृतिक सौन्दर्य में एकात्म्य लक्षित होता है। संध्या को गौचारण के पश्चात् व्रज भूषण लौट रहे हैं, साथ में धेनु समूह हैं, दिशा धूलि से आच्छन्न है। धूलि के बीच से निकलते हुए कृष्ण के रूप माधुर्य पर मुग्ध होकर कवि कहते हैं:--

ककुभ शोभित गोरज बीच से
निकलते व्रज वल्लभ यों लसे।
कदन ज्यों करके दिशि कालिमा,
विलसता नभ में नलिनीश है।१५। प्रियप्रवास सर्ग १।

गोरज के बीच से निकलते हुए जलद तन श्रीकृष्ण इसी भाँति सुशोभित होते हैं जिस भाँति रात्रि के अंधकार को नष्ट करता हुआ चन्द्र सुशोभित होता है। मानव और प्रकृति क्रिया-प्रति क्रिया के रूप में हमारे सम्मुख चित्रित होजाते हैं। गोस्वामी जी की उत्प्रेक्षा द्वारा किया हुआ राम लक्ष्मण के रूप का चित्रण इससे पूर्ण साम्य रखता है :—

लता भवन ते प्रकट भे तेहि अवसर दोउ भाइ
विकसे जनु जुग विमल बिधु जलद पटल बिलगाइ॥

'*रस कलस*' में *परम्परागत उपमानों का कवि ने मोहक वर्णन किया है* नायिका के नेत्रों की सुषमा पर मुग्ध होकर वह कहते हैं:—

कारे कारे तारे ए अरुन अँखिया मे डोलें
युगल कमल में मिलिंद मतवारे से ॥४४॥ रस कलस पृ० ७७

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों नायिका के नेत्रों की मोहकता को देखकर स्वयं कवि मतवाला होगया है। उसकी सौन्दर्यानुभूति अत्यन्त तीव्र

होगई है और वह वाणी में प्रस्फुटित हो उठी है। नायिका के नेत्रों की चंचलता और मदोन्मत्त मिलिन्द की क्रिया मे साधर्म्य प्रकट करते हुए उन्होंने अलङ्कार-योजना की है।

नेत्रों को उपमानो से भी अधिक आकर्षक वर्णित करने में कवि ने उत्प्रेक्षा और प्रतीप अलकार का एक समन्वय कर अपनी काव्य प्रतिभा को व्यक्त किया है,

याही तें वन में बसे खज, वनज मृग मीन
कछू अनबन ही सी रही अँखिअन सो निबही न ॥ ४६ ॥
रस-कलस ।

खजन और मृग वन में तथा मीन सरोवर मे रहती है, वह प्राकृतिक सत्य है। कवि इससे नेत्रों से अनबन रहने के कारण की संभावना करता है और नेत्रो की श्रेष्ठता प्रदर्शित करता है, प्रतीप और उत्प्रेक्षा दोनो अलकारो का निर्वाह हो जाता है।

कविवर नाथूराम शकर की नायिका के नेत्र वर्णन में भी यही भाव प्रकट होते हैं। सुन्दर नेत्रों से लज्जित हो समस्त प्राकृतिक उपमान तेजोहत और श्री विहीन हो जाते है,

तेज न रहेगा तेजधारियो का नाम को भी,
मंगल मयक मंद मंद पड़ जायँगे।
मीन बिन मारे मर जायँगे सरोवर में,
डूब डूब शकर सरोज सड़ जायेंगे।
चौंक चौंक चारो ओर चौकड़ी भरेंगे मृग,
खंजन खिलाड़ियों के पख झड़ जायेंगे।
बोलो इन अँखियों की होड़ करने को जब,
कौन से अड़ीले उपमान अड़ जायँगे ॥४३॥
काव्याग कौमुदी भाग २ पृष्ठ १०६ ।

मीन और जल के अनन्य प्रेम का वर्णन प्रायः सभी काव्यकारो ने किया है और प्रेम की अनन्यता के आदर्श के रूप में इन्हे अपनाया है। किन्तु हरिऔध जी ने नेत्रो के उपमान और प्रेम के आदर्श दोनो रूपो में मीन का अत्यन्त कौशल के साथ उपयोग किया है। मीन को अपने प्रियतम जल में क्रीड़ा करते देख सीता को अवध नरेश श्रीराम का ध्यान आता है, वह

व्याकुल हो जाती हैं और उनके नेत्रों में जल भर आता है, इस समय कवि सभावना करता है: —

मानो व्याकुल बनी युगल मछलियों को,
यथावसर अनुकूल सलिल था मिल गया ॥२६॥
वैदेही वनवास सर्ग १५।

नेत्रों के लिये मीन उपमान द्वारा सौन्दर्य और यथावसर अनुकूल अश्रुजल मिल जाने के द्वारा प्रेमादर्श को प्रकट किया है। नेत्रो की सजलता के कारण वैदेही की अन्तर्व्यथा भी व्यक्त होती है।

मानव के सौन्दर्य-वर्णन में प्राकृतिक पदार्थों का सबसे अधिक उपयोग हरिऔध जी ने प्रतीप और व्यतिरेक अलंकार में किया है। रस-कलस में नारी के नख-शिख वर्णन में इन्होंने अधिकतः रीति कालीन कवियों की परम्परा का अनुसरण किया है और नायिका को अधिक रूपवती व्यक्त करने के लिये कभी सन्देह, कभी प्रतीप और कभी व्यतिरेक अलंकार में अपने भावों को प्रकट किया है। नायिका के स्निग्ध अलक जाल पर मुग्ध होकर हरिऔध कवि समयसिद्ध उपमान अलि को व्याकुल दिखा कर अलकों की श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हैं: —

भ्रमर इन्हें न विलोकियत बन बागन गुञ्जारि।
अलिकुल अकुलाने फिरत अलकावली निहारि ॥१॥
रस कलस पृ० ७४।

इसी भाँति अधर की लालिमा और माधुर्य के उपमानों में अपकर्ष प्रदर्शित कर वह नायिका की उत्कृष्टता व्यंजित करते हैं, और उपमानों को हेय ठहराते हैं:—

बर विद्रुम में कहाँ लाली इती कहाँ मजुलता जपा ऐसी गहै।
कहा लाल में लाल ललाई इती समता कहा बापुरो बिम्ब लहै॥
कहा ऊख मयूख पियूख में एतो मिठास अहै हरिऔध कहै।
जितनी माधुरी कोमलता कमनीयता मोहकता अधरा में वहै ॥१२८॥
रस कलस पृ० ८७।

कवि को नायिका के अधर में कोमलता, कमनीयता और मोहकता समस्त उपमानों से अधिक प्रतीत होती है।

सदेह अलकार द्वारा भी कवि ने मानव सौंदर्य को अभिव्यक्त किया है। मिस्सी के कारण श्याम दन्तावलि से प्रस्फुटित होती हुई नायिका की मुस्कान पर

कवि मुग्ध होकर प्राकृतिक उपमानों को संयोजित करता है। किन्तु किसी भी उपमान को वह नायिका के सौन्दर्य धरातल पर स्थिर नहीं रख पाता और सदेह में पड़कर सभी उपमानों को प्रयुक्त कर डालता है, वह किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाता।

किधौं तम विन्दु की कतार में सुधा की धार,
किरिन कढ़ी है किंधौ कालिमा प्रतीची में
कांति किंधौ हीरा की लसनि पाँति नीलम में
जोति बगरी है कै कलिन्दजा की बीची में
कारे दन्त पाँति में लसी है मुसकान किधौं
थिरकि रही है बिज्जु बादर दरीची में। १३१।

रस कलस पृ० ८५।

नायिका की सुकुमारता और मृदुलता का वर्णन इन्होंने रीतिकालीन काव्यकारों की भाँति ऊहात्मक रूप में किया है। इनकी नायिका अत्यधिक कोमलांगी है—सुमन स्पर्श से उसके हाथ मैले हो जाते हैं, आतप से शरीर कुम्हला जाता है और 'पाखुरी गुलाब गात आवृति उपट सी'।

नेत्रों की लाली का वर्णन इन्होंने रूपक अलंकार द्वारा बड़े सुन्दर रूप में किया है। नायिका के नेत्रों में सुधा सरोवर और लाली में अनुराग के सिवारों का आरोप करते हुए वह कहते हैं:—

लाल लाल डोरे परे कै अखियन मझार।
सुधा सरोवर में लसै कै अनुराग सेवार ॥५८॥

रस कलस पृ० ७८।

यशोदा के हृदय तल को एक अति भव्य उद्यान का रूप देते हुए हरिऔध जी ने हृदय में उत्पन्न विभिन्न भावों और उद्यान में विकसित नाना प्रकार के पुष्पों आदि का सांग-रूपक द्वारा सुन्दर समन्वय किया है। प्रथम माँ यशोदा के हृदय का पत्र-पुष्पों से सुशोभित एक उद्यान से साम्य प्रदर्शित करते हुए अन्त में वह भग्नाश हृदय का आरोप नष्ट-प्राय: उपवन में करते हैं, कृष्ण के संयोग और वियोग द्वारा उद्भूत आनन्दित और सतप्त हृदय का उपवन से पूर्ण सादृश्य स्थापित हो जाता है। कृष्ण के संयोग-सुख में यशोदा का हृदय एक सुन्दर उद्यान था जिसमें कल्पना की क्यारियाँ भावो के सुमन, उत्साहों के विटप थे; उसमें:—

धीरे-धीरे मधुर हिलती वासना-वेलियाँ थीं
सद्वांछा के विहग उसके मंजु-भाषी बड़े थे ॥४६॥
प्रिय प्रवास दशम सर्ग ।

माँ के हृदय की कोमल भावना सुत-वधू का चित्र बनाती थी। वधू के सुन्दर मुख की कल्पना ही उस उद्यान का प्रफुल्लित कमल पुष्प था, किन्तु अब पुत्र के मथुरा चले जाने पर माँ के हृदय के समस्त कोमल भाव नष्ट हो गये हैं। तब तो उद्यान की दशा ही कुछ और हो जाती है:—

सूखे जाते सकल तरु हैं नष्ट होती लता है
निष्पुष्पा हो विपुल मलिना वेलियाँ होरही है ॥५३॥
प्रिय प्रवास दशम सर्ग ।

सांग रूपक में कवि ने यशोदा की दोनों अवस्थाओं का उद्यान की दोनों अवस्थाओं से सामञ्जस्य प्रदर्शित किया है। प्रकृति और मानव की दशा में अलंकार रूप में तादात्म्य स्थापित हो गया है।

हरिऔध जी के अलंकार रूप में किये गये प्रकृति के वियोग में यद्यपि इतना उत्साह नहीं लक्षित होता जितना मानवीकरण और वियोग शृंगार में है, इनके अधिकतर सादृश्य मूलक अलंकार पूर्ववर्ती रीति कालीन कवियों की परम्परानुसार हैं, किन्तु कहीं कहीं उत्प्रेक्षा और रूपक में इनकी नवीनता और उमंग का प्रत्यक्षीकरण होता है।

प्रकृति में उपदेश

'हरिऔध' जी के प्रत्येक काव्य-ग्रंथ में हमें लोक-सेवा, लोकाराधना, लोकहित और लोक सुधार की भावना मिलती है। प्रकृति में प्रत्येक पुष्प, प्रत्येक वृक्ष, गिरि निर्झर आदि सभी में वह लोक-कल्याण-कामना के दर्शन करते हैं। प्रकृति उन्हें पग-पग पर उपदेश देती है। कवि का हृदय प्रकृति के प्रत्येक व्यापार में उपदेश ग्रहण करता है जब वह देखते हैं कि तमोमय-रजनी के व्यतीत होजाने के अनन्तर ऊषा प्राची दिशा को रागरञ्जित कर देती है और निदाघ को प्रचण्डातप के उपरान्त जलद-वर्षण कर वसुधा का कष्ट हर लेते हैं। तब वह प्रकृति की नियमन-शीलता पर मुग्ध हो जाते हैं और उनके मुख से निकलता है :—

समय पर होता है भव-कार्य
नियति है कितनी नियमन शील !

प्रकृति कवि को नियम-शीलता का पाठ पढ़ाती है। उन्हें प्रकृति लोक-कल्याण में व्यस्त दिखाई देती है। सरोवर की चपल-जल बीचियों को देखकर वह मुग्ध हो जाते हैं, उनका बाह्य-सौन्दर्य कवि को सुख प्रदान करता है, किन्तु जल-बीचियों के अन्तर-प्रदेश में व्याप्त लोक-हित की भावना उन्हें मानसिक शांति प्रदान करती है, वह अत्यन्त परितुष्ट होकर सिंधु से कहते हैं:—

तुम्हारे तरल अंश में लस
केलिरत हो छवि पाती है।
लोकहित से लालायित हो
ललित लहरें लहराती हैं॥ पारिजात पृष्ठ १०८।

भव-नियमन-शीला प्रकृति को वह सर्वदा सद्भावोंसे पूर्ण देखते हैं। उसका प्रत्येक व्यापार शिव के हेतु होता है। लोक-कल्याण की भावना से अभिभूत होकर ही प्रकृति उग्र-रूप धारण करती है। ग्रीष्म में प्रकृति का सतप्त रूप भी लोकहित कामना से युक्त होता है क्योंकि:—

तप ऋतु आकर जो होता है ताप विधाता।
तो लाकर घन बनता है जग जीवन दाता ॥७२॥
वैदेही-वनवास प्रथम सर्ग।

भीषण उष्णता के पश्चात् ही जलद वर्षा करते हैं जो मानव जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। आँधी का उत्पात भी व्यर्थ नहीं होता क्योंकि वह जीवन-प्रद समीर को शोधन करती और नवीन हितकारिणी भूति से पृथ्वी को भर देती है। प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य में अन्तर्हित अशोभनता में वह मलिन-मना मानवों का अवलोकन करते हैं:—

आलोक से लसित पादप वृन्द नीचे
छाये हुये तिमिर को कर से दिखा के
थे यों मुकुन्द कहते मलिनान्तरों का
है बाह्य रूप अति उज्वल दृष्टि आता।१३०
प्रिय प्रवास सर्ग १४।

मानव प्रकृति में कुटिल मनुष्यों के द्विविध-रूप का निरीक्षण करता और शिक्षा ग्रहण करता है। बुरी बात को अपदार्थ समझ कर फेंक नहीं देना चाहिए कभी कभी उसकी भी उपयोगिता होती है इसका दिग्दर्शन कवि ने गुञ्जा में कराया है जिसका रंग लाल और मुंह काला होता है। यद्यपि काला रंग

सुन्दर नहीं होता किन्तु गुञ्जा के रक्त-वर्ण के सहयोग में वह उसके सौन्दर्य वर्द्धन में सहायक होता है उसे असुन्दर नहीं बनाता:—

सुलालिमा में फलंकी लगी लखा
विलोकनीया कमनीय श्यामता
कहीं भली है बनती कुवस्तु भी
बता रही थी वह मञ्जु गुञ्जिका ।६२।
प्रिय प्रवास सर्ग ६ ।

साराश यह है कि वह प्रकृति को सर्व गुण सम्पन्ना उपदेशिका के रूप में मानते हैं। प्रकृति पूज्या है, मान्या है और हृदय स्थल की अनुरञ्जन-कारिणी है:—

प्यारी सत्ता जगत पति की नित्य लीला मयी है
स्नेहो सिक्ता परम मधुरा पूतता में पगी है।
ऊंची न्यारी सरल सरसा ज्ञान गर्भा-मनोज्ञा
पूज्या मान्या हृदयतल की रंजिनी उज्वला है ॥१११॥
प्रिय प्रवास सर्ग १६ ।

प्रकृति में परम तत्व का आरोप

हरिऔध जी ने प्रकृति में परम तत्व के दर्शन किये हैं। प्रकृति के सृजन, संचालन और सहार को देखकर उन्हें आश्चर्य होता है, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य उनके मन में जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं:—

ले बहु रंग बलाहक व्योम को
छींट बनाता है कौनसा छीपी ॥ कल्पलता पृ० २२३ ।

वह प्रश्न करते हैं—

बनाता है क्यूं भू को भव्य,
कौन सा भव का भाव विलास। कल्पलता पृ० ४८।

वह किसी अव्यक्त चेतना का सचराचर प्रकृति में अनुभव करते हैं। उस करुणामय की ज्योति को तरणि से तृण तक समस्त पदार्थों में देखते हैं; यह ज्योति सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और पच-तत्व सबमें व्यापक है,

ताराओं में तिमिरहर में वह्नि में औ शशी में
पाई जाती परम रुचिरा ज्योतियाँ हैं उसी की।

पृथ्वी, पानी, पवन, नभ में, पादपों में, खगों में,
देखी जाती प्रथित प्रभुता विश्व में व्याप्त ही है ।११०।

प्रिय प्रवास सर्ग १६ ।

अखिल-विश्व उसी की विभूति से पूर्ण है सर्वत्र उसी की अद्भुत लीला का प्रसार है ।

उस ज्योति को यह राम सज्ञा प्रदान करते हैं । यह 'राम' अयोध्या नरेश राम नहीं वरन जगन्नियंता राम हैं । इनके राम जगजीवन हैं, लोक-ललाम हैं, पतित-पावन हैं और भुवनाभिराम हैं उनको अपने राम के लिये यही कहना पड़ता है:—

'सत्य है, चित है, है आनन्द'

अवधपति राम और ब्रजचन्द्र-कृष्ण इनके काव्य के धीरोदात्त, कर्तव्य-परायण और धीर-ललित नायक हैं, आदर्श और वीर हैं। अंग्रेजी के (Love is God) प्रेम ही परमेश्वर है, कथन को इन्होंने अपने प्रिय प्रवास में चरितार्थ किया है । लोक नायिका राधा, सगुण-भक्ति की उपासिका है, वह 'श्रवण' कीर्तन, पद सेवन, स्मरण आदि नव प्रकार की भक्ति मे विश्वास करती हुई अपनी भावुकता मे विश्व के कष्ट निवारण को **स्मरण भक्ति का रूप प्रदान** करती है । भगवान में सर्ववाद की स्थापना करती है,

विश्वात्मा जो परम प्रभू है रूप तो है उसी के ।
सारे प्राणी सरि गिरि लता वेलियाँ वृक्ष नाना ।।११७।।

प्रिय प्रवास सर्ग १६ ।

अतः वह प्रत्येक जीव में विद्यमान है । प्राणि मात्र की सेवा उसकी सेवा है, दूसरों के कष्ट का ध्यान उस विश्वात्मा का ध्यान है और यही नवधा-भक्ति की एक विधि अर्थात् भगवान का स्मरण है,

अपने प्रियतम कृष्ण मे वह उसी विश्व स्रष्टा के दर्शन करती है और कृष्ण को ही अपना सर्वस्व दान कर देती है । उसके भगवान कृष्णमय अथवा कृष्ण ही भगवान हो जाते हैं और प्रेम की उत्कृष्टता तथा अनन्यता में वह सकल विश्व में अपने प्रियतम की मधुर मंजुल मूर्ति का दर्शन करती है, वह कहती है:—

पाती हूँ विश्व प्रियतम में विश्व में प्राण प्यारा ।
ऐसे मैंने जगतपति को श्याम में है विलोका ।११२।

प्रिय प्रवास सर्ग १६ ।

हरिऔध जी ने प्रकृति को प्रायः सभी रूपों में देखा है प्रकृति-वर्णन उनके काव्य का एक प्रधान अंग है। इनके महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' में से ही यदि प्राकृतिक स्थलों के चित्रण को निकाल दिया जावे तो उसका कलेवर अत्यन्त छोटा और उसका सौन्दर्य छूछा हो जावेगा, प्रिय प्रवास के प्राण प्रकृति-वर्णन में ही निवसित हैं। अपने महाकाव्य के नायक को भी उन्होंने प्रकृति-प्रेमी ही वर्णन किया है। श्रीकृष्ण खसखानो में श्रम-निवारण के लिये नहीं पडे रहे थे। वह तो ग्राम के उन्मुक्त क्षेत्र में पालित हुए थे, प्रकृति से उनका पूर्ण तादात्म्य था —

मुकुन्द जाते जब थे अरण्य में
प्रफुल्ल हो तो करते विहार से।
विलोकते थे सुविलास वारि का
कलिंदजा के कलकूल पे खड़े।२७।
समोद बैठे गिरि सानु पै कभी
अनेक थे सुन्दर दृश्य देखते।
बने महा उत्सुक वे कभी छटा
विलोकते निर्झर नीर की रहे ॥२८॥

प्रिय प्रवास सर्ग १३।

श्रीकृष्ण कभी कालिन्दी की ललित लहरों पर मुग्ध होते, और कभी गिरि-शिला पर बैठकर प्राकृतिक दृश्यों की छटा का अवलोकन करते थे। मथुरा के नागरिक-जीवन के प्रति वह उदासीन थे। उन्हें पुनः पुनः ब्रज के अतीत दिवसों की याद आती थी। उनके हृदय में यही विचार उठता था,

'मेरे जीवन का प्रवाह पहले अत्यन्त उन्मुक्त था'

हरिऔध जी ने प्रकृति के प्रति अपना अतीव अनुराग प्रदर्शित किया है। यह अपने प्रकृति-चित्रण में यथेष्ट सचेत रहे हैं। इनमें संस्कृत के कालिदास, बाण, भवभूति आदि काव्य-प्रणेताओं और पं० श्रीधर पाठक की भाँति धारा-वाहिकता तो नहीं है फिर भी ये अपने युग के श्रेष्ठ प्रकृति-प्रेमी कवि हैं। यदि केवल प्रकृति के आलम्बन रूप की तुलना की जाय तो पूर्ववर्ती कवियों में पंडित श्रीधर पाठक और परवर्ती काव्यकारों में शुक्ल जी की प्रतिभा गुरुतर है, परन्तु समग्र प्रकृति काव्य का विवेचन किया जाय तो हरिऔध जी को अपने युग का सर्वश्रेष्ठ कवि कहने में अत्युक्ति न होगी।

पं० रामचन्द्र शुक्ल

प० रामचन्द्र शुक्ल द्विवेदी युग के अद्वितीय कवि हुए है, इन्होने प्रकृति-सुन्दरी को आलम्बन के भाव-विभावों के अन्तर्गत उद्दीपन के बधन से मुक्त कर आदि कवि वाल्मीकि और प्रकृति प्रेमी कालिदास तथा भवभूति की भाँति विश्व के विशद एव विस्तृत क्षेत्र में परिभ्रमण करते देखा, उसका सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया और उसका सश्लिष्ट चित्रण किया। यह प्रकृति के नैसर्गिक-रूप के उपासक थे, मानव द्वारा निर्मित अथवा संशोधित कृत्रिम-प्राकृतिक-वैभव मे इनका मन ही नहीं रमा, यही कारण है कि हमें इनके प्रकृति-चित्रण में वन्य-दृश्य एवं ग्राम्य-वातावरण के अधिकतः दर्शन होते हैं।

शुक्ल जी प्रकृति के सीधे, सरल, नैसर्गिक और सश्लिष्ट चित्रण के अनुगामी हैं। इनकी दृष्टि से प्रकृति की कोई भी वस्तु नहीं बच पाती प्रकृति के स्वाभाविक स्वरूप का इन्होने यथातथ्य चित्रण किया है :—

लदे कलियान औ फूलन सों कचनार रहे कहुँ डार नवाय।
भरो जहँ नीर धरा रस भीजिके दीनी है दूब की गोट चढ़ाय।
रह्यो कल गान विहगन को अति मोद भरो चहुँ ओर सो आय॥
कढ़ै लघु जन्तु अनेक, भगें पुनि पास की झाड़िन को झहराय।
डोलत हैं बहु भृंग, पतग, सरिसृप मंगल मोद मनाय।
भागत झाड़न सों कढि तीतर पास कहुँ कछु आहट पाय॥
बागन के फल पे कहुँ कीर हैं भागत चोंच चलाय चलाय।
धावत है धरिवे हित कीटन चाव धनी चित चाह चढ़ाय॥

बुद्ध चरित पृ० १७।

शुद्धोदन के नगर मे बसत ऋतु के इस चित्रण में कवि ने आस पास की समस्त वस्तुओं, प्राकृतिक व्यापारों और परिस्थिति को सयोजित कर प्रकृति का स्वाभाविक और सश्लिष्ट चित्रण किया है। पाठक को इसे पढ़ कर केवल अर्थ ग्रहण ही नहीं होता वरन पूरा चित्र हृदय पटल पर अंकित हो जाता है। कचनार के पुष्प भार से नवी हुई डाल, लघु जन्तुओं का डर कर पास की झाड़ियों में भागना, तीतर का आहट पाकर झाड़ियों से निकल कर भागना और फलों के ऊपर तोतों का एक दूसरे को चोंच मारकर भागना द्वारा कवि ने प्राकृतिक वस्तु और व्यापार का पूर्णतः विम्ब-ग्रहण करा दिया है

और अपने प्रकृति-पर्यवेक्षण का परिचय दिया है उनका यह कथन "वस्तुओं के रूप और आस पास की प्रकृतियों का ब्यौरा जितना ही स्पष्ट या स्फुट होगा उतना ही पूर्ण विम्बग्रहण होगा और उतना ही अच्छा दृश्य-चित्रण कहा जायेगा" उपर्युक्त चित्रण में अक्षरशः सत्य है इसकी तुलना में 'देव' का बसन्त वर्णन कितना नीरस प्रतीत होता है:—

माधुरे भौरन फूलनि मौरनि,
बौरनि बौरनि बेलि बर्ची है।
केसरि किंसु कुसुम कुरो,
किरवार कनेरनि रग रर्ची है॥
फूले अनारनि चम्पक डारनि,
ले कचनारनि नेह तर्ची है।
कोकिल रागनि पूत परागनि,
देखु री बागनि फागनि फाग मर्ची है॥

कवि ने उद्दीपन के हेतु बसन्त का परम्परागत वर्णन करते हुए केवल भ्रमर, केसर, कचनार, कोकिल आदि का परिगणन करा दिया है पाठक को अर्थग्रहण हो जाता है।

"केवल असाधारणत्व दर्शन की रुचि सच्ची सहृदयता की पहिचान नहीं है," अपने इस मत के अनुसार इन्होंने प्रकृति के शोभन, अनुपम और असाधारण दृश्यों अथवा वस्तुओं का ही वर्णन नहीं किया है प्रकृति में केवल सौन्दर्य आद्भुत्य और असाधारणत्व के दर्शन करने वाला कवि एक हृदयहीन दर्शक मात्र है। इन्होंने प्रकृति के क्षुद्रतम पदार्थ और व्यापार के प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित किया है बसत में यह केवल कचनार के पुष्प भार से नमित शाखाओं, शुक क्रीड़ाओं और विहंगों के कल नाद पर ही मुग्ध नहीं हुए हैं अपितु—

लिये खरिहानन में सुघरे पथपार पयार के ढूह लखात।

बुद्ध-चरित पृ० १६।

और—

सूखती तलैया के चारों ओर चिपकी हुई
लाल काईयों की भूमि पार करते
गहरे पड़े गोपद के चिन्हों से अंकित जो
श्वेत बक जहाँ हरी दूब में विचरते

आए शरपत्र के किनारे जहाँ रूखे खुले
टीले ककरीले हैं हेमन्त में निखरते ॥

काव्यांग कौमुदी भाग २ पृष्ठ ४०५ ।

के अनुसार पयाल के ढेर, शुष्क-सरोवर, काई से युक्त भूमि, गौपद-चिह्न और कंकरीले टीले भी उनके बसन्त-वर्णन के प्रधान अग हैं। किसी भी प्रत्यक्ष वस्तु की वह उपेक्षा नहीं कर पाये हैं, प्राकृतिक सत्य ने उनके काव्य को अनुपम बना दिया है।

प्रकृति के भयंकर रूप का वर्णन हमे भगवान तथागत के हृदय में भय का सचार करने के प्रसग मे मिलता है। जब कामदेव का शस्त्र उन्हे विचलित करने में असमर्थ हो गया तो अविद्या ने विकट वातावरण उपस्थित कर दिया। घोर अन्धकार छा गया और—

निचले भूधर उठी प्रभंजन सो हिलि यामिनि
छाडी मूसलधार दरकि घन दमकी दामिनि।

बुद्धि चरित पृ० १५१ ।

उस समय भीषण उलकापात के बीच मे समस्त पृथ्वी कांप गई और—

वा अँधियारी माह भयो पवन को फर-फर
चीत्कार सुन पर्‌यो रूप लखि परे भयंकर ॥

बुद्धिचरित पृष्ठ १५१ ।

प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र को अंकित करने के लिये सूक्ष्म निरीक्षण की अत्यधिक आवश्यकता होती है। शुक्ल जी के काव्य की यह विशिष्टता है कि इन्होंने कहीं भी कवि-क्रमागत प्रकृति के अनुसार प्रकृति का चित्रण नही किया है; इनका चित्रण सूक्ष्म-निरीक्षण से पूर्ण है और संश्लिष्ट है। प्रकृति विषयक-ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त है। सरसों के पीत पुष्प से आवृता धरित्री का कैसा सुन्दर चित्रांकन किया है:—

भूरी हरी घास आस पास फूली सरसों है
पीली पीली बिंदियों का चारों ओर है प्रसार।
कुछ दूर विरल सघन फिर और आगे
एक रंग मिला चला गया पीत पारावार ॥

काव्यांग कौमुदी भाग २ पृष्ठ ४०४, ४०५ ।

सरसों के खेत के किनारे खड़े होकर देखने में पहिले उसकी हरी शाखा और ऊपर उगे हुए पुष्प, पीली त्रिन्दियों के समान दृष्टिगोचर होते हैं। ज्यों-ज्यों दृष्टि दूर जाती है त्यों त्यों हरी घास के ऊपर उगे हुए पीत पुष्प ही दिखाई देते हैं और दूर से देखने पर पीत-वर्ण समतल भूमि सी दिखाई देती है जो पीत-वर्ण-सागर के समान प्रतीत होती है। कवि ने सरसों के फूलों का संकेत मात्र न करके पूरा चित्र अंकित कर दिया है, वर्णन कवि के सूक्ष्म-पर्यवेक्षण का परिचायक है।

शुद्ध प्रकृति वर्णन के अतिरिक्त इन्होंने प्रकृति का अलंकृत रूप भी चित्रित किया है और प्रकृति को मानव भावनाओं के अनुसार अतिरंजित किया है, मानव भाव और प्रकृति का पूर्ण सामजस्य होजाता है, प्रकृति मानव के हर्ष में खिलखिला पड़ती है और उसको प्रफुल्लता में अट्टहास करने लगती है। मानव और प्रकृति के इस प्रकार के एकीकरण में कवि को कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है। कवि-कल्पना वास्तविक-तथ्य से समन्वित होती है, कवि को अपनी कल्पना को रागात्मिका वृत्ति से रंगना पड़ता है, शुक्ल जी ने इसका अपने दृष्टिकोण में रखते हुए कल्पना मिश्रित चित्रण किया है। भगवान बुद्ध के पूर्ण प्रज्ञ होने पर उधर उन्होंने शान्ति पाई और इधर प्राची में अपने अभिनव रूप में ऊषा प्रकट हुई, और—

> नभ अरुण आभा रेख अब धुंधले दिगचल पै कढ़ी,
> नभ नीलिमा ज्यों ज्यो निखरि के जाति ऊपर को बढ़ी।
> त्यों त्यों सहमि के शुक्र अपनो तेज खोवत जात है।
> पीरो परो, फीको भयो, अब लुप्त होत लखात है।
>
> बुद्धचरित पृ० १२६।

शुक्र-तारा ऊषागमन के अनन्तर तेजहीन होकर अस्त हो जाता है, पर्वत-श्रेणियाँ आलोक-पूर्ण हो जाती हैं और पुष्प खिल जाते हैं। इन सब प्राकृतिक-व्यापारों का कवि ने निरीक्षण किया है और शुक्र में पीले पड़ने की, पर्वतों के किरीट धारण करने की और पुष्पों में नेत्रों को खोलने की सभावना कर प्रकृति में मानव-भावनाओं का आरोप किया है। कवि की कल्पना और प्रकृति में पूर्ण-सामजस्य होगया है। तथागत की ज्ञान प्राप्ति के साथ ही समस्त प्रकृति में आनन्द सुधा-वर्षण होता है; पशु पक्षियों में स्फूर्ति का संचार होता है।

घुसि सघन झापस माहिं वन की रुचिर थलीन के,
है कहति 'दिन अब है गयो' चकचौंधि चख हरिनीन के।
जो नीड़ में सिर नीद में गड़ि बाच पखन के परे।
चलि कहति तिनके पास "गीत प्रभात के गाओ अरे"
बुद्धचरित पृष्ठ १६० ।

समस्त प्रकृति मंगलगान और आनन्दोत्सव में प्रवृत हो जाती है कवि को ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त प्रकृति,

भगवान की या विजय की मृदु घोषणा सी कर रही '

बुद्ध भगवान की ज्ञान उपलब्धि से प्रकृति इतनी अधिक प्रभावित होती है कि सिंह, मृग और गौ एक ही घाट पर पानी पीते हैं, उनका वैर भाव दूर हो जाता है, मीन बक के सम्मुख प्रसन्न होकर खेलती है और,

बितराय गरल भुजंग मणिधर फन रहे लहराय हैं।
बसि पास चोंचन सो गरुड़ निज पंख रहे खुजाय हैं।
बुद्धचरित पृ० १६२ ।

बैठे भुजंग डार पै कहुं रहे पूंछ हिलाय हैं।
पै आज झपटत नेकु नहिं तितलीन पै दरसाय है।
बुद्धचरित पृ० १६३ ।

शुक्ल जी का यह वर्णन यद्यपि मानव भावनाओं से संबधित है और इसमें कवि कल्पना का प्रयोग है किन्तु प्रकृति में कही भी अस्वाभाविकता नहीं आ पाई है। इनके प्रकृति चित्रण वाल्मीकि, कालिदास और अन्य श्रेष्ठ संस्कृत काव्यकारों से मिलते जुलते हैं, प्रकृति के प्रत्येक व्यापार के प्रति इन्होंने अपना अनुराग प्रदर्शित किया है और प्रत्येक चित्र का बिम्ब ग्रहण कराया है।

रोगी, वृद्ध और मृतक को देखकर कुमार सिद्धार्थ के हृदय में दुःखवाद के भावों का उदय हुआ था, उन्होंने इस दुःख और व्याधि से मानव को ही ग्रस्त नहीं देखा वरन अपनी भावुकता में समस्त प्रकृति को दुखी और त्रस्त अनुभव किया। इसी दुःखवाद का दिग्दर्शन कराते हुए वह अमित क्लेश-भोगी तपस्वियों से कहते है:—

बात क्षुब्ध पयोधि सों सो उठो नभ में जाय।
अश्रुबिंदु समान खसि खसि अवसि गिरि हैं आय।

कीच सो मनि, धुनत सिर, बहि नदी नारन माहिं।
जाय परि है जलधि में पुनि अवसि सशय नाहिं।

जल वर्षण में अश्रुबिन्दुओं की और नदी के कल कल निनाद में सिर धुनने की कल्पना करते हैं, इसी दुःख से प्रेरित हो वह मनोहर वन कुसुम और तरु शाखाओं पर विहार करने वाले शुक, शिखी, पिक, खजन आदि पक्षियों के प्रति समवेदना प्रकाशित करते हैं और अनन्त सुख की खोज करते हैं, पति वियोगिनी यशोधरा भी दुखावेग में गगनचारी पक्षियों को अपना सहचर समझ कर अपना सदेश भेजती है।

हे गगनचर होय जँह पिय कहौं जो तह जाय।
दीजियो सदेश मेरो ताहि नेकु सुनाय। बुद्धचरित पृ० १६८।

अलंकार-रूप में प्रकृति के उपयोग में भी इनके काव्य में प्रकृति से तादात्म्य प्रकट होता है। मानव और प्रकृति विलग नहीं होने पाये हैं। दोनों का एकात्म्य प्रत्येक रूप मे लक्षित होता है। अलकारों का अधिकतः प्रयोग इन्होंने रूप साम्य के लिये न करके भाव-साम्य अथवा गुण साम्य प्रकट करने के लिये किया है। रूप वर्णन में तो यह केवल पादपद्म, खंजन-नयनी, चन्द्रमुखी आदि कह कर ही मौन हो गये हैं। इनके साहश्य मूलक अलंकार प्रसग मात्र है। मानव व्यापार के प्रसग का साहश्य इन्होंने प्राकृतिक व्यापार द्वारा प्रकट किया है। राजा शुद्धोधन के चिंताशील उदय का मानसरोवर से कैसा सुन्दर-साम्य स्थापित किया है।

कबहुं कबहु पै छाय जाति चिता चित माहीं।
मानस जल झवराय पाय ज्यौं बादर छाहीं॥

बुद्धचरित पृष्ठ २२।

राजा के उदय मे पुत्र के वैराग्य की चिंता इसी प्रकार छा जाती है जिस प्रकार मान-सरोवर का जल कभी-कभी बादलों की छाया से श्याम वर्ण दीखने लगता है। कभी-कभी चिन्ताग्रस्त उदय और मानसरोवर के श्याम-सलिल मे न रूप का साहश्य है और न गुण का, मानव के आन्तरिक भावों का साहश्य प्रकृति के व्यापार द्वारा बिंब-प्रतिबिम्ब भाव से प्रकट होता है। जहाँ इन्होंने पूरे प्रसंग की समता प्रकृति के साथ की है वहाँ तो चित्र और भी अधिक अनुपम हो जाता है। रङ्ग-भवन में नृत्य-गान के अनन्तर स्त्रियाँ रात्रि में सो रही हैं। इस प्रसग का प्रकृति के व्यापार में सुन्दर प्रयोग देखियेः—

सोवैं थकि हास औ विलास सों पसारि पांय,
जैसे कल कंठ रस गीत गाय दिन कर।
पख बीच नाए सिर अपनो लखात तौलो,
जौ लौं न प्रभात आय खोलन कहत स्वर॥
बुद्धचरित पृ० ७७।

शुक्ल जी की उपमाये नवीन हैं, अनूठी हैं और स्वाभाविक हैं। वे उनके अपने निरीक्षण द्वारा उद्भूत हैं।

प्रतीप अलंकार के प्रयोग में इन्होंने प्राचीन परिपाटी के अनुसार अर्थात् कवि-समय-सिद्ध उपमानों द्वारा चित्रण किया है। कुमारी यशोधरा के सौंदर्य का वर्णन करते हुए वह कहते हैं :—

मृदु आनन पै लखि इन्दु प्रभा अरविन्द सबै सकुचाय परे।
शर हेरि प्रसून के नैनन मे हरिनीन के नैननु ना ठहरे॥
बुद्ध चरित पृष्ठ २८।

यशोधरा के नेत्रों मे प्रतीप अलङ्कार द्वारा उपमान हरिणी के नेत्रों से अधिक सौन्दर्य प्रकट किया है। इन्दु और अरविन्द के सहज-वैर और प्राकृतिक सत्य का उन्होंने यशोधरा और अन्य राजकुमारियों में आरोप कर दिया है। यशोधरा की सौंदर्य छटा के सम्मुख अन्य राजकुमारियो की शरीर-शोभा फीकी पड जाती है इसी को व्यक्त किया है।

उत्प्रेक्षा-अलङ्कार का भी इन्होंने परम्पराभुक्त प्रयोग किया है। सिद्धार्थ के रंग भवन में सोई हुई सुन्दरियों में कवि ने कमलिनी की और सिद्धार्थ म रवि की संभावना की है सोयी हुई नारियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं।

मूदि दल नलिनी अनेक रहीं जोहि मनौ।
भानु को प्रकाश, जाहि पाय होत है विकास॥पृ० ७६।

मानो नलिनी अपने दल बन्द करके सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रही हो, राजकुमार के जागने पर सब सुन्दरियों के जागने और दिनमणि के उदय होने पर कमलिनी के विकसित होने में कवि ने प्रभात का सादृश्य प्रकट करते हुए अपनी प्रतिभा को प्रकट किया है। प्रकृति-चित्रण में भी इन्होंने उत्प्रेक्षा-लङ्कार का प्रयोग किया है। भगवान बुद्ध की ज्ञानोपलब्धि के पश्चात् प्रकृति को पुष्प-समूह और हरित घास से संयुत देखकर कवि के हृदय में नवीन भावों का उदय होता है और वह संभावना करते हैं।

प्रभु पयान सो पुलकित पूजन करति अवनि हरषाय।
चरणन तर बहु लहलहात तृण, कोमल कुसुम बिछाय॥पृ० १४३।

मानो पृथ्वी प्रभु के प्रयाण के समय पुलकित हो रही है और उनकी पूजार्थ कोमल, घास एवं कुसुम बिछा दिये हैं।

प्रकृति में उपदेश की झलक तो हमें 'बुद्ध-चरित' में आद्योपान्त मिलती है। प्रकृति को त्रस्त और दुःखी अनुभव करके बुद्ध भगवान सुख की खोज करते हैं म्लान-कुसुम को देखकर मनुष्य को चेतावनी देते हैं कि रूप, यौवन और धन का मद व्यर्थ है 'सूखि गयो जब कुसुम कहाँ फिर गंध रूप तब" समस्त प्रकृति उन्हें जागृति का पाठ पढ़ाती हुई प्रतीत होती है।

जगने के इस जटिल यत्न में बीज फूटता।
उठने के कुछ पहिले उसका अंग टूटता॥
खोल खेत में आँख वही अँखुवा कहलाता।
मिट्टी मुँह में डाल फूल अंगों न समाता॥

वह लोक-कल्याण के कर्मों को सर्वश्रेष्ठ ठहराते हैं। लोक-सेवा ही मनुष्य के कल्याण और सुख का सर्व श्रेष्ठ साधन है।

शुक्ल जी प्रकृति के आलम्बन रूप के सच्चे उपासक हैं। उनके काव्य में प्रकृति चित्रण के विविध रूपों को ढूँढना अनुचित है। आलम्बन के अतिरिक्त प्रवाह में जहाँ कहीं उन्होंने अन्य रूप में चित्रण किया है वहाँ भी प्राकृतिक-तत्वों की संश्लिष्ट योजना और विस्तृत तथा गूढ़-निरीक्षण प्रतिभासित होता है। वह प्रकृति के स्वतन्त्र और सूक्ष्म रूप के सच्चे द्रष्टा हैं, और प्रकृति के स्वाभाविक रूप के उपासक हैं।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त मध्य-काल के सर्व श्रेष्ठ राष्ट्रीय कवि हैं। इन्होंने प्रथम 'भारत-भारती' पुस्तक का निर्माण कर उसमे भारत के अतीत गौरव का गुण गान करते हुए तुलनात्मक रूप में वर्तमान परिस्थिति का वर्णन किया और भारतवासियों के हृदय में राष्ट्रीय-चेतना की लहर उत्पन्न करदी। इसके पश्चात् इनका ध्यान महा-काव्य काल की ओर उन्मुख हुआ। जयद्रथ-वध, वक-संहार, वन वैभव तथा सैरन्ध्री नामक पुस्तकों में महाभारत की मर्मस्पर्शिनी घटनाओं का उल्लेख किया। इन काव्य पुस्तको में हमें प्रकृति का उपयोग केवल अलङ्कार अथवा देश के अंग-रूप मे ही मिलता है, प्रकृति का स्वतंत्र-चित्रण नहीं है और न कवि का प्रकृति के प्रति रागात्मक सम्बन्ध ही प्रतीत होता है। प्रकृति के प्रति उत्साह सर्व प्रथम पचवटी में प्रतिभासित होता है। इसमे कवि ने प्रकृति की अपूर्व झाँकी दिखाई है और प्रकृति और मानव का क्रिया प्रतिक्रिया रूप में सम्बन्ध स्थापित किया है इसके पश्चात् साकेत में प्रकृति का रूप और अधिक निखर आता है और मानव-जगत तथा मानवेतर जगत में तादात्म्य हो जाता है। यशोधरा मे भी प्रकृति का सुन्दर अकन है, किन्तु पंचवटी और साकेत में उनका प्रकृति चित्रण सबसे अधिक स्वाभाविक और सुन्दर हुआ है। प्रारम्भिक ग्रन्थों मे इनके प्रकृति-चित्र यत्न साध्य हैं। कवि को चित्रण के लिये वस्तुएँ एकत्रित करनी पड़ी हैं। किन्तु पंचवटी, साकेत और यशोधरा में धारावाहिक रूप में प्रकृति स्वय ही इनके काव्य में चित्रित हो गई है। काव्यकार को प्रयास नहीं करना पड़ा है। कवि प्रकृति के शोभन और मधुर सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है। आनन्दोद्रेक से उसका मन-मयूर नृत्य करने लगता है उसकी सौन्दर्यानुभूति उसे विकल बना देती है और आनन्दातिरेक में उसके विचार इस प्रकार व्यक्त होते हैं—

> इसी समय पौ फटी पूर्व मे, पलटा प्रकृति पटी का रग,
> किरण कटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अंग।

पचवटी ६३।

प्रातःकाल के सुन्दर दृश्य को देखकर कवि मुग्ध हो जाता है। उसके सहज-सौन्दर्य के आनन्दाधिक्य को अन्तर्निहित रखने में कवि असमर्थ हो जाता है।

इनके अन्य काव्य ग्रन्थों में ऐसे राशिभूत उदाहरण मिलते हैं, जहाँ कवि के हृदय में प्रकृति को देखकर आनन्दरसोद्रेक नहीं हुआ है वह प्रकृति का सरल और स्वाभाविक चित्रण एक अबोध बालक की भाँति कर देता है। सिद्धराज में प्रकृति का यथातथ्य चित्रण देखिये :—

सार्थक अनन्त काल या रसाल था,
बौरे महुए थे और आम भौरे थे,
फूले थे असंख्य फूल, भौंरे सुध भूले थे,
आगई थी उष्णता खगों के कल कंठो में,
गंध छा गया था मंद शीतल समीर में,
लहरा रहे थे खेत सुन्दर सुनहले।

सिद्धराज पृष्ठ १४४

कवि स्वयं बसन्तागमन पर न हर्षित है न दुःखी है, उसने तटस्थ-भाव से प्रकृति का यथातथ्य चित्रांकन कर दिया है, चित्रण को अपने आन्तरिक विचार अथवा मानसिक-परिस्थिति से रंजित नहीं किया है। चित्रण यथा-तथ्य होते हुए भी परम्परागत नहीं है। कवि ने परोक्ष वस्तु का निदर्शन नहीं कराया है, उसने जो कुछ स्वयं देखा है उसका ज्यों का त्यों अंकन है, कवि क्रमागत रेखा पर वह नहीं चला है, देश के अंग-रूप में भी प्रकृति का इन्होंने यथातथ्य चित्रण किया है, चित्रकूट का वर्णन देखिये :—

जो गौरव गिरि उच्च उदार,
तुझ पर ऊँचे ऊँचे झाड़,
तने पत्र मय छत्र पहाड़,
क्या अपूर्व है तेरी आड़,
करते हैं बहु जीव विहार ॥साकेत पृष्ठ २५५।

मानव व्यापारों की पूर्व-पीठिका के रूप में प्रकृति-चित्रण के उदाहरण राशि-राशि मिलते हैं। साकेत के प्रथम सर्ग में प्रातःकाल का वर्णन और द्वितीय सर्ग में सन्ध्याकालीन चित्र पृष्ठाधार के ही रूप में हैं :—

अरुण सन्ध्या को आगे ठेल
देखने को कुछ नूतन खेल,
सजा विधु की बेंदी से भाल
यामिनी आ पहुँची तत्काल ॥ साकेत पृष्ठ ४३।

संध्या के इस चित्रण द्वारा राम-वनवास की अप्रत्याशित घटना के घटित होने का आभास प्राप्त होता है।

गुप्त जी ने जहाँ कहीं प्रकृति के चित्र को अपनी कल्पना के समन्वय से अंकित किया है वहाँ यद्यपि भावोद्रेक की प्रबलता तो नहीं प्रकट होती। तथापि चित्रण में सौन्दर्य और चमत्कार आ जाता है, पाठक के हृदय में कल्पना का मधुर चित्र खिंच जाता है:—

> है बिखेर देती वसुधरा मोती सबके सोने पर,
> रवि बटोर लेता है उनको सदा सवेरा होने पर,
> और विराम दायिनी अपनी संध्या को दे जाता है,
> शून्य श्याम तनु जिससे उसका नया रूप झलकाता है ॥७॥ पञ्चवटी।

रात को ओस बिन्दुओं के गिरने और प्रातःकाल उनके विलीन होजाने में कवि ने कल्पना की है कि रवि प्रातःकाल उन ओस मुक्ताओं को एकत्रित कर लेता है और दिन भर के परिश्रम के पश्चात् विश्राम देने वाली संध्या को उन्हें उपहार रूप में दे जाता है जिससे रात्रि में संध्या का श्याम शरीर प्रकाशित होता है, कल्पना का मिश्रण होने पर भी वर्णन ऊहात्मक नहीं है। कारण में अन्तर होते हुए भी कार्य में असमानता या अस्वाभाविकता नहीं है। अलकारों की सहायता से भी गुप्त जी ने प्रकृति का मधुर-आलम्बन के रूप में वर्णन किया है। सब पक्षियों के सो जाने पर मोर अपने "आओ आओ" शब्द द्वारा रात्रि की नीरवता को भंग कर देता है। इसका वर्णन रूपक और उत्प्रेक्षालकार द्वारा लक्ष्मण इस प्रकार करते हैं:—

> वैतालिक विहंग भाभी के
> सम्प्रति ध्यानलग्न से हैं,
> नये गान की रचना में वे,
> कवि कुल तुल्य मग्न से हैं॥
> बीच बीच में नर्तक केकी,
> मानो यह कह देता है।
> मैं तो प्रस्तुत हूँ देखें कल,
> कौन बड़ाई लेता है ॥ १७ ॥ पंचवटी।

गुप्तजी ने प्रत्येक रूप में प्रकृति के मधुर-रूप का ही निरीक्षण किया है। प्रकृति का उग्र और भ्रमोत्पादक वेष उन्हें प्रभावित नहीं करता, जहाँ तुलसी

ने 'भोर, घास हिम, वारि, क्यारी, कुश, कंटक, ककड़, अगम भूमिधर' आदि शब्दों द्वारा वन की विकटता का भयानक रूप प्रकट किया है वहाँ गुप्तजी के राम केवल,

आतप वर्षा, हिम सहना,
बाघ भालुओं में रहना,
अबलाओं का काम नहीं ॥ साकेत पृष्ठ ६६

कहकर मौन होगये हैं।

प्रकृति में मानवीकरण

गुप्तजी ने प्रकृति को मानव-रूप, मानव वेश-भूषा और मानव-व्यापार से पूर्ण देखा है। प्रकृति में मानव की सी चेतनता और स्फूर्ति, प्रेम और सहानुभूति के इन्होंने दर्शन किये हैं। इन्होंने प्रकृति में प्रेयसी अथवा वासनामय सौन्दर्य का निरीक्षण नहीं किया, प्रकृति कभी तो इनके सम्मुख माता के रूप में प्रकट होती है और कभी सखी-रूप में। प्रकृति के निर्मल प्रेम को इन्होंने नर नारी की वासना जनित रति का रूप नहीं दिया है। शिव के निकट अस्त्र प्राप्ति के लिये जाते हुए अर्जुन प्रकृति को ममतामयी माँ के रूप में देखते हुए कहते हैं,

आकाश में चलते हुए यों छवि दिखाई दे रही।
मानो जगत को गोद लेकर मोद देती है मही॥
उन्नत हिमाचल से धवल यह सुरसरी यों टूटती।
मानो पयोधर से धरा के दुग्ध धारा छूटती॥ जयद्रथ वध पृष्ठ ४६।

बहती हुई जल धारा में वह माँ वसुधा के स्तनों से बहती हुई पावन-दुग्ध-धारा का अनुभव करते हैं। प्रकृति में वह वासना-मय सौंदर्य का अवलोकन नहीं करते। उनके लिये प्रकृति आदरणीया है। पूज्या है, माता है।

पशुओं में स्नेह, रोष, दुःख आदि के भाव हम अपने दैनिक जीवन में नित्य प्रति देखते हैं। हर्ष और दुःख के भाव तो प्रायः समस्त वैष्णव कवियों ने व्यक्त किये हैं। अश्व और गायें क्रमशः राम और कृष्ण के वियोग से व्यथित, प्रदर्शित किये गये हैं। गुप्तजी ने प्रेम-विवश हरिणों का सुन्दर वर्णन किया है।

जिस प्रकार से मानव प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सुधि-बुधि भूल जाता है, उसी प्रकार गुप्तजी ने प्रकृति को भी मानव-सौन्दर्य पर मुग्ध होते हुए वर्णन किया है। पंचवटी में मिथिलेश कुमारी के अनुपम रूप पर समस्त प्रकृति मुग्ध हो जाती है। सौन्दर्यानुभूति प्रकृति को पुलकित कर देती है। उसमें नवीन स्फूर्ति का संचार हो जाता है,

> हँसने लगे कुसुम कानन के,
> देख चित्र सा एक महान।
> विकस उठीं कलियाँ डालों में,
> निरख मैथिली की मुसकान॥
> कौन कौन से फूल खिले हैं,
> उन्हे गिनाने लगा समीर।
> एक एक कर गुन गुन करके,
> जुड़ आई भौंरों की भीड़॥ ६७॥ पंचवटी।

मैथिली की रूप-छटा पर मुग्ध समस्त प्रकृति में नवीन उत्साह लक्षित होता है। जड़ और चेतन प्रकृति सीता की अभ्यर्थना में व्यस्त हो जाती है, चन्द्र तो उस सौन्दर्य सुषमा से लज्जित हो छिपकर ही बैठ जाता है,

> वह मुख देख पांडु सा पड़ कर,
> गया चन्द्र पश्चिम की ओर।

मानव के हर्ष और शोक में प्रकृति भी अपना उल्लास और दुःख प्रकट करती है, प्रकृति में मानव की ही भाँति गुप्तजी ने हर्ष, शोक, क्रोध के भाव व्यक्त किये हैं। एक स्नेहशीला सखी की भाँति प्रकृति मानव के प्रति अपनी संवेदनशीलता प्रकट करती है और मानव तथा प्रकृति का तादात्म्य हो जाता है। वन में सीता और अनुज सहित राम को प्रसन्न देखकर पृथ्वी से आकाश पर्यन्त आनंद छा जाता है।

> पृथ्वी की मंदाकिनी लेने लगी हिलोरें।
> स्वर्गंगा उसमें उतर डूबी अंबर बोर। साकेत पृष्ठ १४१।

मर्त्यलोक की मंदाकिनी और स्वर्ग की गंगा दोनों के हृदय में मानव की प्रसन्नता में आनद की तरगें उठने लगती हैं।

अवधपति दशरथ के देहावसान के पश्चात् करुणा की मूर्ति तीनों रानियाँ श्वेत वस्त्र धारण कर लेती है तो प्रकृति भी अपने वस्त्रा-भूषणों का

परित्याग कर विधवा वेश धारण करती है। वह अपना तारकहार उतार देती है, मलिन वस्त्र धारण कर लेती है। दुःखातिरेक से उसकी यह दशा हो जाती है कि :—

प्रकृति रजन-हीन, दीन, अजस्र,
प्रकृति विधवा थी भरे हिम अस्र ॥ साकेत पृ० १६५।

प्रकृति भी म्लान-मना हो जाती है उसके भी आंसू आँखों में भरे रहते हैं।

कैकेयी की ईर्ष्याजनित राम-बन-गमन की वर-याचना के अनन्तर प्रकृति भी रोष से अभिभूत हो जाती है :—

तब नभ भी मानो धधक उठा
संध्यारुणिमा मिस भभक उठा। साकेत पृष्ठ १४६।

उस दिन के सांध्य-गगन की लालिमा में कवि प्रकृति को चेतन मान कर रोष की लालिमा का अनुमान कर लेता है।

सिद्धार्थ निष्क्रमण के पश्चात् जब राजसी-वेश-भूषा को त्यागकर वल्कल-वस्त्र धारण कर लेते हैं तो प्रकृति तादात्म्य प्रकट करती है। वह भी प्रभावित होकर अपने वैभव का परित्याग कर देती है और मानव के साथ तादात्म्य स्थापित करती है।

" पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देखकर, त्यागे " यशोधरा पृ० ४३। छाया और किरण को इन्होंने मूर्त-रूप प्रदान किया है और सोने, जागने, करवट लेने आदि मानव क्रियाओं से पूर्ण दिखाया है:—

वहीं सहज तरु तले कुसुम शय्या बनी,
ऊंघ रही है पड़ी जहाँ छाया घनी।
घुस धीरे से किरण लोल दल पुंज में,
जगा रही है उसे हिलाकर कुंज में ॥
किन्तु वहाँ से उठा चाहती वह नहीं,
कुछ करवट सी पलट लेटती है वहीं ॥ साकेत पृ० १३६।

प्रकृति में मानव-भावनाओं के आरोप में कवि का प्रकृति-प्रेम लक्षित होता है। कवि अचेतन-प्रकृति में चेतन-व्यक्तित्व का आरोप करता है, किन्तु वह सत्य की अवहेलना नहीं करता, प्राकृतिक सत्य को अपने हृदय के रागात्मक-सबंध द्वारा मानव-रूप प्रदान कर देता है। अपनी मानसिक स्थिति के अनुसार जब वह प्रकृति में एकात्म्य का अनुभव करता है तो प्रकृति उसकी भावनाओं को उद्दीप्त करने का साधन होजाती है।

उद्दीपन

मानव सदा से प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करता रहा है और प्रकृति की क्रोड में कभी क्रीड़ा करता और कभी शून्य-नेत्रों से अपनी अव्यवस्थित दशा पर विचार करता रहा है। गुप्त जी के काव्य में भी प्रकृति का सहयोग मानव की प्रसन्नता को द्विगुणित कर देता और दुःखावेग को भी अधिक तीव्र कर देता है। कृष्ण के सयोग सुख को आधिक्य प्रदान करने में सहायक प्रकृति का गोपियाँ चित्रण करती हैं :—

नई तरगें थीं यमुना में
नई उमगें ब्रज में,

उस समय,

पात पात में फूल और थे
डाल डाल में झूले।

प्रकृति के पञ्च तत्वों में वह उस समय अनुराग रंग की आभा देखती है। प्रज्वलित अग्नि की अरुणिमा में जल की उज्वलता में, नभ-मण्डल की नीलिमा में, वसुन्धरा की हरीतिमा में और शीतल समीर की सुगंधि में कृष्ण के ससर्ग के कारण गोपिकाओं को अनुपम आनन्द प्राप्त होता है, समस्त ब्रह्माण्ड में वह नवोत्साह और नवीन उल्लास का अनुभव करती हैं। अखिल विश्व में वह अपने प्रियतम का ही प्रतिविम्ब देखती हैं, उनके लिये तो—

प्राण तुल्य पाँचों तत्वों में
वह पीताम्बर आया। साकेत पृ० १७६। द्वापर।

इस भांति प्रेमातिरेक में प्रकृति के अगों में पीताम्बरधारी कृष्ण की झलक देखती, हुई प्रकृति के माधुर्य द्वारा कृष्ण के प्रति और भी अधिक आकर्षित होती है और अपने प्रेमोन्माद में वह आत्म विभोर हो जाती है।

प्रेम की महिमा अपूर्व है अपने प्रेम पात्र के सहवास में आपदायें भी सुगम हो जाती हैं, शूल भी फूल हो जाते हैं। अपने पति के सयोग में राम-वल्लभा सीता वन के कुश-कटक, आतप और वर्षा की उपेक्षा कर आनन्द मग्न हो गाने लगती हैं, 'मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया' पर्ण कुटी उनके लिये राजप्रासाद के समान सुखदायिनी हो जाती है। अपने मन की प्रसन्नता में वह उन्हे अतीव प्रिय लगती है क्योंकि,

'मनःप्रसाद चाहिये केवल, क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद'।

किन्तु विरहिणी उर्मिला की दशा विपरीत हो जाती है। अयोध्या का राज्य वैभव उसके लिये शून्य-सम हो जाता है। उसका हरा-भरा उपवन प्रिय-वियोग के कारण वन-सा हो जाता है, उसके हृदय से आह निकलती है,

उपवन वन सा हो होगया हाय मेरा। साकेत पृष्ठ २७६।

वियोगावस्था में समस्त प्रकृति में अपनी दुःखित अवस्था का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। समस्त प्रकृति अपनी दुःख दशा में श्री-विहीन और दुःखी प्रतीत होती है, गोपी उद्धव से कहती है:—

उद्धव अब आयें इस वन में,
सूखा जब सोता है।
सुनो, वहीं कोकिल अब कैसा
ऊ-ऊ कर रोता है। द्वापर पृष्ठ १८०।

जिस कोकिल का मधुर-शब्द कृष्ण के संयोग में पीयूष-वर्षण करता था वही वियोगावस्था में रोदन सा प्रतीत होता है, प्रकृति में वह अपने हृदय का प्रतिबिम्ब देखती है और प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ और प्राणी में विकलता का अनुभव करती हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने के कारण उनकी उमङ्गों पर तुषार-पात हो गया है, अब उन्हें प्रकृति में सौन्दर्य, उल्लास और उत्साह का अनुभव नहीं होता। कृष्ण के संयोग में यमुना में भी उमङ्ग और आनन्द की तरङ्गें उठा करती थीं किन्तु आज तो वह भी विकल वेदना से आहें भरती हुई आगे बढ़ती जा रही है। उद्धव के प्रति कहे गये उपर्युक्त शब्दों में गोपियों के विरह-विदग्ध हृदय की मार्मिक पीड़ा व्यक्त होती है। हरिऔध जी ने भी इसी प्रकार की खिन्नता का प्रकृति में दिग्दर्शन कराया है। उद्धव विमुग्ध होकर वृन्दाविपिन की छटा देख रहे थे किन्तु,

सरोवरों में सरि में सुमेरु में,
खगों मृगों में वन में निकुंज में
बसी हुई एक निगूढ़ खिन्नता,
विलोकते थे निज सूक्ष्म दृष्टि में
प्रिय प्रवास पृ० १०।

विरहोन्माद की अवस्था में मानव को प्रकृति में यह वैषम्य और भी अधिक प्रतीत होने लगता है। उसे प्रकृति के स्वरूप में ही नहीं उसके गुण

और प्रभाव में भी वैपरीत्य का अनुभव होता है। शीतल वस्तुएँ भी दग्धकारिणी और सुन्दर-दृश्य भयावह से लगते हैं गुप्तजी ने इसका दिग्दर्शन किया है प्रातःकाल का मनोरम-दृश्य विरहिणी यशोधरा को उत्तप्त करता है वह क्षोभ और रोष-पूर्वक कह उठती है:—

फट कर भी निरुपाय
भरे हैं अपने भीतर आग तू ॥ यशोधरा पृष्ठ ६४।

विच्छिन्नावस्था में प्रकृति के रूप वैषम्य के अतिरिक्त रस, गंध, स्पर्श और श्रवण में भी विषमता आ जाती है, सबका प्रभाव उल्टा ही होता है, किसी प्रकार भी सुख नहीं मिलता। दुष्यन्त को शकुंतला के वियोग में त्रिविध समीर भी उत्तप्त करता है,

दुखदायी हो आज यह शीतल सुखद समीर।
प्रिया बिना करता व्यथित मेरा तप्त शरीर ॥

शकुन्तला पृष्ठ १० ।

इस प्रकार के गुप्तजी के वर्णन कहीं-कहीं ऊहात्मक भी हो गये हैं। उर्मिला मलयानिल से कहती है:—

जा, मलयानिल लौट जा, यहाँ अवधि का शाप।
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप ॥

साकेत पृष्ठ २९१ ।

शारीरिक-ताप से मलयानिल के लू में परिवर्तित हो जाने में ऊहात्मक-व्यंजना है। बिहारी आदि रीति कालीन कवियों ने नायिका के विरह-ताप का इसी भांति ऊहात्मक-वर्णन किया है। बिहारी की नायिका के विरहोत्ताप से शिशिर का शीत-पवन भी लू हो जाता है।

सुनत पथिक मुह माह निसि, लुवें चलत वहि गाम,
बिन बूझे बिन ही कहै, जियत बिचारी बाम ॥ ४९ ॥

बिहारी बोधिनी ।

विरह-वश मानव जब देखता है कि समस्त प्रकृति में दुःख-सुख का चक्र चलता रहता है, समयानुसार प्रकृति अभिनवरूप धारण कर लेती है, मेघ चातक को तृप्त कर देता है, वृक्ष प्रतिवर्ष फलभार से नमित हो जाते हैं तो उसको कभी ईर्ष्या होती, और कभी व्यथा से हृदय भर उठता है। पतझड के अनन्तर वृक्षों को पुनः पत्र-पुष्पपूर्ण और फल-संयुत देखकर यशोधरा के हृदय से एक दीर्घनिःश्वास निकल पड़ता है—

फलों के बीज फल में फिर आये
मेरे दिन फिरे न हाय। यशोधरा पृष्ठ ८५।

दुःख की अनवरत-व्यथा उसको अत्यन्त दीन-हीन-बना देती है। वह उन सभी प्राकृतिक वस्तुओं को जो समयानुसार पूर्व-रूप धारण करती हैं स्वयं से अधिक श्रेष्ठ समझने लगती है। पद-दलित धूलि और कूड़ा भी उसकी ईर्ष्या का पात्र हो जाता है।

इसी प्रकार वियोगिनी उर्मिला अत्यन्त व्यग्र रहती है। प्रिय लक्ष्मण के विरह में उसे दिन काटना दुष्कर हो जाता है। रात्रि तारे गिन गिन कर व्यतीत कर देती है, किन्तु अरुणोदय होने पर तारे गिनने का उसका आधार भी विनष्ट हो जाता है, वह व्यग्र होकर चिल्ला उठती है,

सखि उडुगण उड़ चले अब क्या गिन प्रभात?

अत्यन्त व्याकुल अवस्था में मानव को एकमात्र प्रकृति की ही क्रोड में आश्रय मिलता है। प्रकृति के साथ एकात्म्य स्थापित कर वह अपनी करुण-कथा चेतन-अचेतन प्रकृति को सुनाता और उसके कष्ट में अपनी सहानुभूति प्रकट करता है, इसी एकात्म्य की भावना से अनुप्राणित हो मानव आदि-काल से अब तक चेतन-अचेतन की भावना को भुलाकर प्रकृति से विरह निवेदन करता आया है। गुप्तजी के काव्य में भी हम भ्रमर, हंस, चातक, सरिता, शफरी, सुरभि, कुंज, वन सभी से मानव को तादात्म्य स्थापित करते हुए पाते हैं। विरह-विदग्धा यशोधरा और उर्मिला के विरह वर्णन इसी प्रकार के एकात्म्य से पूर्ण है। यह दोनों नारियाँ प्रकृति को भी अपने प्रियतम के वियोग में रोते हुए देखती हैं और अपने कोमल-कान्त शब्दों द्वारा उसे सान्त्वना देती हैं। रात्रि की ओस में यशोधरा इन्दुकला के रुदन का आरोप करती है वह अपने सरल और शान्त वचनों द्वारा इन्दुकला को प्रबोधन करती है,

अब क्या रक्खा है रोने में?
इन्दुकले दिन काट शून्य के किसी एक कोने में।
यशोधरा पृ० ६७।

उर्मिला कोकी को व्यथित देखकर दुःखी होती हुई कहती है—

कोक, शोक मत कर हे तात,
कोकि, कष्ट में हूँ मैं भी तो, सुन तू मेरी बात।

वह अपना उदाहरण देकर और स्वयं को समदुःखिनी प्रकट कर कोक-कोकी के प्रति संवेदना प्रकट कर देती है। लक्ष्मण द्वारा पालित पशु पक्षी ही

उसके आत्मीय बन जाते हैं; उन्हीं से वह अपनी कहती और उनकी सुनती रहती है। वियोग का सतत-कष्ट उसके हृदय को अत्यन्त मृदुल बना देता है, उसकी ईर्ष्या अब दया और प्रेम में परिवर्तित हो जाती है। उसकी इच्छा होती है कि समस्त प्रकृति सुखी और आनन्दित हो वह अकेली ही दुःख भार वहन करती रहे। पिंजडे में बन्द पक्षियों के प्रति वह दया भाव से भर उठती है और सखी से कहती है:—

सखि, विहग उड़ा दे, हां सभी मुक्तिमानी,

साकेत पृष्ठ २५६।

लता को तरु से मिलने के लिये प्रोत्साहित करती है,

अवसर न खो निठल्ली,
बढ़ जा, बढ़ जा, विटपि निकट वल्ली।

कली को समझाती है,

मान छोड़ दे, मान, अरी,
कली, अली आया हँस करले, यह बेला फिर कहाँ धरी॥

गुप्त जी ने कवि-परम्परानुसार उद्दीपन में ऋतुओं का महत्व मानते हुए ऋतु-वर्णन किया है। यशोधरा और उर्मिला दोनों के वियोग-वर्णन में षट-ऋतुओं का उल्लेख है। इनके ऋतु वर्णन में परम्परागत गिनी-गिनी वस्तुओं का परिगणन नहीं है, उन्होंने नायिका की वियोगावस्था और ऋतु-समुदाय में पूर्ण सामंजस्य प्रदर्शित किया है। प्रकृति और विरहिणी के मनोभावों का एकीकरण हो जाता है। वर्षा में वियोगिनी उर्मिला मेघों की घनघोर गर्जन में अपने उच्छ्वास और जल-वृष्टि में अपने आंसुओं का अनुमान करती है। वह उस दिन की आशा करती है जब अपने प्रियतम को पाकर वह आनन्द में उमगेगी। शिशिर ऋतु के लिये तो सब सामग्रियाँ उर्मिला के शरीर में ही उपलब्ध हो जाती हैं वह शिशिर से कहती है:—

शिशिर न फिर गिरिवन में,
जितना मांगे पतझड़ दूगी मैं इस निज नंदन में,
कितना कंपन तुझे चाहिये, ले मेरे इस तन में।
सखी कह रही पांडुरता का क्या अभाव इस आनन में॥

साकेत पृष्ठ २४७।

शिशिर के प्रधान तत्व पतझड़, कंपन और पांडुरता सब का आयोजन वह अपने शरीर में ही कर देती है।

शरदागमन पर यशोधरा प्रकृति में अपने प्रियतम का प्रतिबिम्ब देखती है।

उनकी शांति कांति की ज्योत्स्ना जगती है पल-पल में,
शरदातप उनके विकास का सूचक है थल-थल में।

यशोधरा

विप्रलंभ शृंगार में गुप्तजी ने प्रकृति और मानव का सुन्दर समन्वय किया है उन्होंने प्रकृति को मानव भावों को उद्दीप्त करने का प्रधान अंग समझा है।

अलंकार

मानव-सौन्दर्य के रूप गुण और प्रभाव में तीव्रता लाने के लिये उपमान रूप में इन्होंने प्रकृति का उपयोग किया है। भाषा और भाव में चमत्कार लाने के लिये इन्होंने अलंकारों की योजना नहीं की है। इनके अलंकार सहज-रूप में स्वयं ही भाव धारा के साथ प्रस्फुटित होते चलते हैं, इनके काव्य में अलंकार साधन है साध्य नहीं। अलंकार प्रयोग में कहीं तो उपमान परम्परा-भुक्त हैं, कहीं उनके प्रयोग में नवीनता है और कहीं पर कवि कल्पना द्वारा उद्भूत हैं।

बिजली और घन मानव शरीर और बालों के परम्पराभुक्त उपमान हैं। क्रोधित कैकेयी के लिये वह कहते हैं:—

पड़ी थी बिजली सी विकराल
लपेटे थे घन जैसे बाल। साकेत पृ० ४४।

बिजली उपमान द्वारा कवि ने सौन्दर्य में अन्तर्निहित विकरालता का भी प्रकाशन किया है और कैकेयी की कुटिल-भावना से भी साम्य प्रकट किया है, साथ ही मेघों के बीच में लिपटी हुई बिजली द्वारा एक दृश्य भी उपस्थित कर दिया है, इस प्रकार रूप गुण और व्यापार तीनों में बाल खोलकर लेटी हुई कैकेयी का चित्र प्रतिबिंबित होता है। केवल रूप-साम्य प्रकट करने में कवि ने सौन्दर्य के प्रति तो अपना उत्साह नहीं व्यक्त किया है, किन्तु अपने प्रकृति निरीक्षण का परिचय अवश्य दिया है। वल्कल वस्त्रों से युक्त श्रीराम के श्याम शरीर की उपमा कमल से देते हुये वह कहते हैं:—

चौंका वह इस बार, देख कर राम को।
शैवाल परिवृत यथा सरोरुह श्याम को।

साकेत पृ० १२२।

राम का मुख इस भाँति प्रतीत होता है जिस भाँति शैवाल समूह में विकसित श्याम सरोज। इस पूर्णोपमालंकार में श्रीराम के लिये यद्यपि श्याम कमल उपमान परम्परा युक्त है तथापि शैवाल परिवृत के कारण उपमा अधिक स्वाभाविक और सजीव हो गई है। इस उपमा से अर्थ ग्रहण ही नहीं होता बिंबग्रहण भी होता है वल्कल-धारी राम का स्वरूप बोध हो जाता है।

इस प्रकार का उपमा द्वारा वर्ण साम्य इन्होंने प्रकृति में प्रकृति का ही आरोप करते हुए भी प्रकट किया है। तीर्थराज प्रयाग में गंगा यमुना की धारा को देखकर कवि शुभ्र-श्याम-मेघों से उपमा देते हैं:—

'वर्षा से आमिली शरद की सी घटा'

वर्षा के जलद श्याम-वर्ण और शरद के मेघ श्वेत-वर्ण होते हैं। यमुना-गंगा के श्याम-श्वेत-वर्णों का पावस और शरद के मेघों से सादृश्य स्थापित हो जाता है।

क्रिया, गुण और प्रभाव में साम्य प्रदर्शित करते हुए गुप्त जी द्रौपदी का सादृश्य रूपक और उपमालंकार द्वारा पवन के साथ प्रकट करते हैं,

पाँडु कुल में बहती
पवन सी अस्थिर है रहती
पवन वह कि जो जिलाती है
और झोंके भी लाती है।

वन वैभव पृष्ठ १०।

द्रौपदी की अव्यवस्थित मानसिक अवस्था पवन की अस्थिरता है। द्रौपदी रूपिणी पवन अपने मिष्ट-भाषण द्वारा पांडव-रूपी वृक्षों को जीवित रखती है और कभी-कभी उनकी आपत्तियों का भी अंग हो जाती है।

जहाँ कवि ने एक प्रसंग का सांगोपांग वर्णन किया है वहाँ रूप, गुण, क्रिया आदि किसी ने भी सादृश्य न दिखाकर केवल मनःस्थिति का चित्र प्रकृति के व्यापार में प्रदर्शित किया है।

समाधिस्थ इन्द्र की अनुपस्थिति में उदासीना, देवरानी शची का वर्णन वह इस प्रसंग द्वारा करते हैं मानो,

मँडरा रही है शून्य वृंत पर भ्रमरी।

नहुष पृ० ८।

जिस भाँति पुष्प-विहीना शाखा पर भ्रमरी भटकती है इसी भाँति वह अपने शून्य-प्रासाद में रहती है।

मन में विचारों की कभी-कभी एक आँधी सी उठती है, मनुष्य सिहर जाता है, किन्तु विचारशील मनुष्य एक दम सम्हल जाता है, इसका सादृश्य घुमड़ती हुई घटा द्वारा कवि इस प्रकार व्यक्त करते हैं:—

कुन्ती सिहर कर चुप हुई
घहरी घटा फिर घुप हुई। बक संहार पृ० २६।

मानव और प्रकृति के व्यापार में उत्प्रेक्षा की संभावना द्वारा सादृश्य देखिये,

यों अस्त होना देख रवि का, पार्थ मानो हत हुए
मुंदते कमल के साथ वे भी विमुद गौरव गत हुए।
× × ×
राजा युधिष्ठिर उस समय दोनों तरफ लोभित हुए।
प्रमुदित न विमुदित उस समय के कुमुद सम शोभित हुए।
जयद्रथ वध पृ० ८।

सूर्यास्त के साथ अर्जुन की जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा विनष्ट हो जाती है। मुंदते हुए कमल के साथ उनकी नैराश्य पूर्ण अवस्था का साम्य हो जाता है। मानव और प्रकृति का एकात्म्य हो जाता है। जब युधिष्ठिर उस समय जयद्रथ-वध की पूर्णाशा लिये हुए अर्जुन के निकट आकर विपरीत परिस्थिति का अवलोकन करते हैं तो ज्ञान शून्य से हो जाते हैं, उस समय उन्हें सुख अथवा दुःख का ज्ञान नहीं रहता। उनकी स्थिति सन्ध्याकालीन कुमुद के समान हो जाती है जो न विकसित होता है और न संकुचित रह पाता है। इस प्रकार प्राकृतिक व्यापार का मानव भावों से सादृश्य प्रकट करने में कवि ने निजीपन को अपनाया है।

गुप्त जी के उपमान प्रसंगवश स्वयं ही प्रकट हो गये हैं कवि ने आकृति अथवा रूप के साम्य के लिये चेष्टा करके उनकी योजना नहीं की है मानव की स्थिति विशेष का, प्रकृति का उदाहरण रूप में रखकर, पाठक को बिम्ब ग्रहण करा दिया है, सम्बन्धियों के बीच में पड़े हुए अभिमन्यु के शव का गुप्तजी इस भाँति वर्णन करते हैं:—

कृष्णादि से वेष्ठित उसे भगवान ने देखा तथा,
सुरभी लताओं के निकट सूखा प्रसून पड़ा यथा।
जयद्रथ वध पृ० ४३।

अभिमन्यु-वध से द्रौपदी, सुभद्रा उत्तरा आदि सभी दुःखी और उदासीन हैं, कवि ने उनमें मुरझाई लता का और अभिमन्यु के निर्जीव शरीर में शुष्क-सुमन का आरोप कर मानव-जगत और मानवेतर जगत का साम्य प्रदर्शित कर दिया है। मानव के अन्तर्बाह्य का सामंजस्य हो जाता है।

इनके अलकारो में अधिकतः बिम्ब-ग्रहण की प्रधानता रहती है। मानव-व्यापार और मानव-भावो का प्राकृतिक-व्यापारों से पूर्ण समन्वय हो जाता है। शूर्पणखा का चित्रण देखियेः—

कटि के नीचे चिकुर जाल मे
उलझ रहा था बॉया हाथ।
खेल रहा हो ज्यों लहरों से
लोल कमल भौंरो के साथ।

× × ×

रत्नाभरण भरे अंगो मे
ऐसे सुन्दर लगते थे
ज्यो प्रफुल्ल बल्ली पर सौ सौ
जुगनू जगमग करते थे।

पञ्चवटी।

मानव-सौन्दर्य और प्राकृतिक-सौन्दर्य दोनो ही क्रिया-प्रतिक्रिया रूप में प्रभावित करते हैं। कवि का मानव और प्रकृति दोनों के प्रति उत्साह लक्षित होता है।

उर्मिला के वियोग वर्णन में इन्होंने सांग उपमा द्वारा शरद और लक्ष्मण का साम्य प्रदर्शित किया है। प्रेमाभिक्य में उर्मिला प्रकृति में अपने प्रिय का प्रतिबिंब देखती है।

निरख सखा, ये खजन आये,
फेरे उन मेरे रजन ने नयन इधर मन भाये,
फैला उनके तन का आतप, मन से सर सरसाये,
घूमे वे इस ओर वहा ये हंस यहा उड़ छाये,
फूल उठे हैं कमल, अधर से ये बधूक सुहाये।

साकेत पृ० २७७।

प्रियानुरागिनी उर्मिला खंजन, आतप, हंस, कमल और बंधूक में क्रमशः लक्ष्मण के नेत्र, कांति, गति, मुख और अधर का प्रतिबिम्ब देखती है। प्रकृति उनके लिये प्रियतम-मय हो जाती है।

कहीं-कहीं पर मूर्त प्रकृति के स्थूल रूप को इन्होंने मानव के सूक्ष्म भावों के अनुरूप बना दिया है। शकुन्तला के निर्माल्य पावित्र्य और सदाशयता के लिये इन्होंने प्रकृति के स्थूल रूप को उपमान बनाया है।

मुक्त नभो मंडल सा अविचल निर्मल जीवन था उसका।
ऊषा के प्रकाश सा पावन निरालस्य तन था उसका।
उज्वल उच्च हिमालय जैसा अति उन्नत मन था उसका।

शकुन्तला पृ० ५।

शकुन्तला के जीवन में गगन मंडल की सी अविचलता तथा निर्मलता, ऊषा के प्रकाश के समान पावनता और हिमालय के समान उच्च सदाशयता है।

इनके काव्य में प्रताप और व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग नहीं है, प्रकृति की तुलना में यह मानव को श्रेष्ठ अथवा अधिक सुन्दर स्वीकार नहीं करते, जहाँ कहीं इन्होंने प्रकृति का निरादर कराया है वहाँ स्वाभाविकता नहीं है:—

इन दशनों अधरों के आगे,
क्या मुक्ता है, विद्रुम क्या ? पंचवटी पृ० ५०।

इसमें यद्यपि मुक्ता और विद्रुम को श्रीराम के दाँत और अधरों द्वारा तिरस्कृत किया है किन्तु कवि का सौन्दर्य के प्रति उत्साह नहीं व्यक्त होता। इसके विपरीत जहाँ इन्होंने प्रकृति को अधिक श्रेष्ठ वर्णित किया है वहाँ प्रकृति और कवि का भाव-साम्य सा हो जाता है—

वन की एक एक हिम कणिका
जैसी सरस और शुचि है,
क्या सौ सौ नागरिक जनों की।
वैसी विमल रम्य रुचि है। पंचवटी।

वह प्रकृति में मानव से अधिक सरसता और पावनता का अनुभव करते हैं।

गुप्तजी ने अपने काव्य में प्राचीन अथवा नवीन जिन उपमानों का प्रयोग किया है वे अधिकतः मानव के बाह्यसौन्दर्य के उपकरण न होकर उसकी अन्तः स्थिति के प्रकाशन का माध्यम हैं, उनमें मानव की अन्तर भावनाओं का सादृश्य प्रकट किया गया है और मानव और प्रकृति की समन्विति को प्रकट किया है।

प्रकृति में उपदेश

द्विवेदी जी के शिष्य होने के कारण गुप्त जी के प्रकृति वर्णन में उपदेश की भावना यथेष्ट मात्रा में मिलती है। प्रकृति को वह अनेक सद्गुणों से परिपूर्ण देखते हैं:—

सर्वसहा क्षमा क्षमता की,
ममता की वह प्रतिमा।
खुली गोद जो उसकी आवे,
रमता की वह प्रतिमा ॥ द्वापर पृ० ४९ ॥

प्रकृति एक ममतामयी माँ है जो सम-भाव से सबको अपना प्रेम और ममत्व देती है। वह एक उपदेशिका की भाँति मानव को शिक्षा देती है और उसमें उच्च-विचार तथा सदाशयता के भावों का संचार करती है। शकुन्तला तैरना, चलना और आतिथ्य-सेवा आदि कार्य प्रकृति से सीखती है।

हंस और मीनों से उसने जल में तरना सीखा था।
शीतल और सुगन्ध पवन से मंद विचरना सीखा था ॥
होम शिखा में सद्भावों का जग में भरना सीखा था।
आश्रम के उन्नत विटपों से परहित करना सीखा था ॥
शकुन्तला पृ० ५।

दृष्टान्त-रूप में प्रकृति का उपयोग करके भी उन्होंने प्रकृति से उपदेश ग्रहण किया है। सूर्योदय के समय निशाचर, पक्षी और तारागण के विलुप्त होजाने पर वह तुच्छ मनुष्यों की प्रकृति का दिग्दर्शन कराते हैं। संसार में मनुष्य का कर्मपथ कण्टकित है। मार्ग की विघ्न बाधाओं की उपेक्षा करते हुए मनुष्य को आगे बढ़ना चाहिये। जो मनुष्य अबाधगति से आगे बढ़ता जाता है वही विजयी है, यह निश्चित है कि—

जितने कष्ट कंटकों में हैं,
जिनका जीवन सुमन खिला।

गौरव गंध उन्हें उतना ही,
अत्र तत्र सर्वत्र मिला।
पंचवटी १६।

परम-तत्व के दर्शन हमें गुप्त जी के काव्य में नहीं होते, यह राम के उपासक हैं। कृष्ण से सम्बन्धित द्वापर में भी इन्होंने कृष्ण के रूप में राम की रूप छटा का ही अनुभव किया है। वह भक्ति-सागर में अवगाहन करते हुए कहते हैं:—

धनुर्बाण या वेणु लो श्याम रूप के संग।
मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग। द्वापर।

इनकी इस तन्मयता में हमें गोस्वामी तुलसीदास के वृन्दावन विहारी की मूर्ति के सम्मुख कहे गये ये चरण याद आते हैं,

कहा कहौं अब की छटा भले बिराजेउ नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै धनुर्बाण लेउ हाथ॥

गुप्त जी के आराध्य राम हैं। इनके राम विश्व के संकटों को नष्ट करने और लोक-जीवन के लिये आदर्श उपस्थित करने के लिये संसार में प्रकट हुए हैं। वह इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने आये हैं, राम साकेत में कहते हैं:—

मैं यहाँ जोड़ने नहीं, बाँटने आया,
जग उपवन के झंखाड़ छाँटने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥ साकेत पृष्ठ २१६।

संतों के परित्राण और दुष्ट-दलन के लिये वह मर्त्य लोक में प्रकट हुए हैं।

इनके राम शील सौन्दर्य और मर्यादा से पूर्ण हैं, उनमें अनन्त-शक्ति और अनंत-सौन्दर्य है; उनकी आराधना मनुष्य को भवसागर से पार कर देती है, राम ने साकेत में स्वयं ही कहा है:—

जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे।
वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे॥ साकेत पृ० २१६।

इस प्रकार की अनुपमेय शक्ति से पूर्ण होते हुए भी इन्होंने राम को विश्व में व्यापक नहीं दिखाया है वह एक आदर्श चरित्र के रूप में हमारे

सम्मुख प्रकट होते हैं। साकेत के आरम्भ में ही केवल हमें अद्वैतवाद और सर्ववाद के दर्शन होते हैं, इनके मत से इनके उपास्य राम जो अरूप, अनाम, अनीह हैं वह विश्व में रमे हैं। विश्व का कण-कण राम-मय है वह विश्व का अस्तित्व ब्रह्म से पृथक् नहीं मानते।

> राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या।
> विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या॥
> तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करें।
> तुम न रमो तो मन तुम में रमा करें॥ साकेत।

देशप्रेम के अन्तर्गत इन्होंने प्रकृति के प्रति बहुत अधिक अनुराग प्रदर्शित किया है। देश के भव्य एवं विकराल सभी दृश्य और वस्तुएँ इनके अनुराग का विषय बन गई है, भारत-भारती तो राष्ट्रीय चेतना के लिये अमर काव्य है। वह उसमें भारत के अतीत गौरव का गान करते हुए वर्तमान अवस्था से तुलना करते हैं और उसकी अधोगति के प्रति अपनी वेदना प्रकट करते हैं:—

> होकर नितान्त परावलम्बी पशु सदृश्य हम जी रहे,
> हा ! कालकूट सभी परस्पर फूट का हैं पी रहे।
> भारत-भारती पृष्ठ १४५।

भारत वासियों में वह राष्ट्रीय-चेतना उत्पन्न करते हैं और अत्यन्त ओज पूर्ण शब्दों में उद्बोधन करते हैं:—

> पृथ्वी, पवन, नभ, जल, अनल सब लग रहे है काम में,
> फिर क्यों तुम्हीं सोते मगन हो व्यर्थ के विश्राम में।
> भारत-भारती पृष्ठ १६१।

कवि ने प्रकृति के पंच-भूतों को सर्वदा व्यस्त दिखाते हुए अपने देश-वासियों को निद्रा से जागृत होने के लिये चेतावनी दी है। उन्हे अपना देश अत्यन्त प्रिय है, उनकी भारत भूमि रम्य दृश्यों का आगार है, यहाँ मधुर-निर्झरों का स्रोत है और [illegible] की छटा से पूर्ण है ऋषि-भूमि भरतखण्ड प्राकृतिक विभूतियों का आगार है। देश के इस अनन्य पुजारी ने भारतवर्ष की वन्दना करते हुए अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है।

देश-वन्दना का ही एक अंग जन्मभूमि का प्रेम है। साकेत, वक-संहार द्वापर में इन्होंने जन्मभूमि के प्रति उत्कट प्रेम और श्रद्धा प्रकट की है। राम अयोध्या से विदा होते समय अश्रुपूर्ण नेत्रों से जन्मभूमि की वदना करते हैं।

जन्मभूमि ले प्रणत और प्रस्थान दे,
हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे। साकेत पृ० ११६।

यह अपने शरीर में जन्मभूमि की ही प्रतिच्छाया देखते हैं :—

तेरा स्वच्छ समीर हमारे श्वास में,
मानस में जल और अनल उच्छ्वास में। साकेत पृ० ११६।

शरीर निर्माण के पंच तत्व जन्मभूमि ही ने तो प्रदान किये हैं।

कवि का यह जन्मभूमि-प्रेम इतना उत्कट हो जाता है कि वह मृत्यु की कामना भी अपनी प्रसव-भू में ही करते हैं, राधा कहती है:—

यह वृन्दावन, यह वंशीवट,
यह यमुना का तीर हरे।
यह तरले ताराम्बर वाला
नीला निर्मल नीर हरे।
यह शशि रंजित सित घन व्यंजित
परिचित त्रिविध समीर हरे।
बस, यह तेरा अंक और यह
मेरा रंक शरीर हरे॥

राधा की यह इच्छा होती है कि मृत्यु के उपरांत भी उसका शरीर अपनी मातृभूमि की गोद में रहे, राधा की इस कामना में कवि के हृदयकी अन्तर्निहित कामना मुखरित हो उठती है। भक्ति के आवेश में इसी प्रकार के उत्कट-प्रेम का परिचय हमें रसखान के काव्य में मिलता है :—

मानुष हौं तो वही 'रसखानि'
बसौं व्रज गोकुलगांव के ग्वारन
जो पशु हौं तो कहा बस मेरा
चरौं नित नंद की धेनु मंझारन
पाहन हौं तो वही गिरि को
जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।

सम्मुख प्रकट होते हैं। साकेत के आरम्भ में ही केवल हमें अद्वैतवाद और सर्ववाद के दर्शन होते हैं, इनके मत से इनके उपास्य राम जो अरूप, अनाम, अनीह हैं वह विश्व में रमे हैं। विश्व का कण-कण राम-मय है वह विश्व का अस्तित्व ब्रह्म से पृथक् नहीं मानते।

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या।
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या॥
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करें।
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करें॥ साकेत।

देशप्रेम के अन्तर्गत इन्होंने प्रकृति के प्रति बहुत अधिक अनुराग प्रदर्शित किया है। देश के भव्य एवं विकराल सभी दृश्य और वस्तुएँ इनके अनुराग का विषय बन गई है, भारत-भारती तो राष्ट्रीय चेतना के लिये अमर काव्य है। वह उसमें भारत के अतीत गौरव का गान करते हुए वर्तमान अवस्था से तुलना करते हैं और उसकी अधोगति के प्रति अपनी वेदना प्रकट करते हैं:—

होकर नितान्त परावलम्बी पशु सदृश्य हम जी रहे,
हा! कालकूट सभी परस्पर फूट का हैं पी रहे।
भारत-भारती पृष्ठ १४५।

भारत वासियों में वह राष्ट्रीय-चेतना उत्पन्न करते हैं और अत्यन्त ओज पूर्ण शब्दों में उद्बोधन करते हैं:—

पृथ्वी, पवन, नभ, जल, अनल सब लग रहे हैं काम में,
फिर क्यों तुम्हीं खोते समय हो व्यर्थ के विश्राम में।
भारत-भारती पृष्ठ १६१।

कवि ने प्रकृति के पंच-भूतों को सर्वदा व्यस्त दिखाते हुए अपने देश-वासियों को निद्रा से जागृत होने के लिये चेतावनी दी है। उन्हें अपना देश अत्यन्त प्रिय है, उनकी भारत-भूमि रम्य दृश्यों का आगार है, यहाँ मधुर-निर्झरों का स्रोत है और उत्तुंग-हिमालय शृंग की छटा से पूर्ण है ऋषि-भूमि भरतखण्ड प्राकृतिक विभूतियों का आगार है। देश के इस अनन्य पुजारी ने भारतवर्ष की वन्दना करते हुए अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है।

देश-वन्दना का ही एक अंग जन्मभूमि का प्रेम है । साकेत, वक-संहार द्वापर में इन्होंने जन्मभूमि के प्रति उत्कट प्रेम और श्रद्धा प्रकट की है। राम अयोध्या से विदा होते समय अश्रुपूर्ण नेत्रों से जन्मभूमि की वंदना करते हैं।

जन्मभूमि ले प्रणत और प्रस्थान दे,
हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे। साकेत पृ० ११६।

यह अपने शरीर में जन्मभूमि की ही प्रतिच्छाया देखते हैं :—

तेरा स्वच्छ समीर हमारे श्वास में,
मानस में जल और अनल उच्छ्वास में। साकेत पृ० ११६।

शरीर निर्माण के पंच तत्व जन्मभूमि ही ने तो प्रदान किये हैं।

कवि का यह जन्मभूमि-प्रेम इतना उत्कट हो जाता है कि वह मृत्यु की कामना भी अपनी प्रसव-भू में ही करते है, राधा कहती है:—

यह वृन्दावन, यह वंशीवट,
यह यमुना का तीर हरे।
यह तरते ताराम्बर वाला
नीला निर्मल नीर हरे।
यह शशि रंजित सित घन व्यंजित
परिचित त्रिविध समीर हरे।
बस, यह तेरा अंक और यह
मेरा रंक शरीर हरे॥

राधा की यह इच्छा होती है कि मृत्यु के उपरांत भी उसका शरीर अपनी मातृभूमि की गोद में रहे, राधा की इस कामना में कवि के हृदयकी अन्तर्निहित कामना मुखरित हो उठती हैं। भक्ति के आवेश में इसी प्रकार के उत्कट-प्रेम का परिचय हमें रसखान के काव्य में मिलता है :—

मानुष हौं तो वही 'रसखानि'
बसौं ब्रज गोकुलगांव के ग्वारन
जो पशु हौं तो कहा बस मेरा
चरौं नित नंद की धेनु मझारन
पाहन हौं तो वही गिरि को
जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन।

जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि
कालिंदी कूल कदंब की डारन ।१४।
रसखानि रत्नावली ।

रसखान तो मृत्यूपरांत पुनर्जन्म में भी उसी भूमि में चेतन अथवा अचेतन प्रकृति का अंग बनना चाहते हैं।

गुप्त जी में राष्ट्रीय-भावना की प्रधानता है। उनकी राष्ट्रीय भावना ने ही सर्व-प्रथम उन्हे काव्य-जगत में गौरव प्रदान किया। देश की अधोगति की आकुल अनुभूति ने ही उनकी वाणी में चेतना भर दी, अन्त में यह देश-प्रेम अपने संकुचित-क्षेत्र को अतिक्रमण कर विश्व के भौतिक वाद से अभिभूत होकर, विश्वप्रेम में परिवर्तित होता हुआ 'विश्व-वेदना' के रूप मे अभिव्यक्त हुआ और वह करुणा-सागर से दयाकी याचना करने लगे:—

कृपा कर करुणा पारावार
हो रहा है नीरस ससार,
बहा दे नव-रस की वह धार,
कि धो दे जो वैषम्य-विकार। विश्व वेदना पृ० ४८।

वास्तव में गुप्तजी राष्ट्रीय कवि हैं। देश के प्रति अनुराग और मानव के पारस्परिक-संबध ही इनकी कविता के प्रधान अंग हैं, प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में कर्मवीर मानव इनके काव्यक्षेत्र का प्रधान पात्र रहा है। मानव के आदर्शपूर्ण क्रिया-कलापों पर ही इनकी दृष्टि स्थिर रही है। अतः इनके काव्य म प्रकृति का अधिक महत्त्व नहीं प्रतिभासित होता। प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व बहुत कम स्थलों में है, यही कारण है कि आलंबन रूप में प्रकृति-वर्णन बहुत कम प्राप्त होता है। इन्होंने प्रकृति में एक प्रकार की द्रवणशीलता और कोमलता का अनुभव किया है अतएव हमें आलंबन रुप में भी प्रकृति-चित्र मधुर और सरस ही प्राप्त होते हैं और चित्र अधूरे रह जाते हैं।

पं० राम नरेश त्रिपाठी

त्रिपाठी जी के काव्य में हमें देश-प्रेम की भावना अत्यन्त मधुर और आकर्षक रूप में प्राप्त होती है। इनके तीनो प्रबन्ध-काव्य—पथिक, मिलन और स्वप्न, देश के प्रति कर्त्तव्य और प्रेम से ओत-प्रोत हैं। इन्होंने गुप्त जी की भांति भारत के अतीत का गौरव गानकर वर्तमान अवस्था का वर्णन नहीं किया है वरन् आदर्श चरित्र में अभिप्रेत-भावनाओं की प्रतिष्ठा कर अपने देश-प्रेम को गोचर-रूप प्रदान किया है और देश-प्रेम तथा प्रकृति-प्रेम से प्रधान चरित्र को अनुरंजित दिखाया है। इनके काव्य के आदर्श नायक, देश-प्रेम की भावना के प्रतीक है। प्रकृति-प्रेम भी इनके काव्य का प्रधान अग है। प्रकृति को इन्होंने अनेकों रूपों मे देखा है, इनका प्रकृति-वर्णन कहीं तो शुक्ल जी की भाँति शुद्ध और यथा-तथ्य है, कहीं गुप्त जी की भाँति देश के अग-रूप में है और कहीं परिवर्ती छायावादी काव्यकारों की भाँति नारी-भावना से पूर्ण है। वास्तव मे इनकी कोमल-भावना छायावाद के लिये प्रशस्त मार्ग खोलने में सहायक हुई है।

प्रकृति के यथातथ्य-चित्रण मे कवि ने प्रत्येक वस्तु का वास्तविक चित्रांकन किया है। प्रकृति को अपनी भावना से अनुरंजित कर उसमे सौन्दर्य- वृद्धि करने की चेष्टा नहीं की है। प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु और चित्र को ज्यों का त्यों अंकित कर दिया है। देश-भ्रमण करते समय पथिक मार्ग के दृश्यों का वर्णन करता है:—

कहीं श्याम चट्टान कहीं दर्पण सा उज्वल मग है,
कहीं हरे तृण सेत, कहीं गिरि स्रोत प्रवाह प्रखर है।
कहीं गगन के खभ नारियल तार भार सिर धारे,
रस रसिकों के लिये खड़े ज्यों मुस नकार इशारे।

पथिक पृष्ठ ३३।

दक्षिण भारत के यथातथ्य चित्रण में हमें शुक्ल जी की सी ही नैसर्गिक सुन्दरता के दर्शन होते हैं:—

चढ़े रथ पै छोड़ जात चले वन, बाग, तड़ाग, लसे चहुं ओर।
लसे नग पल्लव सों लहरैं लहि के तरु मद समीर झकोर॥

कहूँ नव किंशुक जाल सों लाल लखात घने बन-खंड के छोर,
परै जंह खेत सुनात तहां श्रमहीन किसानन को कल रोर ॥
बुद्धचरित पृ० १६ ।

इस प्रकार के चित्रों में प्रकृति की प्रत्येक वस्तु और व्यापार का ज्यों का त्यों वर्णन है, कवि ने अपनी भावना का मिश्रण नहीं किया है। कभी-कभी कवि का मन प्रकृति की अपूर्व छटा पर मुग्ध होजाता है, मयूर के साथ उसका मन नृत्य करता, पक्षियों के साथ कल गान गाता और मेघ-खण्डों के साथ आकाश की सैर करता है। हर्षातिरेक से उसके मुग्ध मन के उद्गार इस प्रकार प्रस्फुटित होते हैं:—

प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रंग बिरंग निराला,
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद्माला।
नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है
घन पर बैठि बीच में बिचरूँ यही चाहता मन है ॥
पथिक पृष्ठ ५।

प्रकृति का मनोरम रूप उसको उन्मत्त बना देता है वह प्रकृति में सर्वत्र एक प्रकार के आनन्द और सौन्दर्य का अनुभव करता हुआ कल्पना के सागर में निमग्न हो जाता है और प्रकृति एक चेतन व्यक्ति की भांति हर्ष और आनंद से पूर्ण प्रतीत होती है,

इन्द्र धनुष खेला करता है
झरनों से हिल मिल कर दिन भर।

× × × ×

जल-क्रीडा करते हैं तारे
लहरें लेता है रजनीपति। स्वप्न पृष्ठ १८।

कवि प्रकृति के सौन्दर्य को अपलक दृष्टि से निहारता है किन्तु उसकी परितृप्ति नहीं होती।

कवि ने प्रकृति का चित्रण उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक अलकारों द्वारा भी किया है, इनके अलकार प्रकृति के भार नहीं प्रतीत होते वरन् उनके रूप-सार्थक्य के सहायक होजाते हैं प्रकृति का प्रभाव अलकारों की संयोजना द्वारा अधिक स्थायी और मोहक होता है, प्रातःकाल का अनुकूल चित्रण देखिये,

गगन नीलिमा में हीरे का
तेज पुंज अभिराम।
एक पुष्प आलोकित करता,
था जल, थल, नभ, धाम।
बरछी सी उसकी किरणों में
खाकर गहरी चोट।
अंधकार हो क्षीण छिपा था
तरु पत्तों की ओट॥ । मिलन पृ० २५।

कवि ने अंधकार के विलीन होने में हेतूत्प्रेक्षा और सूर्योदय में रूपक अलंकार की योजना की है। निशावसान और सूर्योदय के वास्तविक सत्य का कवि ने आलंकारिक वर्णन कर दिया है।

अपने कथाक्रम को सम्बद्ध रखने में भी त्रिपाठी जी ने प्रकृति को सहायक के रूप में स्थान दिया है। प्रकृति मानव व्यापारों की आधार भूमि हो जाती है। हरिऔध जी की भांति प्रायः प्रत्येक सर्ग में कथा के प्रवाह के लिये इन्हें प्रकृति का आश्रय लेना है। नीरव रात्रि का वर्णन मिलन में केवल पति-पत्नी की प्रेम कथा को आरंभ करने के ही लिये किया गया है।

नीरव दशा तपोवन नीरव
शांत दिशा आकाश।
नीरव तारागण करते थे
झिल-मिल अल्प प्रकाश।
प्रकृति मौन सचराचर निद्रित
अति निस्तब्ध समीर।
जाग्रत था दीपक प्रकाश में
केवल एक कुटीर। । मिलन पृष्ठ १०।

कथा-क्रम के निर्वाह की पृष्ठभूमि के रूप में किया गया उपर्युक्त प्रकृति-चित्रण यथातथ्य है और कवि की अन्तर्भावनाओं से विमुक्त है। कहीं पर कथा प्रवाह की परिगणन की शैली के द्वारा भी इन्होंने प्रकृति के चित्र चित्रित किये हैं।

पंकज, रंभा, मदन, मल्लिका, पोस्त गुलाब बकुल का,
रक्तक, कुंदकली, पिक, किंशुक, नरगिस, मधुकर कुल का।

संग्रह है चंपक शिरीष का धर्म सुरभिमय नारी,
मानो फूल रही है सुन्दर घर घर में फुलवारी । पथिक ३८ ।

परिगणन की शैली के अनुसार वह बन के अनेक प्रकार के पुष्प और भ्रमर के नाम गिना गये हैं । शब्द सौन्दर्य और पदलालित्य के समन्वय से किये गये परिगणनात्मक चित्रण का अन्य उदाहरण देखिये,

मृगमाला विहरित कल कोकिल कूजित कुसुमित बन को,
ललित लहलही लता लसित अलि मुखरित कुञ्ज भवन को ।

इस चित्रण में कवि ने अनुप्रास की अनुपम छटा विकीर्ण की है और अपने कोमल पद-विन्यास द्वारा चित्रण को आकर्षक बनाया है । इस वर्णन द्वारा हमें अनायास ही जयदेव के पीयूषवर्षी काव्य के ये चरण याद आते हैं,

ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे,
मधुकर निकर करबित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे ।
। गीत गोविन्द काव्यम् पृ० १० ।

त्रिपाठी जी प्रकृति के सरस और सुन्दर रूप के उपासक हैं, उनके काव्य में प्रकृति का मधुर मंजुल रूप ही प्रकट होता है अतः हमें प्रकृति का उग्र चित्रण नहीं प्राप्त होता । केवल मिलन में हमें यत्किञ्चित् प्रकृति का क्षुब्ध-रूप प्राप्त होता है:—

क्षण में उमड़ घुमड़ गर्जन कर,
घिर जाये घनघोर ।
बहा विषम विक्षिप्त प्रभंजन
वृक्षों को झकझोर ।
होने लगी वृष्टि रिम-झिम कर
अविरत मूसल धार ।
आन्दोलित लहरें तरणी पर
करने लगीं प्रहार । मिलन पृ० २२ ।

जहाँ इन्होंने प्रकृति को मानव रूप प्रदान कर मानव-व्यापारों की संभावना की है, वहाँ वर्णन अत्यन्त आकर्षक और सजीव हुए हैं, प्रकृति में उन्होंने कोमलता और संलग्नता का अनुभव किया है । पर्वत शिखरों से बहते हुये जलका सजीव चित्रण देखिये,

पर्वत शिखरों का हिम गल कर
जल बन कर नालों में आकर।
छोटे बड़े चीकने अगणित
शिला समूहों से टकराकर।
गिरता, उठता, फेन बहाता
करता अति कोलाहल 'हर, हर'
मानो जलदों में शिशुगण का, दल
बाँध खेलते हुए परस्पर।
अति उतावले मन से चलकर
गोल पत्थरों पर गिर गिर कर
उठते करते नृत्य विहँसते
तथा मनाते हुए महोत्सव
सागर से मिलने जाते हैं
पथ में करते हुए महारव।२६। स्वप्न पृ० ६१।

कवि ने पहाड़ों से बहते हुए जल और जलद-शिशुओं के खेल द्वारा अपने सूक्ष्म निरीक्षण तथा मानवीकरण का सुन्दर वर्णन किया है। प्रकृति चेतन-शिशु का रूप धारण कर लेती है और मानव-व्यापारों का सामंजस्य हो जाता है।

वियोग की कोमल प्रवृत्ति में प्रकृति में एकात्म्य का अनुभव करते हुए भी इन्होंने प्रकृति में मानव-व्यापारों और मानव-संवेदना का आभास प्राप्त किया है। मानव को अपने साथ प्रकृति भी रुदन करती हुई प्रतीत होती है। सुमना के वियोग से दुखित बसंत को प्रकृति भी अश्रु गिराती हुई प्रतीत होती है,

पता नहीं किसके वियोग में
वन में नदी तटों पर तरुवर
मेरी तरह रुदन करते हैं
फूल नाम के अश्रु गिराकर
कोई रोता है अनन्त में
जिसके अश्रु बिन्दु हैं उडुगन,

ओस नाम से तृणतरुओं पर
बिखरे रहते है जिनके कण। स्वप्न पृ० ४०।

पृथ्वी और आकाश पर्यन्त समस्त प्रकृति मानव को अपने प्रियतम के वियोग में अश्रु प्रवाहित करती हुई प्रतीत होती है। अपने कष्ट का वह प्रकृति में प्रतिबिम्ब देखते है। इनकी वेदना भूमंडल तक ही सीमित नहीं है—अज्ञात शक्ति तक उसके दुःख से दुःखित है—तारे उसके अज्ञात किन्तु परम स्नेही और सवेदनशील व्यक्ति के अश्रुबिन्दु हैं। सभी कवियों ने ओसकणों में अश्रु बिन्दुओ की संभावना की है किन्तु त्रिपाठी जी को ओस की बूदों में नक्षत्र-रूप अश्रु बिन्दुओं के रूप का आभास होता है।

दुःखाधिक्य में वसत का प्रकृति से निकटतम-संबध स्थापित हो जाता है उसकी दशा एक उन्मत्त व्यक्ति की सी हो जाती है। सुमना से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु उसके विरह-दुख को बढ़ाती है, उसके प्रेम का उपादान बनती और स्पर्श द्वारा उसको शान्ति प्रदान करती है, वसन्त की दशा अत्यन्त करुण हो जाती है।

सुमना ने निज कर कमलो से
निज तरुओं को सींच सींच कर
खड़ा किया था, उनके तन से
लिपट लिपट कर प्रेम पुरः सर,
मुग्ध वसन्त न जाने क्या था
सोचा करता था मन ही मन। स्वप्न पृ० ४५।

विजया का तो वियोग में प्रकृति से इतना अधिक तादात्म्य हो जाता है कि सचराचर प्रकृति भी अपना विलास त्यागकर उदासीन और नीरव हो जाती है। विजया को ऐसा प्रतीत ही नहीं होता वरन् निश्चयात्मक रूप से उसे यह विश्वास हो जाता है,

शोक मान मेरी विपत्ति में
सबने तजा विलास।
खग ने गान, लता ने हिलना,
मृग ने गमन-प्रयास। मिलन पृ० २३।

पति से वियुक्त करने वाली सरिता से उसे विरक्ति हो जाती है उसका मनोहर रूप विजया को क्षुब्ध कर देता है वह अत्यन्त रोष-पूर्वक कहती है,

'ठगिनी सा है तेरा

मरिते मोहक भेस ! । मिलन पृ० ३२ ।

प्रिय के सतत-चिन्तन, अनवरत-दुख और विषाद के कारण उनकी दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है, वियोगिनी यही प्रार्थना करती है,

'हे भगवान घास मैं होती प्रिय उस पर पग धरते'

उनकी दृष्टि में प्रिय के सम्बन्ध में घास का अपने से अधिक महत्व हो जाता है, वह प्रेमातिरेक में आकर्षक दृश्यों को पथिक की प्रतीक्षा में अत्यन्त प्रेमपूर्वक देखती रहती है, अपने प्रिय के दर्शन के लिये उसके नेत्र स्थिर रहते हैं, मरण के समय भी वह प्रिय-दर्शन की कामना करती है और काग से कहती है

काग साध अब पूरी करलो चुन चुन कर इस तन को
देना छोड़ दया करके प्रिय दर्शन व्रती नयन को।

। पथिक पृ० ५३ ।

पथिक-पत्नी के इस कथन में हमें नारी की कोमलतम प्रेमानुभूति के दर्शन होते हैं। सभी पूर्ववर्ती काव्यकारों ने काग को प्रेम-सदेश-वाहक मानकर अपने उद्गार प्रकट किये हैं, किन्तु त्रिपाठी जी की वियोगिनी की इस कामना में हमें प्रेमोद्गार अत्यन्त करुण रूप में मिलते हैं।

वियोग में कवि ने ग्रीष्म और पावस का भी वर्णन किया है और वियोगिनी को विकल दिखाया है, किन्तु उस वर्णन में कहीं भी वासनाजन्य विकलता और कामुकता के दर्शन नहीं होते। गंगा-नीर की भाँति पवित्र और पावन प्रेम का दिग्दर्शन कराया है। ग्रीष्म की प्रचण्डता और वर्षा की झड़ी उसके हृदय में प्रियतम की स्मृति जाग्रत कर देती है। पावस के भीमकाय श्याम मेघों को देखकर वह अन्य काव्यकारों की नायिका की भाँति भयभीत होकर प्रियतम के आलिङ्गनादि वसनाजन्य व्यापारों का स्मरण करके उन्मादिनी सी प्रलाप नहीं करने लगती है उसे तो पथिक के ही कष्ट का ध्यान आता है। अपने सुख को तो वह प्रेमी के चरणों पर न्यौछावर कर देती है, ग्रीष्म में वह विचार करती है,

हवा हो गई प्राणहारिणी, हुए जल, स्थल ताते,
मेरे पथिक सघन छाया में होंगे कहीं जुड़ाते।

। पथिक पृष्ठ ५३ ।

वर्षा में उसे यही चिन्ता रहती है कि उसका प्रियतम कहीं भीगता होगा—

रिम झिम बरस रहे सावन घन उमड़ घुमड़ अलबेले
तरु-तल कहीं भीगते होंगे मेरे पथिक अकेले।। पृ० ५४।

संयोग-सुख को सुखद बनाने में सहायक रूप में भी प्रकृति के सौम्य-रूप का इन्होंने सुन्दर चित्रण किया है। प्रकृति का शान्त, सुरभित वातावरण वसंत को मुग्ध कर देता है, उसका हृदय द्रवित हो जाता है—

चारु चन्द्रिका से आलोकित
विमलोदक सरसी के तट पर।
और गंध से शिथिल पवन में
कोकिल का आलाप श्रवण कर।
हृदय द्रवित होता है सुनकर
शशि-कर छूकर यथा, चन्द्रमणि।
। स्वप्न पृ० ३।

झूला, वन-विहार और जल-विहार का भी इन्होंने संयोग-शृंगार में वर्णन किया है, झूला का वर्णन तो उनका रीति-कालीन काव्यकारों से ही मिलता जुलता है—

उमड़ घुमड़ कर जब घमंड से
उठता है सावन में जल-धर।
हम पुष्पित वृक्षों के नीचे
झूला करते हैं प्रति वासर।
तड़ित् प्रभा या घन गर्जन से
भय या प्रेमोद्रेक प्राप्त कर,
वह भुज-बंधन कस लेती है
यह अनुभव है परम मनोहर। । स्वप्न पृ० ५।

इनके संयोग-शृंगार में प्रकृति का ऐन्द्रिय-सुख के उद्दीपन रूप में वर्णन है। उसमें विप्रलंभ-शृंगार की सी पावनता और निर्मलता नहीं है, जो स्थिर और शान्त वातावरण की सृष्टि करता हुआ मानव हृदय को स्पर्श करता है। संयोग-शृंगार में इनके स्नेह की सरिता अत्यन्त उद्धत वेग से अग्रसर होती है।

प्रकृति में चेतन-व्यक्तित्व का आरोप करते हुए उससे उपदेश का भी अनुभव कवि ने किया है। प्रकृति उन्हें कभी भ्रमात्मक संसार का दिग्दर्शन

करातीं, कभी उपदेश देती और कभी उत्साह का सचार करती है। वह प्रकृति में कर्मशीलता और कार्य-तत्परता का अनुभव करते हैं—

रवि जग में शोभा सरसाता, सोम सुधा बरसाता
सब हैं लगे कर्म में कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता।
जीवन भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है,
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में ऐसी तत्परता है। पथिक पृ२१।

रवि, शशि, मानव को कर्मशीलता, और तुच्छ पत्र कर्तव्य-परायणता का उपदेश देता है। मानव अनुभव करता है, समस्त प्रकृति अपने सेवा, परोपकार आदि के कर्मों में निरत है। अतल सागर भूमि की सेवा और रक्षा करता, जलद शस्य सींच कर परोपकार में प्रवृत्त होता है और मलय-समीर सुरभि-दान करता है। रात्रि भर विश्राम कर लेने के पश्चात प्रातःसमय पक्षियों के उड़ जाने पर कवि को ससार की अनित्यता का ध्यान आता है उसके हृदय में यही भाव उठते हैं—

प्रातःकाल ममत्वहीन वे जहाँ तहाँ उड जाते
जग को है अनित्य मेले का रोचक पाठ पढाते। पथिक पृ० ३६।

प्रकृति आदर्श-रूप में मानव के सम्मुख प्रकट होती है और मानव प्रकृति से बल और उत्साह प्राप्त करता है। आँधी में तरु-समूह गिर जाते हैं किन्तु पर्वत अचल रहते हैं, मानव इस दृष्टांत द्वारा इस दृढ़ता का अनुभव करता है और विघ्नों की उपेक्षा कर कर्म-पथ पर अग्रसर होता है,

आते हैं विघ्नों के झोके
बारबार प्रचंड।
गिरते हैं तरु पर रहता है
गिरिवर अटल अखंड। मिलन पृष्ठ ५५।

त्रिपाठी जी प्रकृति के उपासक हैं। प्रकृति-सुन्दरी के अभिनव-रूप पर ही वह मुग्ध हुए, उन्होंने अपने काव्य ग्रन्थ में मानव-सौन्दर्य की उपेक्षा की है मानव की अपेक्षा उन्होंने प्रकृति में अधिक सुषमा और मनोहरता का अनुभव किया है। पथिक के इन शब्दों में—

कमल, कलभ, हरि, कुन्दलता, गिरि, कबु, गुलाब, मुकुल का
शशि, प्रवाल, दाडिम, पिक, शुक, मृग, केतु, शुक्ति, अलिकुल का।

परम तुच्छ जड, खग, पशु का उपमान तुम्हारा तन है,
प्रकृति सदा सुन्दरी, तुम्हारा यौवन अस्थिर धन है।
। पथिक पृष्ठ १० ।

प्रकृति सुन्दरी की तुलना में मानव सौन्दर्य की विगर्हणा की गई है उनकी मानव की अपेक्षा प्रकृति से तादात्म्य अधिक है; यही कारण है कि उपर्युक्त-वर्णन में प्रकृति को उपमेय मानकर मानव शरीर की अवहेलना कराई गई है, अतएव मानव सौन्दर्य के उपमान रूप में हमें इनके काव्य में प्रकृति के दर्शन बहुत कम होते है। जहाँ कहीं इन्होंने मानव सौन्दर्य का वर्णन किया भी है वहाँ इनका उत्साह नहीं लक्षित होता केवल परम्परागत उपमानों का वर्णन कर दिया है,

परम्पराभुक्त उपमानो द्वारा उपमालंकार का प्रयोग देखिये:—
पकजमाला सी प्रणयी के
मृदु गलबहियाँ डाल।
दृग चकोर से देख चन्द्रमुख
बोली विह्वल बाल। मिलन पृष्ठ १४।

रूपकातिशयोक्ति द्वारा भी इन्होंने मानव के स्थूल-सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराया है। वसंत सुमना के उपमानों को देखकर दुखी होता है,

कमल, कलभ, सरिता, राकापति,
परिभृत, लतिका, विद्युत, मधुकर,
रक्त-कुसुम, दाड़िम, गुलाब, शुक,
देख महीधर शिखर, वारिचर
रुदन किया करता था वन में
घुटनों पर वसंत सिर रख कर। । स्वप्न पृ० ५२।

इसमें कवि का मानव-सौन्दर्य के प्रति आकर्षण नहीं प्रकट होता। सभी उपमान परम्परागत हैं, जिनका कवि ने उपेक्षित-भाव से चित्रण कर दिया है। मानव के अगोचर-रूप का प्रकृति के मूर्त और स्थूल रूप से सादृश्य व्यक्त करने में इन्होंने अपना उत्साह प्रकट किया है। बाह्य की अपेक्षा अन्तर की मधुरिमा के प्रति इनका अधिक आकर्षण प्रकट होता है। वसन्त के अगोचर रूप का वह इस प्रकार दिग्दर्शन कराते हैं—

सागर सा गंभीर हृदय हो
गिरि सा ऊँचा हो जिसका मन ।
ध्रुव सा जिसका लक्ष्य अटल हो,
दिनकर सा हो नियमित जीवन ।
स्वप्न पृ० ५८ ।

सागर को विहग का रूप प्रदान करते हुए रूपक-अलंकार की सुन्दर योजना देखिये—

सिंधु विहंग तरंग पंख को फड़का कर प्रति क्षण में,
है निमग्न नित भूमि अंड के सेवन में, रक्षण में ॥

सागर-रूपी पक्षी, तरंग-रूपी पंखों को फड़काकर प्रति-पल भूमि-रूपी अंडे के सेवन में तत्पर रहता है ।

जब कभी कवि मानव-सौन्दर्य को देखकर मुग्ध होता है तो उसे कलाकार की कला का ध्यान होता है वह यही सोचता है—

जिसने तुम्हें रचा वह कैसा होगा चारु चितेरा।पथिक पृ० १०।

मानव सौन्दर्य उसके लिये गौण हो जाता है और चारु चितेरे की कल्पना उसे विचारमग्न बना देती है। वह अखिल विश्व में दृष्टि-प्रसार करता है और उसके मन में प्रश्न उठता है—

मैदानों और घाटियों
के पथ से अविराम चपल गति ।
पवन वनों को हाँक रहा है,
पाकर के किस प्रभु की अनुमति ? स्वप्न ।

प्रकृति के प्रत्येक व्यापार में नियमन और सुस्थिर-सञ्चालन देख कर वह एक संचालक-शक्ति का अनुभव करता है, और सर्वत्र उसी की छवि के दर्शन करता है ।

किन्तु उसके वास्तविक दर्शन उसे देश के अनाथ और निरुपाय व्यक्तियों में होते हैं:—

निस्सहाय निरुपाय जहाँ हैं,
बैठे चिन्तामग्न दीन जन ।
उनके मध्य खड़े हरिके,
पद पंकज के मिलते हैं दर्शन । स्वप्न पृ० १०।

इस प्रकार कवि को लोक-सेवा और लोक-कल्याण में ब्रह्म की दिव्य-दृष्टि का अनुभव होता है। नवयुवकों के अनवरत परिश्रम द्वारा वह भारत के उज्ज्वल भविष्य का चित्रांकन करते हैं। देश-प्रेम और लोक कल्याण की उसी भावना से सिक्त हमें पथिक के दर्शन होते हैं, विजया को मोहक-गान की अलाप छेड़ते पाते हैं, और वसंत तथा सुमना को कर्तव्य पालन में तत्पर देखते हैं। अपनी मातृभूमि के प्रति इनके भाव अत्यन्त उदार और सेव्य-भाव से पूर्ण हैं। नागरिक जीवन के विलास वैभव की अपेक्षा प्रकृति का नैसर्गिक-जीवन इनके पात्रों को विशेष रुचिकर प्रतीत हुआ है; इनकी विजया यही कहती है :—

वन्य सखाओं से बढ़कर क्या
है जग जन का प्यार मिलन ? पृ० १६।

उसे अपनी कुटी अत्यन्त सुखदायिनी प्रतीत होती है। सुदूर-प्रयाण के लिये तत्पर विजया अत्यन्त कष्ट से कहती है :—

यह प्रिय कुटी छोड़नी होगी,
अति सुख दायक गोद,
यह तरु लता और पशु पक्षी,
वन के विविध विनोद।मिलन पृ० १६।

इसी भाँति कवि गुरुभक्तसिंह भी देश-प्रेम और मातृभूमि-प्रेम से अभि-षिक्त कविता का निर्माण करते हैं। मिर्जा गयास अपनी मातृभूमि से विदा होते समय अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहते हैं :—

मातृभूमि तेरी यह झाँकी, कभी न मुझको भूलेगी।
तेरे इस गुलाब की लाली, आंखों में नित फूलेगी ॥नूरजहाँ ६।

विवश गयास अपनी मातृभूमि को अश्रुमुक्ताओं का उपहार देकर चल देता है। उनके लिखित काव्य नूरजहाँ और वन-श्री प्राकृतिक-सौंदर्य तथा देशभक्ति की भावनाओं से पूर्ण है। अपने प्रकृति वर्णन में इन्होंने पशु पक्षियों की प्रकृति का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है:—

नीरवता से बढ़ती जाती थी ऊँटों की बड़ी कतार।
इनमें से कोई लख झाड़ी चुपके से लेती मुख मार ॥
नूरजहाँ पृष्ठ ११।

श्री श्याम नारायण पांडेय ने भी पशु-प्रकृति का सुंदर वर्णन किया है।

अधखिले नयन हरिणी के मृदुकाय हरिण खुजलाते।
झाड़ी में उलझ उलझ कर बारहसिंघे झुँझलाते।
वन धेनु दूध पीते थे लेरू दुम हिला हिला कर।
माँ उनको चाट रही थी तन से तन मिला मिला कर।
झरनों का पानी लेकर गज छिड़क रहे मतवाले।
हल्दी घाटी पृ० ११३।

कवि ने हरिण, धेनु, बारहसिंघे और हाथी आदि पशुओं की चेष्टाओं का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है भक्त जी विकट रेगिस्तान का भी इसी भाँति स्वाभाविक वर्णन करते हैं :—

विकट है सूखा रेगिस्तान, वनस्पति का है नहीं निशान।
नाचती हैं किरणें भू पर, आग जलती नीचे ऊपर॥
नूरजहाँ पृ० १३।

'भक्त' जी ने प्रकृति को मानव रूप प्रदान करने में अपनी कलित-कला का सुन्दर प्रदर्शन किया है। प्रकृति इनके काव्य का प्रधान अंग है वह एक ऐसी सहचरी है जो मानव को किसी समय भी अकेले नहीं रहने देती है। कभी वह अपने मधुर रूप-द्वारा मानव को आकर्षित करती है, कभी विहँसती है, कभी क्रीड़ा करती है और कभी रोती है मानव और प्रकृति का पूर्ण-तादात्म्य हो जाता है। अनारकली के साथ प्रकृति का एकात्म्य देखिये—

वे दीन जलाशय पावस के विरही बन सूखे जाते थे।

× × ×

था दरक गया पाषाण-हृदय भी पर्वत का होकर जर-जर। नूरजहाँ।

अनारकली समस्त प्रकृति में विरह-दुःख का अनुभव करती है। तालाब उसके साथ एकात्म्य स्थापित कर सूख गये हैं और पत्थर दरक गये हैं, जल-प्रपात और सरिता भी उसको गिरि तथा सागर के वियोग में रोते हुए प्रतीत होते हैं।

झाला की मृत्यु के पश्चात् पाँडेय जी ने भी प्रकृति को इसी भाँति मानव के साथ दुःखित वर्णन किया है :—

मुख छिपा लिया सूरज ने,
जब रोक न सका रुलाई।

सावन की अंधी रजनी,
वारिद मिस रोती आई।

इस एकात्म्य और मानवीकरण में भी कवि ने वास्तविकता का ध्यान रखा है, श्रावण की अंधकार पूर्ण रात्रि को अंधी रजनी कह कर वास्तविकता बनी रहने दी है।

'भक्त' जी ने द्रौपदी चीर हरण के सम्पूर्ण प्रसंग को सूर्यास्त के दृश्य से रूपक द्वारा अत्यन्त मोहक रूप में व्यक्त किया है :—

गहन विपिन में भूली भूली आई सरिता के तीर,
सहस करों से खींच रहा है दिन-नायक जिनका वर-चीर।
वे पानी होने के भय से 'कृष्ण-कृष्ण' चिल्लाती हैं,
मीन व्याज तड़पी जाती है लहर व्याज वल खाती है।
अचल बने गिरि निरख रहे हैं पत्थर की करके छाती,
पानी खो, पानी पानी हो तरुणी है गली जाती।
किन्तु खड़ा वह नट नागर हो परदे में उस निर्झर के
जल-प्रपात का अंबर देकर आबरवां का पट दे दे।
मद मंथन कर दिया सूर्य का कर अनन्त उस सारी को
लज्जित हो फिर डूब गया रवि शीश नवा बनवारी को।
नूरजहां पृ० ३६।

सूर्यास्त हो रहा है, सूर्य रश्मियाँ सरित-नीर में पड़ रही हैं, सरिता में मीन उछल रही है और तरंगें लहरा रही हैं, पर्वतों से प्रवाहित होते हुए जल प्रपात का पानी सरिता में आ रहा है, इतने में ही सूर्य अस्ताचल को चला जाता है, संध्याकालीन दृश्य का कवि ने द्रौपदी की कथा के साथ सुन्दर समन्वय किया है।

इसी भाँति रूपक के प्रयोग से इन्होंने कहीं प्रकृति में विवाहोत्सव मनाया है कहीं उसको रोष से पूर्ण दिखाया है और कहीं उद्वेलित। इनकी प्रकृति मानव की प्रतीक है।

इन्होंने प्राकृतिक दृश्य को लक्षणा की सहायता से, अलंकृत शैली में ही अधिकतः प्रकट किया है। प्रकृति के सरल और सीधे वर्णन बहुत ही कम हैं निशीथ के आगमन पर वे वर्णन करते हैं:—

अंगारे पश्चिम गगन के झवा झंवा कर छार हुए।
निर्झर ज्यों सोने का पानी पुनः रजत की धार हुए ॥
नूरजहाँ पृष्ठ ६६।

सूर्य की किरणों से निर्झर-नीर सुनहरे रंग का प्रतीत होता है और चन्द्र किरणों से श्वेत। सूर्य के अस्ताचल को प्रयाण करते समय दिशा लाल हो जाती है और फिर कालिमा छा जाती है, कवि इसमें अंगारों के राख हो जाने और सोने का पानी उतर जाने की कल्पना करता है। भक्त जी की कल्पना प्रकृति को साकार-रूप प्रदान करती है, रात्रि की नीरवता में कभी-कभी मयूर की ध्वनि सुनाई दे जाती है। इसका चित्रण कवि कितने मुग्धकारी रूप में करता है जब विभावरी रानी श्यामल केश खोल कर आती है तो :—

मधुप कुसुम से बात न करते तितली पर न हिलाती है,
निद्रा सब की आँखे बन्द कर परदा करती जाती है।

उस समय—

कमला-वाहन बना संतरी तुरत डाँटता आँख निकाल।
रजनी गधा की कलिका को चिटका कहीं फुलाकर गाल ॥
नूरजहाँ पृ० ६७।

रजनीगंधा का पुष्प रात में फूलता है कवि ने उसमें गाल फुलाने की कल्पना करली है।

गुरुभक्तसिंह ने प्रकृति को मानव-रूप प्रदान कर उसे अत्यन्त मधुर और आकर्षक बना दिया है मध्यकाल के काव्यकारों मे इन्होंने प्रकृति में सबसे अधिक चैतन्य और सजीवता का दर्शन किया है।

द्विवेदी युग के काव्यकारों में हम कई प्रवृत्तियाँ देखते हैं आरम्भ में प्रकृति चित्रण सर्वथा इतिवृत्तात्मक और उपदेशात्मक रूप में है उसके पश्चात् हरिऔध जी और शुक्ल जी की वाग्धारा मे प्रवाहित होती हुई त्रिपाठी जी और गुरुभक्तसिंह के काव्य में प्रकृति का रूप मनोरम होता जाता है और वह अनुरंजनकारी रूप मे हमारे सम्मुख प्रकट होता है।

आधुनिक काल

साहित्य देश की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है, अतः आधुनिक कालके इस नवीनयुगके इस काव्यकारोंकी प्रवृत्तियोंका विवेचन करने से पूर्व हमें तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों पर विचार कर लेना चाहिये।

अंग्रेजों को शासन करते हुए लगभग एक शताब्दी व्यतीत हो चुकी थी भारतीय अंग्रेजी-साहित्य का विशेष परिचय प्राप्त कर चुके थे, प्रभावस्वरूप उनमें महत्वकांक्षा का उदय हुआ, उनके हृदय में भी विख्यात वैज्ञानिक, विश्व-वन्द्य देश भक्त, अमर कवि आदि बनने की लालसाये उत्पन्न हुई किंतु उनकी आर्थिक परिस्थिति और राजनीतिक परतन्त्रता ने उन्हें पंगु बना दिया, वह नैराश्य और क्षोभ का अनुभव करते हुए विधि-विधान के आश्रित अपनी जीवन-नौका को छोड़ कर बैठ गये।

आर्थिक-परिस्थिति भी बड़ी शोचनीय थी, विज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि ने भारतका खोखला बना दियाथा। भारतीय विज्ञानसे लाभतो उठानासीख गये, किन्तु वैज्ञानिक यंत्रों के बनाने के लिये राजनीतिक परिस्थितियों ने सहयोग न दिया और उनके लिये ये विदेशियों के परमुखापेक्षी रहे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव और वैज्ञानिक यंत्रों के प्रयोग ने मनुष्यों को निर्बल और विलासी बना दिया था, अब वे गृह-कार्य और हस्तकौशल के कार्यों के लिये अनुपयुक्त थे। वैज्ञानिक यंत्रो के उपयोग से एक ओर शक्तिहीनता आई और दूसरी ओर धन का ह्रास होने लगा। बे रोजगारी का साम्राज्य था और मनुष्य के सम्मुख प्रतिक्षण रोटी का प्रश्न था। देश के आर्थिक शोषण ने मनुष्य को निराशावादी बना दिया था।

काव्यक्षेत्र भी उनके नैराश्यपूर्ण वातावरण के प्रतिकूल था। तत्कालीन काव्यकारों की प्रवृत्ति द्विवेदी जी की नैतिक और उपदेशात्मक प्रवृत्ति के अनुसार थी। द्विवेदी जी ने शृंगार की भावना को शिथिल कर दिया था। उस कालमें यदि किसीने कुछ लिखनेका प्रयास भी किया तो उसमें सरसताका अभाव था; कविगण मन और बुद्धि दोनों के सामन्जस्य से पूर्ण कविता नहीं रच सके, उनके सम्मुख नीति और उपदेश का विस्तृत-क्षेत्र था उसमें से ही

चयन करके वह काव्य रचना कर पाते थे। अपने मनोगत भावों का प्रकाशन करने में वे असमर्थ थे। काव्यकारों का प्रेम केवल देश प्रेमके ही रूपमें व्यक्त होता था। सबके लिये निर्धारित विषय थे, देश और उपदेशात्मक कथायें, किन्तु उस काल का नवयुवक कवि कुछ और कहना चाहता था, उन बंधनों से उसका मन ऊबने लगा। अतः आधुनिक काल का कवि इस प्रवृत्ति में अपना पूर्ण सहयोग न दे सका।

पहिले ही कहा जा चुका है कि उस नवीन काल के मानव के सम्मुख रोटी का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था, उस समय उसको रीतिकालीन राजाओं की भाँति काव्य-पुरस्कार की आवश्यकता थी। किन्तु उसके चिंता-शील हृदयका शांति प्रदान करने के लिये राज्यकी ओरसे इस प्रकारका कोई प्रोत्साहन नहीं था जिससे वे अपने हृदयके उत्साहको प्रकटकर सकते, शिक्षामें कियेगये परिश्रम और अर्थ व्ययका उनको पूरा प्रतिफल नहीं मिलता था, उच्च पद उनके लिये वर्ज्यस हो रहे थे वे विदेशियोंके एकाधिकारकी वस्तुएँ बन रही थीं, अतः नवयुवक कवियों को प्रयत्न के अनुसार सफलता न मिल सकी। न तो वे पूर्णतः अपने मनोगत भावों का निदर्शन ही कर सके और न उसका कुछ आर्थिक लाभ ही हुआ, केवल आत्म सन्तोष मात्र ही हो पाया।

सामाजिक बन्धन और रूढिगत-विचारों में भी काव्यकारों ने परतन्त्रता का अनुभव किया, थोड़ी सी भी स्वतन्त्रता का पथ ग्रहण करने पर मानव समाज की टीका टिप्पणी का विषय हो जाता था। समाज की निर्धारित रेखा से तनिक भी आगे बढ़ने पर मनुष्य को उपेक्षा और हास का पात्र बनना पड़ता था। वह स्वच्छन्द वातावरण के लिये छटपटाने लगा।

गत महायुद्ध में पाश्चात्य प्रदेशों के बाह्य ऐश्वर्य के वास्तविक स्वरूप से भी इस नवयुग का मानव अवगत हो गया। योरूप की भौतिक सभ्यता का खोखलापन नग्न सत्य होकर प्रस्फुटित हुआ। एक देश का दूसरे देश को हस्तगत करने की प्रवृत्ति, भयंकर हत्याकांड और शक्ति तथा विज्ञान के दुरु-पयोग ने उनमें विषाद, क्षोभ, निराशा के भाव भर दिये। वैज्ञानिक-युग में साधारण बल और शौर्य निर्बल सा हो गया। सन् ५७ की क्रांति की विफलता के पश्चात् दूसरी सशस्त्र-क्रान्ति के लिये लोग साहस न सञ्चित कर सके, वे एक प्रकार की विवशता का अनुभव करने लगे अतः उनमें पलायनवाद की प्रवृत्ति का उदय हुआ। मानव में मानव के प्रति संवेदना का अभाव और स्वार्थपरता का अनुभव कर नवीन युग के भावुक कवि ने विरक्ति और नैराश्य

से उद्भूत ज्वालामयी-जलनके निवारणके लिये प्रकृतिके शीतल क्रोड़को अपनाया और शान्ति लाभ किया, प्रकृति के सहचारसे उनके जीवन में फिर एक बार आशा की ज्योति जगी और नवीन उत्साह से काव्य-निर्माण मे व्यस्त हुए।

गत-महायुद्ध मे भारतीय वीरो ने अपनी रणकुशलता का अपूर्व परिचय दिया था, पाश्चात्य देशो ने यहाँ के सिख और राजपूत सैनिकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की, उनके विजय-गान से समस्त भारत ध्वनित हो उठा, इसका भारतीय जनता पर अद्भुत प्रभाव हुआ। परतंत्र, निराश और उदासीन भारत वासियों में आत्म विश्वास के भावों का उदय हुआ। उन्हे अतीत की भग्नावशिष्ट शक्ति का ज्ञान हो गया, उन्हे पूर्ण विश्वास हो गया कि वे अपदार्थ नहीं हैं वे भी अन्य देशों की भाँति गौरवान्वित होने मे समर्थ हैं। उनमे उज्ज्वल-भविष्य की आशा जगी किन्तु विजय से जो आशायें जाग्रत हुई थी वे विफल सी होती दिखाई पड़ीं, क्योकि शासक अंग्रेजों की युद्ध से पूर्व की हुई समस्त प्रतिज्ञाएँ, उनके पास किए हुए नियमों (बिल) में दमन की नीति द्वारा नष्ट प्राय हो गई थी।

विश्व-विख्यात कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जब डेढ़ लाख का पुरस्कार प्राप्त किया तो नवयुवक कवियों में भी उत्साह का संचार हुआ। वह पाश्चात्य प्रदेश की भौतिक सभ्यता के प्रति विद्रोह और आध्यात्मिकता के प्रति मान का प्रमाण था।

इस युग की नवीन धारा का मुख्य और प्रधान कारण द्विवेदी युग की उपदेशात्मकता की प्रतिक्रिया थी। द्विवेदी जी की विचार धारा से प्रभावित काव्य-क्षेत्र में वैयक्तिक-वासना का निष्कासन नहीं था। राजनीतिक परतंत्रता, आर्थिक शोषण और सामाजिक-प्रतिबन्धनों ने आधुनिक-कवि को बंदी कर रखा था, उसके चारो ओर नैराश्य का वातावरण था। नैराश्य में जैसे भक्ति काल का आविर्भाव हुआ था उसी प्रकार इस युग में द्विवेदी जी के सुधार युग की स्थूल नैतिकता के विरुद्ध आन्दोलन हुआ, नवयुवक कार्यकर्ताओं मे प्रकृति के प्रति विशेष अनुरंजित भावना का जागरण हुआ। प्रकृति के प्रति प्रेम की प्रवृत्ति ऐसी थी जिसमें वे अपना मन रमा सकते थे, द्विवेदी जी के अनुयायी देश-प्रेमी कवि भी विरोध नहीं कर सकते थे और रूढ़िगत सामाजिक प्रतिबन्धन भी शिथिल थे। इस काल के कवि ने प्रकृति के अन्तर में एक

नारी-रूप की उद्भावना की ओर इस प्रकार उनकी वैयक्तिक भावना का भी निष्कासन होगया, उसक विकल वासन की अनुभूति-प्रकृति वर्णन में स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करने लगी। द्विवेदी युग के प्रकृति-वर्णन और नवीन युग के प्रकृति वर्णन में महान् अन्तर रहा। द्विवेदी युग के काव्यकारों ने प्रकृति का वर्णन देश-प्रेम के भाव से पूर्ण होकर किया और इस काल के काव्यकारों ने देश-प्रेम के अतिरिक्त प्रकृति के अन्तर्पट में एक नारी की स्थापना करते हुए अपने शृंगार-रस पूर्ण दमित-भावों का उन्नयन तथा परिष्कार करके प्रकृति का जी खोलकर मधुर तथा शृंगारिक वर्णन किया।

बौद्धिक-विकास के इस काल का मानव, अचेतन प्रकृति में एकात्म्य का अनुभव करने के लिये, उसमें प्रतिस्पंदन प्राप्त करने के लिए और चैतन्य लाने के लिये एक चेतन और अज्ञात शक्ति का अनुभव करने लगा, उसमें आध्यात्मिक पक्ष का प्रादुर्भाव हुआ और प्रकृति उसके लिये सजीव, सचेतन तथा प्रतिस्पन्दन से पूर्ण हो गई। स प्रवृत्ति में शैली का भी सुधार हुआ। इतिवृत्तात्मक शैली से कुछ अधिक व्यजनात्मक सूक्ष्मता की ओर प्रवृत्ति हुई। कवि-गण ने स्थूल-वस्तुओं को स्थूल-सीमाओ का अतिक्रमण कर एक नवीन रहस्यमय वायवी रूप के दर्शन किये। प्रकृति उनके लिये बोलने सी लगी। नवीन दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिये एक नवीन शैली का आविर्भाव हुआ। भाषा का प्रयोग अभिधा की स्थूलता में न होकर लाक्षणिकता के साथ होने लगा। नये अलकारों का जन्म हुआ। प्राचीन अलंकारों की अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन हुआ, भाषा की लाक्षणिकता बढ़ जाने से स्थूल वस्तुओं के लिए सूक्ष्म उपमान ढूंढे जाने लगे और सूक्ष्म के लिए स्थूल प्रकृति का मानवीकरण भी होने लगा था अब विशेषण-विपर्यय को भी महत्व मिला। इस प्रकार इस नवीन युग के कवियों ने निम्नलिखित प्रवृत्तियों को अपनाया।

इन्होंने प्रकृति में जीवन स्पन्दन की अनुभूति प्राप्त की। प्रकृति इनके हर्ष, विषाद, क्षोभ में अनुगामिनी रही। इन्होंने प्रकृति में सदा अपने भावों का प्रतिबिम्ब देखा।

प्रकृति में चेतना का अनुभव करते हुए, प्रकृति काव्यकारों के मधुर कोमल और सुकुमार-भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई। प्रकृति में नारी भिवों के आरोप के कारण स्वभावतः मानव उसमें सौन्दर्य और सरसता का अनुभव करने लगा।

संघर्ष-रत-जीवन से त्रस्त मन के लिये प्रकृति कवि की शरण भूमि होगई, वह अपनी प्रकृति सहचरी के साहचर्य में सुख और शांति का अनुभव करने लगा। आध्यात्मिक पक्ष में भी प्रकृति उसकी मानसिक स्वस्थता का प्रधान कारण हुई।

सौन्दर्य के उपमान रूप में भी इन्होंने प्रकृति को माध्यम बनाया और अलकार रूप में प्रकृति के सुन्दर दृश्यों का चयन किया।

यह नवीन काल छायावाद के नाम से अभिहित हुआ। इस युग में कवियों ने प्रकृति के मानव रूप का आरोप कर परम तत्व के दर्शन किये। आचार्य शुक्ल जी ने छायावाद को रहस्यवाद का एक भेद माना। छायावाद की मुख्य कवियित्री महादेवी वर्मा 'रश्मि' की भूमिका में छायावाद के जन्म के मूल कारण और नाम की सार्थकता के विषय में लिखती हैं:—

"छायावाद के जन्म से प्रथम कविता के बंधन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के वाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा। स्वच्छन्द-छन्द में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।"

छायावाद के प्रमुख उन्नायक श्री जयशङ्कर प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा हैं।

कविवर जयशङ्कर प्रसाद की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। इन्होंने काव्य, उपन्यास नाटक, कहानी और निबंध सब में अपनी कला का प्रकाशन किया। किन्तु वास्तव में ये कवि थे, उपन्यास, नाटक, कहानी आदि में भी इनका कवित्व न छिप सका। इनके गद्य में भी काव्य का सा ही आनन्द प्राप्त होता है।

प्रसाद जी के लिये प्रकृति सजीव थी। इन्होंने सदैव उसमें चैतन्य का अनुभव किया और अपनी भावनाओं का प्रतिस्पन्दन प्राप्त किया। अतः शुद्ध आलम्बन रूप में स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण इनके काव्य में बहुत कम प्राप्त होता है। इनके प्रकृति वर्णन के पटावरण में हमें सर्वदा एक मानव का करुण-कलित-राग और एक अज्ञात-शक्ति के अनन्त-सौन्दर्य की झलक मिलती है। केवल आरम्भिक कविताओं में ही यत्किंचित् यथा-तथ्य प्रकृति-चित्रण प्राप्त होते हैं। अन्तिम काव्य-ग्रंथों में तो इनकी कविता रहस्योन्मुखी होती गई है। नव-वसन्त का यथा-तथ्य चित्रण देखिए:—

पूर्णिमा की रात्रि सुखमा स्वच्छ सरसाती रही।
इंदु की किरणें सुधा की धार बरसाती रहीं।
युग्म व्योम व्यतीत है आकाश तारों से भरा।
हो रहा प्रतिबिम्ब पूरित रम्य यमुना जल हरा।
कूल पर का कुसुम कानन भी महा कमनीय है।
शुभ्र प्रासादावली की भी छटा रमणीय है।
है कहीं कोकिल सघन सहकार को कूजित किये।
और भी शत पत्र को मधुकर कहीं गुंजित किये।

कानन कुसुम पृष्ठ १३।

कवि ने प्रकृति का ज्यों का त्यों चित्रण कर दिया है। प्रकृति की विशिष्ट वस्तुओं को एकत्रित कर अपने मनोभावों से प्रभावित किये बिना ही सश्लिष्ट चित्रण कर दिया है; इसमें न तो कवि ने मानवीकरण का आरोप किया है, न आध्यात्मिक-पक्ष का दिग्दर्शन कराया है, न प्रकृति-चित्र अपनी कल्पना से रंगा है और न भावों को उद्दीप्त करने में सहायक माना है। कवि ने परम्परागत परिपाटी का भी प्रतिपालन नहीं किया है। इनकी बसन्त की कोकिल परम्परानुसार केवल रसाल तरु को ही कूजित नहीं करती, कवि ने उसे सघन सहकार पादपों के मध्य में देखा है और अपने निरीक्षण का यथार्थ-चित्र अंकित कर दिया है।

मानव कार्य कलापों की पट-भूमि के रूप में भी इन्होंने प्रकृति का वर्णन किया है, इनकी आरम्भिक-रचना चित्राधार में तो अधिकतः प्रकृति-चित्रण आगामी कार्य की पृष्ठभूमि के ही रूप में है, इसप्रकार के प्रकृति चित्रों में कवि प्रकृति का वर्णन करके अपनी कथा को आरम्भ कर देता है :—

' मलयानिल लहि नव मल्लिका परागहिं सुख सों।
महत सदा आमोद सहित या बन के रुख सों।

चित्राधार पृ० ११

आदि शब्द में उद्यान का वर्णन करते हुए कवि उर्वशी की कथा को आरम्भ कर देते हैं। पृष्ठ-भूमि के रूप में किये गये प्रकृति चित्रण में कभी कभी आगामी घटना का भी परिचय प्राप्त होता है,

उधा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई॥

कामायनी पृष्ठ २५।

मन की चिन्ताग्रस्त अवस्था में ऊषा का अभ्युदय, आशा की किरणें विकीर्ण कर देता है, ऊषा का सस्मित उल्लास कामायनी-मिलन की आगामी शुभ-घटना की सूचना देता है।

प्रसाद जी ने प्रकृति के अनुरंजन कारी, भयावह और विराट सभी रूपों के दर्शन किये हैं। प्रकृ का कोई भी रूप कवि को तटस्थ नहीं रख सका है, किसी भी रूप में उन्होंने अपनी सहचरी के साहचर्य का परित्याग नहीं किया है, प्रकृति के सौम्य रूप का चित्रण देखिये:—

आकाश श्री सम्पन्न था, नव नीरदों से था घिरा,
संध्या मनोहर खेलती थी, नील-पट तम का गिरा।
यह चचला चपला दिखाती थी कभी अपनी कला,
ज्यों वीर वारिद की प्रभा-मय रत्नवाली मेखला।

कानन कुसुम पृ० २७।

कवि ने प्रकृति के सुन्दर रूप का चित्राकन किया है। नव-जल-धारों से आच्छादित और चपला की द्युति से पूर्ण गगन मंडल कवि को आकर्षित करता है। कभी कभी तो कवि प्रकृति के सौन्दर्य पर इतना मुग्ध हो जाता है कि वह हर्षातिरेक से कह उठता है:—

अहा! अचानक किस मलयानिल ने तभी
फूलों के सौरभ से पूरा लदा हुआ।
आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमें
खुली आँख आनंद दृश्य दिखला दिया॥

झरना पृ० ४।

कवि प्रथम-प्रभात के मनोरम दृश्य पर मुग्ध हो जाता है, उसकी आनंदानुभूति का सहजोद्रेक वाणी में अभिव्यक्त होता है। प्रकृति के सुकुमार और कोमल रूप का भी इन्होंने सुन्दर वर्णन किया है:—

नव कोमल आलोक बिखरता,
हिम संसृति पर भर अनुराग।
सित सरोज पर क्रीड़ा करता,
जैसे मधुमय पिंग पराग॥

कामायनी पृ० २४।

कभी-कभी प्रसाद जी अपनी कल्पना द्वारा प्रकृति को अत्यन्त भय-रूप प्रदान करते हैं। वह साधारण-दृश्य का अनूठा चित्रांकन करते हैं। प्रकृति

नवीन वेश-भूषा धारण कर एक अद्भुत चित्र उपस्थित करती है। सूर्यास्त के समय का कल्पना और अलंकार के समन्वय से किया हुआ चित्रण कितना अनूठा है।

सन्ध्या घन माला की सुन्दर, ओढ़े रंग बिरंगी छींट,
गगन चुंबिनी शैल श्रेणियाँ, पहने हुए तुषार किरीट।
× × × ×
इस अनंत प्रांगण में मानो,जोड़ रही है मौन सभा। कामायनी पृ० ३१।

प्रसाद जी के काव्य में यद्यपि प्रकृति के अनुरंजनकारी रूप के ही अधिकांश वर्णन हैं, तथापि अल्प संख्यक होते हुए भी उग्र और विराट् रूप के स्वाभाविक-चित्रण प्राप्त होते हैं। उनकी दृष्टि रमणीय दृश्यों तक ही सीमित नहीं है, कभी वे कोमल जल-वीचियों को शशि-किरणों के साथ क्रीड़ा करते हुए देखकर प्रसन्न हुए हैं और कभी उनके गर्जन से भयभीत। कभी हरिताम्बरा धरा नेत्रों को शीतलता प्रदान करती है और कभी भीषण रूप धारण करती है 'चिंता' सर्ग में प्रकृति के भीषण रूप का दिग्दर्शन कितना भयोत्पादक है :—

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी,
चली आरहीं फेन उगलतीं,
फन फैलाये व्यालों सी।
धँसती धारा धधकती ज्वाला
ज्वालामुखियों के निश्वास
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास ॥ कामायनी पृ० १६।

प्रसाद की पहुँच केवल पृथ्वी-तल तक ही नहीं है, वह कामायनी में उर्ध्व देश का भी अवलोकन करते हैं और वहाँ के विशालतम एवं विराट् प्रकृति चित्रण का अद्भुत वर्णन करते हैं:—

नीचे जलधर दौड़ रहे थे,
सुंदर धनु, माला पहिने।

कुंजर कलभ सदृश इठलाते,
चमकाते चपला के गहने ॥ रहस्य ।

पाठक के हृदय पर प्रकृति के वैभव और उसके विशाल रूप का अद्भुत प्रभाव होता है। वह चमत्कृत हो जाता है।

परम-तत्व-दर्शन

प्रसाद जी के काव्य में आध्यात्मिक-पक्ष प्रधान तत्व है। इनके लिये प्रकृति चेतन है, सत्य और सजीव है, यह उसमें अपने प्रियतम के अलौकिक रूप का दर्शन करते हैं और प्रकृति के प्रत्येक कार्य को उसी सर्वोपम शक्ति द्वारा अनुप्राणित मानते हैं। प्रकृति के प्रति प्रेम की अतिशयता ही इन्हें उस सर्व-शक्तिशाली की महती शक्ति का अनुभव कराती है और उस विश्वात्मा के रहस्य को जान लेने के उपरान्त प्रकृति इनके अधिकाधिक अनुराग का विषय हो जाती है। कवि प्रसाद प्रकृति के प्रत्येक व्यापार का निरीक्षण करते हैं, वह प्रकृति के सुचारु-संचालन और नियम-बद्ध-व्यापारों को देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र का नियमित समय पर उदित तथा अस्त होना, पवन का प्रवाह और धरित्री का दान उनके हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न करता है, कवि प्रश्न करता है:—

विश्वदेव, सविता या पूषा
सोम, मरुत, चञ्चल पवमान।
वरुण आदि सब घूम रहे हैं,
किसके शासन में अम्लान। कामायनी पृ० २७।

यह उस परम तत्व को मंदिर, मसजिद, गिरजे में ढूंढते हैं, किन्तु कहीं उसके दर्शन प्राप्त नहीं होते, वह विश्वात्मा छायानट की भाँति एक कौतुक की भाँति अन्तर्हित रहता है।

छायानट छवि परदे में, सम्मोहन वेणु बजाता।
संध्या कुहुकिनि अंचल में, कौतुक अपना कर जाता ॥ आँसू, पृ० ३३।

कवि उसकी सम्मोहिनी वंशी के स्वर पर मुग्ध होकर अधिकाधिक उत्सुक होता है और अपने औत्सुक्य को विकल देखकर अत्यन्त दुःखी होता है, उसके करुणा-कलित हृदय में विकल-रागिनी बजती है, नभ-मुक्त-कुंतला-धरिणी

उसको त्रुटी सी प्रतीत होती है, प्रिय-दर्शन के लिये वह अत्यन्त व्याकुल हो जाता है, समय काटना दुष्कर होजाता है, रात्रि तारे गिन-गिन कर कटती है। अपनी व्यग्र-अवस्था में प्रकृति को शांतिपूर्वक विश्राम करते देख उसके हृदय में क्षोभ और द्वेष का आर्विभाव होता है वह अत्यन्त नैराश्य के साथ कहता है:—

मधु मालतियाँ सोती हैं कोमल उपधान सहारे।
मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर गिनता अंबर के तारे॥ आँसू पृ० ३६

वह प्रतिक्षण अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करता है, किन्तु वह नहीं आता। निराश होकर, आंसू की धारा बहाकर वह अपनी वेदना को कम करने का प्रयास करता है। अन्त में उसके हृदय में आत्मविश्वास की भावना जाग्रत होती है, वह समस्त प्रकृति में असीम प्रेम की झलक देखता है:—

प्रेम, जगत का चालक है, इसके आकर्षण में खिच के।
मिट्टी का जल पिंड सभी दिन रात किया करते फेरा॥ प्रेम पथिक।

× × ×

इसके बल से तरुवर पतझड़ कर बसंत को पाते हैं।

प्रेम में वह अद्भुत आकर्षण और अपरिमेय-बल का अनुभव करते हैं, विश्व का संचालन वह इसी के बल पर देखते हैं। प्रकृति को प्रेम से अभिभूत देखकर इन्हें पूर्ण विश्वास होजाता है कि प्रिय का दर्शन अपरिमित प्रेम द्वारा ही संभव है। अन्त में जिस प्रकार राका और जलनिधि का इन्दु रश्मियों के माध्यम से परिचय होता है इसी प्रकार कवि और विश्वात्मा का प्रेम की सतत आराधना द्वारा मिलन होता है। प्रियतम विश्वात्मा के अनंत सौन्दर्य का वर्णन करने में कवि असमर्थ हो जाता है प्रकृति का कोई भी तत्व उस तत्व की परम शोभा के अनुरूप नहीं प्रतीत होता। वह कल्पना करता है:—

चंचला स्नान कर आवे चन्द्रिका पर्व में जैसी।
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी॥ आंसू पृ० २४।

परम-तत्व की अपूर्व-सुषमा की तुलना में शशि एक बिंदु के समान है, उषःकाल का विकसित कमल वन उसकी हँसी की तुलना में उपहास के योग्य है। कवि उस रूप-छटा का पान करते हैं, उनके हृदय में प्रियतम की मंजुल

मधुर-मूर्ति बस जाती है। चन्द्रिका में वह उसकी मुस्कान और निर्झरों के कल-कल निनाद में वह उसके गुण गान का अनुभव करते हैं। सकल विश्व प्रिय-मय हो जाता है, उनका हृदय सर्ववाद की भावना से पूर्ण हो जाता है:—

> तुम्हारा स्मित हो जिसे निरखना,
> वो देख सकता है चन्द्रिका को
> तुम्हारे हँसने की धुन में नदियाँ,
> निनाद करती ही जारही हैं ॥ कानन कुसुम पृ० २।

× × ×

> हर एक पत्थरों में वह मूर्ति छिपी है।

उनके ब्रह्म प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में व्याप्त हो जाते हैं। प्रसाद जी सचराचर प्रकृति में उस के दर्शन करते हैं, विश्व ब्रह्म-मय हो जाता है और उनका विरह-दुःख, चिर-सहयोग और असीम आनंद में परिवर्तित हो जाता है।

> प्रियतम-मय यह विश्व निरखना फिर उसको है विरह कहाँ।
> फिर तु वही रहा मनमें, नयनों में प्रत्युत जग भर में ॥ प्रेम पथिक।

नयनों में उसी प्रियतम की मूर्ति बसी रहती है, हृदय को उसी का माधुर्य प्रफुल्लित करता रहता है और शरीर उसी के मधुर स्पर्श की स्मृति में रोमांचित रहता है। विश्व में भी उसी का प्रतिबिम्ब देखकर अन्तर्बाह्य का साम्य हो जाता है, आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है और विषाद तथा विरह-व्यथा सर्वदा के लिये विलुप्त हो जाती है।

मानव-भावों का आरोप

प्रसाद जी ने प्रकृति को सजीव अनुभव किया है इनके लिये प्रकृति केवल मानव-भावों के जाग्रत करने का साधन नहीं है वरन् एक ऐसी सहचरी है जो मानव के साथ हँसती, रोती, उद्वेलित होती और उसको सान्त्वना प्रदान करती है, मानव उसके सहचार में प्रतिस्पंदन प्राप्त करता और प्रसन्न होता है। प्रकृति से इस प्रकार तादात्म्य स्थापित करके मानव, प्रकृति में मानव-आकृति और मानव-व्यापारों का भी अनुभव करता है। रात्रि में तारक-मंडल से युक्त चन्द्रिका के मानव-रूप का वह इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

तार हीरक हार पहनकर, चन्द्रमुख
दिखलाती उतरी आती थी चाँदनी
शाही महलों के ऊंचे मीनारों से
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मंथर गति से उतर रही हो मौध से।

महाराणा का महत्व।

चन्द्रिका पूर्ण-सुन्दरी प्रेमिका के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट होती है। उसके उत्तरोत्तर प्रसार में वह मंथर-गति का अनुमान करता और तारक-माला मे हीरक-हार की सभावना करता है; इसी प्रकार किरण को अज्ञात विश्व की विकल-वेदना की दूती समझकर प्रश्न करता है:—

किरण तुम क्यों बिखरी हो आज,
रंगी हो तुम किसके अनुराग।
स्वर्ण सरसिज किजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग॥

झरना पृ० ११।

रहस्यवादी प्रसाद की किरण अज्ञात-प्रियतम के अनुराग-रंग में रंगी हुई प्रतीत होती है। प्रातःकाल के समय ऊषा को कवि अपने रागात्मक संबंध द्वारा पनिहारी का रूप प्रदान करता है:—

अम्बर पनघट में डुबो रही ताराघट ऊषा नागरी।

लहर पृ० १६।

गगन-मंडल पनघट है और तारक-समूह घट-समुदाय, ऊषा एक स्त्री है जो घड़ो को डुबो रही है। प्रातःकाल के वास्तविक सत्य को कवि ने अपनी भावना द्वारा सजीव रूप प्रदान किया है। वह प्रकृति में मानव हाव भावों और व्यापारों का भी अनुभव करते हैं, वह रजनी से कहते हैः—

विकल खिलखिलाती है क्यों तू इतनी हंसी न व्यर्थ बिखेर।
× × ×
घूंघट उठा देखती मुसक्याती किसे ठिठकती सी जाती॥

कामायनी पृष्ठ ३६

इस प्रकार अपनी कोमल कल्पना, प्रकृति के प्रति अनुराग और हृदय की भावुकता के समन्वय से प्रसाद जी की प्रकृति मानव की ही भाँति सचेतन होगई

है। उन्होंने जड़ वस्तु में प्राण डाल दिये हैं, जड़ और चेतन का भेद मिट गया है और प्रकृति मानव की ही भाँति प्रतिस्पन्दन करती और संवेदना प्रकट करती है। प्रकृति छाया की भाँति सदैव मानव के साथ रहती है। प्रसाद जी की प्रकृति क्रिया-शीला है, उसमें द्रवणशीलता है, वह आँसू बहाकर कवि की व्यथा को कम करती और खिलखिलाकर हँसी में सहयोग देकर मानव के उल्लास को द्विगुणित करती है। कवि को प्रकृति में ममत्व, प्रेम, सौहृद, आर्द्रता और संवेदनशीलता के दर्शन होते हैं। जल-प्लावन के पश्चात् जब मनु अपने एकाकी जीवन से ऊब जाता है और अपने वैभव-विलास के दिनों की स्मृति में मग्न हो जाता है तो प्रकृति भी उसी की भाँति व्यथित और गंभीर हो जाती है।

> नीचे दूर दूर विस्तृत था,
> उर्मिल सागर व्यथित अधीर।
> अंतरिक्ष में व्यस्त उसी सा,
> रहा चंद्रिका-निधि गंभीर॥
>
> कामायनी पृ० ३६।

जब प्रकृति मानव के व्यथा-भार के वहन में अक्षम हो जाती है तो आँसू गिरने लगते हैं :—

> रजनी की रोई आँखें
> आलोक बिंदु टपकातीं।
> तम की काली छलनायें
> उनको चुप चुप पी जातीं॥
>
> आँसू पृ० ४७।

प्रकृति स्वयं आँसू बहाकर भी जब मानव की व्यथा को कम करने में असमर्थ रहती है तो धीर-समीर अपनी कोमल थपकियों द्वारा उसे शान्त करता है। मानव पुलकित हो जाता है। मानव के हर्ष में प्रकृति भी अपना एकात्म्य स्थापित करती है और,

> सृष्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग।
> राग-रंजित चन्द्रिका थी, उड़ा सुमन पराग॥
>
> कामायनी पृ० ७३।

मानव और प्रकृति के उल्लास का तादात्म्य हो जाता है।

प्रकृति केवल मानव के विषाद और हर्ष में ही अपना सहयोग नहीं प्रदान करती, वह तो मानव के प्रत्येक कार्य में अपना सहयोग देती है और मानव की अनुचरी हो जाती है। जब मनु श्रद्धा के अनुपम रूप-लावण्य पर मुग्ध हो जाता है और कामांध होकर श्रद्धा के सम्मुख अपनी अधीरता व्यक्त करता है तो प्रकृति में भी हमें उसकी प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है, प्रकृति भी रोमाचित हो जाती है और उसमें हम अधीरता का अनुभव करते हैं :—

मधु बरसती विधु किरन हैं काँपती सुकुमार।
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु भार॥

कामायनी पृ० ७४।

किरणों की कंपन और पवन की मंथर गति उसके वासना-जन्य भावों को व्यक्त करती है।

प्रकृति, मानव के अनाचार पर क्षुब्ध होती है, वह उसके साथ हँसती और रोती ही नहीं, उसी की भाँति रोष से भी पूर्ण हो जाती है। मनु के अत्याचार और अनधिकार चेष्टा पर क्रुद्ध जनता के साथ प्रकृति भी अपना सहयोग प्रदान करती है, उधर तो इड़ा को बचाने के लिये जनता क्षुब्ध होकर घुस पड़ती है और इधर,

उधर गगन में क्षुब्ध हुई सब देव शक्तियाँ क्रोध भरीं।
रुद्र नयन खुल गया अचानक व्याकुल काँप रही नगरी॥

मनु के खिन्न होने पर प्रकृति में भी खिन्नता और अवसाद उत्पन्न होजाता है,

पवन चल रहा था रुक रुक कर
खिन्न भरा अवसाद भरा।

कामायनी पृ० १६८।

हम प्रकृति में भी मानव की सी ही ग्लानि और खेद का अनुभव करते हैं।

प्रसाद जी का प्रकृति से तादात्म्य और प्रेम अन्ततोगत्वा उन्हें परम तत्व के दर्शन कराता है प्रकृति का मानव रूप ब्रह्म का रूप हो जाता है,

बन गया तमस था अलक जाल,
सर्वांग ज्योतिर्मय था विशाल॥ कामायनी पृ० २०२।

वह प्रकृति में ब्रह्म के तीन तत्व सत्, चित्, और आनन्द का अवलोकन करते हैं। प्रकृति और पुरुष के संयोग से प्रकृति ब्रह्म का रूपान्तर हो जाती है, सकल सृष्टि ब्रह्ममय होजाती है और ब्रह्म की आह्लादकारिणी लीला का प्रसाद होता है:—

लीला का स्पन्दित आह्लाद,
वह प्रभापुंज चिति मय प्रसाद,
आनंद पूर्ण तांडव सुन्दर,
झरते थे उज्वल श्रम सीकर,
बनते तारा हिमकर दिनकर,
उड़ रहे धूलि कण से भूधर ॥ कामायनी।

इस प्रकार इनका मानवी-करण का आरोप परमतत्व के दर्शन में परिवर्तित हो जाता है।

प्रकृति में मानव-भावों का आरोपण करते हुए जिस प्रकार इन्होंने संवेदनशीलता प्राप्त की है, प्रकृति को अपने साथ रुलाया और हँसाया है। उसी प्रकार मानव को भी प्रकृति के प्रति संवेदनशील प्रदर्शित किया है। प्रकृति को सजीव मान लेने पर प्राणी प्रकृति की विकलता, उत्सुकता और उल्लास आदि के भावों को समझ लेता है और अपनी सहचरी के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता है। उनका प्राकृतिक अनुराग सागर को अपने अज्ञात प्रियतम के कटु-वाक्य वाणों से आहत अनुभव करता है, वह उस निर्दयी का नाम करुणापूर्वक पूछते हैं:—

लहरों में यह क्रीड़ा चंचल,
सागर का उद्वेलित अंचल।
है पोंछ रहा आँखें छलछल,
किसने यह चोट चलाई है ॥ लहर पृष्ठ १७।

वह प्रकृति में भय और त्रास का अनुभव करते हैं। प्रकृति को त्रस्त और दुःखित देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता है, वह अपनी कोरी सहानुभूति ही प्रकट नहीं करते वरन् करुणापूर्वक उसके दुःख का भी पता लगाते हैं:—

दृष्टि जब जाती हिमगिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर।

धरा की सिकुड़न यह भयभीत

आह कैसी है ! क्या है पीर ! कामायनी पृ० ८६।

धरा की पीर को जानने के लिये कवि व्याकुल हो जाता है। लता-कुंजों की शीतल छाया में मकरन्द विकीर्ण करने वाली कुमुदिनी को दलित देखकर कवि का हृदय उसी प्रकार व्यथित होता है जिस प्रकार अनन्य सखा, अपने सखा को आपद्ग्रस्त देखकर दुःखी होता है। कवि, कुमुदिनी के अतीत के सुख-सपन्न दिवसों की याद करता है और उसकी वर्तमान स्थिति के प्रति अपना दुःख प्रकट करता है, उसके करुणा-कलित-हृदय से एक व्यथित गान प्रस्फुटित होता है :—

किसी स्वार्थी मतवाले हाथी से हा ! पद दलित हुई।
वही कुमुदिनी, ग्रीष्म ताप तापित रज में परिमलित हुई ॥

कानन कुसुम पृ० ३६।

इस भाँति मानवी-करण की भावना में मानव और प्रकृति का तादात्म्य हो जाता है, दोनों में रागात्मक-सम्बन्ध की स्थापना हो जाती है और एक-रूप हो जाते हैं, इस प्रकार के सफल मानवी-करण में मानव को जड़-प्रकृति में भी मानव का सा ही प्रतिस्पन्दन प्राप्त होता है। वह प्रकृति के साहचर्य में शान्ति और सुख का अनुभव करता और अपनी सहानुभूति तथा स्नेह अर्पित करता है।

प्रकृति को मानव-भावों को जाग्रत करने में समर्थ तो प्रायः सब काल के काव्यकारों ने माना है। प्रकृति अपने मनोहर रूप द्वारा मानव की सुप्त भावनाओं को जाग्रत कर देती है। सारस्वत प्रदेश के कृत्रिम सुख और प्रकृति का शीतल वातावरण मनु को उन्मत्त बना देता है, उसकी सुप्त विलास-प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है और वह विवेकशून्य हो इड़ा से प्रार्थना करने लगता है।

प्रसाद जी ने उद्दीपन रूप में प्रकृति का महत्व स्वीकृत किया है। कोकिल का कल-गान, मधुर सुरभि और शीतल चन्द्रिका स्वस्थ मन को उत्तेजित करते हैं। वह इस उद्विग्नता का समस्त प्रकृति में अनुभव करते हैं, मनु श्रद्धा से प्रश्न करते हैं :—

क्या तुम्हें देखकर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी।
उस नीरवता में अलसाई,
कलियों ने आँखें खोली थीं ॥ कामायनी पृ० ५४।

नर-नारी के ऐन्द्रिय-सुख का उपभोग करती हुई प्रकृति मानव को और भी अधिक उत्तेजित कर देती है। मनु श्रद्धा के सहवास में काम विवश होजाता है, उसे समस्त-प्रकृति दाम्पत्य-सुख का उपभोग करती हुई लक्षित होती है। नर-नारी की विलास-भावना में जड़ और चेतन सृष्टि लीन होजाती है, वह देखता है:—

भुज लता पड़ी सरिताओं की,
शैलों के गले सनाथ हुए ॥ कामायनी।
शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कांत,
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रांत।
कामायनी पृष्ठ ७३।

काम से प्रभावित मनु कभी तो सरिता और शैल में गाढालिंगन का अनुमान करता और कभी रति-श्रमिता रजनी को ओस विंदुओं की शैयापर विश्राम करते देखता है, प्रकृति को एन्द्रिय सुख में लिप्त देखकर उसकी वासना उद्दीप्त हो जाती है और वह प्रकृति के उद्दीपक-रूप का वर्णन करते हुए श्रद्धा को उत्तेजित करने का प्रयास करता है। मनु समस्त प्रकृति को आनंदमग्न होकर जागरण करते हुए और उत्सव मनाते हुए देखता है, सचराचर प्रकृति पारस्परिक आकर्षण से आनन्द-सरोवर में निमग्न है—

देवदारु निकुंज गहवर सब सुधा में स्नात।
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात॥
आरही थी मदिर मीनी माधवी की गंध।
पवन के घन घिरे पड़ते थे बने मधु अंध॥
देखलो ऊँचे शिखर का व्योम-चुंबन व्यस्त। कामायनी पृष्ठ ७३।

मनु प्रकृति को भी काम-विवश प्रदर्शित करते हैं।

विप्रलंभ-शृंगार का लौकिक-पक्ष में इन्होंने यत्किंचित्-वर्णन कामायनी में किया है। मनु के चले जाने पर श्रद्धा अत्यन्त व्यथित होती है। प्रिय की स्मृति ही उसके जीवन का आधार हो जाती है, श्याम घटाओं को देखकर उसकी स्मृति और भी अधिक तीव्र हो जाती है:—

'बिजली सी स्मृति चमक उठी तब,
लगे जभी तम घन घिरने'॥

बसन्त में भी उसे कोकिल की मधुर वाणी में मौन व्यथा का अनुभव होता है, कोकिल के गान को वह अपना उपहास समझती है, बसन्त का

मधु मन्दिर-समीर, पुष्प-सौरभ और नव-किसलय में आकर्षण नहीं प्रतीत होता चतुर्दिक शून्ता का अनुभव होता है, अत्यन्त विवश-भाव से वह यही कहती है:—

पर न परागों की वैसी है चहल पहल जो थी पहिले
इस पतझड़ की सूनी डाली और प्रतीक्षा की संध्या ॥ कामायनी पृष्ठ १८५।

अलंकार

प्रसाद जी सौन्दर्य प्रेमी थे, सौन्दर्य के प्रति इनका सहज आकर्षण था। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण प्राणी-मात्र की सहज और स्वाभाविक प्रवृत्ति है, मनुष्य ही नहीं प्रकृति के चेतन जीव भी सौन्दर्य पाश से मुक्त नहीं हैं:—

नील नीरद देखकर आकाश में।
क्यों खड़ा चातक रहा किस आश में॥
क्यों चकोरों को हुआ उल्लास है।
क्या कलानिधि का अपूर्व विकास है॥ कानन कुसुम पृ० ३५।

आकाश में नील-जलद देखकर चातक तृषित नेत्रों से देखता रह जाता है और कलानिधि की अपूर्व कला को देखकर चकोर आनन्दोन्मत्त हो जाता है। सौन्दर्य सुषमा का प्रभाव बड़ा तीव्र होता है, इसका प्रभाव पाषाण को नव-नीत के समान कोमल बना देता है। कठोर हृदय भी सौन्दर्य से प्रभावित होकर द्रवणता का अनुभव करता है। जीवन में माधुर्य और सरसता आजाती है। सौन्दर्यानुभूति से पूर्ण मानव के लिये ससार सुखमय हो जाता है, प्रसाद जी ने सौन्दर्य को अमित प्रभाव से पूर्ण माना है:—

है यही सौन्दर्य में सुषमा बड़ी।
लौह हिय को आँच इसकी ही कड़ी॥
देखने के साथ ही सुन्दर वदन।
दीख पड़ता है सजा सुखमय सदन॥ कानन कुसुम पृष्ठ ३६।

सौन्दर्योपासक प्रसाद ने कवि परम्परागत उपमानों का उपयोग बहुत ही कम किया है। इनके काव्य में वर्णित उपमान प्रकृति के प्रति इनका उल्लास और सूक्ष्म निरीक्षण प्रकट करते हैं। जहाँ इन्होंने मानव के बाह्य-सौन्दर्य का

प्रकृति के मूर्त आधार द्वारा सादृश्य व्यक्त किया है वहाँ ही इन्होंने कवि क्रमागत-उपमानों का प्रयोग किया है।

नील नलिन से नेत्र चपल मद से भरे,
अरुण राग रंजित कोमल हिम खंड से,
सुन्दर गोल कपोल ....। झरना पृष्ठ ९६।

नलिन उपमान तो आदिकाल से ही नेत्रों के लिये प्रयुक्त होता आया है, हिमखंड भी कवि का अपना नहीं है, रीतिकाल में कविवर देव—

"गोरो गोरो मुख आजु ओरो सो बिलान्यो जात" आदि शब्दों में नारी के सौकुमार्य और वर्ण का वर्णन कर चुके हैं, किन्तु प्रसाद जी ने केवल वर्ण को ही सौन्दर्य प्रधानता नहीं दी है, स्वस्थता को भी सुन्दरता का विशेष अंग माना है और अरुण रागरंजित द्वारा स्वस्थ कपोलों का वर्णन किया है।

मानव सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिये इन्होंने प्रकृति की किसी एक वस्तु को लेकर उपमान रूप में नहीं रख दिया है, यह प्रकृति के वैभव पर मुग्ध हुए हैं प्रातः संध्या और रात्रि के प्राकृतिक दृश्यों का तन्मय होकर निरीक्षण किया है और उसका मानव सौन्दर्य में साम्य देकर उल्लेख कर दिया है। मानव के प्रत्येक अवयव और हाव-भाव पर मुग्ध होकर कवि प्रकृति के क्षेत्र से सुन्दर दृश्यों का चयन करके साम्य स्थापित कर देता है। प्रकृति के अक्षय भंडार से एक से एक अनुपम रत्न निकालकर कुशल-कलाकार प्रसाद मानव सौन्दर्य पर न्यौछावर कर देते हैं। श्रद्धा के सौन्दर्य वर्णन में ही उन्होंने प्रकृति के वैभव के अनेक संश्लिष्ट चित्रण और नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। श्रद्धा के स्थूल सौन्दर्य का वर्णन देखिये:—

घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास
नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास। कामायनी पृ० ४३।

परम्परा-भुक्त उपमान घन और इन्दु को लेकर कवि ने यहाँ अपनी कल्पना द्वारा वर्णन में चित्र-मयता उत्पन्न करदी है। घन-

शावक द्वारा वर्णन में कोमलता और कवि की सौन्दर्यानुभूति का परिचय मिलता है कवि श्रद्धा के माधुर्य पर मुग्ध हो जाता है। उसकी मुस्कान की मधुरिमा का चित्रण देखिए—

> और उस मुख पर वह मुसक्यान
> रक्त किसलय पर ले विश्राम।
> अरुण की एक किरण अम्लान
> अधिक अलसाई हो अभिराम॥
>
> कामायनी पृ० ४३।

श्रद्धा के लाल अधरों पर क्रीड़ा करती हुई—मधुर और शान्त मुस्कान का कैसा आकर्षक चित्रण है, रक्त-किसलय में वर्ण और मृदुलता का सादृश्य व्यक्त किया है और अम्लान किरण तो श्रद्धा के माधुर्य, सौकुमार्य, निर्मल्य, गाम्भीर्य, और शालीनता की साकार मूर्ति ही बना देती है। कभी-कभी तो प्रसाद जी की सौन्दर्यानुभूति इतनी अधिक तीव्र हो जाती है कि सौन्दर्य की अनुपम छवि का वर्णन करना उनकी क्षमता के बाहर की बात हो जाती है। मानव के सुषमा-सागर में अवगाहन करते करते वह आनन्दोद्रेक से कहने लगते हैं:—

> धवल स्मित जैसे शरद घन बीच में,
> जो कि कौमुदी से रंजित है हो रहा।
> चपला सी है ग्रीवा हँसी से बढ़ी,
> रूप जलधि में लोल लहरियाँ उठ रही॥
>
> झरना पृ० ६।

मानव के रूप-सागर की चपल लहरों के साथ कवि का हृदय तरंगित हो उठता है इसी प्रकार के सौन्दर्य के प्रभाव से आनन्दित हो सूरदास ने अपने प्रियतम सखा कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन किया था:—

> देखो माई! सुन्दरता को सागर।

मानव जीवन का निर्माण नभ, अनिल, अनल, क्षिति और नीर पंच तत्वों के सम्मिश्रण से हुआ है, झंझा का प्रवाह भी इन पंच-तत्वों को उद्वेलित कर देता है। इसी आधार को लेकर वह मानव जीवन की उद्विग्नता का समीर से सहज साम्य प्रदर्शित करते हैं:—

झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महा समीर।
ले साथ विकल परमाणु पुंज, नभ, अनिल, क्षिति और नीर॥

कामायनी पृ० १२८।

पचभूतों से निर्मित मानव शरीर के अन्तर की अमूर्त-उद्विग्नता का प्रकृति के झंझावात से पूर्ण सामंजस्य प्रकट कर दिया है। मूर्त-सौन्दर्य का अमूर्त उपमान द्वारा भी इन्होंने लाक्षणिक-रूप में वर्णन किया है "बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल" में तर्क-जाल का प्रयोग लाक्षणिक है। मूर्त कुटिल अलकों का तर्क से सादृश्य व्यक्त किया है, प्रभाव में भी साम्य है जिस प्रकार सुन्दर अलकों के सौन्दर्य निरीक्षण में मानव उलझ जाता है उसी प्रकार तर्क में भी मनुष्य व्यस्त हो जाता है।

आध्यात्मिक पक्ष में भी इन्होंने हृदय की अमूर्त वेदना की व्यंजना प्रकृति से आधार लेकर की है। प्रियतम की स्मृति जब हृदय में बस जाती है तब नेत्र बरसकर हृदय को सान्त्वना प्रदान करते हैं। इसका साम्य भी वह प्रकृति के क्षेत्र से ही व्यक्त करते हैं:—

जब तुम सदय नवल नीरद से
मन पट पर छा जाते हो।
पीड़ास्थल पर शीतल बनकर
तब आँसू बरसाते हो॥ कानन कुसुम पृ० १६।

अपने अज्ञात प्रियतम के अपूर्व-रूप-माधुर्य पर तो वह इतने अधिक मुग्ध होते हैं कि उन्हे समस्त-सृष्टि का वैभव उसकी सुषमा का एक क्षुद्र अंश प्रतीत होता है। पूर्णेन्दु उसके रूपालोक का एक बिन्दु मात्र है, और ऊषःकाल का विकसित वन-वैभव भी उपहास के योग्य है। प्रतीप अलंकार द्वारा सौन्दर्यशाली प्रियतम की छटा का चित्रण देखिए:—

विकसित सरसिज वन वैभव
मधु ऊषा के अंचल में
उपहास करावे अपना
जो हँसी देखले पल में॥ आँसू पृ० २३।

रूपक अलंकार में भी इन्होंने प्रकृति का राशिभूत उपयोग किया है। एक ही चित्र में वह रूप, गुण, व्यापार और प्रभाव सब में एक साथ साम्य प्रकट कर देते हैं:—

तुम फूल उठोगी लतिका सी
कंपित कर सौरभ तरंग।
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा
बन-बन बन कस्तूरी कुरंग॥
कामायनी पृ० १५६।

श्रद्धा की प्रफुल्लता के प्रति, मनु के आकर्षण और उसकी उद्विग्नता का प्रकृति से उपमान लेकर नाट्यात्मक चित्रण कर दिया है और एक चित्र उपस्थित कर दिया है।

रूपक और उपमा की व्यंजना द्वारा अमूर्त अन्तःकरण का मूर्त मनोहर नीड़ मे सांगोपांग सादृश्य प्रकट करते हुए कवि अन्तर्बाह्य को किस प्रकार एक-रूप कर देते हैं:—

मनोवृत्तियाँ खगकुल सी थीं सो रही,
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में,
नील गगन सा शान्त हृदय भी हो रहा,
वाह्य आंतरिक प्रकृति सभी सोती रही॥कानन कुसुमपृ० १२।

प्रसाद जी के काव्य में उपमा और रूपक अलंकार राशि राशि मिलेंगे। इनके अलंकारों मे प्राकृतिक उपमानों और दृश्यों का सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन है, प्रकृति के समस्त चित्र रूपक-मय हैं, और एक नाटक के से पात्र प्रतीत होते हैं। प्रकृति का क्षेत्र एक रग मंच है जहाँ अनेक प्राकृतिक पात्र अपनी रूप छटा और भाव-भंगिमा से पाठक का मुग्ध कर जाते हैं, उत्प्रेक्षा-लंकार के प्रयोग बहुत कम हैं उत्प्रेक्षालंकार में इन्होंने स्थूल-वस्तु का ही वर्णन किया है और प्रचलित उपमानों का प्रयोग किया है:—

गुथीं बिजुलियाँ दो मानों रण व्योम में
वर्षा होने लगी रक्त के बिन्दु की॥
महाराणा का महत्व।

दोनों योद्धाओं की तलवारों में दो बिजलियों की संभावना करके रक्त वर्षा का वर्णन कर दिया है।

प्रसाद जी के लिये प्रकृति स्वर्गीया है उसकी गौरव-गरिमा की तुलना मे मानव अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होता है:—

प्रकृति है सुन्दर, परम उदार।
नर हृदय परिमित पूरित स्वार्थ॥ झरना पृ० २३।

प्रकृति मे अनन्त सौन्दर्य व्याप्त है, उस सौन्दर्य के दर्शन के लिये मनुष्य को अपने हृदय को शान्त और निर्मल बनाना चाहिए, कलुषित हृदय उसके अतुल सौन्दर्य का निरीक्षण नहीं कर सकता। वह पग-पग पर मनुष्य को उन्नति और ह्रास के दृष्टान्त देती है, मानव को गिरकर उठने की प्रेरणा करती है। प्रकृति का एक एक कण अभिराम है और उससे उन्नति-पथ पर अग्रसर होने का आदेश प्राप्त होता है। दलित-कुसुम अभिमान के भयकर परिणाम का दृष्टान्त देता है। कवि को प्रफुल्लित पुष्प के विनाश को देखकर जीवन की क्षणभंगुरता का ध्यान आता है, जीवन के प्रति विकर्षण होता है और नैराश्य-पूर्ण शब्दों मे कहते है :—

> जब पल भर का है मिलन',
> फिर चिर वियोग मे झिलना,
> एक ही प्रात है खिलना,
> फिर सूख धूल मे मिलना,
> तब क्यों चटकीला सुमन रंग ॥

यही निराशा कविको संसार के भोग-विलास से विकर्षित कर परमतत्व के महामिलन की ओर उन्मुख करती है। ससार की प्रत्येक मृदुल-मंजुल-स्निग्ध वस्तु का क्षणिक जीवन इन्हें विरक्त कर देता है और अज्ञात प्रियतम के अन्वेषण के लिये इन्हें प्रेरित करता है।

प्रसादजी के काव्य में शान्त और करुण रस की प्रधानता है। इन्होंने प्रकृति को मानव से अधिक श्रेष्ठ माना है और मानव और प्रकृति के बीच में विभाजन रेखा खींच दी है। मानव किसी भाँति भी प्रकृति देवी के भवन में पदार्पण करने का साहस नहीं कर पाता। वह केवल दूर से उसकी झाँकी देख सकता है, इनकी प्रकृति तुलसी के राम की भाँति उपास्या है, अन्तरतम की मित्र नहीं।

प्रकृति-प्रेम के अतिरिक्त इन्होंने अपने देश-प्रेम का भी परिचय दिया है इनके हृदय में देश के प्रति अतुल अनुराग है, देश की शस्य-श्यामला हरी-भरी भूमि पर यह मुग्ध हो जाते है और गेय पदों मे इसकी सौन्दर्य-सुषमा का बखान करते हैं। इनके देश की सौन्दर्य-विभा पर स्वयं प्रकृति भी अपना तन-मन न्यौछावर कर देती है और मुग्ध होकर नाचने लगती है। प्रसाद भी प्रफुल्लित होकर अपने देश की प्रशंसा करते है:—

अरुण यह मधुमय देश हमारा

सरस तामरस गर्भ-विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर,

छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुमकुम तारा ॥

कवि अपने देश के प्रति इतना अधिक आकर्षित होता है कि उसे अपना देश ही सर्व-प्रिय प्रतीत होता है, वह अपने देश पर सर्वस्व न्योछावर कर देता है और यही कामना करता है:—

जियें तो सदा इसी के लिये

यही अभिमान रहे यह हर्ष ।

निछावर करदें हम सर्वस्व,

हमारा प्यारा भारत वर्ष ।

सुमित्रानन्दन पंत

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत, अल्मोड़े में प्रकृति की गोद में पले हैं। कवि पंत ने घंटों अलमोड़े की पर्वत-शिला पर बैठकर प्रकृति का निरीक्षण किया है और वहाँ के सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राकृतिक उपकरण और व्यापार इनके अनुराग का विषय हो गये हैं। प्रकृति से निकटतम-सम्बन्ध होने के कारण यह प्रकृति के उपासक नहीं रहे वरन् अनन्य मित्र बन गये हैं। इन्होंने अपने प्राणों की आकुलता से समस्त पर्वत-स्थली और वनभूमि को मधुर गुंजन से मुखरित कर दिया है। इन्होंने कभी प्रकृति को त्रस्त, कभी संतप्त, कभी प्रफुल्लित और कभी उल्लास एवं अनुराग से पूर्ण देखा है, उसमें प्रतिस्पन्दन प्राप्त किया है। पंत के प्रकृति-वर्णन में मानव और प्रकृति का एकात्म्य हो जाता है, सचरा-चर-प्रकृति मानव के साथ मिलकर एक-रूप हो जाती है: मधुकरी का मधुर राग उन्हें मुग्ध करता है और वह प्रार्थना करते हैं :—

> सिखा दो ना हे मधुप कुमारि।
> मुझे भी अपने मीठे गान ॥
>
> पल्लविनी पृ० १६०।

पंत जी प्रकृति के वैभव के प्रति आकर्षित होते हैं, उसमें मधुरता और सरलता पाकर मुग्ध होते हैं। प्रकृति का-क्षेत्र इनके लिये मधुर स्वर्ग है जहाँ जीवन की समस्त बाधायें दूर हो जाती हैं वह सर्वत्र प्रकृति के भेद-भरे संदेश सुनते हैं।

प्रकृति के अनन्य मित्र पंत की आरभिक रचना 'वीणा' में हमें कवि का प्रकृति-प्रेम स्पष्टतः लक्षित होता है, किन्तु मानव के प्रति भी हम उपेक्षा भाव नहीं पाते। प्रकृति और मानव दोनों ही इनके काव्य के विषय हैं। मानव सौन्दर्य पर मुग्ध होकर भी वह अपने मन को प्रकृति से तटस्थ नहीं रख पाते :—

> उसे कुसुम सा गूंथ न ले अलि,
> कुटिल कुंतलों में काले,
> मेघों से भी है अनुराग।
>
> वीणा पृ० १५।

अपने मन को वह मानव-सौन्दर्य की संकुचित सीमा में ही आबद्ध नहीं करना चाहते, उनका अनुराग मेघों से भी है। उपमेय कुतलों के साथ उपमान भी उनके अनुराग के प्रसाधन हैं। इस पुस्तक में हम कवि के उद्गारों में शिशु का सा भोलापन और सहज-स्नेह देखते हैं, प्रकृति के प्रत्येक व्यापार के प्रति उनके मन में आश्चर्य का प्रादुर्भाव होता है, वह प्रकृति की छटा का निरीक्षण एक शांत बालक की भाँति करते हैं, उषः काल उनके हृदय में उत्साह भर देता है, शीतल-मर्मर, ओस-बिन्दु और प्राची की सुवर्ण-छवि का वह अवलोकन करता है। यकायक बाल-विहंगिनी का स्वर्गिक गान और तरुवासिनी-कोकिल की कूक उसकी नीरवता को भंग करती है, वह आश्चर्य चकित हो जाता है और प्रश्न करता है:—

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!

तूने कैसे पहिचाना?

× × ×

किसने तुझको अन्तर्यामिनि!

बतलाया उसका आना?

वीणा पृ० ७८।

प्रकृति को इस भाँति आकर्षण और स्नेह सूत्र में ग्रथित देखकर वह भी एक प्रेयसी की कल्पना करते हैं और उस कल्पित-सुन्दरी की वियोग-गाथा की गुत्थियों को 'ग्रन्थि' में जोड़ देते हैं। ग्रन्थि इनका विरह काव्य है, जिसमें इन्होंने अपने नैराश्यपूर्ण भावों का दिग्दर्शन किया है पल्लव, गुंजन, और युगांत में कवि का भावुक हृदय शिशु-सुलभ सरलता से दूर हो जाता है, इन ग्रन्थों में क्रमशः कवि की मादकता और तदनन्तर प्रौढ़ता प्रदर्शित होती है, कवि का प्रकृति प्रेम अधिकाधिक गंभीर होता जाता है और वह प्रकृति में उपदेश, महान् संदेश तथा अज्ञात प्रियतम का प्रतिबिम्ब देखते हैं।

वीणा के बाल सुलभ कौतूहल के शमन के पश्चात् पंत का प्रकृति प्रेम अनेक धाराओं में प्रवाहित हो जाता है कहीं तो वह प्रकृति का सहज और स्वाभाविक चित्रण करते हैं:—

वह विजन चाँदनी की घाटी

छाई मृदु वन तरु गंध जहाँ,

नीबू आड़ू के मुकुलों के
मद से मलयानिल लदा जहाँ।

पल्लविनी पृ० १८२।

× ×

बाँसों का झुरमुट
संध्या का झुट-पुट
है चहक रही चिड़ियाँ
टी-वी - टी - टुट - टुट

युगान्त पृ० १६।

प्रथम अवतरण में कवि ने विजन घाटी का निजी-निरीक्षण के आधार पर यथा-तथ्य चित्रण किया है, कवि ने तटस्थ रहने की चेष्टा की है। किन्तु 'मृदु वन' और 'मद से लदे मलयानिल' में उनकी अन्तर्निहित प्रकृति प्रेम की भावना प्रकट हो ही जाती है दूसरे अवतरण में चिड़ियों की ध्वनि का ज्यों का त्यों अनुकरण है पंत जी ने केवल प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य का ही निरीक्षण नहीं किया है वरन् श्रवणेन्द्रियों ने भी प्रकृति के प्रति प्रेम में पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। उपर्युक्त चित्रण कवि की व्यक्तिगत भावनाओं से पूर्ण रूपेण मुक्त है।

प्रकृति के सौन्दर्य का निरंतर अवलोकन करने के पश्चात् उनकी सौन्दर्यानुभूति आकुल होकर शब्दों में प्रस्फुटित हो जाती है। मधु-मास का प्रभात कवि को आनंद-विभोर कर देता है :—

लो जग की डाली डाली पर
जागी नव जीवन की कलियाँ
मिट्टी ने जड़ निद्रा तज कर
खोली स्वप्निल पलकावलियाँ

पल्लविनी पृ० १८२।

सौन्दर्यानुभूति की तीव्रता में प्रकृति सजीव हो जाती है कवि को ऐसा प्रतीत होता है कि जड़ मिट्टी भी सचेतन होगई है। उसने अपने नेत्र खोल दिये हैं और समस्त वसुधा उसकी सुषमा से पूर्ण होगई है। मधु मास में पुष्प-समूह से आवृत घाटी की छवि कवि के प्राणों को स्पंदित कर देती है। अल्मोड़े की घाटी में कवि चतुर्दिक दृष्टि प्रसार करता है, मुकुलित दिशा और हरीतिमा से व्याप्त स्थल को देखकर वह आह्लादित होता है। जहाँ तक उसकी दृष्टि

जाती है सर्वत्र उसे पुष्पावलियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं। जहाँ आनन्दविभोर अवस्था में वह विवेक-शून्य-सा हो जाता है, उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो घाटी उड़ी जा रही है, यह कल्पना उसको अधीर कर देती है और वह चंचल होकर कह उठता है:—

लो चित्र शलभ सी, पंख खोल
उड़ने को है कुसुमित घाटी। पल्लविनी।

कवि पंत ने सर्वत्र प्रकृति के सुन्दर और मनोरम उपकरणों के प्रति अपना उत्साह प्रकट किया है, कभी वह तितली के विविध रंगों पर मुग्ध होते हैं, कभी जुगनू और सुभग-विहग-पुंज से बात करते हैं और कभी छाया, चन्द्रिका, संध्या, निर्झरी वायु और बादल के साथ एकात्म्य स्थापित करते हैं। प्रकृति के उग्र और रुद्र रूप के चित्रण यत्र-तत्र एक दो ही मिलते हैं, शुभ्र और धवल मेघों के रुद्र-रूप का चित्रण देखिये:—

विलोड़ित सघन गगन में आज
विचर रहा है दुर्बल घन भी
धर कर भीमाकार
बना है कहीं क्रुद्ध गजराज। वीणा पृष्ठ ४६।

पंत जी के अधिकांश प्रकृति-चित्रण नाट्यात्मक और रूपक-मय हैं। प्रकृति के अंग बादल, खद्योत, निर्झर आदि एक नाटक के पात्र की भाँति स्वयं अपना परिचय दे जाते हैं, बादल का परिचय देखिये:—

कभी चौकड़ी भरते मृग से
भू पर चरण नहीं धरते
मत्त मतंगज कभी झूमते
सजग शशक नभ को चरते। पल्लव पृष्ठ ६३।

इस प्रकार के चित्रण द्वारा कवि ने प्रकृति के चित्र को सरस और सजीव बना दिया है। वर्णन नाट्यात्मक होकर भी सरल और स्वाभाविक है। जल रिक्त मेघ अत्यन्त शीघ्रगामी होते हैं और एक क्षण में ही कभी यहाँ और कभी वहाँ दिखाई देने लगते हैं, हरिणों की चौकड़ी भरने में शीघ्र-गति का सादृश्य प्रकट होता है। जलद श्यामवर्ण होते हैं और भारी होने के कारण धीरे धीरे मद-मत्त हाथी की भाँति झूमते हुए आगे बढ़ते हैं, कभी-कभी श्वेत वर्ण बादल देर तक एक ही स्थान पर स्थिर से दिखाई देते हैं, उस समय वह

शशक की भाँति चलते हुए दिखाई देते हैं। कवि ने चित्रण को रूपक मय बनाकर भी वास्तविकता का अतिक्रमण नहीं किया है, उसने स्वय बादलो की मंद मथर और शीघ्र-गति का अनुभव किया है और उसका चित्रांकन कर दिया है।

इनके प्रकृति-चित्रण मे वस्तु-परिगणन की शैली कहीं नहीं लक्षित होती। साधारण से साधारण दृश्य के अकन में भी कवि की भावुकता और संश्लिष्टता स्पष्ट है। कवि पंत की कल्पना शक्ति भी अनुपम है। कल्पना का पुट केवल अमूर्त-विधान में है। इन्होंने अपनी कल्पना को भी साकार-रूप प्रदान किया है और अपनी भावुकता की समन्विति से उसको सरस और हृदय-ग्राहिणी बना दिया है "सध्या तारा" में प्रकृति की नीरवता को ध्यान में रखते हुए कवि देखता है कि गंगा के चल-जल मे किरणों की स्वर्ण आभा अन्तर्हित होगई है और अब जल नीला होगया है, कवि की कल्पना इस परिवर्तन को सजीव रूप प्रदान करती है।

लहरों पर स्वर्ण रेख पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर॥

अतिशय भय और शीत में अधर नील-वर्ण हो जाते हैं, इस सत्य की कवि ने प्रकृति मे सुन्दर व्यजना की है। इस प्रकार के भावारोप में कवि का प्रकृति के साथ अधिकाधिक तादात्म्य हो जाता है, वह प्रकृति के कम्पन, उसके उल्लास और भग्न-रूप में मिल जाता है। कवि और प्रकृति एक रूप हो जाते हैं, और कवि प्रकृति मे मानव-आकृति, मानव-क्रिया और मानव-भावों का आरोप करता हुआ एकात्म्य स्थापित करता है। 'संध्या' 'छाया' 'किरण' 'चांदनी' 'पवन' 'बादल' आदि प्रकृति के दृश्य-चित्र मानव-रूप धारण करते हैं। 'मधुकरी' 'तितली' 'विहग-कुमारी' 'कोकिल' आदि प्रकृति के सजीव-जीव तो सदा ही उसके भावुक हृदय में प्रतिस्पन्दन और स्फुरन का सचार करते हुए मानव की ही भाँति अपने उद्गार प्रकट करते हैं और कवि के ग्रहण करते हैं, किन्तु जड़ प्रकृति भी इनके लिये मृतक नहीं है, वह चेतन है और अपने सुन्दर रूप द्वारा वह कवि के हृदय को आकर्षित करती है। सध्या के स्वर्णिम रूप को देखकर वह परिचय पाने के लिये व्यग्र हो जाते हैं:—

कौन, तुम रूपसि कौन
ग्रीव तिर्यक, चपक द्युतिगात
नयन मुकुलित, नत मुख जल जात,

देह छवि छाया में दिन रात
कहाँ रहतीं तुम कौन। पल्लविनी ६५।

इसी भाँति 'नौका विहार' में गंगा की शान्त धारा में एक लेटी हुई शान्त क्लान्त-बाला का कैसा सुन्दर आरोप किया है—

सैकत-शैया पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है शान्त, क्लान्त, निश्चल,
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलाम्बर। गुंजन पृ० १०१।

प्रकृति मानव-रूप धारण करती है और मानव की ही भाँति सुन्दर वस्त्राभूषणों से अपने शरीर को सज्जित करती है, और शीतोष्णता का अनुभव करती है। गंगा ग्रीष्म की उष्णता के कारण तन्वंगी हो जाती है और क्लान्ति का अनुभव करती हुई सैकत शैया पर विश्राम करती है। मानवीकरण की स्थापना करके ही कवि छाया का अवगुंठन हटाने के लिये व्यग्र हो जाते हैं संध्या को चुप-चाप व्योम से उतरते हुए देखते हैं और चन्द्रिका को मृदु कर तल पर शशि-मुख रखे हुए, नारी की कल्पना करते हैं।

'अनंत' कविता में वह प्रकृति में मादकता और वासनाजन्य भावों का अवलोकन करते हैं। नव वसन्त के स्पर्श करते ही चिर यौवन से विकसित वसुधा पुलकित होती है कलिका के हृदय से उद्गार फूट पड़ते हैं और प्रकृति पारस्परिक आकर्षण के वश आलिंगन तथा चुम्बन में व्यस्त हो जाती है,

अगनित बाहें बढ़ा उदधि ने
इन्दु करों से आलिंगन
बदले, विपुल चटुल लहरों ने
तारों से फेनिल चुम्बन॥

जड़ प्रकृति को भी वह मानव की ही भाँति, काम की व्यग्रता से अभिभूत देखते हैं, 'हिलोरों के गीत' में मधुर-मारुत की ध्वनि को सुनने के पश्चात् हिलोरों में भी हम वैसी ही विह्वलता और व्यग्रता का अनुभव करते हैं। जैसा श्रीमद्भागवत अथवा 'सूरसागर' में कृष्ण की मुरली माधुरी पर मुग्ध गोपबालाओं के विषय में वर्णन किया गया है। हिलोरें कहती हैं:—

सुन मदन मधुर मुरली की ध्वनि
यह पुलिन नाथ सुख से विह्वल

हम हुलस नृत्य करतीं हिल-मिल
खस-खस पड़ता उर से अंचल ॥

इसमें शृंगारिक भावनायें भीतर से झाँकती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। ज्योत्स्ना नाटक में भी चाँदनी आदि पात्र सजीव होगये हैं।

मानव रूप और क्रिया के आरोपण के अनन्तर कवि प्रकृति में द्रवण-शीलता, मृदुलता कोमलता और भावुकता के दर्शन करते हैं। प्रकृति मानव के साथ हँसती, रोती, सन्देश देती और उत्साहित करती है। प्रकृति माँ के समान ममतामयी और सखी के समान स्नेह-शीला है। पंत जी ने प्रकृति में माँ के असीम प्रेम, सहचरी की मधुर-कामना और गुरु के उपदेश का अनुभव किया है। मित्र को त्रस्त और दुखी देखकर मानव के साथ भी दुःख का अनुभव करती है उसे व्यग्रता के कारण नींद नहीं आती। नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होते हैं, चन्द्रिका को कवि पंत विश्व के साथ जागते और आँसू बहाते देखते हैं:—

जग के दुख दैन्य शयन पर
यह रुग्णा जीवन बाला
रे कब से जाग रही वह
आँसू की नीरव माला। चाँदनी पल्लविनी।

चाँदनी मानव के दुःख-दैन्य से दुःखी होती है। प्रकृति मानव के साथ सदा रोकर ही नहीं रह जाती, वह स्नेहमयी जननी की भाँति मानव के शीश पर अपने कर को फिराती हुई जीता-जागता उदाहरण देकर उसे सदा प्रफुल्लित रहने का आदेश करती है वह अपने अनन्त उल्लास और शाश्वत सुख की ओर वह सकेत करती है:—

रवि, शशि, ग्रह चिर हर्षित
जल, स्थल, दिशि, समुल्लसित,
निखिल कुसुम कलि सस्मित,
मुद्रित सकल हों मानव। पृ० २२६।

कवि अपनी शिशु-भावना में ही भौरों से भेद भरे संदेह पाता और पत्रों के गूढ़-सन्देशों में कुछ अस्फुट-बात सुनता है। प्रकृति से अधिक परिचित होने पर वह कोकिल से सनातन सन्देश सुनता है, उज्ज्वल-तन और उज्ज्वल-मन वाली टल्-टल्, छल्-छल् करती हुई सरिता मानव को अन्तर्बाह्य से एक रूप होने का आदेश करती है और अपने ऊंचे-नीचे पथ पर अविरल प्रवाह

द्वारा सत्य और सरल स्नेह की प्रेरणा करती है। कलिका शुष्क-वृन्त पर मुरझाती और खिलती है, वह मानव को निराशावादी देखना नहीं चाहती, और उसको उपदेश देती है कि दुःख को भी हँस कर सहन करना चाहिये। मानव प्रयास करके भी प्रकृति के इस आदेश के प्रतिपालन में सफल नहीं हो पाता, वह अत्यन्त विवश भाव से कहता है:—

वन की सूखी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुःख को अपनाना। गुंजन पृ० २२।

ओस विन्दु गा-गा कर मानव को जीवन की क्षण-भगुरता का दिग्दर्शन कराते हैं "जीवन हिम जल लघु पल" प्रकृति को सेवा रत और आत्म-बलिदान करते देखकर मानव हृदय मे बल का संचार होता है। छाया-पथिकों की श्रांति का हरण करती है और कुसुम अपनी प्रफुल्लता फलों को समर्पित कर देते हैं, कवि विस्मित हो जाता है। आश्चर्य चकित हो उसके मुख से यह शब्द निकलते हैं,"महत है, अरे, आत्म-बलिदान"।

हँस-मुख-प्रसून अपनी सुरभि को विकीर्ण करके दान शीलता का पाठ पढाते हैं, लहरें कवि के जीवन में उत्साह भर देती हैं, वे बार-बार उठ-उठ कर मानव को जीवन-पथ में अग्रसर होने के लिये उत्साहित करती हैं।

इस भाँति प्रकृति से ममत्व,स्नेह, उत्साह और उपदेश पाकर मानव और प्रकृति का सम्बन्ध दृढतर होता जाता है। मानव भी प्रकृति को हर्षित देख कर हंस पड़ता और दुःखित देखकर द्रवित होकर आँसू बहाने लगता है। मधुमास की मधुरिमा से पूर्ण प्रातःकाल उसे प्रमुदित कर देता है, कुसुम में सुषमा-सुविकास की छवि पर कवि का हृदय आप्लावित हो जाता है, विहग-बाला के स्वर मे वह अपना स्वर मिला देता है और कोकिल की कलित-कूजन पर उसके कान मुग्ध हो जाते हैं:—

कूकी थी कोकिल, हिले मुकुल,
भर गये गन्ध से मुग्ध प्राण॥ पल्लविनी पृष्ठ १७०।

मानव और प्रकृति का उल्लास की अवस्था में एकात्म्य हो जाता है मानव प्रकृति को उल्लसित देखकर अपनो अन्तर्वेदना को भूल कर प्रकृति के गान

में अपना अस्फुट-राग मिला देता है। मानव और प्रकृति एक रूप हो जाते हैं।

कवि पंत ने एक सच्चे और सहृदय मित्र की भाँति प्रकृति की पीड़ा का अनुभव किया है। कुसुम के क्षणिक वैभव के बिखर जाने पर उनके हृदय में वेदना होती है; उसकी अस्थिर-प्रफुल्लता उन्हें द्रवित कर देती है। पीले पत्ते वियोग-दुःख प्रकट करते हैं, मानव उनकी नीरव व्यथा को सुन लेता है और द्रवित होकर हृदय से लगा लेता है। प्रेम की वेदी पर सर्वस्व निछावर करने वाले दग्ध-शलभों को देखकर तो मानव हृदय इतना अधिक करुणार्द्र होता है कि हृदय की आकुलता आँसुओं में बह निकलती है:—

दग्ध शलभों की विनीरव वेदना
धो चुकी हूँ आँसुओं की बाढ़ से ॥ ग्रन्थि पृ० २१।

मानव के हृदय की अवस्था के अनुसार भी इन्होंने प्रकृति के सुखद और दुःखद रूप का विवेचन किया है। प्रकृति इनके मनःस्थित भावों को उद्दीप्त करने का माध्यम हो जाती है। प्रकृति का मधुर-रूप इनके हृदय को प्रफुल्लित करता हुआ इनके सहवास सुख को बढ़ाता है। मानव की सुप्त भावनायें जाग्रत हो जाती हैं। मधु-वन का सुरभि पूर्ण वातावरण उसे उन्मत्त बना देता है—

डोलने लगी मधुर मधु वात
हिला तृण व्रतति कुंज तरु पात
डोलने लगी प्रिये! मृदु वात,
गुंज मधु गंध धूलि हिम गात। पल्लविनी पृ० १७५

प्रकृति के अनुकूल वातावरण में उसे अपनी प्रेमिका के प्रति अधिकाधिक अनुरक्ति होती है और प्रेमातिरेक में उसे प्रिया की ही छबि प्रकृति में दृष्टि-गोचर होती है।

प्रतिकूल परिस्थिति में भी पंत ने रीति-परम्परानुसार सुखद वस्तुओं में वैषम्य दिखाकर इति-श्री नहीं करदी है अपितु मनोवैज्ञानिक-रूप में उन्होंने स्पष्ट किया है कि विषम-परिस्थिति में मानव प्रकृति के प्रति विराग का अनुभव करता है, उसे प्रकृति के मधुर-रूप के प्रति आकर्षण नहीं होता, पुष्पों का मृदुल-हास उसमें उत्साह का संचार नहीं करता, कोकिल की-कलित-काकली आकर्षित नहीं करती, और मधु मदिर-समीर प्रफुल्लित नहीं करता। प्रिय का वियोग, जीवन का विषाद, उसकी समस्त रम्यता का अपहरण कर

लेता है। कोकिल वियोग-दग्धहृदय में वेदना को तीव्र करती है और वसन्त उत्तप्त करता है :—

> काली कोकिल सुलगा उर में
> स्वरमयी वेदना का अंगार
> आया वसन्त, घोषित दिगन्त।
> करती, भर पावक की पुकार॥ युगांत पृ० ८।

वियोग-व्यथा को उद्दीप्त करने वाली वर्षा-ऋतु का भी इन्होंने वर्णन किया है। इनकी वियोगिनी प्रेमिका चातक और मयूर की ध्वनि को सुनकर 'देव' की नायिका की भाँति आँसू नहीं टपकाने लगती।

> "बिन प्राण प्यारे प्राण न्यारे होते देव कहें
> नैन अँसुआन रहें अँसुआ टपकि टपकि"

वरन अपनी व्यथा को इस प्रकार व्यक्त करती है कि वह मानव हृदय को स्पर्श करती हुई एक कसक उत्पन्न कर देती है। केकी को नृत्य करते देखकर वियोगिनी कराह सी उठती है:—

> जिसे देख वह नाच रही थी,
> मैं वह सब थी समझ गई।
> अह! वह वर्षा ऋतु! वे वारिद! वह मेरा
> अविरल दृग जल॥ वीणा पृष्ठ ५७।

विरहिणी वर्षा-ऋतु में केकी की प्रसन्नता का अनुभव करती है और अपनी मनोदशा को अव्यवस्थित जानकर दुःखी होती है, उसे पीड़ा होती है कि वर्षा के आगमन पर जब प्रकृति में उल्लास छाया हुआ है तब भी उसके नेत्रों से अविरल अश्रु-वर्षा होती है। उसके अतिरिक्त हृदय की भावुकता के समन्वय में प्रकृति के साथ सानुकूलता और वैपरीत्य का दिग्दर्शन कराया है। छाया को वृक्ष से विलग देखकर मानव के हृदय में उसकी पीड़ा का अनुभव होता है, वह अपने हृदय को टटोलकर देखता है तो उसके हृदय में भी एक कसक सी प्रतीत होती है, उसके हृदय में समदुःखी के प्रति सहानुभूति होती है कह साम्य के कारण मानव और प्रकृति का एकात्म्य हो जाता है:—

> अहा! अभागिन हो तुम मुझसी
> सजनि ध्यान में अब आया।
> तुम इस तरुवर की छाया हो
> मैं उनके पद की छाया॥ पल्लविनी पृ० २५।

किन्तु साथ ही उसे दोनों के वैषम्य का भी ध्यान आता है। विजन-निशा में छाया तरुवर के गले से लग जाती है। किन्तु विरह ग्रस्त मानव को तो अहर्निशि रोना ही पड़ता है। उसमें ईर्ष्या के भाव जाग्रत होते हैं, किन्तु प्रेम की नैराश्य-पूर्ण अवस्था में उसका विक्षुब्ध मन संतोष-लाभ करता है, मानव की इच्छा होती है कि समस्त प्रकृति का अपने प्रियतम से मिलन हो जाए, प्रकृति और पुरुष एक रूप हो जाये। वियोग विदग्ध हृदय से प्रकृति के लिये एक प्रकार का स्वातिगान निकलता है:—

शैवालिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को,
चन्द्रिके ! चूमो तरंगों के अधर
उडुगणो ! गावो पवन वीणा बजा ॥ ग्रन्थि पृ० ३१ ।

वह देखता है कि प्रकृति में चतुर्दिक इसी प्रकार की विरह वेदना व्याप्त है। दो प्रेमियों के बीच में एक वियोग की खाई है। चकोर चन्द्र के लिये रोता है चातक आहत-कंठ से 'पिउ-पिउ' की रटन करता है, और भ्रमर कभी तो कमल-दल में मुंदकर और कभी कुसुम-कंटकों से बिंधकर तड़पता है, दुःख और वेदना का ही चारों ओर प्रसार है, प्रेम का मार्ग आहों के कुश कंटकों से पूर्ण है यह देखकर मानव को आत्म-सन्तुष्टि होती है और संसार का इसी प्रकार का नियम समझकर परितृप्त हो जाता है। संसार कष्टों का अथाह-सागर है-जीवन में रोना ही तो है:—

वह मधुप बिंधकर तड़पता है, यही
नियम है संसार का, रो हृदय, रो ॥ ग्रंथि पृ० ३२ ।

आत्म परितुष्टि की इस भावना के पश्चात् उसमें नैतिक बल का आविर्भाव होता है, वह समस्त संसार में सुख ही सुख देखना चाहता है, उसकी इच्छा होती है कि दुःख सुख मे परिणत हो जाये और पाप पुण्य हो जायें। विश्व में स्वर्गिक आनन्द छाजाये, इस अभिलाषा को भी प्रकृति के सम्मुख प्रकट करता है। अपनी किसी भी मनोगत-भावना को वह अपनी चिर सहचरी प्रकृति से छिपाना नहीं चाहता है, अंधकार से वह प्रार्थना करता है कि वह अपने काले पट में उसका (कवि का) समस्त मत्सर और मान लपेट ले, 'शुक्र' से विनम्र भाव से कहता है कि वह दिव्यदूत की भाँति अपना स्वर्गिक प्रकाश पृथ्वी तल में फैला दे, मेघ समूह से अत्यन्त ओजपूर्ण वाणी में कहता है :—

गरज, गगन के गान गरज गंभीर स्वरों में
भर अपना संदेश उरों में औ अधरों में,
बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर, सागर में
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षण भर में॥ पल्लविनी पृ० १२८।

प्रकृति का यही एकात्म्य उन्हें आध्यात्मिक-पक्ष की ओर उन्मुख करता है, वह प्रकृति के अन्तर में एक सजीवता का अनुभव करते हैं, वह देखते हैं कि प्रकृति के समस्त कार्य-नियम और संयम से आबद्ध हैं, समय पर वृक्षों मे पत्रों का पतन होता और नव-कोमल-किसलय से सज्जित होता है, चन्द्रिका क्लान्त और शान्त होकर प्रातःकाल गमन करती और निशीथ के आगमन पर पुनः नवीन उत्साह और उमंग से इठलाती आती है, इस प्रकार प्रकृति उन्हें चिर नवीन और चिर-कुमारी प्रतीत होती है। प्रकृति का चिर-कौमार्य कवि को प्रकृति को स्त्री रूप में देखने को बाध्य करता है, प्रकृति की सञ्चालिका शक्ति को भी उसने 'माँ' शब्द में सम्बोधित किया है। प्रकृति के चिर-कौमार्य और नित्य-नूतन-रूप को देख कर कवि के हृदय में अनेक नवीन भावों की उद्भावना होती है। अपनी शिशुभावना में ही कवि का सरल हृदय अनेक प्रश्नों से पूर्ण हो जाता है, वह सर्वत्र प्रकृति में आदान-प्रदान और मौन निमंत्रण का अनुभव करता है और उसके नियंत्रण तथा पारस्परिक-आकर्षण की पहेलिका को बुझाने की चेष्टा करता है, प्रथम-रश्मि के आते ही वह विहग-बाला के कलरव और प्रसूनों के मृदु-हास को देखकर विस्मित हो जाता है, कवि को प्रकृति के अन्तर में व्याप्त किसी चेतन-शक्ति का आभास प्राप्त होता है और वह प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व से उसके स्रष्टा अथवा स्वामी के विषय में प्रश्न करता है, अंधकार से पूछता है, "किसके पद की छाया हो तुम ?" किन्तु उसे उत्तर नहीं मिलता, कवि की उत्कंठा बढ़ती ही जाती है वह अधीर होकर कहता है:—

मैं चिर उत्कंठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन मुग्ध किसके बल ? । पल्लविनी, पृ० २।

उसकी जिज्ञासा का प्रकृति से उत्तर प्राप्त नहीं होता, समस्त प्रकृति उस अपरिमेय शक्ति से अनुप्राणित और मुग्ध है, उसके बल का वर्णन गूंगे के गुड़ की भाँति वाणी द्वारा अप्रकट है, प्रकृति अनुभव करके भी उसके स्वरूप और बल का शब्दों में वर्णन नहीं कर सकती। मानव उस

अनुपम शक्ति के सृजन और प्रलय के महत्कार्य को देखकर विस्मय विमोर हो जाता है और शिशु सरल-भाव से कहता है :—

मा ! यह तेरी न्यारी रीति
तेरी सुखमय सत्ता जग को
कहाँ नहीं जतलाती है ! वीणा पृष्ठ २६ ।

कवि का प्रेम विमुग्ध हृदय प्रकृति में निहित शक्ति में ममतामयी माँ का आरोप करता है, वह उसमें माँ की सी शुभकामना और पावन-प्रेम की कल्पना करता है। ऊषा की मृदु मुसकान, कुसुमों के अविरल-हास, रजनी की नीरव-निद्रा, पक्षियों के कल-गान और निर्झरिणी के कल-कल-निनाद सब में वह उसी कोमलता और पवित्रता का अनुभव करता है। कवि प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु में प्रवेश करता है और समस्त सृष्टि को एक ही सूत्र में गुम्फित पाता है सर्व व्याप्त सत्ता एक ही तो है:---

एक छवि के असंख्य उडुगन ।
एक ही सब में स्पन्दन ॥ पल्लविनी पृ० ७४ ।

सर्ववाद की इस भावना को विज्ञप्ति होने पर कवि का भावुक हृदय परम-सत्य के दर्शन के लिये विकल हो जाता है, वह उस दिन की प्रतीक्षा करता है जब वह ज्योतिर्मयी शक्ति साकार होकर अपनी प्रेम-वृष्टि करेगी, जब कवि उसके अभय पाणि पल्लव की छाया में विश्राम करेगा। समस्त विश्व में वह व्यग्रता का अनुभव करता है, उसकी दर्शनाभिलाषा बढ़ती ही जाती है। कवि का हृदय अत्यन्त विक्षुब्ध और निराश हो जाता है, वह उसके दर्शनों के लिये अनेक प्रयास करता है, संध्या के आलोक में प्रियतम की मुसकान का आभास पा कवि विहग-रव बन कर गुण-गान करता है। किन्तु कुछ समय के अनन्तर वही परिवर्तन.........निशीथ का अन्धकार ! कवि निराश-नयनों से देखता रह जाता है, उसके मन में विचार उठते हैं कि विश्वात्मा गुण-गान से अप्रसन्न हो जाता है। वसन्त की मनोरमता में वह विपरीत रूप धारण करता है और करील का वृक्ष बन दिनरात प्रियतम की प्रतीक्षा करता है, किन्तु निष्ठुर प्रियतम तब भी उसकी अवहेलना करके चले जाते हैं, कवि निराश होकर बैठ जाता है—अनुकूल अथवा प्रतिकूल किसी भी परिस्थिति में वह प्रियतम के दर्शन नहीं

कर पाता है अत्यन्त मनन और विचार के पश्चात् वह उस चिन्मय प्रकाश और अपने लघु अस्तित्व में महान् अन्तर देखता है। उसके हृदय में ज्ञान का उदय होता है और वह विनम्र भाव से उस विश्वात्मा की प्रार्थना करता है। ज्ञान का प्रकाश होते ही विश्वात्मा की मंमोहिनी छवि के दर्शन होते हैं। हृदय की नीरवता विलुप्त हो जाती है और आत्मा परमात्मा के रुचिर-मिलन पर प्रकृति भी मुग्ध होकर मंगल-गान करने लगती है, संसार सुखमय हो जाता है, कवि उस महामिलन का वर्णन करता है:—

कितने मधुर स्वरों में गाये
विहगों ने गुण गौरव गीत,
तब कैसा खिल गया अखिल जग
नवल कमल का सा आनन॥ वीणा पृष्ठ ६७।

कवि उस ज्योतिर्मान को आत्म समर्पण कर देता है, वह अभय वरदान माँगता है:—

तुहिन बिंदु बन कर सुंदर,
कुमुद किरण से सहज उतर,
माँ तेरे प्रिय पदमों में,
अर्पण जीवन को कर दूं
इस ऊषा की लाली में। वीणा पृ० ३।

कवि को प्रेम, श्रद्धा और आनन्द की अतिशयता में विश्वात्मा के साथ एकात्म्य हो जाता है, वह आत्मा-परमात्मा के एकात्म्य बोध की रसमयता से आप्लावित हो कह उठता है:—

एक हूँ मैं तुम से सब भाँति
जलद हूँ मैं यदि तुम हो स्वाति।

इस भाँति आत्मा और परमात्मा के महामिलन में इनके आध्यात्मिक-पक्ष का अन्त होता है।

अलंकार

प्रकृति को अलंकार में इन्होंने बहुत महत्व प्रदान किया है। सौन्दर्य की मनमोहकता का चेतन प्राणी और अचेतन प्रकृति पर कितना तीव्र और

गहरा प्रभाव होता है इसका उन्होंने स्वयं अनुभव किया है। सौन्दर्य का आकर्षण ही पृथ्वी और आकाश को क्षितिज में मिला देता है और लहरों का वैभव कलानाथ को खींच लाता है।

यह लघु लहरों का विलास है,
कलानाथ जिसमें खिंच आता। गुंजन पृ० ६६।

पंत ने इस सौंदर्याकर्षण का अनुभव किया है और 'नारी रूप' तथा 'भावी-पत्नी के प्रति' नामक कविताओं में मानव-सौन्दर्य का सुन्दर दिग्दर्शन किया है। मानव के विविध अंगों के सौन्दर्य की अभिव्यंजना के लिये इन्होंने प्रकृति को माध्यम बनाया है। प्रकृति के विभिन्न दृश्यों का अवलोकन कर उनका साम्य मानव शरीर में प्रकट किया है। यह मानव और प्रकृति दोनों में सुन्दरम् की खोज करते हुए सुन्दरता को ही सकल ऐश्वर्यों का साधन मानते हैं। सौन्दर्य के प्रति उनमें अत्यधिक अनुराग है, उस सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिये इन्होंने प्रकृति के क्षेत्र से अनेक नवीन उपमान ढूँढ़े हैं, मानव के बाह्य सौन्दर्य के चित्रण में इन्होंने परम्परागत उपमानों को भी अपनाया है, किन्तु उनके प्रयोग में अनूठी लाक्षणिकता का समन्वय कर एक प्रकार की नवीनता उत्पन्न करदी है। अन्योक्ति द्वारा नारी के नेत्रों का वर्णन देखिये :—

कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते,
चपल चोखी चोट कर अब पंख की,
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को, ग्रंथि पृ० १४।

इसमें कवि ने अनोखी लाक्षणिकता प्रकट की है, कवि ने ज्ञातयौवना नारी का चित्रण किया है, कुछ दिवस पूर्व यह सरला बाला यौवनागम से अनभिज्ञ थी, उसके नेत्रों में शिशु सुलभ सारल्य था। किन्तु अब वह कटाक्ष आदि से प्रेमी के हृदय को विकल करने लगी है। कवि ने अपने इसी आशय को खंजन की चोट और भ्रमर की विकलता द्वारा व्यक्त किया है, कमल मुख और खंजन नेत्रों के परम्परा-युक्त उपमान हैं। उपमान के लाक्षणिक प्रयोग में सबसे अधिक विशिष्टता यह है कि कवि ने चित्र-मयता की कला को भव्यता प्रदान की है, उपमान प्राचीन होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की लेखनी और चित्रकार की तूलिका साथ साथ चल रही है।

उपमा और रूपक पंत जी के प्रिय अलंकार हैं। प्रस्तुत अप्रस्तुत में स्थूल-रूप के साम्य में इन्होंने अलंकारों का प्रयोग बहुत कम किया है। अपने हृदय की भावुकता और मधुरता द्वारा प्रकृति के मूर्त-आकारों को कहीं तो अपूर्व रूप का उपमान माना है और कहीं मनोगत भावों को व्यक्त करने का अलंकृत उपकरण, प्रकृति में मानवी-करण की स्थापना करके वह 'चाँदनी' 'छाया' आदि कविताओं को उपमा, रूपक आदि अलंकारों से गुम्फित करते चले गये हैं, प्राकृतिक आधारों को प्रस्तुत रूप में प्रकट कर उनके लिये नवीन उपमानों की योजना करके कवि ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है, उपमाएँ सभी नवीन हैं। पंत जी ने अपनी कविता कामिनी को अलंकारों से विभूषित करने की चेष्टा नहीं की है, कविता प्रवाह में अलंकार स्वयमेव आकर इसी भाँति मिल गई है जिस भाँति सरिता के सतत प्रवाह में कूलस्थ तरुवरों के सुरंजित सुमन। अतः इनके अलङ्कारों में चित्रमयता, रंगीनी और स्वाभाविकता अनिवार्यतः आ ही जाती है, कल्पना में भी सजीवता और स्वाभाविकता का सहयोग अवश्यम्भावी हो जाता है। 'पवन-गीत' में पवन को मूर्त-रूप प्रदान करते हुए उपमा और रूपक की व्यंजना का सुन्दर उदाहरण देखिये :—

> मेरा चाबुक खा, मृगेन्द्र सा
> आहत घन करता गुरु गर्जन
> अट्टहास कर विद्युत पर चढ़
> जब मैं नभ में करता विचरण। पल्लविनी।

गगन-मंडल में दामिनी की कड़कड़ाहट और मेघों के भीम-गर्जन का कवि ने उपमा और रूपक अलङ्कार की योजना द्वारा अत्यन्त हृदयाकर्षक उदाहरण दिया है। इसी प्रकार मन की व्यथा और आकुल-क्रिया का परिचित प्राकृतिक विधान से चित्र अंकित करते हुए उपमा की व्यंजना का दिग्दर्शन कराया है :—

> अर्ध-चुंबन छोड़ मैं झट चौंककर।
> जग पड़ी हूँ अनिल पीड़ित लहर सी। ग्रंथि पृ० ६२१।

कभी-कभी तो आवेश में कवि पंत एक ही प्रस्तुत को अनेक उपमानों से गुम्फित करते चले जाते हैं। इनके काव्य में रशनोपमा के राशि-भूत उदाहरण हैं। जिस प्रकार सूर को अपने 'बिहारी जू' की छवि के वर्णन में उपमानों की योजना की झक सी चढ़ जाती है उसी भाँति पंत को भी प्रस्तुत के

लिये एक ही अप्रस्तुत विधान से परितृप्ति नहीं होती। उनकी भाव व्यंजना अधूरी रह जाती है और आकुल-अनुभूति अव्यक्त रह कर उन्हे और विकल बना देती है। अतः 'स्वान्तः सुखाय' वह अपने हृदयोद्गारों को अनेक उपमानों द्वारा व्यक्त करते चले गये हैं। इस प्रकार के उपमानों के बाहुल्य में सूर और पंत में समानता होते हुए भी एक महान् अन्तर है। सूर ने अपने उपमानों के लिये आकाश, पृथ्वी और पाताल के एक-एक कोने को झाँका है। और पत ने प्रायः अपने उपमानों को बाह्य जगत में ही सीमित न रख कर भाव क्षेत्र से लिया है :—

> एक जलकण, जलद शिशु सा, पलक पर
> आ पड़ा सुकुमारता सा गान सा,
> चाह सा, सुधि सा, सगुन सा, स्वपन सा। ग्रन्थि पृ० १६।

प्रिय की स्मृति में मग्न प्रेमिका के पलक पर पड़ कर एक जल विन्दु उसमें अनेक कोमल भावों की सृष्टि कर देता है।

इस प्रकार के अमूर्त-विधान की योजना में कहीं-कहीं वह प्रस्तुत अप्रस्तुत में व्यापार द्वारा साम्य स्थापित करके चित्रण को और भी अधिक स्पष्ट कर देते हैं, बादलों को ऊपर उठते हुए, एक साथ उमड़ते हुए, और नभ मडल में फैलते हुए देखकर कवि अमूर्त-भावना को अप्रस्तुत विधान में रख कर प्रस्तुत-अप्रस्तुत की क्रिया में साम्य प्रकट करते हैं :—

> धीरे धीरे सशय से उठ, बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर।
> नभ के उर में उमड़ मोह से फैल लालसा से निशि भोर।

मानव हृदय में सशय धीरे-धीरे अधिक होता जाता है, अपयश अत्यन्त शीघ्र फैलता है, मोह उमड़ता है और लालसा दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है, बादलों की क्रिया में इन सबका साम्य कवि के सूक्ष्म-निरीक्षण का परिचय देता है। अमूर्त भावों को मूर्त-रूप द्वारा व्यक्त करने के भी उदाहरण कम नहीं हैं :—

> फिरती नीरव नयनों में छाया छवियाँ मनमोहन।
> फिर-फिर विलीन होने को ज्यो घिर-घिर उठते हों घन॥ गुंजन पृ० २४।

प्रिय से वियुक्त होने पर उसकी स्मृति में प्रिय की मधुर मूर्ति बार-बार हृदय-पटल पर अङ्कित होती रहती है। मनुष्य अपना ध्यान दूसरी बातों में

लगाता है। कुछ समय के लिये भूलता है, किन्तु पुनः नेत्रों में आकर प्रिय की मंजुल मूर्ति बस जाती है। कवि पंत ने इन मनोहर भावों को घन-घटाओं के घिरने और विलीन होने के मूर्त-प्रसंग द्वारा व्यक्त किया है।

इनका सौन्दर्य बोध अपूर्व है। प्रकृति अपनी समस्त सुषमा इनकी भावी पत्नी के अङ्ग प्रत्यङ्गों में उडेल देती है। नेत्रों के सौन्दर्य को पूर्णता प्रदान करने के लिये प्रकृति अपने गुणों का इस प्रकार आरोप करती है :—

मुग्ध स्वर्ण किरणें प्रात
प्रथम खिलाये वे जल जात
नील व्योम ने ढल अज्ञात
उन्हें नीलिमा दी नव स्नात
आकुल लहरों ने तत्काल
उनमें चंचलता दी ढाल। गुंजन पृ० ४७।

प्रकृति के तत्व किरण, व्योम, तरंग आदि नेत्रों को प्रफुल्लता, नीलिमा, और चंचलता प्रदान करते हैं।

प्रिया की रूप-छटा उनके नेत्रों में इतनी अधिक बस जाती है कि वह विश्व के समस्त सौन्दर्य के दर्शन अपनी प्रिया के शरीर में ही करते हैं। प्रकृति उपमेय रूप में उपमान प्रकृति क्रिया से शिक्षित दीक्षित होती है। समस्त प्रकृति प्रिया का शिष्यत्व करती सी प्रतीत होती है :—

खोल सौरभ का मृदु कचजाल
सूंघता होगा अनिल समोद,
सीखते होंगे उड़ खग बाल
तुम्हीं से कलरव, केलि, विनोद,
चूम लघु पद चंचलता, प्राण,
फूटते होंगे नव जल स्रोत
मुकुल बनती होगी मुसकान। गुंजन पृ० ४५।

पंत जी ने नारी-सौन्दर्य को चरम-सीमा पर पहुँचा दिया है। प्रकृति के सुन्दरतम तत्वों से पूर्ण उसका रूप इतना अधिक आकर्षक और शोभन हो जाता है कि स्वयं प्रकृति भी उसके दर्शनों के लिये लालायित हो जाती है।

कब से विलोकती तुम को,
ऊषा आ वातायन से

संध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आँगन से।

लक्षणा द्वारा कवि ने वातायन से झाँकती हुई ऊषा और विलीन होती हुई संध्या का वर्णन मानव-सौन्दर्य के प्रभाव को तीव्रता प्रदान करने के लिये किया है। प्रतीप अलंकार द्वारा मानव-सौन्दर्य प्रकृति पर विजय पाता है। उस सौन्दर्य की मधुरिमा में कवि के मन-मधुकर के पंख फँस जाते हैं, वह प्रयास करके भी उस रूप जाल से वियुक्त नहीं हो पाता।

मानव के सौंदर्य पर अत्यधिक मुग्ध होकर कवि रूपक अलङ्कार द्वारा उसकी अनन्तता का वर्णन करता है। प्रेमिका के नेत्रों पर मुग्ध होकर कवि कहता है :—

तुम्हारी आँखों का आकाश
सरल आँखों का नीलाकाश
खो गया मेरा खग अनजान। गुंजन पृ० ४८।

नयनों के अनन्त सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कवि आत्म-विभोर हो जाता है। जड़ प्रकृति भी उन परम शोभन नेत्रों पर मुग्ध होकर उल्लसित हो जाती है। जब प्रेमिका ग्रीवा मोड़ कर देखती है तो :—

खिल खिल पड़ते श्वेत कमल
नाचतीं विलोल हिलोर। पल्लविनी पृ० १७२।

इस प्रकार के भावों की व्यंजना तुलसी, देव, पद्माकर आदि काव्यकारों ने भी की है। तुलसी की सीता के दृष्टिपात से कमल श्रेणी का प्रादुर्भाव हो जाता और देव की नायिका कुंज गलियों को अलिनमयी बना देती है।

पंत जी के काव्यों में अलङ्कारों के श्रेष्ठातिश्रेष्ठ राशि-भूत उदाहरण हैं। सुन्दर पर्वत प्रदेश में पले हुए कवि अपने अनवरत निरीक्षण द्वारा प्रकृति के सुन्दरतम रूप को देखकर 'सुन्दरम्' के प्रति आकर्षित हुआ। सौन्दर्य-बोध द्वारा उनके हृदय में अलङ्कारों का सहज-सृजन हुआ और भावोद्रेक के साथ अलङ्कार प्रयोग भी उनके काव्य का सहज-अंग हो गया। अतः 'वीणा', 'ग्रंथि' 'पल्लव' और 'गुंजन' में हमें अलकारों का सहजोद्रेक प्राप्त होता है।

प्रकृति प्रेमी कवि पंत को आरम्भ में हम प्रकृति के चिर सखा के रूप में देखते हैं। उन्हें प्रकृति से मानव की अपेक्षा कम अनुराग नहीं है। वह

मानव के काले-कुटिल-कुंतलों पर मुग्ध होकर भी प्रकृति को नहीं भूल पाता। और यही कहता है 'मेघों से भी है अनुराग' [वीणा] कवि का प्रकृति प्रेम मानव-सौन्दर्य पर विजय प्राप्त करता है :—

प्रकृति के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता जाता है। और पल्लव में 'मोह' नामक कविता में वह मानव-सौन्दर्य के प्रति विकर्षण के भाव प्रकट करते हैं। प्रकृति के मनोरम और विस्तृत क्षेत्र के ममत्व का परित्याग कर मानव सौन्दर्य की सकुंचित सीमा में बंदी होना उन्हें अभीष्ट नहीं, वह अपनी असमर्थता को इस प्रकार व्यक्त करते हैं :—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव', 'गुंजन' में हमें प्रकृति के प्रति कवि के अतुलनीय प्रेम के दर्शन होते हैं। गङ्गा के छल-छल जल में नौका विहार करते हुए और प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य के दर्शन करते हुए कवि को हम कभी विहग कुमारी से बात करते देखते हैं, कभी चिड़िया के टी-वी-टी-टुट्-टुट् और निर्झरों की 'टल-मल' ध्वनि का चित्रण करते जाते हैं और कभी 'मधु-प्रभात' और 'बंसत' की रूप-छटा पर सुधि-बुधि खोते हुए देखते हैं। किन्तु 'युगांत' में हम उन्हें मानव के प्रति अधिक आकर्षित पाते हैं। वह कहते हैं :—

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव तुम सबसे सुन्दरतम। युगांत पृ० ४६।

क्रमशः मानव के सौन्दर्य से भी मन हट जाता है। और 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में सौन्दर्य-वादी पन्त को हम दीन-हीन मानव के साथ करुण-कलाप करते पाते हैं। आधुनिक युग की करुण परिस्थिति और आर्थिक शोषण उन्हें प्रगतिवादी बना देते हैं। उनकी सहानुभूति कृषक-समुदाय और श्रम-जीवियों के प्रति होती है। उनकी सौन्दर्यानुभूति में विपर्यय हो जाता है।

आज असुंदर लगते सुन्दर
प्रिय पीड़ित, शोषित जन,
जीवन के दैन्यों से जर्जर
मानव मुख हरता मन। युगवाणी पृ० ३५।

देश की हीनावस्था के कारण करुणा से आप्लावित -कवि के भावुक-हृदय को युगवाणी में रक्त-पलाश ज्वाल-जाल के समान प्रतीत होता है। कवि को तो जन-जन के हृदय में मधु मास चाहिये। हृदय मे व्यथा का भार लेकर मानव प्रकृति की मनोरमता का अनुभव कैसे कर सकता है। आर्थिक परिस्थिति मे ग्रस्त और त्रस्त मानव को प्रकृति-निरीक्षण का अवसर ही कहाँ है ? और यदि अवसर भी हो तो क्या प्रकृति मानव की समस्या का निराकरण कर सकेगी ? बदली के प्रभात के सुन्दर दृश्य को देखकर अत्यन्त निराशा पूर्वक कवि को यही कहना पड़ता है :—

> कहाँ मनुज को अवसर देखे मधुर प्रकृति सुख ?
> भव अभाव से जर्जर प्रकृति उसे देगी सुख ?
>
> युगवाणी पृ० ८५।

कवि अब लोक-कल्याण और जन-हित में व्यस्त हो जाता है। हम 'पतझड', 'आम्र विहग', 'ओम' 'स्वीट पी' आदि से कवि को दीन-याचना करते हुए पाते हैं।

"ग्राम्या" में कवि प्रकृति के शोभन प्रदेश और कल्पना के स्वप्निल क्षेत्र से उतर कर 'आज असुन्दर लगते सुन्दर' के अनुसार ग्राम के ऊँचे नीचे खेत, ककरीले टीले और बगिया के छोटे पेड़ों का चित्रण करता है। अब वह प्रकृति में केवल "सुन्दरम्" नहीं देखते। वरन् प्रत्येक अशोभन वस्तु का यथातथ्य चित्रण करते चले जाते हैं।

> गजी को मार गया पाला, अरहर के फूलों को झुलसा।
> हाँका करती दिन भर बंदर, अब मालिन की लड़की तुलसा।
>
> ग्राम्या पृ० ३६।

> बिरहा गाते गाड़ी वाले, भूंक भूक कर लड़ते कूकर।
> हुआ हुआ करते सियार देते विषण्ण निशि-बेला को स्वर।
>
> ग्राम्या पृ० ६४।

ग्रामों की शस्य-श्यामला भूमि उन्हें देश-प्रेम की ओर उन्मुख करती और वहाँ की दुःख-दैन्य-पूर्ण-दशा भारत की दीनावस्था का दिग्दर्शन कराती है। वह भारत माँ के ग्राम में ही वास्तविक दर्शन करते हैं। वहाँ कवि माता को दीन और दुःखी देखते हैं :—

भारत माता
ग्राम वासिनी
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल
गंगा यमुना में आँसू जल । ग्राम्या पृ० ४८ ।

पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

निराला जी आधुनिक युग के जगमगाते रत्न हैं। निराला जी के प्रकृति-काव्य में दो तत्व प्रधान हैं...रहस्यवाद और मानवीकरण। प्रकृति में परमतत्व के दर्शन के लिये जब यह बौद्धिक-मनन करते हैं तो आत्मा और परमात्मा के मिलन अर्थात् अद्वैतवाद के अनुयायी हो जाते हैं और जब हृदय की सहृदयता तथा भावुकता का प्रयोग करते हैं तो प्रेम और भक्ति को प्रधानता प्रदान करते हैं, अर्थात् यह कभी दार्शनिक बन जाते हैं और कभी भावुक भक्त। 'जागो फिर एक बार' 'पंचवटी प्रसंग' 'कण' और 'जागरण' कविताएं इनके दार्शनिक सिद्धांतों से पूर्ण हैं। दर्शन मे ज्ञान और चिंतन की प्रधानता रहती है। मनुष्य अपने सतत चिंतन से विश्व को भ्रम अनुमान करता है। भ्रम से भागने पर जीव जागता है, योग साधन के अनंतर स्थूल सूक्ष्म हो जाता है। मानव इन्द्रियों से द्वन्द्व करता और सकल-ब्रह्माण्ड को अपने शरीर में स्थित देखकर 'अहंब्रह्मास्मि' कहता है। आत्मा सच्चिदानंद रूप से मिल जाती है और आत्मा-परमात्मा में अद्वैत भाव स्थापित हो जाता है। निराला जी ने इसका दिग्दर्शन कराया है :—

> अति जिज्ञासा जिज्ञासु के मस्तिष्क में जब
> भ्रम से बच भागने की इच्छा जब होती है
> चेतावनी देती जब चेतना कि छोड़ो खेल,
> जागता है जीव जब,
> क्रम क्रम से देखता है
> अपने ही भीतर वह
> सूर्य चन्द्र ग्रह तारे (परिमल पृ० २५१)

किन्तु भक्ति और प्रेम के आवेश में वह इसी प्रकार प्रकट होते हैं जिस प्रकार भक्ति-काल के सगुण भक्त। उस समय यह दीन-हीन-व्यक्ति की भाँति विश्व-नियता की सेवा मे निवेदन करते हैं। आज्ञाकारी-भक्त की भाँति श्रद्धाँजलि समर्पित करते, अनन्य-मित्र की भाँति अपनी दुःख कथा कहते, दर्शनों के लिये आतुरता प्रदर्शित करते और वियोग में आँसू बहाते तथा संयोग में

प्रफुल्लित हो उठते हैं। कवि के भावुकतापूर्ण हृदय में सर्व-प्रथम जिज्ञासा का ही उदय होता है, प्रकृति का प्रेम उन्हें विश्वात्मा के दर्शन कराता है। तरंगो के साथ एकात्म्य स्थापित करते हुए वह प्रश्न करते हैं :—

किस अनंत का नीला अंचल हिला हिला कर,
आती हो तुम सजी मंडलाकार ? ॥ परिमल पृ० ८० ।

अनत-विश्व के वैभव को देखकर उन्हें कौतूहल होता है, हृदय में यही विचार उठते हैं। 'कौन तम के पार' ? उनके मन में उस असीम से मिलने के लिये उत्कंठा बढ़ती ही जाती है, किन्तु कहीं भी उसके श्यामल-किनारे का पार नहीं मिलता। निराशा और क्षोभ के कारण उनकी मानसिक-अवस्था विषम हो जाती है, उन्हें पावस के घन और बसन्त के मलय मर्मर के प्रति विकर्षण होता है, हृदय की अतीव विकलता में प्रकृति से एकात्म्य होता है और शिशिर यामिनी के नेत्रों में अश्रु-बिन्दुओं का अवलोकन करता है :—

विरह परी सी खड़ी कामिनी
व्यर्थ बह गई शिशिर यामिनी
प्रिय के ग्रह की स्वाभिमानिनी,
नयनों में भर नीर ॥ गीतिका पृ० ८।

कवि की आत्मा की आकुलता बढती ही जाती है, वह अत्यन्त दीन भाव से प्रार्थना करते हैं :—

स्पर्श तुम्हारा मिलने पर क्या
महा भार यह झिल न सकेगा ? गीतिका पृ० ४५।

अनवरत चिंतन, अतिशय प्रेम और भक्ति के उपरान्त उनकी अन्तरात्मा पुकार उठती है:—

मन के तिनके
नहीं जले अब तक भी जिनके,
देखा नहीं उन्होंने अब तक कोना, कोना
अपने जीवन का ...... । अणिमा पृ० ११।

उसकी प्राप्ति के लिये मन के कालुष्य का प्रतिहार अति आवश्यक है, मन के विशुद्ध होने पर तो—

लखोगे, उर कुंज में निज कज पर निर्भार
अखिल ज्योतिर्गठित छवि, कच पवन तम विस्तार। गीतिका पृ० ४८।

हृदय-वाटिका में उसी की छबि दिखाई देती है, बहिर्जगत् में भी एक ही शक्ति का अनुभव करता है। सुरंजित-सुमन, अरविन्द-नंदन, नील-नभो-मंडल और रवि, शशि, नक्षत्रों को वह एक ही शक्तिशाली पद्म-पाणि द्वारा निर्मित देखता है। तदुपरान्त वह निरजन उसके लिये साकार हो जाता है, कवि को सर्वत्र उसकी मृदु-मुस्कान और प्रखर-ज्योति ही दिखाई देती है, उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है:—

गगन घन विटपी, सुमन नक्षत्र ग्रह, नव ज्ञान
बीच में तू हँस रही ज्योत्स्ना वसन परिधान। गीतिका पृ० ६४।

इस भाँति जब सकल विश्व उनके लिये ब्रह्म-मय हो जाता है तो आत्मा-परमात्मा का मिलन होता है। अमावस्या की अधकार-मयी रात्रि ब्रह्म की ज्योति से प्रकाशित हो जाती है, कवि के मुग्ध प्राण प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो जाते हैं, वह आत्म विस्मृत हो जाता है:—

तुम आये,
अमा निशा थी,
शशधर से नभ में छाये।
फैली दिङ्-मडल में चाँदनी
बँधी ज्योति जितनी थी बाँधनी
खुली प्रीति प्राणों से प्राणों में भाये।

अणिमा पृ० ४२।

परमात्मा के अतद्र रूप और दिव्य-छवि को देखकर कवि के लोचन थकित हो जाते हैं, वह निर्निमेष नेत्रों से उस अपूर्व ज्योति का अवलोकन करता रह जाता है। कवि का भक्ति-भावना से पूर्ण भावुक-हृदय उस आनद रूप में न तो स्वय मिलना चाहता है और न स्वयं आनंद रूप हो 'सोऽहम्' कहना इष्ट है। वह तो अपना समस्त कार्य भार और श्रेय भगवान् को अर्पित करके उन्हीं का एक अंश बनकर अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखने की कामना करता है। विनत-वदन से वह यही प्रार्थना करता है:—

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं
चंचल गति सुर सरिता।

तुम दिनकर के खर किरण जाल
में सरसिज की मुस्कान
तुम नंदन घन विटप
और मैं सुख शीतल तल छाया।

परिमल पृ० ८५।

जिस प्रकार गंगा का उद्गम हिमालय पर्वत, कमल की प्रफुल्लता का कारण सूर्य, और छाया का जन्म वृक्ष से होता है। उसी प्रकार कवि की प्रसन्नता ब्रह्म के निकटतम संपर्क में है, यह उस आनंद स्वरूप में अपना अस्तित्व खो देना नहीं चाहते वरन् पृथक् रह कर उस आनन्द का अनुभव करना चाहते हैं।

'निराला' अपने दार्शनिक विचारों में मग्न रह कर एक रूप हो जाते हैं और भावुकता में ब्रह्म से पृथक् रह कर सत्-चित् के आनन्द में मग्न रहते हैं। उनकी आन्दानुभूति जड़ प्रकृति को भी चेतन बना देती है। प्रकृति का जड़त्व नष्ट हो जाता है। और वह सजीव प्राणी की भाँति उन्हें अपना रूप दिखाती, हाव-भावों पर मुग्ध करती, संवेदना प्रकट करती और उत्साहित करती है। प्रकृति और मानव का तादात्म्य हो जाता है। 'संध्या-सुन्दरी' 'शरत्पूर्णिमा की विदाई', 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'बादल राग', 'प्रभात के प्रति' आदि कविताओं में मानव आकृति और मानव-व्यापारों से पूर्ण प्रकृति के दर्शन होते हैं। विरह-विधुरा सोती हुई जुही की कली का रूपक मय चित्रण देखिये :—

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी...स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल...तनु तरुणी...जुही की कली। परिमल पृ० १६१।

जुही की कली प्रियतम मलयानिल के विरह में शान्त-भाव से सो रही है। कवि प्रकृति को सप्राण मानते हुए उसमें मानव-भावों का आरोप करते है। 'जुही की कली' मलयानिल के वियोग से विदग्ध होती और अपने प्रियतम को पुनः पाकर हर्षोत्फुल्ल हो खिलखिला पड़ती है।

हेर प्यारे को सेज पास
नम्र मुखी हँसी.. खिली,

वह प्रकृति में गत्यात्मकता का अनुभव करते हैं। इनकी प्रकृति मनो-मुग्धकारी सौन्दर्य और आकर्षक हाव-भावों से मानव को मोहित करती है और मानव ही की भाँति दैनिक कार्यों में व्यस्त रहती तथा चलती फिरती है। दिवसावसान के समय परी सी संध्या सुंदरी धीरे-धीरे आसमान से उतर रही है। वह इतने धीरे पग बढ़ा रही है कि :—

नूपुरों की रुन झुन रुन झुन रुन झुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप, चुप, चुप'

संध्या सुन्दरी को गत्यात्मक रूप प्रदान करते हुए वह संध्या की मदमथर गति और संध्या-काल की नीरवता का चित्रांकन करते हैं। इसी प्रकार रजनी का मानवी-करण अत्यन्त आकर्षक हुआ है। वास्तविक सत्य और नैसर्गिक छटा से अभिभूत निशीथ-रानी का गत्यात्मक चित्रण अत्यन्त सुन्दर और स्वाभाविक प्रतीत होता है।

हेर उर पट, फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मंद मराल,
गेह में प्रिय स्नेह की जय माल। गीतिका पृ० ४।

चन्द्र और नक्षत्रों से युक्त रात्रि का कवि ने जय-माल लिये हुए शशि-मुखी सुन्दरी के साथ रूपक-मय वर्णन किया है। रात्रि के घनांधकार का लावण्यमयी सुन्दरी के केश-कलाप से सादृश्य प्रकट करते हुए वह बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से प्रस्तुत अप्रस्तुत का चित्रांकन नवीन रूप में कर देते हैं। अप्रस्तुत के लिये प्रस्तुत की आवश्यकता नहीं रहती दोनों एकाकार हो जाते हैं और मानवी-करण साकार हो जाता है।

निराला जी की प्रकृति में मानवी-करण की भावना विकसित होते होते चरम-सीमा तक पहुँच जाती है। वह उसमें मानव की प्रत्येक गति का अनुभव करते हैं और प्रकृति में वासना-मय सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराते हैं। शेफा-लिका को पूर्ण युवती का रूप प्रदान करते हुए उसके वासना-पूर्ण व्यापारों का चित्रण वह इस प्रकार करते हैं :—

बंदकंचुकी के सब खोल दिये प्यार से,
यौवन उभार ने,

पल्लव पर्यंक पर सोती शैफालिके,
मूक आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के ।। परिमल पृ० १६६ ।

प्रकृति मानव रूप से पूर्ण होकर मानव व्यापारों में भी संलग्न रहती है, वह सोती, जागती, चलती, और चुम्बन, आलिंगन आदि वासना मय क्रियाओं में व्यस्त रहती है, इन प्राकृतिक व्यापारों के अतिरिक्त उसके हृदय में करुणा का संचार होता है, संवेदना और सहानुभूति का उदय होता है और मानव की ही भाँति उसके नयन अपने प्रिय के वियोग में अश्रु पूर्ण हो जाते हैं :—

'डूबा रवि अस्ताचल, 'संध्या के दृग छल छल ।'

प्रकृति से इतना निकट सम्पर्क हो जानेपर मानव और प्रकृति में तादात्म्य हो जाता है, कवि कभी सरिता से बात करता है, कभी 'कण' से उपदेश प्राप्त करता है, और कभी विनम्र भाव से वासती से प्रार्थना करता है। वासती को वह मानव जगत में आशा का संचार करने में समर्थ मानता है। तरंगों में कवि विकलता का अनुभव करता है और प्रश्न करता है :—

क्यों तुम भाव चलतीं हो ?
हँसती हो और मलती हो । परिमल पृ० ८१ ।

उसे अनुभव होता है कि तरंगें असीम से मिलने जा रही हैं । कवि भी असीम से मिलने के लिये आतुर हो जाता है । और मिलन वदन से असीम की ओर से चलने की तरंगों से प्रार्थना करता है । बादल उसके हृदय में अमर राग की उद्भावना करते हैं ।

निराला जी के काव्य में, करुण-भाव की प्रधानता है, वह प्रकृति से एकात्म्य स्थापित कर उसकी प्रसन्नता में उन्मत्त से होकर कह उठते हैं :—

खुलती मेरी शैफाली,
हँसती री डाली डाली ।। गीतिका पृ० १०१ ।

और प्रकृति के कष्ट और दुःख को देखकर उनका भावुक हृदय करुणा से आप्लावित हो जाता है। कमनीय कुसुम की सुरभिदान-शीलता, मृदु-मुस्कान और सुललित सुकुमारता पर मुग्ध होकर उन्हें पुष्प के सुखमय जीवन को नष्ट करने वाले माली के प्रति विगर्हणा उत्पन्न होती है। वह उस पत्थर से भी कठोर कलेजे वाले हत्यारे माली के प्रति अपना क्षोभ प्रकट करते हुए पुष्प के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हैं :—

तुम्हारा इतना हृदय उदार
वह क्या समझेगा माली निष्ठुर निरा गँवार।

धूलि-धूसरित पद-दलित कुसुम को देख कर तो कवि की आत्मीयता और भी सजग हो जाती है, वह सहानुभूति पूर्वक पुष्प से उसकी करुण-दशा का परिचय प्राप्त करना चाहता है :—

झोली करुणा की भिक्षा की
दलित कुसुम क्या कहा,
धूलि में नजर उठाये हो फैलाये ? परिमल पृ० १५५।

प्रकृति में उपदेशात्मकता के भी कवि ने दर्शन किये हैं। बादल पृथ्वी से नभ में जाकर पुनः पृथ्वी पर वर्षा कर देश को हरा-भरा कर देते हैं। इससे मानव मात्र भक्ति का अनुपम उदाहरण ग्रहण करता है। प्रकृति इन्हें उत्साहित करती है, प्रेरणा करती है और कर्तव्य-पथ में आगे बढ़ाती है। इनके लिये प्रकृति एक अनुभव शक्ति है :—

झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर।
राग अमर अम्बर में भर निज रोर॥ परिमल पृ० १७५।

प्रकृति का मानव सौन्दर्य के उपमान के रूप में वर्णन निराला के काव्य में अपेक्षा-कृत कम है, सादृश्य-मूलक अलंकारों में अधिकतः रूपक और उपमालंकार के ही उपयोग हैं, रूपक अलंकार का बाहुल्य है। उपमान अधिकतः कवि-कल्पित हैं। परम्परा युक्त उपमानों से भी लाक्षणिकता के प्रयोग से नूतनता प्रदर्शित होती है। जहाँ कवि ने केवल परम्परा पालन के लिये कवि-परम्परा प्रयुक्त अलंकारों का प्रयोग किया है वहाँ पर सौन्दर्य के प्रति

कवि की तटस्थता प्रतिभासित होती है। संदेहालंकार में परम्पराभुक्त उपमानों का प्रयोग देखिये :—

> मद भरे ये नलिन नयन मलीन हैं।
> अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं॥ परिमल पृ० ७८।

नलिन और मीन परम्परागत उपमान हैं, कवि ने संदेह प्रकट करते हुए दोनों उपमानों का उपयोग किया है मीन और नायिका के नेत्रों में गुण साम्य तो कवि ने परम्परानुसार ही व्यक्त किया है किन्तु विकल साधर्म्य द्वारा कवि ने विरहिणी के अश्रु-सिक्त नेत्रों का भावुकतापूर्ण चित्र अंकित कर, दिया है। रत्ना के सौन्दर्य चित्रण में तो कवि ने अखिल सृष्टि को रत्नामय बना दिया है :—

> प्रेयसी के अलक, नील, व्योम;
> दृग पल, कलंक, मुख मंजु, सोम;
> निःसृत प्रकाश जो, तरुण क्षोभ प्रिय तन पर;
> पुलकित प्रतिपल मानस चकोर॥ तुलसीदास पृ० २६।

रत्ना की रूप राशि के दर्शन से तुलसी का चकोर रूपी मन पुलकित हो जाता है। इस काल की प्रवृत्यानुसार इन्होंने भी उपमालंकार में केवल स्थूल उपमानों का प्रयोग नहीं किया है, इनके उपमान भाव की तीव्रता में सहायक होते हैं, कभी तो यह मूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान की योजना करते हैं, कभी अमूर्त के लिये मूर्त-आधार को अप्रस्तुत-विधान में रखते हैं। मूर्त विधवा के लिये अमूर्त अप्रस्तुत-विधान की योजना देखिये :—

> वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी,
> वह दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
> वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी॥ परिमल पृष्ठ १३१।

अमूर्त-योजना द्वारा कवि ने विधवा के शान्त स्थिर भाव और काल की क्रूरता के प्रभाव में तीव्रता उत्पन्न करदी है। भारतीय नारी के वैधव्य-कष्ट का चित्रण कवि ने अत्यन्त अनुतप्त होकर किया है। उसके दैन्य के चित्रण में मूर्त विधान भी अत्यन्त करुण हो जाता है।"वह टूटे तरु की छुटी लता

सी दीन" जिस प्रकार टूटे हुऐ वृक्ष की लता के पुनर्जीवन और विकास की आशा नहीं की जा सकती उसी प्रकार वैधव्य-व्यथिता नारी निःसम्बल और मृतकवत् हो जाती है। उसके जीवन में हर्ष की तरंगें कभी नहीं प्रस्फुटित हो सकतीं, जिस प्रकार देव नायिका के सौन्दर्य की मधुरिमा में, "बेगि ही बूड़ि गई पँखियाँ अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी" के अनुसार लिप्त हो जाते थे उनके मधुसिक्त नेत्र और कहीं दृष्टिपात ही नहीं कर पाते थे उसी प्रकार कवि निराला के नेत्र विधवा की करुण-दशा के अवलोकन में निर्निमेष हो जाते हैं, उनके मन-मधुकर की पाँखें विधवा के नेत्रों के करुण रस से भीग जाती हैं। उसकी ओर से दृष्टि हटा लेने पर भी उनके हृदय-पटल पर दीना-हीना मलिन वेष धारिणी, करुणा की मूर्ति विधवा का चित्र अङ्कित हो जाता है उसकी अमिट छाप उनके हृदय को पीड़ित करती रहती है।

अमूर्त और अगोचर रूप को भी इन्होंने मूर्त-विधान द्वारा आकर्षक रूप में व्यंजित किया है। 'उसकी स्मृति' कविता में स्मृति का मूर्त विधान देखिये :—

मृदु गन्ध सी कोमल दल फूलों की ;

× × ×

स्वच्छंद गगन सी मुक्त......
लघु लहरों की सी चपल चाल वह चलती ॥ परिमल पृष्ठ १२३।

जिस प्रकार मूर्त का मूर्त से साम्य स्थापित किया जाता है उसी प्रकार इन्होंने अमूर्त का अमूर्त से भी साम्य प्रदर्शित किया है। स्मृति स्वयं ही अगोचर और अप्रत्यक्ष है। यह हृदय की एक कोमल भावना है जो अनेक चल-चित्रों को जन्म देती, अपनी मौन-भाषा से मानव को विकल बनाती और अमिट-छाप छोड़ जाता है, स्मृति की मौन-व्यथा का अमूर्त-योजना द्वारा कैसा करुणा-कलित चित्रण है :—

जगत उर की गत अभिलाषा,
शिथिल तन्त्री की सोई तान,
दूर विस्मृति की भूल भाषा,
चिता की चिरता का आह्वान ॥ परिमल पृष्ठ ११२।

निराला जी ने अपने काव्य में सबसे अधिक रूपक अलंकार का उपयोग किया है। 'बहू' के सौन्दर्य का सरोवर में आरोप करते हुए उसे वह एक तरंग के समान कह कर व्यतिरेक अलंकार द्वारा तरंग में अपकर्ष व्यक्त करके लज्जा-शीला बहू का उत्कर्ष प्रकट करते हैं। सरला बहू चांचल्य से रहित है, उसमें गम्भीरता है, सकोच है और लज्जा-भरा सौन्दर्य है :—

'सौन्दर्य सरोवर की वह एक तरंग
किन्तु नहीं चंचल प्रवाह उद्दाम वेग
संकुचित,एक लज्जित गति है वह . .
प्रिय समीर के संग।

इनके सांग-रूपक के चित्र सश्लिष्ट हैं। 'अणिमा' में शुक्ल जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि में इन्होंने अमावस्या से पूर्णिमा तक पूरे पक्ष का शुक्ल जी के साहित्य क्षेत्र में पदार्पण और उनके निर्वाण में आरोप कर शुक्ल-पक्ष की सांगोपांग योजना करदी है।

विश्वात्मा से मनः सितार का झंकृत करने की प्रार्थना करते हुए 'आवेदन' कविता में शब्द, गति, मीड और गीत का आरोप इन्होंने प्रकृति के कलिका-विकास, मन्द पवन, भ्रमर-गुञ्जन और निर्मल-सौरभ में किया है। वसन्त का प्रातःकालीन दृश्य सजीव हो जाता है :—

शब्द के कलिदल खुलें, गति पवन भर काँप थर थर,
मीड भ्रमरावलि ढुलें, गीत परिमल बहे निर्मल ॥ अनामिका पृ० ७८।

'तुलसी दास' में मोगल दल का, बल के जलद-यान, नदी, नद आदि का रूप प्रदान किया है। कहीं कहीं पर प्राकृतिक प्रसंग को तुलना में रखकर भी इन्होंने मनःस्थिति के अंकन के प्रभाव में तीव्रता उत्पन्न करदी है। तुलसी दास के चित्र की उन्मनता को प्रकृति के प्रसंग द्वारा अंकित करने की कुशलता देखिये :—

बहकर समीर ज्यों पुष्पाकुल
वन को कर जाती है व्याकुल
होगया चित्त कवि का त्यों तुल कर उन्मन।' तुलसीदास पृ० १८।

विशेषण-विपर्यय भी नयी प्रकृति चित्रण की शैली का मुख्य तत्व है, 'चल चरणों का व्याकुल पनघट' और 'अंगड़ाते तम' आदि विशेषण-विशेष्य के प्रत्यावर्तन से शैली में नवीनता और शोभनता का समन्वय हो गया है।

प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रों में कवि ने अधिकतः सौम्य और मानवीय भावनाओं से अतिरंजित प्रकृति का वर्णन किया है, इन्होंने सर्वत्र प्रकृति में प्रेम और करुणा तथा मानव-चेतना का अनुभव किया है। शिशिर का वर्णन देखिये :—

> बह चली अब अलि, शिशिर समीर।
> काँपी भीरु मृणाल वृंत पर नील कमल-कलिकाएँ थर थर,
> प्रात अरुण को करुण अश्रुभर लखतीं अहा अधीर।
>
> गीतिका पृ० १०।

इसमें मृणाल-वृंत के भीरु विशेषण और नील-कमल-कलिकाओं के करुण अश्रु द्वारा मानव-चेतना का भाव प्रकट होता है, किन्तु कवि वास्तविक तथ्य से नहीं हटा है। शिशिर के अतिशय तीक्ष्ण समीर से कंपित और ओस बिंदुओं से पूर्ण मृदुल-कमल-कलिकाओं का यथार्थ चित्रण है, कवि ने अपने तादात्म्य द्वारा प्रकृति की चेतना व्यंजित की है।

किसी का विवरण देते समय वस्तु परिगणन की शैली का भी इन्होंने उपयोग किया है। 'अणिमा' में स्वामी प्रेमानंद के स्वागतार्थ किये हुए उत्सव का यथा-तथ्य और परिगणन की शैली के अनुसार किया हुआ वर्णन देखिये :—

> आमों की गगरी पर
> उतर चुका है वसंत
> भरा हुआ है तालाब
> खेलती हैं मछलियाँ
> वहीं गंधराज बकुल
> बेला जुही हर सिंगार
> केतकी कनेर कुंद
> चम्पा लगे हुए हैं॥ अणिमा पृ० ६८...६९

कवि ने आगामी व्यापार की पूर्व पीठिका के रूप में समस्त वस्तुओं का परिगणन करा दिया है। कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति के दृश्य का यथातथ्य चित्रण भी कर दिया है, संध्या का वर्णन कितना यथार्थ है:—

स्तब्ध अंधकार सघन,
मद गंध भार पवन,
ध्यान लग्न नैश गगन,
मूँदे दल नीलोत्पल,

गीतिका पृ० ७८।

उद्दीपन-रूप में इन्होंने वसन्त, पावस और होली का वर्णन किया है। प्रकृति का उद्दीपक-रूप इनके काव्य में प्रेमी को कामोत्तेजित करने के लिये ही नहीं वर्णित किया है अपितु उन्होंने समस्त जगत् की पीड़ा का अनुभव करते हुए एक वेदना-पूर्ण-धारा समस्त प्राणियों में प्रवाहित करदी है। उद्दीपक रूप में भी प्रकृति केवल अभिवृद्धि का साधक बन कर नहीं रह गई है, वरन् अपने यथार्थ रूप का दिग्दर्शन कराती हुई प्रकट हुई है, पावस का उत्तेजक रूप देखिये:—

अलि घिर आये घन पावस के।
द्रुम समीर कम्पित थर थर थर,
झरतीं धाराएँ झर झर झर,
जगती के प्राणों में स्मर शर,
बेध गए, कसके...

परिमल पृ० १०१।

पावस में वह समस्त प्राणियों को अनंग के शरों से विद्ध पाते हैं, इसमें कवि का आध्यात्मिक पक्ष प्रकट होता है। प्रेमी प्रेमिका को उत्तेजित करने के रूप में प्रकृति का चित्रण नहीं है।

देश-प्रेम के अन्तर्गत भी इन्होंने प्राकृतिक-दृश्यों और उपकरणों का वर्णन किया है। 'यमुना' 'खंडहर' 'उद्बोधन' आदि कविताएँ राष्ट्र प्रेम की भावना से पूर्ण हैं, 'यमुना' और 'खंडहर' में वह अतीत के प्रति क्षोभ और दुःख प्रकट करते हैं। यमुना से वह नट-नागर श्याम का पता पूछते हैं और यमुना तट के प्राचीन वैभव के विनष्ट होजाने पर क्षोभ प्रकट करते हैं:—

पावस की प्रगल्भ धारा में
कुंजों का वह कारागार

अब जगत के विस्मित नयनों में
दिवस स्वप्न सा पड़ा अपार ॥ परिमल पृ० ६४ ।

कालिन्दी-पुलिन के अतीत-गौरव के दिवस उन्हें स्वप्न के समान कल्पना रंजित प्रतीत होते हैं। पुरातन के मलिन-साज खंडहर के प्रति वह अपनी वेदना प्रकट करते हैं। दिल्ली के प्राचीन-वैभव की वर्तमान परिस्थिति से तुलना करते हुए, अतीत पर संदेह करते हुए प्रश्न करते हैं :—

क्या यह वही देश है?

'उद्बोधन' में वह भारत वासियों को चेतावनी देते हैं। देश-प्रेम की करुण भावना के सामंजस्य से प्रकृति के उपेक्षित और विरूप पदार्थ भी उनके काव्य का अंग बन जाते हैं, 'ठूंठ' भी उनके आकर्षण का उपकरण हो जाता है। उन्हें उसकी दीन-स्थिति के प्रति करुणा उत्पन्न होती है, वह उसके अतीत का वर्तमान से वैषम्य दिखाकर उसकी हीनावस्था का दिग्दर्शन कराते हैं:—

गई इसकी कला
अब यह बसंत में होता नहीं अधीर
पल्लवित झुकता नहीं अब यह धनुष सा ॥ अनामिका पृ० १३६ ।

देश की नैराश्य पूर्ण परिस्थिति से कवि का मन प्रकृति के कल्पित-जगत् से हट कर पुनः यथार्थ की ओर उन्मुख होता है, कल्पना-परी के मोहक रूप के स्वप्निल-जाल से विमुक्त होकर वह पुनः वास्तविक जगत् में पदार्पण करते हैं। और 'तोड़ती पत्थर', 'किसान की नई बहू' आदि उनकी कविता के विषय बन जाते हैं। कवि प्रगतिवादी के रूप में प्रकट होते हैं और 'कुकुरमुत्ता' ग्रन्थ में गुलाब को धनिकों का और कुकुरमुत्ता को शोषित-वर्ग का प्रतीक मान कर देश के आर्थिक शोषण का दिग्दर्शन कराते हैं। देश की आर्थिक-स्थिति उन्हें प्रकृति सुन्दरी की स्वर्णिम-प्रभा से विमुख कर पत्थर तोड़ने वाली मजदूरनी के प्रति आकर्षित करती है, प्रकृति के हाव-भावों पर न्योछावर होने वाला कवि यथार्थवादी बन कर दीन-हीनों के साथ अपनी संवेदना प्रकट करता है।

महादेवी वर्मा

सुश्री महादेवी वर्मा आधुनिक काल की प्रतिभाशालिनी कवियित्री हैं। इन्होंने सर्वत्र विश्व में करुणा और दुःख का अनुभव किया है। प्रकृति इनके लिए सप्राण है। यह प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करती हैं और विश्व में प्रकृति और मानव को एक प्राणसूत्र में गुम्फित कर देती हैं। मानव और प्रकृति में एक ही प्रकार की अनुभूति, एक ही प्रकार की सजीवता, एक ही विशृंखलता, आत्मीयता और व्यापकता का अनुभव करती हैं। इनके प्रकृति चित्रण सजीव हैं, उसमें मानव करुणा का सफल आरोप है। मानव और प्रकृति का यही एकात्म्य उन्हें रहस्यवाद की ओर उन्मुख करता है। वह सचराचर प्रकृति के निर्माता, जगन्नियन्ता, विश्वप्रणेता और सृष्टि रचयिता के अदृश्य रूप के विषय में विचार करती हैं, अखिल-सृष्टि में वह परोक्ष शक्ति के सचालन और नियन्त्रण का अनुभव करती हैं और चिन्तन तथा मनन के पश्चात् विश्व में उसी का प्रतिबिम्ब देखती हैं। उस अभूतपूर्व सौन्दर्य की अभिव्यजना के लिये प्रकृति के सर्वोत्तम उपमानों को नियोजित कर उसकी रूप छटा का दिग्दर्शन कराती हैं। इस भाँति इनके काव्यों में प्रकृति चित्रण के मुख्यतः तीन रूप प्राप्त होते हैं :—

१—प्रकृति में तत्व का आभास
२—मानव भावों का आरोप, और
३—अलंकार

उद्दीपन और उपदेश की भावना भी प्रकट होती है। किन्तु प्रधानता उपरोक्त तीनों तत्वों का ही है। महादेवी के काव्य में रहस्यवादी दृष्टिकोण विशिष्ट पद प्राप्त करता है, अतः सर्व प्रथम इसी पर विचार करेंगे।

प्रकृति के मनोरम दृश्य देव जी को आकर्षित करते हैं, वह विहँसती संध्या और स्वर्ण पराग पूर्ण मुस्कराते सुमना को देखकर प्रसन्न होती हैं। प्रकृति की अथक सुषमा और सृजन तथा सर्वनाश उन्हें आश्चर्य चकित कर देते हैं, कौतूहल होता है और हृदय में अनेक प्रकार के प्रश्न उठते हैं :—

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,

मिटाता रँगता बारंबार,
कौन जग का यह चित्राधार। रश्मि पृ० ६।

वह कौतूहल तडित की मुस्कान में, ज्योत्स्ना के रजत-पारावार में रश्मियों की कनक-धारा में, मुकुलों की हँसी में और निर्झरिणी के गान में दृष्टिगोचर होता है एक ही शक्ति की प्रेरणा से सकल विश्व अनुप्राणित है उस अनन्त शक्ति को वह विश्व में ही व्याप्त देखती है। वह प्रकृति के सौम्य और शुभ व्यापारों में उसकी हँसी और प्रकृति के विकराल रूप में उसके रोष का अनुभव करती है। मधुमास और पतझड़ क्रमशः उसकी मुसकान और भ्रूभंगिमा को व्यक्त करते हैं:—

हास का मधु दूत भेजो।
रोष की भ्रूभंगिमा पतझार को चाहे सहेजो। दीपशिखा पृ० २।

उस सृष्टि-रचयिता की अपरिमेय-शक्ति के प्रति कवयित्री का आश्चर्य श्रद्धा और प्रेम में क्रमशः परिवर्तित हो जाता है, वह उसके दर्शनों की कामना करती है। बाह्य प्रकृति में उन्हें उसका केवल आभास-मात्र मिलता है और अंतर में तो उन्हें स्पन्दन ही नहीं प्रतीत होता, हृदय तो वह पहिले ही उसके चरणों पर चढ़ा चुकीं। अखिल सृष्टि में उसको व्याप्त जानकर वह [कवि-यित्री] कभी तो पुष्पों में उसे ढूँढती हैं और कभी दीन-हीन भाव से पथ में बिछ जाती हैं। किन्तु उनके निर्मोही प्रियतम उन्हें देखकर अन्तर्धान हो जाते हैं। वह दूसरा ही पथ ग्रहण करती हैं। महादेवी अत्यन्त निराश होकर अपने दुःख-दैन्य को इस प्रकार व्यक्त करती हैं:—

मैं फूलों में रोती वे
बालारुण में मुस्काते
मैं पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ में उड़ जाते॥ नीहार पृ० ६६।

उनकी व्याकुलता बढ़ती जाती है, समस्त प्रकृति में वह उसी की स्वर्गिक-निधि का प्रसार देखती हैं। 'लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल' के अनुसार उन्हें प्रियतम के अनन्त सौन्दर्य का आभास प्रकृति में मिलता है:—

घूंघट पट में झाँक सुनाते
ऊषा के आरक्त कपोल

जिसकी चाह तुम्हे है उसने
छिड़की मुझ पर लाली घोल । नीहार पृ० ६३ ।

ऊषा में वह प्रीतम की लाली, नक्षत्रों में उसकी माया की झाँकी और मेघों में उसकी करुणा की छाया देखती है। उनके अन्तर्बाह्य में साम्य स्थापित हो जाता है। जिसके अनन्त सौन्दर्य की वह मन में कल्पना करती थीं उसी अनुपम रूप की छटा का वह बहिर्जगत में अवलोकन करती है, उसके दिव्य दर्शन के लिये देवी जी की उत्कंठा बढ़ती जाती है, वह उससे मिलने के लिये व्यग्र हो जाती हैं, किन्तु जब वह उसकी अनन्त शक्ति, अनन्त सौन्दर्य और अद्वितीय गुणों का ध्यान करती हैं तो उसका हृदय श्रद्धा से नत हो जाता है। वह अनुभव करती हैं कि उनको प्रियतम दिन को कनक-राशि पहिनाता, विधु को चाँदी के परिधान दान करता, उदधि को अपार कर देता, और नभ को अगणित दीप तथा तम-तोम प्रदान करता है तो उन्हे अपनी तुच्छता और लघुता का ध्यान आता है। बुद्धि तर्क करती है 'असीम के साथ ससीम का मेल कैसा! वह अपनी वेदना-विभूति को सखी से प्रकट करती है :—

आज सजनि ! उनसे परिचय क्या
वे घनचुम्बित मैं पथ भूली ।। नीरजा पृ० १०६ ।

किन्तु उनका भावुक-हृदय बुद्धि के तर्क को परास्त कर देता है। उनकी प्रेमानुभूति इतनी तीव्र है कि उसके सम्मुख कोई भी तर्क नहीं ठहर सकता। प्रेम में वह अद्भुत आकर्षण का अनुभव करती हैं, प्रेमाकर्षण के लिये वह प्रकृति से दृष्टान्त देती हैं :—

ऊर्मियों में झूलता राकेश का आभास।
दूर होकर क्या नही है इन्दु के ही पास । रश्मि पृ० ३६ ।

प्रकृति में वह देखती हैं कि प्रेम में महान् और लघु के अन्तर के प्रति ध्यान नहीं दिया जाता, प्रेमाकर्षण से ही तो चन्द्र और चपल वीचियों का मिलन होता है, किन्तु उनके हृदय के अनन्य प्रेम का तो प्रिय के दरबार में मूल्यांकन नहीं होता। वह निरपेक्ष रहते हैं। महादेवीजी विकल हो जाती है, जीवन का उल्लास विनष्ट हो जाता है, नैराश्य विरक्ति और वेदना से अभिभूत होकर उन्हें प्रकृति के सौम्यतम चित्रों के प्रति भी विकर्षण होता है, सर्वत्र उन्हें औदास्य का अनुभव होता है। वह मधु की चिरप्रिया कोकिल के कलकूजन

में मौन व्यथा का अनुभव करती हुई उससे गीत न गाने की प्रार्थना करती हैं क्योंकि अपनी विषम-परिस्थिति में उन्हें सर्वत्र वैषम्य ही दृष्टिगोचर होता है, समस्त प्रकृति में वह विषम-वियोग व्यथा का अनुभव करती हैं:—

> झूमा एक ओर रसाल
> कांपा एक ओर बबूल
> फूटा बन अनल के फूल
> किंशुक का नया अनुराग।
>
> दिन है अलस मधु से स्नात
> रातें शिथिल दुःख के भार
> जीवन ने किया शृंगार
> लेकर सलिल कण औ आग॥ सांध्य गीत पृ० ७६।

विरहोन्माद में उन्हें किंशुक के पुष्प, पद्माकर के "किंशुक, गुलाब कचनार और अनारन की डारन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं," की भाँति अग्नि-पुष्प के समान प्रतीत होते हैं। वह अपने दुःख से प्रकृति को भी प्रभावित देखती हैं और दिन में आलस्य तथा रात्रि में शैथिल्य का अनुभव करती हैं। पावस में वह अपने हृदय के अनुरूप ही प्रकृति चित्रों का अनुभव करती हैं। अन्तर्बाह्य का साम्य हो जाता है। वह अन्तर्जगत का वाह्य जगत में और बहिर्जगत का अन्तर्जगत में प्रतिबिम्ब देखती हैं:—

> बाहर घन तम, भीतर दुःखतम
> नभ में विद्युत तुझ में प्रियतम
> जीवन पावस रात बनाने
> सुधि बन छाया कौन? नीरजा पृ० १०।

कवियित्री का हृदय प्रेमानुभूति से आपूर्ण हो जाता है। वह प्रकृति के प्रत्येक व्यापार में उसके रूप गुण अथवा व्यापार का अनुभव करती हैं। मेघों को देखकर प्रश्न करती हैं—'लाये कौन संदेश नये घन, प्रेम की अतिशयता में उनकी अनुभूति अत्यधिक कोमल हो जाती है। नारी की सहज-मृदुलता वियोग दुःख में उन्हें मृदुलतम बना देती है। वह प्रकृति से अपना एकात्म्य स्थापित करती और मेघों से अपने प्रियतम का संदेश पाने की आशा करती है। दीर्घकालिक-प्रतीक्षा के उपरान्त उन्हे रजत-रश्मियों की छाया में धूमिल-घन

के समान प्रियतम की अस्पष्ट छाया दृष्टिगोचर होती है। वह प्रणय-निवेदन करती है, प्रार्थना करती है किन्तु प्रिय के स्पष्ट और प्रत्यक्ष-रूप के दर्शन नहीं होते, अन्त में उन्हे तमसावृता रजनी में प्रियतम का सदेश मिलता है। प्रिय का निमन्त्रण आता है दुर्गम पथ और भयावह वातावरण को देखकर वह काँप जाती है। वह कहती हैं :—

गरजता सागर तम है घोर
घटा घिर आई सूना तीर
अँधेरी सी रजनी में पार
बुलाते हो कैसे बे पीर ? नीहार पृ० ७१।

गंभीर-घन-गर्जन, निस्तब्ध-निशीथ और तमोमयी दिशा को देखकर भयभीत होकर उन्हें निमंत्रित करने वाले अपने प्रियतम की निर्दयता का अनुभव करके उन्हें झुंझलाहट होती है, किन्तु, कुछ ही क्षण मे प्रिय मिलन के आनन्द की कल्पना में वह इतनी अधिक मग्न हो जाती हैं कि वह यथार्थ को भूलकर आध्यात्मिक जगत में पहुँच जाती हैं। प्रेम की दृढ़ता उन्हें अविचल बना देती है। वह कहती हैं :—

ज्वाल के हों सिंधु तरलित,
तुहिन विजडित मेरु शत-शत
पार कर लूगी वही ॥ दीपशिखा पृ० १६।

उन्हे आत्म-विश्वास हो जाता है कि उस अनन्त शक्तिशाली 'जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे' की कृपा से वह पथ के समस्त विघ्नों को पार कर लेगी। उन्हे प्रिय-पथ के विघ्न भी प्रिय ही लगते हैं :—

प्रिय-पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं।

भक्त की साधना और एकदेशीय-प्रेम के वशीभूत हो उस दिव्य-स्वरूप का हृदय द्रवित होता है वह अपने आगमन के बेला की सूचना भेजते हैं। महादेवी समस्त विश्व में उल्लास का अनुभव करती हैं। तारक-पंग्यिा नृत्य करती हैं, मलयानिल अजलि भरकर पराग विकीर्ण करता है और विद्युत के पाश में आबद्ध मेघ हँस पड़ता है। चतुर्दिक उन्हें अपने प्रियतम के सदेश का निर्देश मिलता है। वह प्रश्न करती हैं :—

मुसकाता सकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ? नीरजा पृ० ८६।

महादेवी प्रिय के आगमन की कल्पना में पुलकित हो जाती हैं। उनके नेत्र रूप-सुधा पान करने को और श्रवण, मधुर-वाणी की कलित-रागिनी सुनने को उत्सुक होकर प्रतीक्षा करते हैं। प्रतीक्षा में कवयित्री के 'नयन श्रवण-मय, श्रवण नयनमय' हो जाते हैं। कवयित्री अपने प्रियतम के स्वभाव से परिचित हैं। उन्हें अंधकारमयी रात्रि में आना अच्छा लगता है। महादेवी अपने मिलन की समस्त सुविधाओं के प्रति सतर्क हो जाती हैं और प्राकृतिक वातावरण को प्रिय के अनुकूल बनाने का यथासंभव प्रयास करती हैं। वह नभोमंडल के दीप नक्षत्रों से प्रार्थना करती हैं कि जिस समय उनके प्रियतम आयें उस समय वे प्रकाश विकीर्ण न करें :—

करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना
हे नभ की दीपावलियो
तुम पल भर को बुझ जाना।

दीर्घकाल की साधना और प्रतीक्षा के पश्चात् प्रिय आते हैं और प्रिय-प्रिया का, आत्मा-परमात्मा का, जीव और ब्रह्म का, साधक और साध्य का एवं उपासक और उपास्य का महा-मिलन हो जाता है, ससीम, असीम में मिल जाता है और असीम-भक्त के लघु हृदय में प्रेम विवश हो समाहित हो जाता है। भक्त के हृदय से आत्म-संतोष और असीम-आनन्द के भाव इस प्रकार प्रस्फुटित होते हैं :—

मैं मिटी निस्सीम प्रिय में
वह गया बँध लघु हृदय में
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह॥ नीरजा पृ० ६६।

आत्मा और परमात्मा के चिर-मिलन के पश्चात् वह उस अनन्त का एक अंश बनकर रहने की कामना करती हैं अनन्त में मिलकर अपने अस्तित्व को खोना नहीं चाहतीं वरन् निराला के 'तुम तुंग हिमालय शृंग..... मैं सरिता' की भाँति परमात्मा को उद्गम और स्वयं को उस उद्गम स्थल का एक प्रधान अंश मानने की कामना करती हैं, वह अपने अस्तित्व का निर्देश इस भाँति करती हैं :—

तुम हो विधु के बिंब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान
तुम अनन्त जल-राशि ऊर्मि मैं
चंचल सी अवदात । रश्मि पृ० ५६-५७ ।

महादेवी का यह चिरमिलन और प्रेम उनमें अद्वैत भाव की सृष्टि करते हैं। रश्मियाँ विधु में समाहित हो जाती हैं और ऊर्मियाँ अनन्त जल-राशि में अन्तर्निहित हो जाती हैं। आत्मा-परमात्मा में लीन हो जाती है, वह स्वयं पृथक् रह कर भी प्रियतम मय हो जाती है और मिलन की व्यग्रता विलुप्त होकर चिर-सुख एवं असीम-आनन्द की प्राप्ति होती है अब उन्हें संदेश की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता क्योंकि :—

अलि कहाँ संदेश भेजूँ ?
मैं किसे संदेश भेजूँ ?
प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूँ ? दीपशिखा पृ० २२ ।

प्रियतम की दिव्य-छटा के दर्शन वह सर्वत्र करती हैं फिर संदेश कहाँ भेजे जब वह स्वयं ही प्रियतम-मय हैं, और संदेश किसको भेजें। पार्थक्य के अभाव में संदेश कैसा !!

प्रकृति में मानव भावों का आरोप

अज्ञात-प्रियतम का असीम-प्रेम ही उन्हें प्रकृति-प्रेम के प्रति प्रेरित करता है, प्रियतम के विरह मे उद्वेग की अवस्था में उनका प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। इनके काव्य में यद्यपि पंत और निराला की भाँति प्रकृति को इतनी अधिक सजीवता और मानव रूप नहीं प्रदान किया गया है किन्तु इनकी प्रकृति में भावुकता और स्पन्दन का अभाव नहीं है, प्रकृति ने इनके दुःख-सुख में भाग लिया है, इनका दुःख-भार हलका किया है और सुख में बधाई दी है। महादेवी ने प्रकृति के कष्ट में अपनी संवेदना प्रकट की है। उसके आँसू पोंछे हैं और अपनी सहानुभूति प्रकट की है। प्रकृति और कवियित्री दोनों स्नेहशीला और अभिन्न हृदया सहचरी बन जाती हैं।

वसन्त रजनी को यह मानव-रूप और मानव-व्यापारों से पूर्ण प्रकट करती हैं। रजनी सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर क्षितिज से धीरे-धीरे अवतरित होती है:—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ बसंत रजनी
तारक मय नव वेणी बंधन
शीश फूल-कर शशि का नूतन
रश्मिवलय सित घन अवगुंठन
पुलकती आ बसंत रजनी ॥ नीरजा पृ० ३ ।

बसंत-रजनी की वेणियों में तारक गुथे हैं । रश्मियों के भुज बंध हैं और मेघों का अवगुंठन है, वह धीरे-धीरे आकाश मार्ग से उतर रही है। महादेवी की प्रकृति मानव-रूप और मानव-व्यापारों से पूर्ण होती हुई मानव-भावों से भी संयुक्त है। यह मानव की ही भाँति दुःख-सुख का अनुभव करती है, मानव के हर्ष में यह पुलकित हो जाती और अपना हर्ष प्रकट करती है :—

सिहर सिहर उठता सरिता उर
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा भर
मचल-मचल आते पल फिर-फिर
सुन प्रिया की पद चाप हो गई
पुलकित यह अवनी । नीरजा पृ० ४ ।

दीर्घ-प्रतीक्षा के पश्चात् जब प्रिय के आने की सूचना मिलती है तो कवियित्री का हृदय पुलक और आनन्द से पूर्ण हो जाता है और हृदय के स्पन्दन की गति तीव्र हो जाती है। प्रकृति भी उनके साथ उसी प्रकार के अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव करती है। इस आनन्द के अवसर पर कवियित्री के साथ जो जलधर रोता था वह अब हँस देता है। प्रकृति में इस प्रकार का प्रति-स्पन्दन पाकर वह भी प्रकृति के साथ निकटतम संबंध स्थापित करती हैं। प्रकृति को कष्ट में देखकर उनके हृदय में भी कसक उत्पन्न होती है और प्रकृति की प्रसन्नता में वह खिलखिला पड़ती है। प्रफुल्लित पुष्प को धूल में मुरझाये देखकर इनके नेत्र सजल हो जाते हैं जब वह पुष्प के प्रेमी मधुप को 'अब इनमें क्या सार' कहते हुये सुनती हैं तो उनका हृदय घृणा से युक्त हो जाता है। वह अलि को भ्रमण करते हुये देखकर उसका तिरस्कार करते हुये कहती हैं :—

तू अकिंचन भिक्षुक है मधु का
अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं ॥ रश्मि पृ० ४६ ।

पुष्प की दीन दशा पर विचार करते हुये उनके हृदय से यही करुण गान निकलता है 'कितना निष्ठुर है संसार,' वह पुष्प के प्रति केवल संवेदना ही प्रकट नहीं करती वरन् उसके समीप बैठकर स्नेह पूर्वक स्नेहमयी सहचरी की भाँति सहानुभूति प्रकट करती हैं :—

मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार ने
स्वार्थमय सब को बनाया
है यहाँ करतार ने ।

पपीहे की 'पिउ पिउ' की रटन से द्रवित होकर वह उसके निर्मोही प्रियतम का पता पूछती हैं और फिर पतग, मीन और चकोर के प्रेम के आदर्श को प्रकट करते हुये उसे मौन का नवीन मन्त्र सिखाती हैं। इस भाँति मानव और प्रकृति का रागात्मक सबंध स्थापित हो जाता है। प्रकृति का मानव से प्रेम का आदान-प्रदान हो जाता है।

अलंकार

अलंकार रूप में भी उन्होंने प्रकृति का यथेष्ट मात्रा में उपयोग किया है। इन्होंने अलंकारों का उपयोग स्थूल सौन्दर्य के प्रकाशन के हेतु नहीं किया है। अधिकतर इनका ध्यान सौन्दर्य के प्रति आकर्षित न होकर हृदय की मनोवृत्तियों और निःश्वासों में रमा है। इनकी कविता अनुभूति-परक है। अतः इन्होंने प्रकृति से सूक्ष्म उपमान संचित कर मानव के सूक्ष्म-सौन्दर्य का वर्णन किया है। उपमान इनके कभी मूर्त हैं कभी अमूर्त, इसी भाँति मानव-सौंदर्य के आधार भी अधिकतः अमूर्त और अगोचर हैं। अलकारों में अधिकतः उपमा और रूपक का प्रयोग है।

अपनी परिस्थिति का प्रकृति में प्रतिबिम्ब देखती हुई वह गुण, व्यापार और अनुभूति का उपमालंकार के सहयोग से साम्य व्यक्त करती हैं। रात के अंचल से मोती बिखर कर जल बिन्दु हो जाते हैं और उनके स्वर्गीय स्वप्न केवल अश्रुबिन्दु रह जाते हैं। मानव और प्रकृति में करुणा के साधर्म्य के कारण यही कहना पड़ता है :—

सजनि ! मैं उतनी करुण हूँ, करुण जितनी रात ।। सांध्यगीत पृ० ४८ ।

अपने आँसुओं का वह वर्षा की सजलता में साम्य देखती हैं । हृदय की शून्यता और वियोग-व्यथा के कारण नेत्रों की सजलता का साम्य वह लाक्षणिक रूप में पतझार और वर्षा में दिखाती हैं । साधारण धर्म और वाचक को विलुप्त रखकर भी उपमानों के लाक्षणिक-प्रयोग की सहायता से विरहिणी का चित्र अंकित कर देती हैं :—

प्राण रमा पतझार सजनि अब नयन बसी बरसात री ।

अपने हृदय के उत्साह और भावों को वह पावस-घन-घटा और शरद-निशा उपमानों द्वारा व्यक्त करती हैं । यदि प्रिय के दर्शन हो जाते तो :—

पास घन सी उमड़ बिखरती,
शरद निशा सी नीरव घिरती
यों लेती जग का विषाद ।। नीरजा पृ० ७ ।

इनके अलङ्कार या तो उस अनन्त सौन्दर्य-शाली प्रियतम के अनुपम रूप को अभिव्यक्त करने के लिये प्रयुक्त हैं अथवा अपनी वेदना-विभूति और हार्दिक उल्लास को व्यक्त करने के लिये । वह वर्षा के नील-गगन, श्याम-घन और विद्युत-छटा में अपने प्रियतम के रूप का अवलोकन करती हैं :—

चितवन तम श्याम रङ्ग
इन्द्र धनुष भृकुटि भंग
विद्युत का अंगराग
उड़ता नभ में अछोर तेरा नव नील चीर ।
दीपशिखा पृ० २१ ।

प्रिय का सौन्दर्य अद्भुत है उनकी चितवन श्याम-तम के सदृश है । भृकुटि-विलास इन्द्र-धनुष के समान है और विद्युत उसका अंगराग है । नील गगन उसका अनन्त चीर है । ये सभी उपमान कवि के निजी नहीं हैं, सभी आदि काल से ही कवि परम्परा में प्रचलित रहे हैं । विद्युत को अंगराग बना कर सौंदर्य के प्रभाव को तीव्र कर दिया है ।

रूपक अलंकार के उदाहरण तो उनके काव्य में राशि-राशि हैं । आँसुओं को मोती का रूप प्रदान करते हुये वह उनके उद्भव के कारण और उद्गम स्थल में रूपक का सांगोपांग चित्रण करती हैं :—

तरल मोती से नयन भरे,
मानस से ले, उठे स्नेह घन,
कसक विद्यु पुलकों के हिमकण,
सुधि स्वाती की छाँह पलक की सीपी में उतरे।
दीपशिखा पृ० १०।

मन-रूपी मानस से स्नेह-रूपी घन का उद्भव होता है, मनोवेदना आँसुओं को जन्म देती है और शीतलता मेघों को जल-बिन्दुओं में परिवर्तित करती है। नेत्र रूपिणी सीपी में सुधि रूपी स्वाति-जल अश्रुमुक्ताओं का सृजन करता है, प्रिय की स्मृति से नेत्रों में जल भर आता है और स्वाति जल से सीपी में मोती प्रस्फुटित होते हैं। कवियित्री ने सागरूपक में मानव की व्यथा और आँसुओं का सीपी में आरोप कर दिया है।

रूपक अलङ्कार में इन्होंने 'प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन' आदि द्वारा कभी तो प्रातः काल और कभी सध्याकालीन दृश्यों का चित्रण किया है।

प्रतीप अलङ्कार में इनके प्रयोग एक दो ही स्थलों में हैं :—

'जिन चरणों को नख ज्योति ने हीरक-हार लजाये' आदि उदाहरणों में केवल परम्परा-पालन ही है। इस प्रकार के अलङ्कार-प्रयोग में न तो कवियित्री का उपमेय के प्रति उल्लास है और न उपमान के प्रति उत्साह।

इनके प्रकृति के शुद्ध आलंबन रूप में चित्र बहुत कम हैं। इन्होंने प्रातः सध्या, रात्रि आदि के दृश्यों का रूपक-मय चित्रण किया है। प्रकृति को मानव-रूप प्रदान करते हुये वसत के सुशोभन रूप का वर्णन देखिये :—

सकुच सलज खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली-डाली,
बुनते नव प्रवाल कुञ्जों में,
रजत श्याम-तारों से जाली।
शिथिल मधु पवन, गिन गिन मधुकण
हर सिंगार झरते हैं झर झर।

× × ×

पिक मधुमय वशी बोली,
नाच उठी सुनि अलिनी भोली,

अरुण सजल पाटल बरसाता,
तम पर मृदु पराग की रोली।

नीरजा पृ० ५६।

शेफाली के 'सकुच, सलज' खिलने में, मौलश्री के 'अलस' होने में, और मधु-पवन के मधुकण गिनने में प्रकृति की सप्राणता प्रकट होती है। यह चित्रण रूपकमय और कलात्मक है। अपनी कल्पना, प्रतिभा और सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा कवियित्री ने प्रकृति का नैसर्गिक चित्रण किया है। पिक की कूजन में पशी की तान, भ्रमर क्रीड़ा में नृत्य और पाटल-पुष्प के विकास में रोली की वर्षा का आरोप करते हुए वसन्त के प्राकृतिक-वैभव में चित्रमयता का समारोपण कर दिया है।

प्रकृति के उग्र रूप का वर्णन इन्होंने पृष्ठ-भूमि के रूप में किया है। अपने प्रियतम से मिलने के लिये वह 'उस पार' जाना चाहती हैं किन्तु मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। वह वर्णन करती हैं :—

घोर तम छाया चारों ओर
घटायें घिर आईं घनघोर।
वेग मारुत का, है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वत मूल,
गरजता सागर बारबार
कौन पहुँचा देगा उस पार ?
तरंगे उठीं पर्वताकार,
भयङ्कर करतीं हा हा कार
ग्रास करने नौका, स्वच्छंद
घूमते फिरते जलचर वृन्द
देख कर काला सिंधु अनन्त
हो गया हा साहस का अन्त।

नीहार पृ० २८।

इसमें इन्होंने भयङ्कर झँझावात से आलोड़ित, उत्ताल तरंगों से पूर्ण सागर का वर्णन किया है और प्रिय-मिलन के कठिन मार्ग का दिग्दर्शन कराया है।

प्रकृति में महादेवी जी ने दुःख और सुख तथा वैभव और पराभव सब का अवलोकन किया है, किन्तु यह निश्चित नहीं कर पातीं कि कौन सा रूप सत्य, शाश्वत और अधिक स्थायी है। विश्वात्मा से प्रश्न करती हैं :—

कह दे माँ क्या अब देखूँ ?
बहलाऊँ नव किसलय के
झूले में अलि शिशु तेरे,
पाषाणों में मसले या
फूलों से शैशव देखूँ। रश्मि पृ० ५४।

सोच विचार के उपरान्त उनका चिन्तनशील-हृदय विश्व के दुःखमय-जीवन के ही प्रति अधिक आकर्षित होता है, वह सर्वत्र करुणा और वेदना का अनुभव करती हैं, प्रातःकाल के सुन्दर वातावरण में जब कलियाँ अपने सुकुमार घूँघट को उठाकर कहती हैं, 'कितना मादक है संसार' उस समय रात्रि की अभिराम छवि पर मुक्ताओं की वर्षा करने वाले तारों की करुण परिस्थिति के प्रति भी आकर्षित होती है :—

तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हा! हा! कार,
आँसू से लिख लिख जाता है 'कितना अस्थिर है संसार'।

यह प्रकृति में दुःख और सुख दोनों को नृत्य करते देखती हैं प्रकृति के वैभव पर मुग्ध होकर जैसे ही इनके अधरों पर मृदु मुस्कान खेलती है उसी क्षण इन्हें अस्थिरता का भी ध्यान आता है और नेत्र सजल हो जाते हैं। इन्होंने वेदनामय और पीड़ामय विश्व का चित्रण किया है, आशा और निराशा के झूले में झूलती हुई यह करुणा-कलित वंशी की तान छेड़ती है। सुख की अपेक्षा सुख में अन्तर्निहित दुःख ही इन्हें अधिक प्रिय रहा है।

महादेवी जी के प्रकृति-चित्रण में रहस्यवाद ही प्रधान विषय है। अखिल विश्व इनके प्रियतम की दिव्य ज्योति से प्रकाशित है, उसी के वियोग में प्रकृति मलान है और उसके संयोग में उल्लसित है, संसार के समस्त कार्य उसी के आदेश का परिणाम हैं, उसकी तुलना में मनुष्य अपेक्षाकृत कितना क्षुद्र है। कवयित्री अपना सर्वस्व उस विश्वात्मा के चरणों में अर्पित कर देती है। वह अपना परिचय स्वयं ही देती हैं :—

सिंधु को क्या परिचय दें देव,
बिगड़ते बनते वीचि विलास,
क्षुद्र हैं मेरे बुद बुद-प्राण,
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश।

हिन्दी काव्य-साहित्य का अध्ययन और अनुशीलन करने से प्रकट होता है कि भिन्न-भिन्न कालों में प्रकृति चित्रण की प्रवृत्ति पृथक्-पृथक् रही है। आदिकाल में काव्यकार अधिकतः चारण और भाट थे, उनका जीवन सामन्तीय और नागरिक था। प्रकृति के उन्मुक्त क्षेत्र से वे बहुत दूर थे। उनकी काव्य रचना का मुख्य उद्देश्य वीरों का यशोगान करना और युद्ध में तत्पर वीरों के हृदयों में रणोत्साह का सचार करना था; अतः उनके कव्य में प्रकृति को स्थान नहीं मिला। मृगया आदि वर्णन के सहारे जो प्रकृति के चित्रण हैं उनके स्थूल और वाह्य रूप के ही दर्शन होते हैं। कवि का प्रकृति के प्रति अनुराग नहीं प्रतिभासित होता। दृष्टांत अथवा अलकार रूप में भी कवि की सुरुचि अथवा परिष्कृत बुद्धि का प्रकाशन नहीं होता। 'बारह बरस लौं कूकर जीवे और सोरहलौं जिए सियार' आदि दृष्टांत उनकी परिमार्जित रुचि के अभाव तथा प्रकृति के प्रति तटस्थता के परिचायक हैं। इस काल में इस प्रकार की उपेक्षा के कई कारण हैं। एक तो इस काल के काव्यकार यशोगान करने वाले अशिक्षित भाट थे।उन्हें काव्य और कला का बोध नहीं था, अतः वे सस्कृत रूप में काव्य रचना न कर सके। दूसरे ये राजाश्रित कवि ग्राम से दूर नगर में राजप्रासादों में रह रहे थे। इनका क्षेत्र सीमित था। प्रकृति के विशाल क्षेत्र में इन्हें परिभ्रमण करने का अवसर नहीं मिला। तीसरे इनका अधिकाश समय युद्धक्षेत्र में व्यतीत हुआ था, इन चारणों को अधिकतः सामन्तीय जीवन व्यतीत करना पड़ता था, युद्धकाल की मारकाट में वीरों के जौहर ही इनके काव्य के मुख्य उपकरण हुए, प्रकृति निरीक्षण की ओर इनका ध्यान नहीं आकर्षित हो सका अतएव इनके काव्य में प्रकृति के प्रति अनुराग की भावना नहीं प्रकट होती। जहाँ कहीं अलकार अथवा उद्दीपन रूप में प्रकृति का उपयोग है वहाँ केवल परम्परा पालन ही है। केवल नाल्ह के 'वीसलदेव रासो' में राजमती के वियोग वर्णन में यत्किंचित् भावुकता प्रकट होती है।

भक्ति काल मे सत कवि कबीर तो रहस्यावदी थे। उन्होने अपने राजा राम भरतार की बहुरिया बन कर उनकी छवि का अनुभव अपने अतर में ही किया और सदा यहीकहा 'मोको कहाँ ढूंढे बंदे मैं तो तेरे पास में' अपने पीव की ाप्ति के लिये उन्होने 'करका मनका डालकर मनका मनका फेर'

के सिद्धान्त को अपनाया अतः वाह्य प्रकृति उनके काव्य में स्थान न पा सकी, यदि प्रकृति के चित्रण का कुछ लेश दिखाई पड़ता है तो वह चकई आदि की अन्योक्तियों में ही। सूफी काव्यकार जायसी ने अपने ब्रह्म को वाह्य जगत में अर्थात् प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में व्याप्त पाया। आत्मा और परमात्मा का मिलन उन्होंने चार अवस्थाओं शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारीफत द्वारा वाह्य-जगत में ही दिखाया, भक्त को साधक मान कर प्रेम मार्ग की अनेक कठिनाइयों का वर्णन करते हुए आत्मा की परमात्मा से मिलने की व्यग्रता में विप्रलंभ शृंगार और मिलन के समय संयोग शृंगार के अन्तर्गत उद्दीपन रूप में इन्होंने प्रकृति का यथेष्ट चित्रण किया। परोक्ष ब्रह्म के अनन्त सौन्दर्य की दीप्ति से समस्त प्रकृति को पूर्ण दिखाया। बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से इन्होंने प्राकृतिक शोभा में दैवी शोभा का ही आभास पाया :—

नयन जो देखा कमल भा, निरमल नीर सरीर
हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोत नग हीर

उस अनन्त ज्योति की सौन्दर्य सत्ता का इन्होंने प्रकृति के नाना रूपों में दर्शन किया। प्रकृति को भी उस परोक्ष ब्रह्म की सौन्दर्य सत्ता के मोहक प्रभाव से प्रभावित दिखा कर अन्तर्जगत और बहिर्जगत में साम्य स्थापित किया। अनन्त सौन्दर्य की अभिव्यंजना के लिये भी वाह्य प्रकृति को माध्यम बनाया।

सगुण-भक्त-काव्यकारों में कृष्ण-भक्त कवियों ने तो कृष्ण के संबन्ध से ब्रज के लता, पता, यमुना, पुलिन, कदब, करील आदि वृक्ष और गोवर्धन-गिरि का चित्रण किया, और राम भक्त कवियों ने राम पदांकित भूमि को प्रधानता दी। राम के नाते अयोध्या, सरयू, पंचवटी और चित्रकूट को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ। राम और कृष्ण की अद्भुत रूप-राशि की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति का उपमान रूप में भी प्रयोग हुआ। इस काल की कविता में आलबन रूप में प्रकृति का जितना भी चित्रण हुआ उसमें कृत्रिमता नहीं थी। भक्त कवियों ने काव्य-निर्माण 'स्वान्तः सुखाय' किया था उनके ऊपर कोई प्रतिबंधन नहीं था। अपनी इच्छा से स्वच्छंदता-पूर्वक उन्होंने श्रीकृष्ण की विहार-भूमि और राम के जन्मस्थल तथा वनखंड में विचरण किया था। अतः अयोध्या, चित्रकूट, ब्रज का वर्णन यद्यपि भक्तिभाव के आवेश में ही किया गया तथापि उसमें अस्वाभाविकता नहीं आ पाई। चित्रण निजी निरीक्षण से पूर्ण रहे। भक्त कवि होने के कारण इनकी दृष्टि अपने आराध्य से संबन्धित

प्रकृति तक ही सीमित रही। अतः दृष्टिकोण संकुचित ही रहा। प्रकृति का विशाल क्षेत्र इनके काव्य में समुचित रूप से अनुराग का विषय न बन सका।

रीति काल में प्रकृति का उपयोग उद्दीपन और अलकार रूप में ही हुआ। स्वतंत्र प्रकृति चित्रण का महत्व सर्वथा विलुप्त हो गया। रीतिकाल के आदि कवि केशव ने वन, उपवन, नगर, सरिता आदि के चित्रण के लिये नियम निर्धारित कर दिये थे जिनके अनुसार कवि अभिलषित प्रकृति चित्रों में निर्दिष्ट वस्तुओं का उल्लेख मात्र कर देते थे। अब काव्यकारों के लिये प्रकृति-निरीक्षण निरावश्यक था। घर बैठे ही नियमबद्ध वस्तुओं का परिगणन कराकर उनके काव्य में प्रकृति चित्रों की पूर्ति हो जाती थी। इन काव्यकारों की दृष्टि राजप्रासादों का उच्च अट्टालिकाओं, कृत्रिम सरोवरों और पालित पशुपक्षियों तक ही सीमित थी। अतः इस काल में प्रकृति का स्वतंत्र महत्व नहीं रहा। भक्तिकाल के भक्त कवि तो अपने मजुल-मृदुल घोष से भगवान् का गुण गान और संकीर्तन करते हुए देश में स्वच्छंदता पूर्वक विचरण करते फिरते थे, उनके लिये विश्व ब्रह्ममय था जब कभी उन्होंने ब्रह्म के साथ प्रकृति के दर्शन किये तो उसके वास्तविक और नैसर्गिक रूप के ही किये। उसमें विधि की ही कुशल-कला का अनुभव किया, मानव की शिल्पकारी का नहीं। अतः संख्या में बहुत कम होते हुए भी उनके प्रकृति चित्रों में कृत्रिमता नहीं आ पाई किन्तु रीतिकाल के काव्यकार वेतन-भोगी राजाश्रित कवि थे। उन्हें प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में परिभ्रमण करने की स्वतन्त्रता नहीं थी। आश्रित होने के कारण इनका समय राज-प्रासादों के वैभव-विलास और कृत्रिम-सौन्दर्य में ही व्यतीत होता था। अतः प्रकृति चित्रण के लिये इनके पास न तो समय ही था और न स्वतंत्रता ही।

अलकार रूप में इन कवियों ने गत परम्परा उपमानों का ही उपयोग किया प्रकृति निरीक्षण का अभाव होने कारण अप्रस्तुत विधान में नवीनता नहीं आई राजकीय वैभव के प्रतीक फानूस, मशाल और मोती झालरों आदि के ही नवीन प्रयोग हुए। शृंगार-रस के आलबन थे राधाकृष्ण। किन्तु ये राधाकृष्ण भक्त कवियों के उपास्य राधाकृष्ण नहीं थे वरन् कवि अथवा राजा और उनकी प्रेमिका के प्रतीक थे। इनमें 'या लकुटी और कामरिया पर राज तिहू पुर को तजि डारों' की भाँति विलास के प्रति विरक्ति और आराध्य के प्रति आसक्ति नहीं थी। भक्त कवियों के लिये तो 'सबै भूमि गोपाल की' थी और जीवन में फक्कड़पन तथा आत्म-परितुष्टि के फल स्वरूप 'सबके दाताराम' थे, किन्तु

रीति काव्यकारों के हरि, श्याम और राधा लौकिक नायक-नायिका मात्र थे, और उनकी जीवनचर्या में भी राजकीय-ठाठबाट की झलक आगई थी। भक्त कवियों ने राधाकृष्ण की केलि कलायें 'स्वान्तः सुखाय' और रीतिः काल के कवियों ने रास और यमुना तटके अश्लील-वर्णन आश्रयदाता की विलासवृत्ति की तुष्टि के लिये किये थे। उस काल की कविता भक्ति परक और आत्म निवेदन के रूप में थी और रीतिकाल की वाह्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तथा राज दरबारों के रजत खंडों द्वारा क्रीत की हुई वस्तु थीं। उस काल की कविता में आत्मानुभूति की कमी होने के कारण मानव-हृदय को स्पर्श करने वाली हृदय-ग्राहिणी शक्ति नहीं थी।

वीरगाथा-काल में भी कविता सुन्दरी का शृंगार राजप्रासादों में ही हुआ था, किन्तु उस काल की कविता कामिनी ने नग्न-तलवारों और युद्ध-वीरों के साथ रणक्षेत्रों में ताण्डव-नृत्य किया था। उनके धवल-यश के ऐश्वर्य-गान गाये थे और रीति काल में मदिरा की मादकता से मद भरे नेत्रों से, विलासी राजाओं को उन्मत्त बना कर अपने नूपुरों से 'कंकण किन् किन्' की झंकार से राजप्रासादों को गुंजरित कर दिया था। अतएव उस काल में कृत्रिम वैभव और वाह्य सौन्दर्य के ही चित्रण प्राप्त होते हैं।

मुगलों की पराजय और अंग्रेजों के आगमन से राजप्रासादों के विलास-वैभव में शिथिलता आई, अंग्रेजों की नींव जमी, और उनके साहित्य तथा रीति रिवाजों का प्रसार हुआ। अंग्रेजी साहित्य के परिणाम स्वरूप भारतीयों में अपने देश के प्रति प्रेम जाग्रत हुआ और आधुनिक युग के प्रतिनिधि कवियों नेः—

> रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई
> हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई

कह कर भारत की दुर्दशा पर आँसू बहाये। अपने प्राचीन गौरव के पराभव और शताब्दियों की निरंतर परतन्त्रता ने उन्हें अत्यन्त दुःखित कर दिया था। राजभक्ति भी उन्हें अपेक्षित रही। आधुनिक युग के आदि काल अथवा भारतेन्दु काल के कवियों का प्रकृति के प्रति भी आकर्षण हुआ किन्तु उसमें मानवीय व्यापारों की ही प्रधानता रही। काल में अतीत की सभी विचारधाराओं का समन्वय रहा। कभी तो काव्यकारों ने आराध्य के सन्निकट ब्रज के 'लता-पता' बनने की अभिलाषा प्रकट की, कभी राधाकृष्ण

की केलि-क्रीडा का वर्णन किया और कभी रीति-धारानुसार प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रांकन किया, किन्तु यह सर्वमान्य है कि भारतेन्दु जी ने रीति परम्परागत विलास प्रियता की काव्यधारा को दूसरी दिशा में प्रवाहित किया। प्रकृति और देश दोनों ही, इस इन्दु के साथी प्रकाशवान नक्षत्रों के प्रिय विषय हो गये।

भारतेन्दु जी के अनन्तर प० श्रीधर पाठक एक नवीन दृष्टिकोण लेकर काव्य क्षेत्र में अवतरित हुए। इन्होंने प्रकृति में द्रवणशीलता का अनुभव किया और भारत के संवत् ५६ के भयंकर दुर्भिक्ष का भारत-विनय में वर्णन किया। इन्होंने प्रकृति के 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति' क्षण क्षण पर परिवर्तित होते हुए वेष का निरीक्षण किया और परम्परागत-रेखा का अतिक्रमण कर स्वच्छंदता पूर्वक जो गेहू और मटर के खेतों में विचरण किया:—

> जहां तहां पर रहट परोहे चल रहे
> बरहे जल के चारों ओर निकल रहे।
> जौ गेहूं के खेत सरस सरसों घनी
> दिन दिन बढ़ने लगी विपुल सोभा सनी।

प्रकृति के उद्दीपक रूप के चित्रण में भी उन्होंने नवीनता प्रकट की। प्रकृति को केवल ऐन्द्रिय सुख और अभिसार के लिये अनुकूल एवं प्रतिकूल न दिखा कर दाम्पत्य प्रेम और सात्विक भावों की अभिवृद्धि का साधन बनाया। इन्होंने प्रकृति को जन्मदायिनी मां और सुन्दरी नारी के रूप में भी देखा।

पाठक जी के काव्यकाल के प्रारंभ होने के कुछ काल पश्चात् ही द्विवेदी जी सुधारक और पथ-निर्देशक की भाँति काव्यस्थल में आये, इन्होंने रीतिकाल की विलासशृंखला को अपने सबल हाथों से नष्ट भ्रष्ट कर दिया और काव्यकर्ताओं को कर्म-पथ पर अग्रसर किया। परम्परा बद्ध शृंगारिक वर्णन की उपेक्षा करते हुए इन्होंने गुरु गंभीर गर्जन किया, 'नायिका भेद सदृश अनुचित वर्णन क्यों करना चाहिये, इस प्रकार की कविता करना वाणी की विगर्हणा है' प्रकृति के अनन्तक्षेत्र, उसके अद्भुत-अद्भुत खेल, पुष्पों के सौरभ और निस्सीम सृष्टि के निर्जीव तथा सजीव पदार्थों को चुन कर काव्य का विषय बनाने की दीक्षा दी। इनके अनुगामी काव्यकारों ने इसका पूर्णतया प्रतिपालन किया और 'प्रभात', 'सुमन', 'बुलबुल', 'कृषक' 'हेमन्त' आदि

कविताओं का निर्माण हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संस्कृत के प्रकृति-प्रेमी काव्यकारों की भाँति प्रकृति के सौम्य और उग्र, कोमल और कर्कश तथा साधारण और असाधारण रूपों का वर्णन किया। अम्बर-चुम्बी हिमालय शृंग, हरी-भरी घास, लिपे-पुते खलिहान, सूखे ताल और सियार तथा घुग्घू के कर्कश स्वर सभी का इन्होंने अपने काव्य में अंकन किया। कविवर मैथिली-शरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, सियारामशरण आदि काव्यकारों ने कर्म की प्रधानता प्रकट करते हुए पृष्ठ-भूमि और देश के अंग रूप में प्रकृति को महत्व प्रदान किया।

द्विवेदी जी के अनुयायी काव्यकर्ताओं में प्रकृति में मानवीकरण की प्रतिष्ठा, पं० रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में सबसे अधिक लक्षित होती है। पाठक जी की 'धन-विनय' की भावना विकसित होकर त्रिपाठी जी और रूप-नारायण पाण्डेय के काव्य में प्रतिफलित हुई। प्रकृति के सहचार ने उनमें रागात्मक संबंध की स्थापना कर मानव और प्रकृति को एक कर दिया।

द्विवेदी काल के समाप्त होते होते प्रसाद जी की काव्यधारा के पावन सलिल सिंचन से एक नवीन काव्यतरु विकसित हुआ। प्रसाद जी का 'कानन-कुसुम' उनके मधु-सिक्त काव्य स्रोत से प्रस्फुटित 'झरने' की 'लहर' में रहस्य-वाद के शीतल सुरभित समीर में अठखेलियाँ करता हुआ पंत के मंजुल मृदुल पल्लवों के मध्य में सुशोभित हुआ। निराला की ओजस्विनी वाणी ने शक्ति का संचार किया और महादेवी ने प्रकृति और पुरुष का एकीकरण कर दिया। इन काव्यकारों की काव्य रचना को 'छायावाद' नाम दिया गया।

'छायावाद' के इस काल में प्रकृति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। प्रकृति मानव की सहचरी बन गई। इस काल के मानव के त्रस्त मन ने प्रकृति के सुरम्य अंचल में आश्रय-स्थान प्राप्त किया, अपनी तन्मयता में मानव ने प्रकृति में प्रेयसी के कोमल-कर-स्पर्श और अनन्त-आनंद का अनुभव किया। प्रकृति-रानी सुकुमार-कोमल-कल्पना के अनुभव रूप में प्रस्फुटित हुई। कवियों ने प्रकृति का विभिन्न-रूपों में नाना प्रकार से शृंगार किया। इस काल में प्रकृति चित्रण को महत्व प्राप्त होने के कई कारण हैं।

आदि-काल से द्विवेदी-काल तक प्रकृति का स्थूल सौन्दर्य ही कविता का विषय रहा था। काव्यकारों ने हिमावृत पर्वतशृंगों की शुभ्रता, वसंत में कोकिल की कूक, सरोवरों के कमल, किंशुक, कचनार, आदि के पुष्प आदि से

पूर्ण वस्तु जगत् का ही वर्णन किया था। चातक, चकोर, मीन, चकवा आदि परम्परावश इनके काव्य के अंग बन गये थे। अनन्य-प्रेम के दृष्टांत-स्वरूप इन्हें काव्य में उपयुक्त स्थान प्राप्त हुआ था, किन्तु इन्होंने प्रकृति के स्थूल-सौन्दर्य में अन्तर्निहित परोक्ष सौन्दर्य का अनुभव नहीं किया था। पर्वतों के शुभ्र-हिम शृंगों में इन्हें किसी-चेतन शक्ति का आभास नहीं प्राप्त हुआ था। कोकिल की वाणी को सतर्क होकर नहीं सुना था, पपीहा और चकवा के साथ एकात्म्य स्थापित नहीं किया था। आधुनिक काल का मानव प्रकृति के स्थूल सौन्दर्य में अपना मन न रमा सका, केवल बहिर्जगत् के चित्रण से उसकी सौन्दर्यानुभूति तृप्त न हो सकी, उसकी सूक्ष्म दृष्टि ने अन्तर्जगत् में प्रविष्ट होकर एक विराट् शक्ति के दर्शन किये, आनन्द प्राप्त किया और उसकी आकुल अनुभूति उस अलौकिक-आनन्द की अभिव्यक्ति के लिये छटपटाने लगी और उसने हिमाच्छादित पर्वतशृंगों की रजत-श्रेणियों में अव्यक्त शक्ति की स्मिति का, निर्झरिणी के निनाद में उसकी गभीर ध्वनि का और चन्द्र की निर्मल-ज्योति में उसकी छवि का दर्शन किया। कोकिल का वर्णन परम्परावश न करके उसकी वाणी को अनुराग-सहित श्रवण किया और बसन्त में 'काली कसाइनी कोइलिया' आदि शब्दों में उसकी भर्त्सना न कर उसकी वाणी 'कु-हू-कू' आदि शब्दों में ज्यों का त्यों चित्रण किया। मीन की व्यथा से मानव तड़प उठा और चातक की पीड़ा से मानव के नयन सजल हो गये।

> नव मेघों को रोता था जब चातक का बालक मन
> इन आँखों में करुणा के घिर घिर आते थे सावन।

इस प्रकार इस काल में स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया हुई। लोकदृश्यों के बाह्य सौन्दर्य का स्थान अंतरव्यापिनी सौन्दर्य-सुषमा ने ले लिया और वस्तु-परिगणन के स्थान में आत्मानुभूति-परक भाव-प्रधान काव्य की रचना हुई। कवि भाव-लोक में विचरण करता हुआ कल्पना के मधुर स्वप्नों में व्यस्त हो गया। प्रकृति के अन्तर में उसने अद्भुत सौन्दर्य के दर्शन किये।

प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण का एक मुख्य कारण द्विवेदी काल की उपदेशात्मकता थी। द्विवेदी जी ने काव्य में वर्णनात्मक शैली का निर्देश करते हुए कठोर आदर्शवाद की ओर संकेत किया था। उनके अनुयायी इसका अक्षरशः पालन कर रहे थे। और काव्य में कर्तव्य, प्रेम और आदर्श का

चित्रण कर रहे थे। यद्यपि प्रकृति निष्प्राण थी तथापि गगन चुम्बी पर्वत चारित्रिक दृढ़ता का, तरुवर परोपकार का, चींटी परिश्रम का और कोकिल मधुर वाणी का उपदेश देती थी। काव्यकारों ने रीतिकाल की विलास-भावना की प्रतिक्रिया-स्वरूप नैतिकता के स्थूल दृश्य अंकित किये, प्रकृति ने पग-पग पर उपदेश देकर मानव को सचेत किया :—

रवि रात बीतने पर प्रकट होते प्रातः समय में,
बस यही सोच कर आप भी धीरज रखिये हृदय में।

रूपनारायण पांडेय।

नव-कलिका के विकास पर प्रसन्न होकर, उसके स्थूल सौन्दर्य का वर्णन करके कवि का ध्यान पुनः आदर्शवाद की ओर उन्मुख हुआ और उसके सुरभि-दान की कवि ने इस प्रकार भूरि-भूरि प्रशंसा की :—

तुझ सम सुकृती हैं कौन ए स्नेह शीले।
श्रम फल सबको दे ईश ऐसे रसीले।

लोचन प्रसाद पांडेय।

प्रकृति के इस आदर्शपूर्ण स्थूल रूप के प्रति प्रतिक्रिया हुई, इस काल के शिक्षित मानव ने नैतिक शृंखला के बंधन में बन्दी होना स्वीकार न किया. साथ ही वह शृंगार-भावना के परिमार्जन के पक्ष में था किन्तु वह उसका समूल नाश नहीं करना चाहता था। प्रकृति को वह परम्परा की शृंखला में बंधा हुआ नहीं देखना चाहता था, वह सहम गया, किन्तु उसके सतत-चिन्तन ने उसे एक सुरक्षित पथ दिखाया। उसने प्रकृति के अन्तर में एक नारी-रूप की उद्भावना की और उसके साथ अपना अखंड एवं निकटतम संपर्क स्थापित किया। प्रकृति उसकी प्रेयसी हो गई। अंग्रेजी-साहित्य के प्रभावस्वरूप स्वच्छन्द-प्रणय की अनुभूति के अभिव्यक्तीकरण के लिये उन्हें सुगम, स्वतन्त्र और विशाल-क्षेत्र मिल गया। उन्होंने ऊषा नागरी को कभी अंबर-पनघट में ताराघट को डुबो कर पानी भरते देखा, कभी मंद मरालगति से जाती हुई यामिनी पर मुग्ध हुए, कभी संध्या-सुन्दरी के घुंघराले और काले अलक-जाल में उलझ गये और कभी रात्रि से वार्तालाप करने में व्यस्त हो गये :—

रूपसि! तेरा घन केश पाश
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश पाश। महादेवी।

प्रकृति में वासनामय सौन्दर्य का भी उन्होंने निरीक्षण किया। निराला की 'शेफालिका' का वर्णन शृंगार-रस में वासनापूर्ण रति का उदाहरण है। इस प्रकार प्रकृति के माध्यम द्वारा इन काव्यकारों ने अपनी दमित वासनाओं का चित्रण किया। प्रकृति में चेतन व्यक्तित्व का आरोप कर शृंगार-रस-पूर्ण वर्णन के द्वारा इन काव्यकारों को द्विगुणित लाभ हुआ। यह आदर्शवादी काव्यकारों के आक्षेपों से भी विमुक्त रहे और इनकी अंतर्वृत्तियों की अभिव्यंजना भी हो गई। जब प्रकृति में चैतन्य की उद्भावना हो गई तो इन्होंने मानव हृदय और सप्राण प्रकृति में एक ही प्रकार की भाव-धारा का अनुभव किया। प्रकृति के मोद-भरे सदेश और मौन-निमन्त्रण ने उनकी आत्मा को मुखरित किया, प्रकृति ने उनसे प्रश्न किया :—

लाई हूँ फूलों का हार,
लोगी मोल, लोगी मोल?

प्रकृति इनके कष्ट में उद्वेलित होकर आँसू बहाने लगी, हर्ष में प्रफुल्लित हुई और विजय में उसने जयघोष किया। मानव के हृदय का प्रकृति से एकात्म्य हो गया, अनुराग के अव्यक्त-तार प्रकृति के साथ ही मानव हृदय को झंकृत करने लगे :—

कुमुद दल से वेदना के दाग को
पोंछती जब आँसुओं से रश्मियाँ
चौंक उठती अनिल के निःश्वास छू
तारिकायें चकित सी अनजान सी
तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है?

महादेवी।

आधुनिक काव्य के प्रमुख काव्यकार—प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने प्रकृति के अमूर्त और जड़ पदार्थों को मूर्त और सप्राण मानकर मानव के स्नेह का आदान प्रदान प्राप्त किया। उन्होंने प्रकृति में मानव-रूप, व्यापार और भावों का प्रतिबिंब देखा और अपने हृदय में प्रकृति के हर्ष-विषाद का प्रतिरूप पाया।

मानव और प्रकृति का यही रागात्मक संबंध विराट-सत्ता के सम्मिलन का माध्यम हुआ। मानव ने प्रकृति के मानवीय व्यापारों को परोक्ष सत्ता द्वारा

अनुप्राणित अनुभव किया, उसके जिज्ञासु मन को प्रकृति के अंतर में अद्वितीय-सौन्दर्य की अनुभूति हुई, उसके नयन-वाणों से उन्होंने समस्त प्रकृति को विद्ध देखा। प्रकृति के रुदन का रहस्य उसकी समझ में आ गया। कवि की आत्मा कह उठी :—

अलि ! मैं कण कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहिचान चली। महादेवी।

अंत में प्रेम की चरम सीमा उस निस्सीम के मिलन के आनन्द में निमग्न हो गई।

अब तक प्रकृति का मानव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिये उपयोग सबसे अधिक रीतिकाल में हुआ था। इस काल में भी काव्यकारों ने रूपाभिव्यक्ति के लिये प्रकृति को माध्यम बनाया। पहिले ही कहा जा चुका है इस काल में सूक्ष्म का स्थूल के प्रति विद्रोह हुआ। अतएव परम्परागत स्थूल उपमानों के स्थान में नवीन और सूक्ष्म उपमानों का उपयोग किया गया। कभी तो इन्होंने रूपाभिव्यक्ति के लिये प्रकृति का माध्यम बनाया। पहिले ही कहा जा चुका है कि इस काल में सूक्ष्म का स्थूल के प्रति विद्रोह हुआ, अतएव परम्परा-गत स्थूल उपमानों के स्थान में नवीन और सूक्ष्म उपमानों का उपयोग किया। कभी इन्होंने अमूर्त की मूर्त आधारों द्वारा अभिव्यंजना की :—

कौन प्रकृति के करुण काव्य सा वृक्ष पत्र की मधु छाया में
लिखा हुआ सा अचल पड़ा है अमृत सदृश नश्वर काया में ? पंत।

और कभी मूर्त को अमूर्त रूप प्रदान किया :—

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी। निराला।

अंग्रेजी साहित्य के प्रभावस्वरूप इस काल के कवियों की भावाभिव्यक्ति का रूप बदला, अभिधा द्वारा अभिव्यंजना के सीधे और सरल पथ को छोड़-कर इन्होंने लक्षणा को अपनाया और साधारण बात को शब्दों की आकर्षक-योजना-द्वारा अभिव्यक्त किया :—

कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते,
चपल चोखी चोट कर अब पंख की
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को। पंत।

हिन्दी साहित्य में प्रतीक [symbolism] रूप में प्रकृति का उपयोग बहुत प्राचीन है। पुरुषों की स्वार्थमयी प्रकृति का प्रतीक भ्रमर तो भ्रमर गीत की परम्परा में अमर हो गया। चकई-चकवा विरही दम्पतियों के प्रतीक बन गये थे, आजकल के कवियों ने इस प्रवृत्ति को कुछ विशेष आश्रय दिया। दिवा-रात्रि, प्रकाश-अंधकार, बसंत-मधुप आदि क्रमशः सुख दुःख, ज्ञान-अज्ञान, और यौवन तथा स्वार्थपूर्ण-प्रणयी के प्रतीक कवि-समय-सिद्ध हैं, हंस न्याय का और मीन, पतंग तथा चातक अनन्य प्रेम के प्रतीक हैं। छायावाद-काल के कवि ने नवीन प्रतीकों को जन्म दिया, झंझावात को हृदय के उद्वेग और विद्युत को स्मृति का प्रतीक मानकर प्रसाद जी ने नवीन लाक्षणिक रूप में अपनी व्यथा को 'आँसू' में व्यक्त किया :—

झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नीरदमाला।

पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ घेरा डाला। प्रसाद।

फूल सुख का और शूल दुःख का प्रतीक बन गया। वीणा, रागिनी और लहर क्रमशः हृदय, वेदना और कामना के प्रतीक बन गये। हृदय के लिये उद्यान और भावों के लिये सुमन भी प्रतीक बने। भावों की तीव्रानुभूति में इन कवियों ने एक और शैली अपनाई वह है विशेषण विपर्यय (Transferred Epi thot) का शैली। अमूर्त को मूर्त योजना कर विशेषण को विशेष्य और विशेष्य को विशेषण में परिणत कर दिया। निराला ने यमुना से पूछा:—

चल चरणों का व्याकुल पनघट कहाँ आज वह वृन्दा धाम ?

वास्तव में पनघट व्याकुल नहीं उस पर पानी भरनेवाली गोपियाँ व्याकुल है। यह इस काल में अंग्रेजी साहित्य की ही देन है। इस शैली द्वारा भाषा में चित्रमयता और रंगीनी आई और भावों में सबलता का प्रादुर्भाव हुआ। वर्ड्स-वर्थ, शैली, कीट्स, बॉयरन आदि प्रकृति प्रेमी अंग्रेजी काव्यकारों के प्रभाव-स्वरूप ध्वनि-बोधक शब्द भी इन काव्यकारों के काव्य में अवतरित हुए। अंग्रेजी के मर्मर् (murmur) बज (buzz) चर्प (chirp) फ्लटर (flutter) बबिल् (bubble) आदि शब्दों के आधार पर आधुनिक कवियों ने 'पवन गीत' में सर्सर् मर्मर् झन् झन् सन्सन्, नूपुरों के शब्दों में रुन रिन् रन् झन् किन् किन्, निर्झरों में कल्-मल् टल्-मल् छल्-छल् रल्-मल् झर् झर् आदि ध्वनि बोधक शब्दों का प्रयोग किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद ने अपनी एक विशेष शैली का निर्माण कर लिया। उनकी शैली उनके विषय के अनुकूल थी। अपने विषय को छायावादी कवियों ने भारतीय एकात्मवाद से संबंधित कर लिया और प्रकृति चित्रण के परम्परागत रूप में एक नया स्पन्दन उत्पन्न कर दिया। उन्होंने प्रकृति-चित्रण को अलंकार और उद्दीपन रूप में ही न देखकर आलम्बन रूप से भी देखा। प्रकृति और मानव का रागात्मक संबंध स्थापित हो गया। प्रकृति के आलम्बन रूप के चित्रण में इन कवियों पर अंग्रेजी काव्यकारों का प्रभाव अवश्य है। किन्तु इन्होंने प्राकृतिक चित्रण के वे ही स्थल चुने जिनका अपने देश से संबंध था। वर्ड्सवर्थ के डेफोडिल्स (Daffodils) लांग फैलो के 'रेन इन समर' (Rain-in-summer) जॉन लोगन के 'कुक्कू के प्रति' (To the Cuckoo) टेनीसन के 'ब्रुक' (The Brook) शैली के 'क्लाउड' (The Cloud) और ब्रिजेज का 'नाइटिंगेल्स' (Nightingales) के अनुसार इन काव्यकारों ने भी 'बादल-राग,' 'निर्झर,' 'जलद के प्रति' 'प्रपात के प्रति,' 'तरंगों के प्रति,' 'पवन गीत,' 'झकोरा का गान,' आदि कविताओं की रचना की है। जिस प्रकार डेफोडिल्स की रचना से वर्ड्सवर्थ का मुग्ध मन नृत्य करने लगता है (My heart with pleasure fills and dances with The daffodils) उसी प्रकार 'अल्मोड़े का बसन्त' कवि पंत को उन्मत्त बना देता है। उसका बादल शैली के 'क्लाउड' और टेनीसन के 'ब्रुक' (Brook) की भाँति स्वयं अपना परिचय देते हैं। निराला का 'बादल राग' शैली के 'ओड टू दी वेस्ट विंड के' अनुसार वर्णित है। इसमें कवि अपनी ओर से प्रकृति का वर्णन करता है। प्रकृति स्वयं अपना परिचय नहीं देती। इस काल के कवियों के लिये प्रकृति का प्रत्येक तत्व स्वतंत्र चित्रण का विषय बन जाता है। प्रकृति के प्रति उत्कट प्रेम उन्हें प्रकृति में सप्राणता का आभास देता है। प्रकृति में चैतन्य का अनुभव कवि रवीन्द्र की कलित-कविता का परिणाम है। पंत और निराला पर टैगोर का प्रभाव अधिक मात्रा में है। निराला की 'संध्या' और 'संध्या सुन्दरी' को पढ़ कर कवि रवीन्द्र का संध्या वर्णन याद आता है:—

नामे सन्ध्या तन्द्रालसा सोनार आंचल खसा
होते दीप शिखा

दिनेर कल्लोल पर टानी दिया झिल्ली स्वर
घन यवनिका
ओपारेर कालो कुले काली घनाइया तुले
निशार कालिमा

[संध्या उतर रही है। नीद से उसकी आँखे अलसाई हुई हैं, उसके सोने का आंचल खुल खुल कर गिर रहा है। उसके हाथ में प्रदीप की शिखा कैसी शोभा दे रही है झिल्लियों के स्वर ने दिन के कल्लोल पर एक घोर यवनिका खैंच दी है। रात का अँधेरा उस पार के काले तट की स्याही को और गहरा कर देता है]

आलंबन के अतिरिक्त प्रकृति का सापेक्ष रूप से महत्व अलंकार प्रयोग में भी हो सकता है। आदि काल से कवि मानव सौन्दर्य और काव्य-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति मे अनेक उपकरण लेता रहा है। सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यंजना के लिये काव्यकार अखिल-विश्व मे उपमानों की खोज करता है और ऊपा में स्मिति, धवल पर्वत श्रेणियों में निर्माल्य, पूर्ण-विकसित-पुष्प में प्रफुल्लता, ज्योत्स्ना मे दीप्ति और तड़ित में कान्ति आदि मूर्त और अमूर्त सौन्दर्य का आभास पा प्रकृति के माध्यम द्वारा मानव और प्रकृति दोनों के प्रति अपना उल्लास प्रकट करता है। यद्यपि अलकार रूप में प्रकृति का स्थान आलंबन की भाँति महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि अलंकार में प्रकृति और मानव दोनों ही समान रूप में काव्य के विशिष्ट अग होते हैं, तथापि प्रकृति चित्रण के अन्य प्रकारों में प्रकृति के अलकार प्रयोग को सबसे अधिक महत्व प्राप्त है। सौन्दर्य की तीव्रानुभूति की आकुलता काव्यकार को प्रकृति निरीक्षण के लिये बाध्य करती है, कभी तो उपमानों की खोज करते करते प्रकृति दर्शन में काव्यकार का मन इतना अधिक रम जाता है कि वह अत्यन्त विवश और विनम्र भाव से अपनी विवशता प्रकट कर देता है। उस समय उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, आदि अलंकारों के प्रयोग द्वारा प्रकृति का महत्व स्वीकार करता है। इस प्रकार प्रकृति के आलकारिक रूप का भी निजी स्थान प्रतिष्ठित हो जाता है।

हमारे हिन्दी के काव्य प्रणेताओं को अलंकार, सस्कृत के ह्रास काल में कवि परम्परा में प्राप्त हुये थे। हिन्दी के काव्य-कर्ताओं ने सस्कृत के कवियों का अनुसरण किया, उन्हें प्राकृतिक उपमानें कवि परम्परा में प्रचुर मात्रा में

मिले और निरपेक्ष भाव से उन्होंने प्रचलित उपमानों का काव्य में वर्णन कर दिया। वे चन्द्र के औज्वल्य पर मुग्ध नहीं हुए थे, मृदुल घास की हरीतिमा ने उन्हें रोमांचित नहीं किया था, कोमल-किसलय के अनुराग में वे नहीं रंगे थे, मृगशावक की भोली चितवन का उन्होंने अपलक दृष्टि से निरीक्षण नहीं किया था, उनके निकट तो चन्द्र, किसलय, हरिण आदि का सौन्दर्यगत महत्व न होकर केवल काव्यगत महत्व था, किन्तु आधुनिक काल के छायावादी कवियों ने प्राकृतिक उपमानों में स्वच्छन्दता से कार्य लिया, उन्होंने प्रकृति के शोभन, सौम्य और आकर्षक चित्रों का चयन किया, प्रकृति की सौन्दर्य-सुषमा पर मुग्ध हुए और उसका मानव के सौन्दर्य-प्रकाशन में प्रयोग किया। प्राकृतिक उपमानों का उपयोग केवल स्थूल सौन्दर्य ही के लिये न करके मानव के अमूर्त भावों की व्यञ्जना के लिये भी किया गया। सुधि, स्मृति, लज्जा, अभिलाषा, आशा, चिन्ता आदि अमूर्त भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रकृति के उपमानों द्वारा हुई।

छायावादी काव्यकार राजाओं के कक्ष में रहनेवाले आश्रित कवि नहीं थे। ये राजनैतिक बंधनों से मुक्त थे। ये द्विवेदी युग की उपदेशात्मक प्रवृत्ति के प्रतिक्रिया-स्वरूप अपनी दमित-वासनाओं के विकास के लिये अत्यन्त व्यग्र थे, इन्होंने अपने हृदय की भावुकता और भावनाओं के प्रकाशन के लिये प्रकृति को साधन बनाया और मानव तथा प्रकृति में संबंध स्थापित करने के लिये प्रकृति का विविध रूपों में उपयोग किया। आलंबन और अलंकार के अतिरिक्त प्रकृति को सप्राण मान कर इन्होंने मानव-भाव और मानव-रूप का भी आरोप किया। रहस्यवादी दृष्टिकोण होने पर इन्होंने प्रकृति में ही विश्वात्मा के दर्शन किये।

देश की आर्थिक स्थिति और दयनीय दशा के कारण इन छायावादी भावुक कवियों का ध्यान शोषितों के प्रति आकर्षित हुआ। पंत और निराला कल्पना के स्वर्णिम लोक की उपेक्षा कर 'कृषक बाला' 'चमारों के नाच' सड़क पर पत्थर तोड़ने वाली और दीन बालकों के नग्न शरीर के करुण-दृश्य को देखने में व्यस्त हो गये। अब छायावाद का स्थान प्रगतिवाद ने ले लिया है। नवीन, दिनकर, अंचल, भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र, सुमन, राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल आदि अनेक कवि शोषित वर्ग के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए काव्य रचना कर रहे हैं। प्रगति के इस युग में प्रकृति का स्थान गौण हो गया है। मानव का महत्व अपेक्षाकृत प्रकृति से अधिक है।

परिस्थिति के अनुसार जीवन की कृत्रिमता के प्रतीक यन्त्र और मानव-निर्मित वस्तुएँ प्रकृति का स्थान ले रही हैं और प्रकृति मनुष्य की दृष्टि से ओझल होता जा रही है। सम्पत्ति के विषम-विभाजन और भीषण आर्थिक शोषण से आक्रान्त ये कविगण प्रकृति के क्षेत्र से दूर हटते जा रहे हैं। इस प्रकार प्रकृति चित्रण का महत्व क्रमशः घटता जा रहा है, किन्तु प्रगतिवाद का कवि स्वयं को पूर्णरूपेण प्रकृति से तटस्थ नहीं रख सका है, किसी न किसी रूप में वह प्रकृति का उपभोग कर ही रहा है। 'करील,' 'तार-सप्तक', 'प्रलय-सृजन,' 'मिट्टी और फूल,' आदि में प्रगतिशील कवियों ने भी प्रकृति-चित्रण किया है, यही इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य स्वभाव से ही प्रकृति प्रेमी है, वह पूर्णतः प्रकृति से संबंध विच्छेद नहीं कर सकता।

प्रकृति आदिकाल से ही मानव की सहचरी रही है, जन्म काल से ही मानव को माँ की ममतामयी क्रोड़ के साथ प्रकृति का सहचार प्राप्त होता है अतः काव्य में प्रकृति चित्रण की अनिवार्यता असंदिग्ध है। प्रकृति-चित्रण का महत्व तो रहेगा ही क्योंकि सांसारिक प्रत्याघातों से ऊब कर मनुष्य, मन की शान्ति के लिये अपने व्यक्तिगत क्षेत्र से बाहर जाना चाहता है। उस समय प्रकृति के सहचार में उसे शान्ति और सुख का अनुभव होता है। वह प्रकृति के प्रति आकर्षित होता और अपना स्नेह प्रकट करता है।

पुस्तक-सूची

ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक तथा सम्वत्
१. वाल्मीकीय रामायण	चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा	रामनारायण लाल, बुकसेलर इलाहाबाद, सन् १६२७
२. कालिदास ग्रथावली	कालिदास	
३. उत्तर राम चरित	भवभूति	
४. मालती माधव	भवभूति	
५. बीसलदेव रासो	सत्यजीवन वर्मा,	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी स० १६२८
६. पृथ्वीराज रासो	चंद बरदाई	टाटा प्रिंटिंग वर्क्स, बनारस
७. आल्ह खंड बड़ा	जगनिक	बम्बई में मुद्रित
८. गीत गोविन्द काव्यम्	जयदेव	भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस, संवत् १६६८
६. कबीर रचनावली	संग्रहकर्ता 'हरिऔध'	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् १६६६
१०. जायसी ग्रथावली	जायसी संपादक रामचन्द्र शुक्ल	इन्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, सन् १६३५
११. विद्यापति पदावली	विद्यापति	पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, संवत् १६६२
१२. रामचरित मानस	तुलसीदास	टीकाकार श्यामसुन्दर दास इंडियन प्रेस लि० सं० १६२७
१३. गीतावली	तुलसीदास	गीताप्रेस गोरखपुर, स० १६६१
१४. कवितावली	,,	,, ,, ,, १६६४
१५. दोहावली	,,	,, ,, ,, १६६६
१६. विनय पत्रिका	,,	,, ,, ,, १६६५
१७. बरवै रामायण	,,	यूनीवर्सिटी बुक डिपो, आगरा सन् १६२९
१८. तुलसी इंटरमिजिएट कोर्स	,,	

१६. भ्रमर गीत सार	सूरदास	संपादक रामचन्द्र शुक्ल साहित्य सेवा सदन, बनारस
२०. सूर पञ्चरत्न	सूरदास	रामनारायण बुकसेलर, इलाहाबाद संवत् १६६८
२१. सूर सुषमा	,,	इंडियन प्रेस लि० प्रयाग, सं० १६८६
२२. रास पंचाध्यायी और भँवरगीत	नंददास	लक्ष्मी आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, दारागंज प्रयाग, संवत १६६३
२३. नंददास, दो भाग	सं० उमाशंकर शुक्ल	प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग सन् १६४२
२४. मीरा की पदावली	मीरा	वेलवेडियर प्रेस
२५. रामचन्द्रिका	केशव	इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग संवत १६६२
२६. कविप्रिया	,,	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १६२४
२७. रसिक प्रिया	,,	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १६६१
२८. कवित्त-रत्नाकर	सेनापति	हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय, प्रयाग सन् १६३६
२६. बिहारी बोधिनी	बिहारी	साहित्य सेवा सदन, बनारस, संवत १६६६
३०. भूषण ग्रंथावली	सं० मिश्र बन्धु	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संवत १६६६
३१. मतिराम ग्रंथावली	सं० कृष्ण बिहारी मिश्र	गंगा ग्रंथागार, लखनऊ सं० १६६६
३२ सुखसागर तरंग	देव	बंबई बुकसेलर, अयोध्या, सं० १६६४
३३. देव सुधा	देव	
३४ पद्माकर पंचामृत	सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	रामरतन पुस्तक भवन, काशी, सं० १६६२
३५. रसनिधि हजारा	रसनिधि	भारत जीवन प्रेस, काशी, सन् १८६२

३६. रसखान रत्नावली	सकलनकर्ता 'कविकिंकर'	भारतवासी प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९४१
३७. सुधा-निधि	तोष	भारत जीवन प्रेस, काशी, सन् १८९२
३८. पजनेस प्रकाश	पजनेस	भारत जीवन यन्त्रालय, काशी
३९. नवरस तरंग	बेनीप्रवीण	प्राचीन कविमाला,कार्यालय, काशी, सन १९२५
४०. रहिमन विनोद	रहीम	
४१. अन्योक्ति कल्पद्रुम	दीन दयाल गिरि	यूनीवर्सिटी बुक डिपो, आगरा
४२. घन आनन्द	सग्रहकर्ता शंभु-दयाल बहुगुना	साहित्य भवन लिमिटेड,प्रयाग संवत् २००१
४३. ठाकुर ठसक	सपा० भगवानदीन	
४४ भारतेन्दु ग्रथावली	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सवत् १९९१
४५. भारतेन्दु नाटकावली	,,	इंडियन प्रेस लि० प्रयाग, स० १९२७
४६. पूर्ण संग्रह	देवीप्रसाद 'पूर्ण'	गगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, संवत् १९८२
४७. भारत गीत	श्रीधर पाठक	
४८. द्विवेदी काव्यमाला	संग्रहकार देवीदत्त	इंडियन प्रेस लि० प्रयाग, सन १९४०
४९. बुद्ध चरित	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं० १९७४
५०. प्रिय प्रवास	'हरिऔध'	खड्ग विलास प्रेस, बाकीपुर, चतुर्थ आवृति
५१. वैदेही-वनवास	,,	हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस संवत् १९९६
५२ रस कलस	,,	पुस्तक भडार, लहेरिया सराय पटना
५३. चोखे चौपदे	,,	
५४. साकेत	मैथिलीशरण गुप्त,	साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सं० १९८८

५५. रंग में भंग मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य प्रेस चिरगाँव, झाँसी १९८४

५६. द्वापर ,, ,, ,, ,, ,, १९९४
५७. मंगलघट ,, ,, ,, ,, ,, १९९६
५८. सिद्धराज ,, ,, ,, ,, ,, १९९०
५९. पंचवटी ,, ,, ,, ,, ,, १९९९
६०. कुणालगीत ,, ,, ,, ,, ,, २००१
६१. यशोधरा ,, ,, ,, ,, ,, २००२
६२. बक-संहार ,, ,, ,, ,, ,, २००२
६३ शकुन्तला ,, ,, ,, ,, ,, २००२
६४. नहुष ,, ,, ,, ,, ,, २००२
६५. वन वैभव ,, ,, ,, ,, ,, २००२
६६. भारत भारती ,, ,, ,, ,, ,, २००२
६७. विश्व वेदना ,, ,, ,, ,, ,, २००३
६८. जयद्रथ बध ,, ,, ,, ,, ,, २००३

६९. कविता कौमुदी, दो भाग, रामनरेश त्रिपाठी, हिंदीमंदिर प्रयाग सं० १९८४

७०. स्वप्न ,, ,, ,, ,, ,, १९४४
७१. मिलन ,, ,, ,, ,, ,, १९४७
७२. पथिक ,, ,, ,, तृतीय संस्करण
७३. नूरजहाँ गुरु भक्त सिंह नंदकिशोर एंड ब्रदर्स, बनारस
७४. कानन-कुसुम जयशंकर प्रसाद अग्रवाल प्रेस, तेलिया बाग, सन् १९२९
७५. झरना ,, साहित्य सेवा सदन, काशी सं० १९८४
७६. चित्राधार ,, साहित्य सरोज कार्यालय, बनारस १९८५
७७. आँसू ,, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग १९९८
७८. लहर ,, ,, ,, ,, सं० १९९८
७९. कामायनी ,, ,, ,, ,, २०००

८० युगान्त	सुमित्रा नंदन पंत	इन्द्र प्रिंटिंग वर्क्स, अलमोड़ा, प्रथम आवृत्त
८१. गुञ्जन	,,	भारती भंडार, लीडर प्रेस, सं० २००३
८२. पल्लविनी	,,	,, ,, ,, ,, २००१
८३. युगवाणी	,,	,, ,, ,, ,, २००१
८४. ग्राम्या	,,	,, ,, ,, ,, २००३
८५. वीणा	,,	इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग सन् १९२७
८६. ग्रन्थि	,,	,, ,, ,, ,, १९२९
८७. पल्लव	,,	,, ,, ,, ,, १९३१
८८. ज्योत्स्ना	,,	,, ,, ,, ,,
८९. परिमल	सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला'	गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ सं० २००१
९०. अणिमा	,,	युग मंदिर उन्नाव, सन् १९४३
९१. अनामिका	,,	भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग सं० १९८५
९२. तुलसीदास	,,	,, ,, ,, १९९९
९३. गीतिका	,,	,, ,, ,, ,, २००२
९४. कुकुरमुत्ता	,,	,, ,, ,,
९५. आधुनिक कवि	महादेवी वर्मा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९९७
९६. दीपशिखा	,,	किताबिस्तान, इलाहाबाद, सं० १९४२
९७. नीरजा	,,	इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, सन् १९३६
९८. नीहार	,,	साहित्य-भवन लि०, प्रयाग, सन् १९३०
९९. रश्मि	,,	,, ,, ,, ,, १९३२
१००. सांध्यगीत	,,	,, ,, ,, ,, १९३६

१०१ काव्य-कौस्तुभ — पं० विद्याभूषण मिश्र — विद्याभास्कर बुकडिपो, बनारस सन् १९३५

१०२. काव्य-कमल — संकलनकर्ता, कृष्ण-देव प्रसाद गौड़ — इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग सन् १९४६

१०३ हिन्दी-काव्य-संग्रह — सत्य जीवन वर्मा — रामचरण लाल, प्रयाग, सन् १९३८

१०४. काव्य-कलाधर — राम बहोरी शुक्ल — नंद किशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस सन् १९३२

सहायक ग्रंथ

१. साहित्य-दर्पण — पं० विश्वनाथ
२. चिंतामणि दो भाग — ,, रामचन्द्र शुक्ल
३. हिंदी साहित्य का इतिहास — ,, ,, ,,
४. तुलसीदास — ,, ,, ,,
५. भ्रमर गीत सार की भूमिका — ,, ,, ,,
६. जायसी ग्रंथावली की भूमिका — ,, ,, ,,
७. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास — पं० कृष्ण शंकर शुक्ल
८. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा० राम कुमार वर्मा
९. हिंदी साहित्य का इतिहास — 'रसाल'
१०. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, श्री कृष्ण लाल
११. हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास, प्रा० गुलाब राय
१२. सिद्धांत और अध्ययन — ,,
१३. हिंदी नवरत्न — मिश्र बंधु
१४ मिश्र बंधु विनोद — ,,
१५. हिंदी साहित्य का इतिहास — श्याम सुन्दर दास
१६. साहित्यालोचन — ,, ,, ,,
१७. हिंदी के कवि और काव्य १. २. ३ — गणेश प्रसाद द्विवेदी
१८. हिंदी काव्य कल्पद्रुम — सेठ कन्हैया लाल पोद्दार
१९. संस्कृत साहित्य का इतिहास — ,, ,, ,, ,,
२०. हिंदी साहित्य की भूमिका — ,, हजारी प्रसाद द्विवेदी